श्रीमन्महर्षि वेदव्यासप्रणीत

महाभारत-खिलभाग हरिवंश

श्रीहरिवंशपुराण

हिन्दीटीकासहित



गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीहरिः

प्रथम संस्करणकी भूमिका

हरिवंश वेदार्थप्रकाशक महाभारत ग्रन्थका ही अन्तिम पर्व है। आदिपर्वके अनुक्रमणिकाध्यायमें महाभारतको सौ पर्वोंवाला ग्रन्थ बतलाया गया है। उसके अन्तिम तीन पर्व इस हरिवंश-ग्रन्थमें ही सम्मिलित हैं। यह बात अनुक्रमणिकाध्यायमें स्पष्टरूपसे निर्दिष्ट है—

हरिवंशस्ततः पर्व पुराणं खिलसंज्ञितम्। विष्णुपर्व शिशोश्चर्या विष्णोः कंसवधस्तथा॥
भविष्यं पर्व चाप्युक्तं खिलेष्वेवाद्भुतं महत्। एतत्पर्वशतं पूर्णं व्यासेनोक्तं महात्मना॥

(महा० आदि०,अध्याय २। ८२-८३)

जैसे वेदविहित सोमयाग उपनिषदोंके बिना साङ्ग सम्पन्न नहीं होता, वैसे ही श्रीमहाभारतका पारायण भी हरिवंश-पारायणके बिना पूर्ण नहीं होता।* किंतु हरिवंशका पारायण गीता आदिकी तरह स्वतन्त्र भी किया जाता है। इस तरह यह '**पुराणं खिलसंज्ञितम्**' आदिपर्व (२। ८२)-के आधारपर 'हरिवंशपुराण' तथा 'हरिवंशपर्व' इन दोनों ही नामोंसे विद्वानोंके बीच विख्यात है।

पुत्रप्राप्तिकी कामनासे हरिवंश-श्रवणकी परम्परा भारतमें चिरकालसे प्रचलित है। विशेषकर यदि जन्मकुण्डलीमें संतानभाव सूर्यके द्वारा दृष्ट, आविष्ट या बाधित हो तो हरिवंश-श्रवण ही उसका प्रतिकार बतलाया गया है—

वंशान्तो हरिरुष्णगौ त्रिपुराहाब्जे भूसुते रुद्रियं सौम्ये सम्पुटकांस्यपात्रविधिवज्जीवे च पित्र्यातिथिः।
शुक्रे गोप्रतिपालनं च कथितं मन्दे च मृत्युञ्जयः कन्यादानभुजङ्गकेतुकपिलाः संतानसौख्यप्रदाः॥

(बृहत्पाराशरहोराशास्त्र, पूर्वखण्ड १६। १४७)

श्रवणं हरिवंशस्य कर्तव्यं च यथाविधि। जुहुयाच्च दशांशेन दूर्वामाज्यपरिप्लुताम्॥

(मन्त्रमहार्णव, वृद्धसूर्यार्णव)

यों भी इसके श्रवणकी बहुत महिमा है। जो फल अठारहों पुराणोंके सुननेसे मिलता है, वह अकेले हरिवंशके सुननेसे हो जाता है—

अष्टादशपुराणानां श्रवणाद् यत्फलं लभेत्। तत्फलं समवाप्नोति वैष्णवो नात्र संशयः॥

(भविष्यपर्व १३५। ४)

---

* इसके अतिरिक्त निम्नलिखित प्रमाणोंसे भी हरिवंश महाभारतका अङ्ग सिद्ध होता है—

१- हरिवंशपर्वके ३०वें अध्यायमें—'यथा ते कथितं पूर्वं मया राजर्षिसत्तमः' इसके द्वारा वैशम्पायनने आदिपर्वस्थ पूर्वोक्त ययातिकी कथाका स्मरण दिलाया है और उसके लिये 'कथितं पूर्वं' पहले कहे जानेकी बात कही है। इससे दोनोंकी एकग्रन्थता स्पष्ट है।

२-इसीके ३२वें अध्यायमें 'त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला' कहा गया है। आकाशवाणीने शकुन्तलाके जिस कथनकी बात कही है, वह महाभारतके आदिपर्वमें ही है।

३-भविष्यपर्वके ७३वें अध्यायमें जो भगवान् श्रीकृष्णके कैलास-गमनका कारण पूछा गया है, वह आनुशासनिक पर्वके संक्षिप्त कैलास-गमन-वृत्तको लक्ष्य करके ही पूछा गया है। इसी प्रकार और भी कई उदाहरण हैं।

भगवद्भक्ति तथा कथानककी दृष्टिसे भी इसका बड़ा महत्त्व है। भगवान् श्रीकृष्णसे सम्बद्ध तथा अन्यान्य अगणित कथाएँ इसमें ऐसी हैं, जो अन्यत्र नहीं आयीं।

पारायण-क्रमसे इसके नवाह्नका ही विधान है। उसकी पूरी विधि इस ग्रन्थके अन्तमें दे दी गयी है।* केवल नवाह्न-पारायणके विश्रामस्थल नहीं दिये गये हैं। वह 'कृत्यसार-समुच्चय' ग्रन्थके २२५ वें पृष्ठपर इस प्रकार बतलाया गया है—

प्रथमे यदुवंशस्य कीर्तनावधि कीर्तयेत्। द्वितीयेऽह्नि पठेद् विद्वान् धेनुकस्य वधावधि॥
जरासंधवधं यावत् तृतीयेऽह्नि विचक्षणः। पारिजातस्य हरणं चतुर्थेऽह्नि प्रकीर्तयेत्॥
सैन्यभङ्गः शम्बरस्य पञ्चमेऽह्नि प्रयत्नतः। जनमेजयस्य वंशस्य भविष्यस्य च वर्णनम्॥
षष्ठेऽह्नि तावद्वक्तव्यं पारायणशुभेच्छुना। सप्तमे दैत्यसैन्यानां विस्तारो यावदेव हि॥
घण्टाकर्णसमाधिस्तु अष्टमेऽह्नि प्रयत्नतः। नवमेऽह्नि समाप्तिः स्यात् पारायण उदाहृतः॥

इसके अनुसार प्रतिदिन क्रमशः हरिवंशपर्वके ३५, विष्णुपर्वके १३, ४३, ७३, १०६ एवं भविष्यपर्वके २, ५०, ८० तथा १३५ वें अध्यायपर विश्राम करना चाहिये।

एक दूसरा क्रम इस प्रकार भी बतलाया गया है—

प्रथमे कृष्णजननं द्वितीये धेनुकार्दनम्। तृतीये कुण्डिनपुरे रुक्मिणीहरणं तथा॥
चतुर्थे षट्पुरवधमार्यास्तोत्रं च पञ्चमे। मधोश्चरित्रं षष्ठे वै सप्तमे पावकस्तुतिः॥
अष्टमे पौण्ड्रकवधो नवमेऽह्नि समापयेत्। वाचयेदनया रीत्या हरिवंशं यथाक्रमम्॥

अर्थ स्पष्ट है। इस क्रममें थोड़ा-सा अन्तर है। तदनुसार प्रतिदिन हरिवंशपर्वके ३५, विष्णुपर्वके १३, ४३, ८२, १२० तथा भविष्यपर्वके १३, ६२, १०१ तथा १३५ वें अध्यायपर विश्राम करना चाहिये।

सुतरां भगवान्की कृपासे महाभारतके साथ हरिवंशका प्रकाशन-कार्य पूरा हुआ। धार्मिक सदाचार-परायण जनताके सुविधार्थ यह उसकी सचित्र, सटीक तथा सजिल्द प्रति अलगसे प्रकाशित की जा रही है। इसके अन्तमें संतान-गोपाल-मन्त्रकी अनुष्ठान-विधि, इसके कई प्रकार, संतान-गोपाल-स्तोत्र, यन्त्र तथा विष्णु-शतनाम-स्तोत्र—ये सब सटीक दे दिये गये हैं। आशा है प्रेमी पाठक-पाठिकाएँ इन सबोंसे लाभ उठायेंगे। **शिवमिति दिक्।**

—प्रकाशक

---

* 'अनुष्ठान-प्रकाश' के २८६ वें पृष्ठपर भी हरिवंश-श्रवणकी संक्षिप्त विधि दी गयी है।

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतम्

तस्य खिलभागो हरिवंशः

(तत्र हरिवंशपर्व)

प्रथमोऽध्यायः

मङ्गलाचरण, शौनक-उग्रश्रवा-संवाद, वृष्णिवंशियोंका विस्तृत चरित्र सुननेके लिये जनमेजयकी प्रार्थना और आदिसृष्टिका वर्णन

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥ १

बदरिकाश्रमनिवासी प्रसिद्ध ऋषि श्रीनारायण (अथवा अन्तर्यामी नारायण), नर (नारायणसखा अर्जुन अथवा आदि जीव हिरण्यगर्भ) तथा नरोत्तम (इन हिरण्यगर्भ एवं अन्तर्यामीसे भी श्रेष्ठ शुद्ध सच्चिदानन्दघन पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण)-को और (इन नर-नारायण तथा नरोत्तमके तत्त्वको प्रकट करनेवाली) देवी सरस्वतीको एवं (देवी सरस्वतीने संसारपर अनुग्रह करनेके लिये जिनके शरीरमें प्रवेश किया है, उन) व्यासजीको प्रणाम करके अविद्यारूपी अज्ञानान्धकारको जीतनेवाले इतिहास-पुराणादि ग्रन्थोंका पाठ आरम्भ करे॥ १॥

द्वैपायनोष्ठपुटनिःसृतमप्रमेयं
पुण्यं पवित्रमथ पापहरं शिवं च।
यो भारतं समधिगच्छति वाच्यमानं
किं तस्य पुष्करजलैरभिषेचनेन॥ २
जयति पराशरसूनुः
सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः।
यस्यास्यकमलगलितं
वाङ्मयममृतं जगत् पिबति॥ ३

(सौति कहते हैं—) जो व्यासजीके मुखसे निकले हुए इस अप्रमेय (अतुलनीय), पुण्यदायक, पवित्र, पापहारी और कल्याणमय महाभारतको दूसरोंके मुखसे सुनता है, उसे पुष्कर तीर्थके जलमें स्नान करनेकी क्या आवश्यकता है? (महाभारत-कथा उससे भी अधिक पावन है)॥ २॥ माता सत्यवतीके हृदयको आनन्द प्रदान करनेवाले उन पराशर-पुत्र व्यासकी जय हो, जिनके मुखारविन्दसे निकले हुए वाङ्मयरूपी अमृतका सारा संसार पान करता है॥ ३॥

योगोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति
विप्राय वेदविदुषे बहुविश्रुताय।
पुण्यां च भारतकथां शृणुयाच्च तद्वत्
तुल्यं फलं भवति तस्य च तस्य चैव॥ ४

शताश्वमेधस्य यदत्र पुण्यं
चतुःसहस्रस्य शतक्रतोश्च।
भवेदनन्तं हरिवंशदानात्
प्रकीर्तितं व्यासमहर्षिणा च॥ ५

यद् वाजपेयेन तु राजसूयाद्
दृष्टं फलं हस्तिरथेन चान्यत्।
तल्लभ्यते व्यासवचः प्रमाणं
गीतं च वाल्मीकिमहर्षिणा च॥ ६

यो हरिवंशं लेखयति
यथाविधिना महातपाः सपदि।
स जयति हरिपदकमलं
मधुपो हि यथा रसेन लुब्धः॥ ७

पितामहाद्यं प्रवदन्ति षष्ठं
महर्षिमक्षय्यविभूतियुक्तम्।
नारायणस्यांशजमेकपुत्रं
द्वैपायनं वेद महानिधानम्॥ ८

आद्यं पुरुषमीशानं पुरुहूतं पुरुष्टुतम्।
ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म व्यक्ताव्यक्तं सनातनम्॥ ९

असच्च सदसच्चैव यद्विश्वं सदसत्परम्।
परावराणां स्रष्टारं पुराणं परमव्ययम्॥ १०

मङ्गल्यं मङ्गलं विष्णुं वरेण्यमनघं शुचिम्।
नमस्कृत्य हृषीकेशं चराचरगुरुं हरिम्॥ ११

नैमिषारण्ये कुलपतिः शौनकस्तु महामुनिः।
सौतिं पप्रच्छ धर्मात्मा सर्वशास्त्रविशारदः॥ १२

जो गौओंके सींगमें सोना मढ़ाकर वेदवेत्ता एवं बहुज्ञ ब्राह्मणको प्रतिदिन सौ गौएँ दान देता है और जो पुण्यदायिनी महाभारत-कथाका श्रवणमात्र करता है—इन दोनोंमेंसे प्रत्येकको बराबर ही फल मिलता है॥ ४॥ जो चार हजार अक्षय अन्नसत्रोंसे युक्त तथा इन्द्रपदकी प्राप्ति करानेवाले हैं, उन सौ अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे इस लोकमें जो पुण्य प्राप्त होता है, वही अनन्त पुण्य इस हरिवंश-ग्रन्थका दान करनेसे उपलब्ध होता है। यह बात महर्षि व्यासजीने कही है॥ ५॥ वाजपेय और राजसूय यज्ञोंके अनुष्ठानसे तथा हाथी जुते हुए रथके दानसे जिस फलकी प्राप्ति देखी या बतायी गयी है, वही फल हरिवंश-ग्रन्थका दान करनेसे मिल जाता है। इसमें व्यासजीका वचन प्रमाण है तथा महर्षि वाल्मीकिने भी इसी माहात्म्यका गान किया है॥ ६॥ जो महातपस्वी पुरुष शास्त्रीय विधिके अनुसार हरिवंशको लिखता या लिखवाता है, वह रसपर लुभाये हुए भँवरेके समान भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंपर पहुँच जाता है॥ ७॥ ब्रह्माजीके आदि कारण श्रीनारायणको जिनसे ऊपरकी छठी* पीढ़ीका पुरुष बताते हैं, जो अक्षय विभूतियोंसे युक्त तथा नारायणके अंशसे प्रकट हैं, एकमात्र शुकदेव ही जिनके पुत्र हैं (अथवा जो अपने पिता पराशरके एक ही पुत्र हैं), वैदिक ज्ञानके महानिधिस्वरूप उन महर्षि श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासकी मैं उपासना करता हूँ॥ ८॥ नैमिषारण्यकी बात है, सम्पूर्ण शास्त्रोंके विशेषज्ञ, धर्मात्मा एवं कुलपति† महामुनि शौनकने सबके आदि कारण, अन्तर्यामी पुरुष, पुरुहूत (बहुत-से यजमानोंद्वारा दी गयी आहुतिको ग्रहण करनेवाले), पुरुष्टुत (बहुसंख्यक उपासकोंद्वारा स्तुत्य), ऋत (सत्यस्वरूप), एकाक्षर (प्रणवमय अथवा एक अविनाशी), ब्रह्म (परमात्मा), व्यक्ताव्यक्तस्वरूप, सनातन, असत् (कार्यरूप), सदसत् (कारण और कार्यरूप), अखिल विश्वमय, सत् और असत्—दोनोंसे पर (विलक्षण), कारण और कार्य दोनोंके स्रष्टा, पुरातन, सर्वोत्कृष्ट, अविकारी, मङ्गलकारी, मङ्गलरूप, सर्वव्यापी, सबके द्वारा वरणीय, पापरहित, परम पवित्र, इन्द्रियोंके प्रेरक तथा समस्त चराचर जगत्के गुरु श्रीहरिको प्रणाम करके लोमहर्षण सूतके पुत्र उग्रश्रवासे इस प्रकार पूछा॥ ९—१२॥

* व्यास, पराशर, शक्ति, वसिष्ठ, ब्रह्मा तथा भगवान् नारायण—इस प्रकार गणना करनेपर श्रीनारायणदेव व्यासजीसे छठी पीढ़ी ऊपरके पूर्वज ज्ञात होते हैं।

† जो ग्यारह हजार तपस्वियोंको अन्न आदि देकर पालन करता है, वह वेद-वेदाङ्गका पारगामी ऋषि कुलपति कहलाता है।

शौनक उवाच

सौते सुमहदाख्यानं भवता परिकीर्तितम्।
भारतानां च सर्वेषां पार्थिवानां तथैव च॥ १३

देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम्।
दैत्यानामथ सिद्धानां गुह्यकानां तथैव च॥ १४

अत्यद्भुतानि कर्माणि विक्रमा धर्मनिश्चयाः।
विचित्राश्च कथायोगा जन्म चाग्र्यमनुत्तमम्॥ १५

कथितं भवता पुण्यं पुराणं श्लक्ष्णया गिरा।
मनःकर्णसुखं सौते प्रीणात्यमृतसम्मितम्॥ १६

तत्र जन्म कुरूणां वै त्वयोक्तं लौमहर्षणे।
न तु वृष्ण्यन्धकानां च तद् भवान् वक्तुमर्हति॥ १७

सौतिरुवाच

जनमेजयेन यत् पृष्टः शिष्यो व्यासस्य धर्मवित्।
तत् तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि वृष्णीनां वंशमादितः॥ १८

श्रुत्वेतिहासं कार्त्स्न्येन भारतानां स भारतः।
जनमेजयो महाप्राज्ञो वैशम्पायनमब्रवीत्॥ १९

जनमेजय उवाच

महाभारतमाख्यानं बह्वर्थं श्रुतिविस्तरम्।
कथितं भवता पूर्वं विस्तरेण मया श्रुतम्॥ २०

तत्र शूराः समाख्याता बहवः पुरुषर्षभाः।
नामभिः कर्मभिश्चैव वृष्ण्यन्धकमहारथाः॥ २१

तेषां कर्मावदातानि त्वयोक्तानि द्विजोत्तम।
तत्र तत्र समासेन विस्तरेणैव मे प्रभो॥ २२

न च मे तृप्तिरस्तीह कथ्यमाने पुरातने।
एकश्चैव मतो राशिर्वृष्णयः पाण्डवास्तथा॥ २३

भवांश्च वंशकुशलस्तेषां प्रत्यक्षदर्शिवान्।
कथयस्व कुलं तेषां विस्तरेण तपोधन॥ २४

यस्य यस्यान्वये ये ये तांस्तानिच्छामि वेदितुम्।
स त्वं सर्वमशेषेण कथयस्व महामुने।
तेषां पूर्वविसृष्टिं च विचिन्त्येमां प्रजापतेः॥ २५

शौनकजीने कहा—सूतनन्दन! आपने भरतवंशियों, अन्य सब राजाओं, देवताओं, दानवों, गन्धर्वों, नागों, राक्षसों, दैत्यों, सिद्धों तथा गुह्यकोंसे सम्बन्ध रखनेवाला यह बहुत बड़ा उपाख्यान (महाभारत) कह सुनाया। आपने (ऋषि-महर्षियोंके) अद्भुत कर्म, (शूरवीरोंके) बल-विक्रम, धर्मतत्त्वके निर्णय, विचित्र-विचित्र कथा-प्रसङ्ग तथा (द्रोण आदिके) श्रेष्ठ एवं परम उत्तम जन्म-वृत्तान्त आदि प्राचीन एवं पुण्यप्रद विषयोंका अपनी मधुर वाणीद्वारा वर्णन किया है। उग्रश्रवाजी! मन और कानोंको सुख देनेवाला यह प्रसङ्ग मुझे अमृतके समान तृप्ति प्रदान करता है। लोमहर्षणकुमार! आपने महाभारत सुनाते समय कुरुवंशियोंके ही जन्मका विशेषरूपसे वर्णन किया है, वृष्णि तथा अन्धकवंशके वीरोंके जन्मका नहीं; अतः अब आप उन सबके जन्म-कर्मका भी वर्णन कीजिये॥ १३—१७॥

सूत-पुत्र उग्रश्रवाने कहा—शौनकजी! जनमेजयने व्यासजीके धर्मवेत्ता शिष्य वैशम्पायनजीसे जो कुछ पूछा था, उसीके अनुसार मैं आरम्भसे ही वृष्णियोंके वंशका आपसे वर्णन करता हूँ। भरतवंशी राजाओंके इतिहासको पूर्णरूपसे सुनकर भरतनन्दन महाबुद्धिमान् जनमेजयने वैशम्पायनजीसे कहा॥ १८-१९॥

जनमेजयने कहा—मुने! आपने पहले वेदके अर्थको स्पष्ट करके विस्तृतरूपमें वर्णन करनेवाली, (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि) अनेक अर्थोंसे भरी हुई जो महाभारतकी कथा विस्तारपूर्वक कही, उसको मैंने सुन लिया। उस महाभारत-कथामें आपने बहुत-से पुरुषश्रेष्ठ शूरोंका वर्णन किया तथा बहुत-से वृष्णि और अन्धकवंशी महारथियोंके नाम और कर्म भी बताये। द्विजोत्तम! उनके उत्तम कर्मोंका भी आपने उन-उन स्थलोंमें संक्षिप्तरूपसे वर्णन किया है। प्रभो! अब आप उनको विस्तारपूर्वक सुनाइये। आपने पहले जो संक्षिप्तरूपसे वर्णन किया, उससे मेरी तृप्ति नहीं हुई है। ये वृष्णि और पाण्डव एक ही राशि (कुटुम्ब)-के माने जाते हैं। तपोधन! आप वंशोंकी कथा कहनेमें चतुर हैं और उनकी सब बातोंको आपने प्रत्यक्ष देखा है। अतएव उनके कुलका आप विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। महामुने! जिस-जिसके कुलमें जो-जो उत्पन्न हुए हों, उन सबको मैं जानना चाहता हूँ; अतएव प्रजापतिसे आरम्भ करके पूर्वकालमें उनकी जिस प्रकार सृष्टि हुई है, उन सबका विचार करके आप मुझे पूर्णरूपसे सब कथा सुनाइये॥ २०—२५॥

सौतिरुवाच

सत्कृत्य परिपृष्टस्तु स महात्मा महातपाः।
विस्तरेणानुपूर्व्या च कथयामास तां कथाम्॥ २६

वैशम्पायन उवाच

शृणु राजन् कथां दिव्यां पुण्यां पापप्रमोचनीम्।
कथ्यमानां मया चित्रां बह्वर्थां श्रुतिसम्मिताम्॥ २७

यश्चेमां धारयेद् वापि शृणुयाद् वाऽप्यभीक्ष्णशः।
स्ववंशधारणं कृत्वा स्वर्गलोके महीयते॥ २८

अव्यक्तं कारणं यत् तन्नित्यं सदसदात्मकम्।
प्रधानं पुरुषं तस्मान्निर्ममे विश्वमीश्वरम्॥ २९

तं वै विद्धि महाराज ब्रह्माणममितौजसम्।
स्रष्टारं सर्वभूतानां नारायणपरायणम्॥ ३०

अहङ्कारस्तु महतस्तस्माद् भूतानि जज्ञिरे।
भूतभेदाश्च भूतेभ्य इति सर्गः सनातनः॥ ३१

विस्तरावयवं चैव यथाप्रज्ञं यथाश्रुति।
कीर्त्यमानं शृणु मया पूर्वेषां कीर्तिवर्धनम्॥ ३२

धन्यं यशस्यं शत्रुघ्नं स्वर्ग्यमायुःप्रवर्धनम्।
कीर्तनं स्थिरकीर्तीनां सर्वेषां पुण्यकर्मणाम्॥ ३३

तस्मात् कल्पाय ते कल्पः समग्रं शुचये शुचिः।
आ वृष्णिवंशाद् वक्ष्यामि भूतसर्गमनुत्तमम्॥ ३४

ततः स्वयम्भूर्भगवान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत्॥ ३५

उग्रश्रवाने कहा—जब सत्कारपूर्वक उनसे यह बात पूछी गयी, तब वे महातपस्वी महात्मा वैशम्पायन क्रमशः और विस्तारके साथ उस वंशावलिकी कथा कहने लगे॥ २६॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! सुनो, यह (वृष्णिवंशियोंके जन्मकी) कथा अलौकिक, पुण्यमयी और पापोंसे मुक्त करनेवाली है, इसमें (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि) अनेक पुरुषार्थोंका उपदेश है, इस वेदके समान माननीय तथा आश्चर्यमयी कथाका मैं आपसे वर्णन करता हूँ॥ २७॥ जो इस कथाको अपने हृदयमें धारण करता है या इसको पुस्तकके रूपमें अपने घरमें स्थापित करता है अथवा बार-बार इसको सुनता है, वह (इस लोकमें) अपने वंशको स्थापित कर अन्तमें स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ २८॥ जो नित्य, सदसत्स्वरूप तथा कारणभूत अव्यक्त प्रकृति है, उसीको 'प्रधान' कहते हैं। सर्वशक्तिमान् पुरुषने उसीसे इस विश्वका निर्माण किया है॥ २९॥ महाराज! तुम अमित तेजस्वी ब्रह्माजीको ही पुरुष समझो। वे समस्त प्राणियोंकी सृष्टि करनेवाले तथा भगवान् नारायणके आश्रित हैं॥ ३०॥ (प्रकृतिसे महत्तत्त्व,) महत्तत्त्वसे अहंकार तथा अहंकारसे सब सूक्ष्म भूत उत्पन्न हुए। भूतोंके जो स्थूल भेद हैं, वे भी उन सूक्ष्म भूतोंसे ही प्रकट हुए हैं। यह (अनादिकालसे प्रवाहरूपसे चला आनेवाला) सनातन सर्ग है॥ ३१॥ अब जैसी मेरी बुद्धि है और जैसा मैंने गुरुजनोंसे सुन रखा है, उसके अनुसार मैं भूतसर्गका विस्तारपूर्वक वर्णन आरम्भ करता हूँ, सुनो। यह प्रसंग पूर्वजोंकी कीर्तिका विस्तार करनेवाला है॥ ३२॥ स्थिर कीर्तिवाले उन समस्त पुण्यकर्मा पूर्वजोंके यशका कीर्तन धन और यशकी वृद्धि करनेवाला, शत्रुओंका नाशक, स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला तथा आयु बढ़ानेवाला है॥ ३३॥ तुम इस विषयको हृदयंगम करनेमें समर्थ और शुद्ध हो और मैं इसका वर्णन करनेमें समर्थ हूँ। अतः पवित्र होकर आरम्भसे वृष्णिवंशपर्यन्त परम उत्तम भूतसर्गका वर्णन करूँगा॥ ३४॥ तदनन्तर स्वयम्भू भगवान् नारायणने नाना प्रकारकी प्रजा उत्पन्न करनेकी इच्छासे सबसे पहले जलकी ही सृष्टि की। फिर उस जलमें अपनी शक्तिका आधान किया॥ ३५॥

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥ ३६

हिरण्यवर्णमभवत् तदण्डमुदकेशयम्।
तत्र जज्ञे स्वयं ब्रह्मा स्वयम्भूरिति नः श्रुतम्॥ ३७

हिरण्यगर्भो भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
तदण्डमकरोद् द्वैधं दिवं भुवमथापि च॥ ३८

तयोः शकलयोर्मध्ये आकाशमसृजत् प्रभुः।
अप्सु पारिप्लवां पृथ्वीं दिशश्च दशधा दधे॥ ३९

तत्र कालं मनो वाचं कामं क्रोधमथो रतिम्।
ससर्ज सृष्टिं तद्रूपां स्रष्टुमिच्छन् प्रजापतीन्॥ ४०

मरीचिमत्र्यङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
वसिष्ठं च महातेजाः सोऽसृजत् सप्त मानसान्॥ ४१

सप्त ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः।
नारायणात्मकानां वै सप्तानां ब्रह्मजन्मनाम्॥ ४२

ततोऽसृजत् पुनर्ब्रह्मा रुद्रं रोषात्मसम्भवम्।
सनत्कुमारं च विभुं पूर्वेषामपि पूर्वजम्॥ ४३

सप्तैते जनयन्ति स्म प्रजा रुद्रश्च भारत।
स्कन्दः सनत्कुमारश्च तेजः संक्षिप्य तिष्ठतः॥ ४४

तेषां सप्त महावंशा दिव्या देवगणान्विताः।
क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलङ्कृताः॥ ४५

विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च।
वयांसि च ससर्जादौ पर्जन्यं च ससर्ज ह॥ ४६

ऋचो यजूंषि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये।
मुखाद् देवानजनयत् पितॄंश्चेशोऽपि वक्षसः॥ ४७

जलका दूसरा नाम है नार, क्योंकि उसकी उत्पत्ति भगवान् नरसे हुई है। वह जल पूर्वकालमें भगवान्का अयन हुआ, इसलिये वे 'नारायण' कहलाते हैं॥ ३६॥ भगवान्ने जलमें जो अपनी शक्तिका आधान किया था, उससे एक बहुत विशाल सुवर्णमय अण्ड प्रकट हुआ, वह दीर्घकालतक जलमें ही स्थित था। उसीमें स्वयम्भू ब्रह्माजी उत्पन्न हुए—ऐसा हमने सुना है॥ ३७॥ भगवान् हिरण्यगर्भने उस अण्डमें एक वर्षतक निवास करके उसके दो टुकड़े कर दिये। फिर एक टुकड़ेसे द्युलोक बनाया और दूसरेसे भूलोक॥ ३८॥ उन दोनों टुकड़ोंके बीचमें भगवान् ब्रह्माने आकाश (अवकाश)-की सृष्टि की। जलके ऊपर तैरती हुई पृथ्वीको स्थापित किया। फिर दसों दिशाएँ निश्चित कीं॥ ३९॥ उस ब्रह्माण्डके भीतर ही उन्होंने काल, मन, वाणी, काम, क्रोध तथा रति आदि भावोंकी सृष्टि की। फिर इन भावोंके अनुरूप सृष्टि करनेकी इच्छावाले ब्रह्माजीने निम्नाङ्कित (सात) प्रजापतियोंको उत्पन्न किया॥ ४०॥ उनके नाम इस प्रकार हैं—मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ। महातेजस्वी ब्रह्माने इन सातोंकी अपने मन (संकल्प)-से सृष्टि की (अतः ये उनके मानस पुत्र हैं)॥ ४१॥ पुराणोंमें ये सात ब्रह्मा निश्चित किये गये हैं। भगवान् नारायणमें मन लगाये रहनेवाले इन सात ब्राह्मणोंकी सृष्टिके अनन्तर ब्रह्माजीने अपने रोषसे रुद्रको प्रकट किया। फिर पूर्वजोंके भी पूर्वज भगवान् सनत्कुमारजीको उत्पन्न किया॥ ४२-४३॥ भरतनन्दन! ये मरीचि आदि सात ऋषि तथा रुद्रदेव प्रजाकी सृष्टि करने लगे। स्कन्द और सनत्कुमार—ये दोनों अपने तेजका संवरण करके रहते हैं॥ ४४॥ उक्त सात महर्षियोंके सात बड़े-बड़े दिव्य वंश हैं। देवता भी इन्हीं वंशोंके अन्तर्गत हैं। उन सातों वंशोंके लोग कर्मनिष्ठ एवं संतानवान् हैं। उन वंशोंको बड़े-बड़े ऋषियोंने सुशोभित किया है॥ ४५॥ इसके बाद ब्रह्माजीने पहले विद्युत्, वज्र, मेघ, रोहित (सीधा) इन्द्र-धनुष, पक्षिसमुदाय तथा पर्जन्यकी सृष्टि की॥ ४६॥ फिर ब्रह्माजीने यज्ञकी सिद्धिके लिये (नित्यसिद्ध) ऋक्, यजुः और सामका आविष्कार किया। फिर ऐश्वर्यशील ब्रह्माने अपने मुखसे देवताओंको और वक्षःस्थलसे पितरोंको प्रकट किया॥ ४७॥

प्रजनाच्च मनुष्यान् वै जघनान्निर्ममेऽसुरान्।
साध्यानजनयद् देवानित्येवमनुशुश्रुम॥ ४८

उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे।
आपवस्य प्रजासर्गं सृजतो हि प्रजापतेः॥ ४९

सृज्यमानाः प्रजा नैव विवर्धन्ते यदा तदा।
द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्॥ ५०

अर्धेन नारी तस्यां स ससृजे विविधाः प्रजाः।
दिवं च पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्य तिष्ठतः॥ ५१

विराजमसृजद् विष्णुः सोऽसृजत् पुरुषं विराट्।
पुरुषं तं मनुं विद्धि तद् वै मन्वन्तरं स्मृतम्॥ ५२

द्वितीयमापवस्यैतन्मनोरन्तरमुच्यते।
स वैराजः प्रजासर्गं ससर्ज पुरुषः प्रभुः।
नारायणविसर्गः स प्रजास्तस्याप्ययोनिजाः॥ ५३

आयुष्मान् कीर्तिमान् धन्यः प्रजावाञ्छ्रुतवांस्तथा।
आदिसर्गं विदित्वेमं यथेष्टां गतिमाप्नुयात्॥ ५४

फिर उन्होंने उपस्थेन्द्रियसे मनुष्योंको और जंघाओंसे असुरोंको उत्पन्न किया। तदनन्तर उन्होंने साध्य नामक प्राचीन देवताओंको प्रकट किया, ऐसा हमने सुना है॥ ४८॥ इस प्रकार प्रजाकी सृष्टि रचते हुए उन आपव (अर्थात् जलमें प्रकट हुए) प्रजापति ब्रह्माके अङ्गोंमेंसे उच्च तथा साधारण श्रेणीके बहुत-से प्राणी प्रकट हुए॥ ४९॥ इस प्रकार वे आपव प्रजापति (मानसिक) प्रजाओंको रच रहे थे; परंतु वे प्रजाएँ जब (अधिक) न बढ़ीं, तब वे अपने शरीरके दो भाग कर, एक भागसे पुरुष और दूसरे भागसे नारी हो गये और (उस नारीने गाय, घोड़ी आदि जिस-जिस रूपको धारण किया, पुरुषने उसी जातिके बैल, घोड़े आदिका रूप धारण किया,) इस प्रकार उन्होंने उस नारीमें अनेक प्रकारकी मैथुनी-प्रजाओंको रचा। इस प्रकार वे पुरुष और नारी अपनी महिमासे स्वर्ग और पृथ्वीपर व्याप्त हो गये॥ ५०-५१॥ भगवान् विष्णुने विराट् पुरुष (आपव प्रजापति या ब्रह्मा)-की सृष्टि की थी और विराट्ने पुरुषकी। उस वैराज पुरुषको तुम मनु समझो (और उनकी स्त्रीको शतरूपा)। मनुके समयको ही मन्वन्तरकाल कहा गया है॥ ५२॥ आपवपुत्र मनुकी जो यह दूसरी योनिज सृष्टि है, यहींसे मन्वन्तरका आरम्भ बताया जाता है। इस प्रकार शक्तिशाली वैराज पुरुष (मनु)-ने प्रजासर्गकी सृष्टि की। आपव प्रजापतिको नारायणसर्ग कहा गया है (क्योंकि वे नारायणसे ही प्रकट हुए हैं)। उनकी अयोनिजा प्रजा प्रथम सर्ग है (और मनुकी योनिजा प्रजा द्वितीय सर्ग)॥ ५३॥ जो इस आदि सृष्टिको इस प्रकार जान लेता है, वह आयुष्मान्, कीर्तिमान्, धन्यवादका पात्र, संतानवान् और विद्वान् होता है, उसे इच्छानुसार उत्तम गति प्राप्त होती है॥ ५४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि आदिसर्गकथने प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें आदिसृष्टिका वर्णनविषयक पहला अध्याय पूरा हुआ॥ १॥

द्वितीयोऽध्यायः

स्वायम्भुव मनुके वंश और दक्ष प्रजापतिकी उत्पत्तिका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

स सृष्टासु प्रजास्वेवमापवो वै प्रजापतिः।
लेभे वै पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम्॥ १

आपवस्य महिम्ना तु दिवमावृत्य तिष्ठतः।
धर्मेणैव महाराज शतरूपा व्यजायत॥ २

सा तु वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम्।
भर्तारं दीप्ततपसं पुरुषं प्रत्यपद्यत॥ ३

स वै स्वायम्भुवस्तात पुरुषो मनुरुच्यते।
तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते॥ ४

वैराजात् पुरुषाद् वीरं शतरूपा व्यजायत।
प्रियव्रतोत्तानपादौ वीरात् काम्या व्यजायत॥ ५

काम्या नाम महाबाहो कर्दमस्य प्रजापतेः।
काम्यापुत्रास्तु चत्वारः सम्राट् कुक्षिर्विराट् प्रभुः।
प्रियव्रतं समासाद्य पतिं सा सुषुवे सुतान्॥ ६

उत्तानपादं जग्राह पुत्रमत्रिः प्रजापतिः।
उत्तानपादाच्चतुरः सूनृताजनयत् सुतान्॥ ७

धर्मस्य कन्या सुश्रोणी सूनृता नाम विश्रुता।
उत्पन्ना वाजिमेधेन ध्रुवस्य जननी शुभा॥ ८

ध्रुवं च कीर्तिमन्तं च शिवं शान्तमयस्पतिम्।
उत्तानपादोऽजनयत् सूनृतायां प्रजापतिः॥ ९

ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि दिव्यानि भारत।
तपस्तेपे महाराज प्रार्थयन् सुमहद् यशः॥ १०

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय! इस प्रकार (अयोनिज—मानसिक) प्रजाओंकी रचना हो जानेपर वह आपव प्रजापति (ब्रह्मा) ही (अपनी देहके दो भाग करके एक भागसे मनु नामक) पुरुष बन गये और उन्होंने देहके दूसरे भागसे बनी हुई अयोनिजा शतरूपाको पत्नीरूपमें स्वीकार किया॥ १॥ महाराज! अपनी महिमासे द्युलोकको व्याप्त करके स्थित हुए मनुके धर्मसे ही उनकी पत्नी शतरूपाकी उत्पत्ति हुई॥ २॥ वह शतरूपा दस हजार वर्षोंतक परम दुष्कर तप करके (संतानकी कामनासे) तपसे चमकते हुए अपने स्वामी वैराज पुरुषके पास आयीं॥ ३॥ तात! वे पुरुष ही स्वायम्भुव मनु कहे जाते हैं। उन (-के अधिकार)-का (सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुगरूप) इकहत्तर चतुर्युगोंका समय इस संसारमें मन्वन्तर कहलाता है (यह मन्वन्तर संध्या और संध्यांशके कारण इकहत्तर चतुर्युगोंसे भी कुछ अधिक समयका होता है।)॥ ४॥ वैराज पुरुष मनुसे उनकी पत्नी शतरूपाने वीर नामक पुत्रको जन्म दिया और वीरसे उनकी पत्नी काम्याने प्रियव्रत तथा उत्तानपादको उत्पन्न किया॥ ५॥ महाबाहो! कर्दम प्रजापतिकी एक काम्या नामवाली पुत्री थी, उस काम्याके सम्राट्, कुक्षि, विराट् और प्रभु नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। उस काम्याने प्रियव्रतको पतिरूपमें पाकर इन पुत्रोंको उत्पन्न किया था॥ ६॥ प्रजापति अत्रिने उत्तानपादको पुत्ररूपमें ग्रहण कर लिया। उत्तानपादसे उनकी पत्नी सूनृताने चार पुत्रोंको उत्पन्न किया॥ ७॥ धर्मकी एक सूनृता नामसे प्रसिद्ध सुन्दर कटिवाली पुत्री थी, वह धर्मके यहाँ अश्वमेध यज्ञसे प्रकट हुई थी, यही कल्याणकारिणी सूनृता ध्रुवकी माता थी॥ ८॥ प्रजापति उत्तानपादने सूनृता नामवाली पत्नीसे ध्रुव, कीर्तिमान्, शान्तस्वरूप शिव और अयस्पति नामक पुत्रको उत्पन्न किया था॥ ९॥ भरतवंशी महाराज! ध्रुवने जिनका नाम महायश* है, उन भगवान् नारायणको पानेकी इच्छासे तीन हजार दिव्य† वर्षोंतक तप किया था॥ १०॥

* यस्य नाम महद् यशः। (महानारायणोपनिषद् १। १०)
† मनुष्योंका एक वर्ष देवताओंका एक दिव्य दिन होता है।

तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतः स्थानमप्रतिमं भुवि।
अचलं चैव पुरतः सप्तर्षीणां प्रजापतिः॥ ११

तस्यातिमात्रामृद्धिं च महिमानं निरीक्ष्य च।
देवासुराणामाचार्यः श्लोकमप्युशना जगौ॥ १२

अहोऽस्य तपसो वीर्यमहो श्रुतमहो बलम्।
यदेनं पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः॥ १३

तस्माच्छ्लिष्टिं च भव्यं च ध्रुवाच्छम्भुर्व्यजायत।
श्लिष्टेराधत्त सुच्छाया पञ्च पुत्रानकल्मषान्॥ १४

रिपुं रिपुञ्जयं पुण्यं वृकलं वृकतेजसम्।
रिपोराधत्त बृहती चाक्षुषं सर्वतेजसम्॥ १५

अजीजनत् पुष्करिण्यां वीरण्यां चाक्षुषो मनुम्।
प्रजापतेरात्मजायामरण्यस्य महात्मनः॥ १६

मनोरजायन्त दश नड्वलायां महौजसः।
कन्यायामभवञ्छ्रेष्ठा वैराजस्य प्रजापतेः॥ १७

ऊरुः पुरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवान् कविः।
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव॥ १८

अभिमन्युश्च दशमो नड्वलायाः सुताः स्मृताः।
ऊरोरजनयत् पुत्रान् षडाग्नेयी महाप्रभान्।
अङ्गं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमङ्गिरसं गयम्॥ १९

अङ्गात् सुनीथापत्यं वै वेनमेकमजायत।
अपचारात् तु वेनस्य प्रकोपः सुमहानभूत्॥ २०

प्रजार्थमृषयो यस्य ममन्थुर्दक्षिणं करम्।
वेनस्य पाणौ मथिते बभूव मुनिभिः पृथुः॥ २१

तं दृष्ट्वा ऋषयः प्राहुरेष वै मुदिताः प्रजाः।
करिष्यति महातेजा यशश्च प्राप्स्यते महत्॥ २२

स धन्वी कवची खड्गी तेजसा निर्दहन्निव।
पृथुर्वैन्यस्तदा चेमां ररक्ष क्षत्रपूर्वजः॥ २३

प्रजापालक भगवान् ब्रह्मा (विष्णु)-ने ध्रुवपर प्रसन्न होकर उनको सप्तर्षियोंके सम्मुख एक अलौकिक, अचल स्थान प्रदान किया॥ ११॥ ध्रुवकी बड़ी भारी समृद्धि और महिमाको देखकर देवता और असुरोंके आचार्य शुक्राचार्यने* इस श्लोकका गान किया—॥ १२॥ 'इन ध्रुवके तपोबलको देखकर आश्चर्य होता है, इनका शास्त्रज्ञान भी विस्मयविमुग्ध कर देता है और इनकी शक्ति भी अद्भुत है, तभी तो ये सप्तर्षि भी इनको अपने आगे स्थापित करके स्थित हैं'॥ १३॥ उन ध्रुवसे शम्भु नामवाली स्त्रीने श्लिष्टि और भव्य नामक पुत्रोंको उत्पन्न किया। श्लिष्टिसे सुच्छाया (नामकी पत्नी)-ने रिपु, रिपुञ्जय, पुण्य, वृकल और वृकतेजा—पाँच निष्पाप पुत्रोंको उत्पन्न किया। रिपुसे उनकी बृहती नामकी पत्नीने सब देवताओंके तेजसे परिपूर्ण चाक्षुष नामक पुत्रको उत्पन्न किया॥ १४-१५॥ चाक्षुषने वीरणकी पुत्री पुष्करिणीके गर्भसे मनु नामक पुत्रको उत्पन्न किया। वैराज प्रजापतिके वंशमें उत्पन्न हुए इन परम तेजस्वी मनुसे महात्मा अरण्यकी पुत्री नड्वलाद्वारा दस श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए॥ १६-१७॥ ऊरु, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवान्, कवि, अग्निष्टुत्, अतिरात्र और सुद्युम्न—ये नौ और दसवाँ अभिमन्यु—ये नड्वलाके पुत्र कहे जाते हैं। ऊरुसे अग्निकी कन्याने अङ्ग, सुमना, ख्याति, क्रतु, अङ्गिरा और गय नामक उत्तम कान्तिवाले छः पुत्रोंको उत्पन्न किया था॥ १८-१९॥ अङ्गसे (मृत्युकी पुत्री) सुनीथाने वेन नामक एक पुत्रको उत्पन्न किया था। वेन अत्याचारी था (देवता, धर्म आदिसे द्रोह रखता था), अतएव ऋषियोंको उसपर बड़ा क्रोध आया॥ २०॥ (ऋषियोंके कोपसे नष्ट हुए) वेनके दाहिने हाथको मुनियोंने संतान उत्पन्न करनेके लिये मथा, तब मुनियोंके मथे हुए वेनके दाहिने हाथसे पृथुकी उत्पत्ति हुई॥ २१॥ ऋषियोंने उसको देखकर कहा—'यह पृथु प्रजाओंको प्रसन्न करेगा और इस महातेजस्वीको उत्तम यशकी प्राप्ति होगी'॥ २२॥ तब वे क्षत्रिय-जातिमें प्रथम उत्पन्न हुए वेनके पुत्र पृथु धनुष, कवच और तलवार धारणकर अपने तेजसे (डाकू, अधर्मी आदि दुष्ट पुरुषोंको) भस्म-सा करते हुए इस पृथ्वीकी रक्षा करने लगे॥ २३॥

* मैत्रायणीय-उपनिषद्में कहा है कि इन्द्रको अभय देनेके लिये और असुरोंका क्षय करनेके लिये बृहस्पति ही दूसरे शरीरसे शुक्रके रूपमें प्रकट हो गये और उन्होंने अविद्याको रचकर असुरोंको मोहमें डाल रखा है।

राजसूयाभिषिक्तानामाद्यः स वसुधाधिपः।
तस्माच्चैव समुत्पन्नौ निपुणौ सूतमागधौ॥ २४

तेनेयं गौर्महाराज दुग्धा सस्यानि भारत।
प्रजानां वृत्तिकामेन देवैः सर्षिगणैः सह॥ २५

पितृभिर्दानवैश्चैव गन्धर्वैः साप्सरोगणैः।
सर्पैः पुण्यजनैश्चैव वीरुद्भिः पर्वतैस्तथा॥ २६

तेषु तेषु च पात्रेषु दुह्यमाना वसुन्धरा।
प्रादाद् यथेप्सितं क्षीरं तेन प्राणानधारयन्॥ २७

पृथुपुत्रौ तु धर्मज्ञौ जज्ञातेऽन्तर्द्धिपालितौ।
शिखण्डिनी हविर्धानमन्तर्धानाद् व्यजायत॥ २८

हविर्धानात् षडाग्नेयी धिषणाजनयत् सुतान्।
प्राचीनबर्हिषं शुक्लं गयं कृष्णं व्रजाजिनौ॥ २९

प्राचीनबर्हिर्भगवान् महानासीत् प्रजापतिः।
हविर्धानान्महाराज येन संवर्द्धिताः प्रजाः॥ ३०

प्राचीनाग्राः कुशास्तस्य पृथिव्यां जनमेजय।
प्राचीनबर्हिर्भगवान् पृथिवीतलचारिणः॥ ३१

समुद्रतनयायां तु कृतदारोऽभवत् प्रभुः।
महतस्तपसः पारे सवर्णायां महीपतिः॥ ३२

सवर्णाऽऽधत्त सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः।
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः॥ ३३

अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः।
दशवर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः॥ ३४

तपश्चरत्सु पृथिवीं प्रचेतस्सु महीरुहाः।
अरक्ष्यमाणामावव्रुर्बभूवाथ प्रजाक्षयः॥ ३५

पृथु राजसूय यज्ञमें अभिषिक्त होनेवाले राजाओंमें प्रथम भूपति हैं। (उन्हींके यज्ञमें अग्निसे राजाओंकी स्तुति करनेमें) चतुर सूत तथा (राजाओंकी वंशावली पढ़नेमें) प्रवीण मागध प्रकट हुए थे॥ २४॥ भरतवंशी महाराज! प्रजाओंको आजीविका देनेकी इच्छावाले पृथुने देवता और ऋषियोंकी मण्डलियोंको साथमें ले गौरूपिणी पृथ्वीसे अन्न (आदि सकल वस्तुओं)-को दुहा था॥ २५॥ (पृथुके समय) पितर, दानव, गन्धर्व, अप्सरा, सर्प, यक्ष, वृक्ष और पर्वतोंने अपने-अपने पात्रोंमें* दुहा था। पृथ्वीने उनको इच्छानुसार दूध दिया था और उस दूधसे उन सबने अपने प्राणोंको धारण किया था॥ २६-२७॥ पृथुके अन्तर्धान और पालित—ये दो धर्मज्ञ पुत्र हुए और अन्तर्धानसे शिखण्डिनीने हविर्धान नामक पुत्रको उत्पन्न किया॥ २८॥ हविर्धानसे अग्निकी पुत्री धिषणाने प्राचीनबर्हि, शुक्ल, गय, कृष्ण, व्रज और अजिन नामवाले छः पुत्रोंको उत्पन्न किया॥ २९॥ महाराज! भगवान् † प्राचीनबर्हि, जिन्होंने प्रजाओंका पालन एवं संवर्धन किया था, अपने पिता हविर्धानसे बढ़कर प्रजापालक हुए॥ ३०॥ जनमेजय! उनके यज्ञ करते समय बिछे हुए प्राचीनाग्र कुश समस्त भूमण्डलपर फैलकर उनके महत्त्वको प्रकट कर रहे थे, अतएव उनका नाम भगवान् प्राचीनबर्हि है॥ ३१॥ महीपति प्रभु प्राचीनबर्हिने बड़ा भारी तप करनेके पश्चात् समुद्रकी पुत्री सवर्णाके साथ विवाह किया॥ ३२॥ प्राचीनबर्हिसे समुद्रकी पुत्री सवर्णाने दस पुत्र उत्पन्न किये, उन दसोंका 'प्रचेता' यह एक ही नाम था। वे सब धनुर्वेदके पारगामी थे॥ ३३॥ वे सब प्रचेतागण एक साथ समान धर्म-कर्मका आचरण करते थे और एक-से शीलवाले थे, उन्होंने समुद्रके जलमें प्रवेश करके दस हजार वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्या की॥ ३४॥ जब प्रचेतागण तप कर रहे थे, तब अरक्षित पड़ी हुई पृथ्वीको वृक्षोंने चारों ओरसे ढक दिया, इससे प्रजाओंका नाश होने लगा॥ ३५॥

* उनके कैसे-कैसे पात्र थे, कैसे-कैसे बछड़े थे और उन्होंने कौन-कौन-सा दूध दुहा था, इसका विस्तृत वर्णन आगे पाँचवें अध्यायमें आयेगा।

† ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥

पूर्ण ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्यका नाम भग है। ये छः वस्तुएँ जिनमें पूर्णरूपसे हों ऐसे योगी महात्मा आदिके साथ भी भगवान् शब्दका प्रयोग किया जा सकता है।

नाशकन्मारुतो वातुं वृतं खमभवद् द्रुमैः।
दशवर्षसहस्राणि न शेकुश्चेष्टितुं प्रजाः॥ ३६

तदुपश्रुत्य तपसा युक्ताः सर्वे प्रचेतसः।
मुखेभ्यो वायुमग्निं च तेऽसृजञ्जातमन्यवः॥ ३७

उन्मूलानथ तान् कृत्वा वृक्षान् वायुरशोषयत्।
तानग्निरदहद्घोरं एवमासीद् द्रुमक्षयः॥ ३८

द्रुमक्षयमथो बुद्ध्वा किंचिच्छिष्टेषु शाखिषु।
उपगम्याब्रवीदेतान् राजा सोमः प्रजापतीन्॥ ३९

कोपं यच्छत राजानः सर्वे प्राचीनबर्हिषः।
वृक्षशून्या कृता पृथ्वी शाम्येतामग्निमारुतौ॥ ४०

रत्नभूता च कन्येयं वृक्षाणां वरवर्णिनी।
भविष्यं जानता तत्त्वं धृता गर्भेण वै मया॥ ४१

मारिषा नाम कन्येयं वृक्षाणामिति निर्मिता।
भार्या वोऽस्तु महाभागाः सोमवंशविवर्द्धिनी॥ ४२

युष्माकं तेजसोऽर्द्धेन मम चार्द्धेन तेजसः।
अस्यामुत्पत्स्यते पुत्रो दक्षो नाम प्रजापतिः॥ ४३

य इमां दग्धभूयिष्ठां युष्मत्तेजोमयेन वै।
अग्निनाग्निसमो भूयः प्रजाः संवर्धयिष्यति॥ ४४

ततः सोमस्य वचनाज्जगृहुस्ते प्रचेतसः।
संहृत्य कोपं वृक्षेभ्यः पत्नीं धर्मेण मारिषाम्॥ ४५

मारिषायां ततस्ते वै मनसा गर्भमादधुः।
दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतिः।
दक्षो जज्ञे महातेजाः सोमस्यांशेन भारत॥ ४६

दस हजार वर्षोंमें वृक्षोंने आकाशतकको घेर लिया, तब वायुका चलना बंद हो गया और प्रजाओंका चेष्टा करना (हाथ-पैर हिलाना) भी बंद होने लगा॥ ३६॥ अपनी तपस्या (ज्ञानदृष्टि)-से इन सब बातोंको जानकर सब प्रचेता इसका उपाय करनेके लिये उद्यत हो गये और उन्होंने क्रोधमें भरकर अपने मुखोंसे वायु और अग्निको प्रकट किया॥ ३७॥ वायुने वृक्षोंको जड़से उखाड़कर उनको सुखा दिया, तब अग्नि प्रचण्ड होकर उन वृक्षोंको जलाने लगी, इस प्रकार वृक्षोंका नाश होने लगा॥ ३८॥ इस प्रकार जलते-जलते जब कुछ ही वृक्ष बाकी बचे, तब वृक्षोंके संहारकी बातको जानकर इन वृक्षोंके राजा सोम प्रजापति प्रचेताओंके पास जाकर बोले— ॥ ३९॥ 'प्राचीनबर्हिके पुत्र प्रचेताओ! तुमने तो पृथ्वीको वृक्षोंसे शून्य ही कर डाला। राजाओ! अब अपने क्रोधको रोको तथा इन अग्नि और पवनको शान्त करो॥ ४०॥ यह वृक्षोंकी रत्नस्वरूपा सुन्दरी कन्या है। मैंने भविष्यके तत्त्वको जानकर इसे अपने गर्भमें स्थापित कर लिया था*॥ ४१॥ यह मारिषा नामवाली कन्या वृक्षोंके वीर्य अर्थात् सारांशसे रची गयी है। महाभाग! इस सोमवंशकी वृद्धि करनेवाली वृक्षोंकी कन्याको तुम भार्यारूपमें ग्रहण करो॥ ४२॥ तुम्हारे और मेरे दोनोंके तेजके आधे-आधे भागके द्वारा इस कन्याके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न होगा, जिसका नाम होगा—दक्ष प्रजापति॥ ४३॥ तुम्हारे तपरूपी अग्निसे अग्निके समान ही प्रतापी वह दक्ष अधिकांश जली हुई इस पृथ्वीपर फिर प्रजाओंकी वृद्धि करेगा'॥ ४४॥ चन्द्रमाके इस प्रकार कहनेपर उन प्रचेताओंने वृक्षोंकी ओरसे अपने क्रोधको समेट लिया और मारिषाको विवाहरूपी धर्मके द्वारा पत्नीरूपमें ग्रहण कर लिया॥ ४५॥ तदनन्तर उन प्रचेताओंने अपने मनसे मारिषामें गर्भ स्थापित किया। भरतवंशी राजन्! इस प्रकार चन्द्रमाके अंशसे दस प्रचेताओंके द्वारा मारिषाके गर्भसे महातेजस्वी दक्ष प्रजापति उत्पन्न हुए॥ ४६॥

* वायुने वृक्षोंको सुखाते समय उनका जलीय सारांश जलके कारण सूर्यमें पहुँचा दिया, इसी प्रकार पृथ्वीका सारभूत अंश जलमय चन्द्रमामें पहुँचा दिया। इस प्रकार कन्यारूप वृक्षोंका वीर्य सोमने अपने गर्भमें धारण कर लिया, यह बात ठीक ही है। 'वृष्टिर्वै वृष्ट्वा चन्द्रमसमनु प्रविशति—वृष्टि बरसकर चन्द्रमामें प्रविष्ट हो जाती है' इस श्रुतिसे भी ओषधियोंके साररूपसे वृष्टिका चन्द्रमामें प्रवेश करना सिद्ध होता है। इस प्रकार चन्द्रमाका यह वचन ठीक ही है कि 'मैंने इन वृक्षोंकी कन्याको अपने गर्भमें धारण कर लिया था।'

पुत्रानुत्पादयामास सोमवंशविवर्धनान्।
अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदः।
स दृष्ट्वा मनसा दक्षः पश्चादप्यसृजत् स्त्रियः॥ ४७
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश।
शिष्टाः सोमाय राज्ञेऽथ नक्षत्राख्या ददौ प्रभुः॥ ४८
तासु देवाः खगा नागा गावो दितिजदानवाः।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव जज्ञिरेऽन्याश्च जातयः॥ ४९
ततः प्रभृति राजेन्द्र प्रजा मैथुनसम्भवाः।
संकल्पाद् दर्शनात् स्पर्शात् पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते॥ ५०

जनमेजय उवाच

देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम्।
सम्भवः कथितः पूर्वं दक्षस्य च महात्मनः॥ ५१
अङ्गुष्ठाद् ब्रह्मणो जातो दक्षः प्रोक्तस्त्वयानघ।
वामाङ्गुष्ठात् तथा चैव तस्य पत्नी व्यजायत॥ ५२
कथं प्राचेतसत्वं स पुनर्लेभे महातपाः।
एतन्मे संशयं विप्र सम्यगाख्यातुमर्हसि।
दौहित्रश्चैव सोमस्य कथं श्वशुरतां गतः॥ ५३

वैशम्पायन उवाच

उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्यौ भूतेषु पार्थिव।
ऋषयोऽत्र न मुह्यन्ति विद्वांसश्चैव ये जनाः॥ ५४
युगे युगे भवन्त्येते सर्वे दक्षादयो नृप।
पुनश्चैव निरुध्यन्ते विद्वांस्तत्र न मुह्यति॥ ५५
ज्यैष्ठ्यं कानिष्ठ्यमप्येषां पूर्वं नासीज्जनाधिप।
तप एव गरीयोऽभूत् प्रभावश्चैव कारणम्॥ ५६
इमां विसृष्टिं दक्षस्य यो विद्यात् सचराचराम्।
प्रजावानापदुत्तीर्णः स्वर्गलोके महीयते॥ ५७

तब उन दक्षप्रजापतिने चन्द्रमाके वंशको बढ़ानेवाले पुत्र उत्पन्न किये और स्थावर, जङ्गम, दो पैरवाले, चार पैरवाले रचनेयोग्य प्राणियोंकी सृष्टिके लिये मनमें विचारकर पीछे स्त्रियोंकी भी रचना की॥ ४७॥ प्रभु दक्षने उनमेंसे दस कन्याएँ धर्मको, तेरह कन्याएँ कश्यपको और शेष बची हुई नक्षत्रसम्बन्धी नामवाली सत्ताईस कन्याएँ राजा चन्द्रमाको दे दीं॥ ४८॥ उन कन्याओंसे देवता, पक्षी, सर्प, गौएँ, दैत्य-दानव-गन्धर्व, अप्सराएँ तथा अन्य जातियोंके प्राणी उत्पन्न हुए॥ ४९॥ राजेन्द्र! तभीसे प्रजाएँ मैथुनद्वारा उत्पन्न होने लगीं। इससे पहले प्राणियोंकी उत्पत्ति संकल्प,* दर्शन और स्पर्शसे होती थी—ऐसा कहा जाता है॥ ५०॥

जनमेजयने कहा—मुने! आपने पहले भी देवता, दानव, गन्धर्व, सर्प और राक्षस तथा महात्मा दक्षकी उत्पत्तिका वर्णन किया है॥ ५१॥ निष्पाप महर्षे! वहाँ आपने कहा है कि ब्रह्माजीके (दाहिने) अंगूठेसे दक्ष प्रजापति उत्पन्न हुए और ब्रह्माजीके बायें अंगूठेसे दक्षकी पत्नी उत्पन्न हुई॥ ५२॥ वे महातपस्वी दक्ष फिर प्रचेताओंके पुत्र कैसे हुए? चन्द्रमाके नाती दक्ष फिर उनके श्वशुर कैसे बन गये? विप्रवर! मेरे इन संदेहोंको भली प्रकार व्याख्या करके आप दूर कर दीजिये॥ ५३॥

वैशम्पायनजीने कहा—पृथ्वीनाथ! जन्म और मृत्यु—ये समस्त प्राणियोंके लिये नित्य (स्वाभाविक) हैं। इस विषयमें ऋषियोंको कभी मोह नहीं होता। जो विद्वान् पुरुष हैं, वे भी इस विषयमें मोहित नहीं होते॥ ५४॥ नरेश्वर! ये दक्ष आदि सब लोग प्रत्येक युगमें उत्पन्न होते और मरते रहते हैं, अतः विद्वान् पुरुष इस विषयमें मोहको नहीं प्राप्त होते हैं॥ ५५॥ राजन्! पहले इनमें ज्येष्ठता और कनिष्ठताका अर्थात् पहले-पीछे उत्पन्न होनेका कोई विचार नहीं था, तप ही इनकी दृष्टिमें गरिष्ठ था और प्रभाव ही इनमें सम्बन्ध होनेका कारण होता था॥ ५६॥ जो मनुष्य चर तथा अचर प्राणियोंसहित इस दक्ष प्रजापतिकी सृष्टिके तत्त्वको जानता है, वह संतानवान् होता है और आपत्तियोंके पार हो स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठापूर्वक रहता है॥ ५७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि प्रजासर्गे दक्षोत्पत्तिकथने द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें प्रजासर्गके प्रसंगमें दक्षकी उत्पत्तिका वर्णनविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २॥

---

* उन दस प्रचेताओंके एक ही औरस पुत्र कैसे हुआ? इस शङ्काका उत्तर इस श्लोकके संकल्प शब्दसे मिलता है। अर्थात् उन दसोंका संकल्प एक-सा था, अतः उनके एक ही औरस पुत्र हुआ।

तृतीयोऽध्यायः

दक्ष प्रजापतिद्वारा सृष्टि-विस्तार, नारदजीका दक्षके पुत्रोंको विरक्त कर देना, दक्षकी साठ कन्याओं और उनकी संततिका वर्णन

जनमेजय उवाच

देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम्।
उत्पत्तिं विस्तरेणेमां वैशम्पायन कीर्तय॥ १

वैशम्पायन उवाच

प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा।
यथा ससर्ज भूतानि तथा शृणु महीपते॥ २

मानसान्येव भूतानि पूर्वमेवासृजत् प्रभुः।
ऋषीन् देवान् सगन्धर्वानसुरानथ राक्षसान्।
यक्षभूतपिशाचांश्च वयःपशुसरीसृपान्॥ ३

यदास्य तास्तु मानस्यो न व्यवर्द्धन्त वै प्रजाः।
अपध्याता भगवता महादेवेन धीमता॥ ४

ततः संचिन्त्य तु पुनः प्रजाहेतोः प्रजापतिः।
स मैथुनेन धर्मेण सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः॥ ५

असिक्नीमावहत् पत्नीं वीरणस्य प्रजापतेः।
सुतां सुतपसा युक्तां महतीं लोकधारिणीम्॥ ६

अथ पुत्रसहस्राणि वीरण्यां पञ्च वीर्यवान्।
असिक्न्यां जनयामास दक्ष एव प्रजापतिः॥ ७

तांस्तु दृष्ट्वा महाभागान् संविवर्धयिषून् प्रजाः।
देवर्षिः प्रियसंवादो नारदः प्राब्रवीदिदम्।
नाशाय वचनं तेषां शापायैवात्मनस्तथा॥ ८

यं कश्यपः सुतवरं परमेष्ठी व्यजीजनत्।
दक्षस्य वै दुहितरि दक्षशापभयान्मुनिः॥ ९

जनमेजयने कहा—वैशम्पायनजी! आप इस देवता, दानव, गन्धर्व, सर्प और राक्षसोंकी उत्पत्तिको विस्तार-पूर्वक कहिये॥ १॥

वैशम्पायनजी बोले—राजन्! पहले स्वयम्भू ब्रह्माजीने दक्षको आज्ञा दी कि 'तुम प्रजाओंकी सृष्टि करो'। उस समय दक्षने (जरायुज आदि) प्राणियोंकी सृष्टि जिस प्रकार की थी, उसे सुनो॥ २॥ प्रभु दक्षने पहले ऋषि, देवता, गन्धर्व, असुर, राक्षस, यक्ष, भूत, पिशाच, पशु, पक्षी और सर्पोंकी मानसी सृष्टि रची अर्थात् इनको अपने संकल्पमात्रसे ही उत्पन्न कर दिया॥ ३॥ परंतु (पूर्वकल्पके वैरको स्मरणकर) बुद्धिमान् भगवान् महादेवने जब यह विचार किया कि दक्षकी मानसी प्रजाएँ न बढ़ें और तदनुसार जब उनकी मनसे उत्पन्न की हुई प्रजाएँ अधिक उन्नति न कर सकीं, तब दक्ष प्रजापति विचारमें पड़ गये और फिर उन्होंने प्रजाकी वृद्धि करनेके लिये मैथुनधर्मसे अनेक प्रकारकी प्रजाओंको रचनेका विचार किया। इस विचारके अनुसार वे परम तप करनेके कारण संसारको धारण करनेमें समर्थ वीरण प्रजापतिकी महामहिम पुत्री असिक्नीको पत्नीरूपमें विवाह कर लाये॥ ४—६॥ इसके बाद वीर्यवान् दक्ष प्रजापतिने वीरणकी पुत्री असिक्नीद्वारा पाँच हजार पुत्रोंको उत्पन्न किया॥ ७॥ परंतु उन महाभाग्यवान् दक्षपुत्रोंको प्रजाकी वृद्धि करनेके लिये उत्सुक देख प्रियवादी देवर्षि नारदजीने उनको (ज्ञानका अधिकारी समझकर आत्मज्ञानका) उपदेश दिया। नारदजीके उस वचनसे दक्षपुत्र नष्ट हो गये (अथवा उनकी संसारमें आसक्ति नष्ट हो गयी), परंतु नारदजीका यह ज्ञानोपदेश देना स्वयं शाप पानेमें ही एक कारण बन गया॥ ८॥ ब्रह्माजीने जिन श्रेष्ठ पुत्र नारदको उत्पन्न किया था, उनको ही कश्यप मुनिने दक्षके शापके भयसे (दक्षकी पत्नीकी छोटी बहिन अतएव) उनकी (पुत्रीके समान) कन्याद्वारा उत्पन्न किया था॥ ९॥

पूर्वं स हि समुत्पन्नो नारदः परमेष्ठिना।
असिक्न्यामथ वीरण्यां भूयो देवर्षिसत्तमः।
तं भूयो जनयामास पितेव मुनिपुङ्गवम्॥ १०

तेन दक्षस्य पुत्रा वै हर्यश्वा इति विश्रुताः।
निर्मथ्य नाशिताः सर्वे विधिना च न संशयः॥ ११

तस्योद्यतस्तदा दक्षो नाशायामितविक्रमः।
महर्षीन् पुरतः कृत्वा याचितः परमेष्ठिना॥ १२

ततोऽभिसंधिं चक्रुस्ते दक्षस्तु परमेष्ठिना।
कन्यायां नारदो मह्यं तव पुत्रो भवेदिति॥ १३

ततो दक्षस्तु तां प्रादात् कन्यां वै परमेष्ठिने।
स तस्यां नारदो जज्ञे दक्षशापभयादृषिः॥ १४

नारदजी पहले ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुए थे, फिर वे ही देवर्षिसत्तम नारद वीरणकी पुत्री असिक्नी (-की छोटी बहिन)-से उत्पन्न हुए थे। उन मुनिपुङ्गव नारदजीको कश्यपने ब्रह्माजीके समान ही फिर प्रकट किया था॥ १०॥ (इस घटनाको स्पष्ट करते हैं—) दक्षके हर्यश्व नामसे प्रसिद्ध (जो पाँच हजार) पुत्र थे, नारदजीने उनको शास्त्रोक्त रीतिसे देहाभिमानसे मुक्त कर इस संसारसे नष्ट कर दिया था (अर्थात् वे सब नारदजीसे चेतावनी पाकर संसारको त्याग परमात्माकी खोज करनेके लिये वनमें चले गये), इसमें कुछ संदेह नहीं है॥ ११॥ तब अनुपम पराक्रमी दक्ष प्रजापति नारदजीको नष्ट करनेके लिये उद्यत हो गये। उस समय ब्रह्माजीने मरीचि आदि महर्षियोंके साथ जाकर दक्षसे ऐसा न करनेके लिये प्रार्थना की॥ १२॥ तब महर्षियोंने दक्ष और ब्रह्माजीमें संधि करा दी। दक्षने कहा कि 'आपका पुत्र नारद मेरी पुत्री (अर्थात् छोटी साली)-का पुत्र बनकर उत्पन्न हो'॥ १३॥ तब दक्षने प्रजापति कश्यपको (तेरह कन्याएँ अर्पण करते समय) उस कन्याका दान कर दिया था। इस प्रकार दक्षके शापके भयसे नारद ऋषि उस कन्यासे फिर उत्पन्न हुए थे॥ १४॥

जनमेजय उवाच

कथं विनाशिताः पुत्रा नारदेन महर्षिणा।
प्रजापतेर्द्विजश्रेष्ठ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥ १५

जनमेजयने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! महर्षि नारदने प्रजापति दक्षके पुत्रोंको किस प्रकार नष्ट किया था? इसको मैं स्पष्टरूपसे सुनना चाहता हूँ॥ १५॥

वैशम्पायन उवाच

दक्षस्य पुत्रा हर्यश्वा विवर्धयिषवः प्रजाः।
समागता महावीर्या नारदस्तानुवाच ह॥ १६

बालिशा बत यूयं वै नास्या जानीथ वै भुवः।
प्रमाणं स्रष्टुकामाः स्थ प्रजाः प्राचेतसात्मजाः।
अन्तरूर्ध्वमधश्चैव कथं स्रक्ष्यथ वै प्रजाः॥ १७

ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतोदिशम्।
प्रमाणं द्रष्टुकामास्ते गताः प्राचेतसात्मजाः॥ १८

वायोरनशनं प्राप्य गतास्ते वै पराभवम्।
अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः॥ १९

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! दक्षके हर्यश्व नामक पुत्र महावीर्यवान् थे, जब वे प्रजाओंकी वृद्धिका विचार करनेके लिये उद्यत हुए, तब नारदजीने उनसे कहा— ॥१६॥ 'प्राचेतस (दक्ष)-के पुत्रो! खेदके साथ कहना पड़ता है कि तुम बड़े नादान हो। तुम्हें प्रजाकी सृष्टि करनेकी इच्छा हुई है; किंतु तुम इतना भी नहीं जानते कि जहाँ सृष्टि करनी है, उस पृथ्वीकी लम्बाई-चौड़ाई कितनी है? यह ऊपर-नीचे और भीतरसे कैसी है? ऐसी दशामें तुमलोग प्रजाओंकी सृष्टि कैसे करोगे?'॥१७॥ नारदजीकी इस बातको सुनकर वे प्राचेतस दक्षके पुत्र (इस पृथ्वीका) प्रमाण अर्थात् माप देखनेके लिये सब दिशाओंकी ओर चल दिये॥ १८॥ प्राणवायुके लिये आहार न पाकर वे सबके सब पराभव (विनाश)-को प्राप्त हो गये। जैसे नदियाँ समुद्रमें मिल जानेपर फिर वहाँसे पीछे नहीं लौटती हैं, उसी प्रकार वे जाकर अबतक नहीं लौटे॥ १९॥

हर्यश्वेष्वथ नष्टेषु दक्षः प्राचेतसः पुनः।
वैरण्यामेव पुत्राणां सहस्त्रमसृजत् प्रभुः॥ २०

विवर्धयिषवस्ते तु शबलाश्वाः प्रजास्तदा।
पूर्वोक्तं वचनं तात नारदेनैव नोदिताः॥ २१

अन्योन्यमूचुस्ते सर्वे सम्यगाह महामुनिः।
भ्रातॄणां पदवीं ज्ञातुं गन्तव्यं नात्र संशयः॥ २२

ज्ञात्वा प्रमाणं पृथ्व्याश्च सुखं स्त्रक्ष्यामहे प्रजाः।
एकाग्राः स्वस्थमनसा यथावदनुपूर्वशः॥ २३

तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाताः सर्वतोदिशम्।
अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः॥ २४

नष्टेषु शबलाश्वेषु दक्षः क्रुद्धोऽवदद् वचः।
नारदं नाशमेहीति गर्भवासं वसेति च॥ २५

तदाप्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेषणं नृप।
प्रयातो नश्यति क्षिप्रं तन्न कार्यं विपश्चिता॥ २६

तांश्चापि नष्टान् विज्ञाय पुत्रान् दक्षः प्रजापतिः।
षष्टिं भूयोऽसृजत् कन्या वीरण्यामिति नः श्रुतम्॥ २७

तास्तदा प्रतिजग्राह भार्यार्थे कश्यपः प्रभुः।
सोमो धर्मश्च कौरव्य तथैवान्ये महर्षयः॥ २८

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश।
सप्तविंशति सोमाय चतस्त्रोऽरिष्टनेमिने॥ २९

द्वे चैव भृगुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा।
द्वे कृशाश्वाय विदुषे तासां नामानि मे शृणु॥ ३०

अरुन्धती वसुर्यामी लम्बा भानुर्मरुत्वती।
संकल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भारत।
धर्मपत्न्यो दश त्वेतास्तास्वपत्यानि मे शृणु॥ ३१

विश्वेदेवाश्च विश्वायाः साध्यान् साध्या व्यजायत।
मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवस्तथा॥ ३२

प्रचेताओंके पुत्र प्रभु दक्षने हर्यश्वोंके नष्ट हो जानेपर वीरणकी पुत्रीसे ही फिर सहस्र पुत्रोंको उत्पन्न किया॥ २०॥ तात! वे दक्षके पुत्र शबलाश्व जब प्रजाकी वृद्धिके लिये इच्छुक हुए, तब नारदजीने पूर्वोक्त वचन कहकर उनको भी पृथ्वीका प्रमाण जाननेके लिये प्रेरित किया॥ २१॥ तब वे सब आपसमें कहने लगे—'महामुनि नारदजी ठीक कहते हैं, अपने भाइयोंके मार्गको जाननेके लिये नि:संदेह हमें भी अवश्य प्रयत्न करना चाहिये॥ २२॥ हम पृथ्वीके प्रमाणको जानकर एकाग्र और स्वस्थ-चित्तसे सुखपूर्वक प्रजाओंकी क्रमानुसार सृष्टि करेंगे'॥ २३॥ ऐसा निश्चय करके वे भी उसी मार्गसे चारों दिशाओंकी ओर चल दिये और समुद्रोंसे उनमें मिली हुई नदियोंके समान अभीतक नहीं लौटे॥ २४॥ शबलाश्वोंके भी नष्ट हो जानेपर दक्ष प्रजापतिने क्रोधमें भरकर, नारदजीसे यह बात कही कि 'तुम्हारी देह नष्ट हो जाय और तुम फिर गर्भमें निवास करो'॥ २५॥ राजन्! उस दिनसे जो भाई भाईको खोजनेके लिये जाता है, वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, अतएव विद्वान्‌को ऐसा न करना चाहिये अर्थात् भाईको ढूँढ़नेके लिये भाईको नहीं जाना चाहिये॥ २६॥ हमने सुना है कि अपने उन पुत्रोंको भी नष्ट हुआ जानकर दक्ष प्रजापतिने वीरणकी पुत्रीद्वारा फिर साठ कन्याओंको उत्पन्न किया (क्योंकि कन्याएँ स्त्री होनेसे नारदजीके आत्मज्ञानके उपदेशकी पात्र नहीं थीं)॥ २७॥ कुरुकुलोत्पन्न जनमेजय! उन (मेंसे कुछ कन्याओं)-को प्रभु कश्यपजीने अपनी पत्नीके रूपमें स्वीकार कर लिया एवं चन्द्रमा, धर्म तथा दूसरे महर्षियोंने भी उन (मेंसे कितनी ही कन्याओं)-को अपनी पत्नीके रूपमें स्वीकार कर लिया॥ २८॥ दक्षने धर्मको दस, कश्यपजीको तेरह, चन्द्रमाको सत्ताईस, अरिष्टनेमिको चार, भृगुपुत्रको दो, अङ्गिराको दो और विद्वान् कृशाश्व ऋषिको दो कन्याएँ दीं, उनके नामोंको मुझसे सुनो—॥ २९-३०॥ भरतवंशी राजन्! अरुन्धती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरुत्वती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या तथा विश्वा—ये दस धर्मकी पत्नियाँ हैं। इनसे जो संतानें उत्पन्न हुईं, उनके नामोंको मुझसे सुनो—॥ ३१॥ विश्वाने विश्वेदेव नामक पुत्रोंको और साध्याने साध्य नामवाले पुत्रोंको उत्पन्न किया, मरुत्वतीसे मरुत्वान् और वसुसे वसु प्रकट हुए॥ ३२॥

भानोस्तु भानवस्तात मुहूर्ताया मुहूर्तजाः॥ ३३

लम्बायाश्चैव घोषोऽथ नागवीथी च यामिजा।
पृथिवीविषयं सर्वमरुन्धत्यां व्यजायत॥ ३४

संकल्पायास्तु सर्वात्मा जज्ञे संकल्प एव हि।
नागवीथ्याश्च यामिन्या वृषलम्बा व्यजायत॥ ३५

या राजन् सोमपत्न्यस्तु दक्षः प्राचेतसो ददौ।
सर्वा नक्षत्रनाम्न्यस्ता ज्यौतिषे परिकीर्तिताः॥ ३६

ये त्वन्ये ख्यातिमन्तो वै देवा ज्योतिःपुरोगमाः।
वसवोऽष्टौ समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम्॥ ३७

आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलानलौ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नामभिः स्मृताः॥ ३८

आपस्य पुत्रो वैतण्ड्यः श्रमः शान्तो मुनिस्तथा।
ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालो लोकप्रकालनः॥ ३९

सोमस्य भगवान् वर्चा वर्चस्वी येन जायते।
धरस्य पुत्रो द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा।
मनोहरायाः शिशिरः प्राणोऽथ रमणस्तथा॥ ४०

अनिलस्य शिवा भार्या यस्याः पुत्रो मनोजवः।
अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य तु॥ ४१

अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे श्रियान्वितः।
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजाः॥ ४२

अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृतः।
स्कन्दः सनत्कुमारश्च सृष्टः पादेन तेजसः॥ ४३

प्रत्यूषस्य विदुः पुत्रमृषिं नाम्ना च देवलम्।
द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तौ तपस्विनौ॥ ४४

और तात! भानुसे भानु देवता और मुहूर्तासे (क्षण, लव आदि कालाभिमानी देवता) मुहूर्तज उत्पन्न हुए॥ ३३॥ घोष नामक (मन्त्राभिमानी) देवता लम्बासे उत्पन्न हुआ तथा यामीसे (स्वर्गाभिमानिनी) नागवीथी उत्पन्न हुई तथा अरुन्धतीद्वारा (घृत, पशु, औषध आदि) सब पृथ्वीके विषय उत्पन्न हुए॥ ३४॥ तथा संकल्पासे सर्वात्मा संकल्प अर्थात् मानसक्रियाभिमानी देवता उत्पन्न हुआ और यामिपुत्री नागवीथीसे वृषलम्बा (कालान्तरमें फलवृष्टि करनेवाले धर्म या ईश्वरका अवलम्बन करनेवाला देवता) उत्पन्न हुआ॥ ३५॥ राजन्! प्राचेतस दक्षने चन्द्रमाको जो कन्याएँ दी थीं, वे सब सोमपत्नियाँ नक्षत्रोंके नामसे ज्यौतिषशास्त्रमें प्रसिद्ध हैं॥ ३६॥ अब जो ज्योति आदि दूसरे प्रसिद्ध देवता हैं और जो विख्यात आठ वसु देवता हैं, उनका विस्तृत वर्णन मैं आपसे करूँगा॥ ३७॥ आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास (—ये आठ) वसु नामसे प्रसिद्ध हैं॥ ३८॥ आपके वैतण्ड्य, श्रम, शान्त और मुनि नामक पुत्र उत्पन्न हुए और संसारको अपने अंकुशमें रखनेवाले भगवान् काल ध्रुवके पुत्र हैं॥ ३९॥ और सोम नामक वसुके पुत्र भगवान् वर्चा हैं, जिन (का पूजन करने)-से मनुष्य वर्चस्वी हो जाता है। धर वसुके द्रविण और हुतहव्यवह नामक दो पुत्र हुए तथा (धरकी दूसरी पत्नी) मनोहरासे शिशिर, प्राण और रमण नामक पुत्र हुए॥ ४०॥ अनिलकी पत्नीका नाम शिवा था, उसके पुत्र मनोजव और अविज्ञातगति थे, ये दोनों अनिलके पुत्र थे॥ ४१॥ अग्निके पुत्र श्रीमान् कुमार सरकंडोंके झुंडमें प्रकट हुए थे। उनके पीछे शाख, विशाख और नैगमेय हुए (इस प्रकार अग्निके चार पुत्र थे)॥ ४२॥ (ये कुमार ही) कृत्तिकाओंकी संतान कार्तिकेय (और) स्कन्द कहलाते हैं और ये ही सनत्कुमार हैं। अग्निने इन्हें अपने तेजके एक अंशसे प्रकट किया है (और शाख आदि तीनको भी अपने तेजके एक-एक चौथाई अंशसे प्रकट किया है। छान्दोग्य-उपनिषद्में लिखा है कि **'तं स्कन्द इत्याचक्षते'** यह सनत्कुमार ही स्कन्द हैं। इससे प्रतीत होता है कि सनत्कुमार इनका उपनाम है)॥ ४३॥ प्रत्यूषके पुत्रका नाम देवल और (पुत्रीका नाम) ऋष्टि था। देवलके भी दो पुत्र थे, जो क्षमावान् तथा तपस्वी थे॥ ४४॥

बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मचारिणी।
योगसिद्धा जगत् कृत्स्नमसक्ता विचचार ह॥ ४५
प्रभासस्य च सा भार्या वसूनामष्टमस्य च।
विश्वकर्मा महाभागस्तस्यां जज्ञे प्रजापतिः॥ ४६
कर्ता शिल्पसहस्राणां त्रिदशानां च वर्धकिः।
भूषणानां च सर्वेषां कर्ता शिल्पवतां वरः॥ ४७
यः सर्वासां विमानानि देवतानां चकार ह।
मनुष्याश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्पं महात्मनः॥ ४८
सुरभी कश्यपाद् रुद्रानेकादश विनिर्ममे।
महादेवप्रसादेन तपसा भाविता सती॥ ४९
अजैकपादहिर्बुध्न्यस्त्वष्टा रुद्राश्च भारत।
त्वष्टुश्चैवात्मजः श्रीमान् विश्वरूपो महायशाः॥ ५०
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः।
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा॥ ५१
मृगव्याधश्च सर्पश्च कपाली च विशाम्पते।
एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः॥ ५२
शतं त्वेवं समाख्यातं रुद्राणाममितौजसाम्।
पुराणे भरतश्रेष्ठ यैर्व्याप्ताः सचराचराः॥ ५३
लोका भरतशार्दूल कश्यपस्य निबोध मे।
अदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्टा सुरसा खशा॥ ५४
सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा।
कद्रुर्मुनिश्च राजेन्द्र तास्वपत्यानि मे शृणु॥ ५५
पूर्वमन्वन्तरे श्रेष्ठा द्वादशासन् सुरोत्तमाः।
तुषिता नाम तेऽन्योन्यमूचुर्वैवस्वतेऽन्तरे॥ ५६
उपस्थितेऽतियशसि चाक्षुषस्यान्तरे मनोः।
हितार्थं सर्वसत्त्वानां समागम्य परस्परम्॥ ५७
आगच्छत द्रुतं देवा अदितिं सम्प्रविश्य वै।
मन्वन्तरे प्रसूयामस्तन्नः श्रेयो भविष्यति॥ ५८

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा तु ते सर्वे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः।
मारीचात् कश्यपाज्जातास्तेऽदित्या दक्षकन्यया॥ ५९

बृहस्पतिकी बहिनका नाम ब्रह्मचारिणी था, वह योगसिद्ध श्रेष्ठ स्त्री आसक्तिको त्यागकर सारे संसारमें विचरण किया करती थी॥ ४५॥ वह प्रभास नामवाले आठवें वसुकी भार्या बन गयी। उसके गर्भसे विश्वकर्मा नामवाले महाभाग्यवान् प्रजापति उत्पन्न हुए॥ ४६॥ उन्होंने हजारों शिल्पों (कलाओं)-की रचना की है और वे देवताओंके बढ़ई हैं तथा वे शिल्पियोंमें श्रेष्ठ विश्वकर्मा सब आभूषणोंके बनानेवाले हैं॥ ४७॥ उन्होंने सब देवताओंके विमानोंको बनाया है और उन महात्माके शिल्पसे मनुष्य भी अपनी आजीविका चलाते हैं॥ ४८॥ (अब दक्षने कश्यप मुनिको जो तेरह कन्याएँ दी थीं, उनमेंसे सुरभिकी संतानका वर्णन करते हैं—) तपमें मग्न हुई सुरभिने महादेवजीसे वर पाकर कश्यपजीके द्वारा ग्यारह रुद्रोंको उत्पन्न किया था। भरतवंशी राजन्! अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, त्वष्टा तथा रुद्र—ये सब सुरभिकी ही संतानें हैं। त्वष्टाके महायशस्वी और श्रीमान् पुत्रका नाम विश्वरूप था॥ ४९-५०॥ राजन्! हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, सर्प और कपाली—ये तीनों भुवनोंके ईश्वर ग्यारह रुद्र कहे गये हैं॥ ५१-५२॥ भरतश्रेष्ठ! पुराणोंमें इन अमित पराक्रमी रुद्रोंके सैकड़ों रूप बताये गये हैं। इनसे चराचर लोक भरे हुए हैं। भरतशार्दूल! अब तुम मुझसे कश्यपकी (स्त्रियोंके नाम) सुनो। (वे हैं—) अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, खशा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रू और मुनि। राजेन्द्र! अब इनसे जो संतानें उत्पन्न हुईं, उनका वर्णन मुझसे सुनो॥ ५३—५५॥ पहले चाक्षुष मन्वन्तरमें तुषित नामवाले बारह श्रेष्ठ देवता थे। वे उस अत्यन्त यशस्वी मन्वन्तरका अन्त आनेपर वैवस्वत मन्वन्तरके आरम्भमें सब प्राणियोंका हित करनेके लिये परस्पर मिलकर कहने लगे—॥ ५६-५७॥ 'देवताओ! शीघ्र आओ! हम अदितिमें प्रवेश करके अगले (वैवस्वत) मन्वन्तरमें उत्पन्न होंगे, यह कार्य हमारे लिये श्रेयस्कर होगा'॥ ५८॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—वे सभी देवता चाक्षुष मन्वन्तरके अन्तमें इस प्रकार वार्तालाप कर मरीचिपुत्र कश्यपसे दक्षकी कन्या अदितिके गर्भसे उत्पन्न हो गये॥ ५९॥

तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरेव हि।
अर्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा च भारत॥ ६०
विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च।
अंशो भगश्चातितेजा आदित्या द्वादश स्मृताः॥ ६१
चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमासन् ये तुषिताः सुराः।
वैवस्वतेऽन्तरे ते वै आदित्या द्वादश स्मृताः॥ ६२
सप्तविंशतिर्याः प्रोक्ताः सोमपत्न्योऽथ सुव्रताः।
तासामपत्यान्यभवन् दीप्तान्यमिततेजसाम्॥ ६३
अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश।
बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः॥ ६४
प्रत्यङ्गिरसजाः श्रेष्ठा ऋचो ब्रह्मर्षिसत्कृताः।
कृशाश्वस्य तु राजर्षेर्देवप्रहरणानि च॥ ६५
एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि।
सर्वदेवगणास्तात त्रयस्त्रिंशत् तु कामजाः॥ ६६
तेषामपि च राजेन्द्र निरोधोत्पत्तिरुच्यते॥ ६७
यथा सूर्यस्य गगने उदयास्तमने इह।
एवं देवनिकायास्ते सम्भवन्ति युगे युगे॥ ६८
दित्याः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम्।
हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च वीर्यवान्॥ ६९
सिंहिका चाभवत् कन्या विप्रचित्तेः परिग्रहः।
सैंहिकेया इति ख्यातास्तस्याः पुत्रा महाबलाः।
गणैश्च सह राजेन्द्र दशसाहस्रमुच्यते॥ ७०
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः।
असंख्याता महाबाहो हिरण्यकशिपोः शृणु॥ ७१
हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः।
अनुह्लादश्च ह्लादश्च प्रह्लादश्चैव वीर्यवान्॥ ७२
संह्लादश्च चतुर्थोऽभूद्ध्लादपुत्रो ह्रदस्तथा।
संह्लादपुत्रः सुन्दश्च निसुन्दस्तावुभौ स्मृतौ॥ ७३
अनुह्लादसुतौ ह्यायुः शिबिकालस्तथैव ह।
विरोचनश्च प्राह्लादिर्बलिर्जज्ञे विरोचनात्॥ ७४

भारत! वहाँ विष्णु और इन्द्र फिर उत्पन्न हुए। वे तथा अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मित्र, वरुण, अंश और परम तेजस्वी भग—ये बारह आदित्य कहलाते हैं॥ ६०-६१॥ पहले चाक्षुष मन्वन्तरमें जो तुषित नामवाले देवता थे, वे अब वैवस्वत मन्वन्तरमें बारह आदित्य कहलाते हैं॥ ६२॥ और जो सुन्दर व्रत धारण करनेवाली चन्द्रमाकी सत्ताईस पत्नियाँ कही गयी हैं, उन अमित तेजस्विनी पत्नियोंकी ज्योतिर्मयी संतानें उत्पन्न हुईं॥ ६३॥ अनेक पुत्रवाले विद्वान् अरिष्टनेमिकी विद्युत् नामवाली चार पत्नियाँ थीं। उनसे सोलह संतानें उत्पन्न हुईं॥ ६४॥ राजर्षि कृशाश्वके ब्रह्मर्षियोंसे सत्कृत श्रेष्ठ प्रत्यङ्गिरसजा ऋचाएँ और देवताओंके आयुध प्रकट हुए॥ ६५॥ तात! ईश्वरकी कामनासे उत्पन्न होनेवाले तैंतीस देवता सत्ययुग आदि चारों युगोंके एक हजार बार बीतनेपर (प्रत्येक कल्पमें) पुनः उत्पन्न हुआ करते हैं॥ ६६॥ राजेन्द्र! उन देवताओंकी भी उत्पत्ति और नाशका वर्णन उपलब्ध होता है॥ ६७॥ जैसे आकाशमें सूर्यका उदय और अस्त बारम्बार होता रहता है, इसी प्रकार ये देवताओंके समूह प्रत्येक युगमें उत्पन्न (तथा नष्ट) होते हैं॥ ६८॥ (इस प्रकार आदित्योंका वर्णन करके अब दैत्योंका वर्णन करते हैं—) हमने सुना है, कश्यप ऋषिसे दितिके दो पुत्र उत्पन्न हुए थे, (उनमेंसे एक) हिरण्यकशिपु और (दूसरा) वीर्यवान् हिरण्याक्ष था॥ ६९॥ (इन कश्यप और दितिकी) एक सिंहिका नामवाली कन्या भी थी, वह विप्रचित्तिको विवाही गयी थी। उसके महाबली पुत्र सैंहिकेय नामसे प्रसिद्ध हैं। राजेन्द्र! वे अपने गणोंसहित दस हजार हैं॥ ७०॥ और उनके सैकड़ों पुत्र और हजारों पौत्र हैं, उनकी गिनती नहीं की जा सकती। महाबाहो! अब हिरण्यकशिपुकी (संतानोंका वर्णन) सुनो॥ ७१॥ हिरण्यकशिपुके अनुह्लाद, ह्लाद, वीर्यवान् प्रह्लाद और चौथा संह्लाद—ये चार प्रसिद्ध पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुए। ह्लादका पुत्र ह्रद हुआ। सुन्द और निसुन्द—ये दोनों संह्लादके पुत्र कहलाते हैं॥ ७२-७३॥ अनुह्लादके आयु और शिबिकाल नामक दो पुत्र थे। प्रह्लादके विरोचन नामक पुत्र हुआ और विरोचनसे बलि नामवाला पुत्र उत्पन्न हुआ॥ ७४॥

बलेः पुत्रशतं त्वासीद् बाणज्येष्ठं नराधिप।
धृतराष्ट्रश्च सूर्यश्च चन्द्रमाश्चेन्द्रतापनः॥ ७५
कुम्भनाभो गर्दभाक्षः कुक्षिरित्येवमादयः।
बाणस्तेषामतिबलो ज्येष्ठः पशुपतेः प्रियः॥ ७६
पुराकल्पे हि बाणेन प्रसाद्योमापतिं प्रभुम्।
पार्श्वतो विहरिष्यामि इत्येवं याचितो वरः॥ ७७
बाणस्य चेन्द्रदमनो लोहित्यामुपपद्यत।
गणास्तथासुरा राजञ्छतसाहस्त्रसम्मिताः॥ ७८
हिरण्याक्षसुताः पञ्च विद्वांसः सुमहाबलाः।
झर्झरः शकुनिश्चैव भूतसंतापनस्तथा।
महानाभश्च विक्रान्तः कालनाभस्तथैव च॥ ७९
अभवन् दनुपुत्राश्च शतं तीव्रपराक्रमाः।
तपस्विनो महावीर्याः प्राधान्येन निबोध तान्॥ ८०
द्विमूर्धा शकुनिश्चैव तथा शङ्कुशिरा विभुः।
शङ्कुकर्णो विराधश्च गवेष्ठी दुन्दुभिस्तथा।
अयोमुखः शम्बरश्च कपिलो वामनस्तथा॥ ८१
मरीचिर्मघवांश्चैव इरा शङ्कुशिरा वृकः।
विक्षोभणश्च केतुश्च केतुवीर्यशतह्रदौ॥ ८२
इन्द्रजित् सत्यजिच्चैव वज्रनाभस्तथैव च।
महानाभश्च विक्रान्तः कालनाभस्तथैव च॥ ८३
एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबलः।
वैश्वानरः पुलोमा च विद्रावणमहासुरौ॥ ८४
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च तुहुण्डश्च महासुरः।
सूक्ष्मश्चैवातिचन्द्रश्च ऊर्णनाभो महागिरिः॥ ८५
असिलोमा च केशी च शठश्च बलको मदः।
तथा गगनमूर्धा च कुम्भनाभो महासुरः॥ ८६
प्रमदो मयश्च कुपथो हयग्रीवश्च वीर्यवान्।
वैसृपः सविरूपाक्षः सुपथोऽथ हराहरौ॥ ८७
हिरण्यकशिपुश्चैव शतमायश्च शम्बरः।
शरभः शलभश्चैव विप्रचित्तिश्च वीर्यवान्॥ ८८
एते सर्वे दनोः पुत्राः कश्यपादभिजज्ञिरे।
विप्रचित्तिप्रधानास्ते दानवाः सुमहाबलाः॥ ८९
एतेषां यदपत्यं तु तन्न शक्यं नराधिप।
प्रसंख्यातुं महीपाल पुत्रपौत्राद्यनन्तकम्॥ ९०
स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या पुलोम्नश्च सुतात्रयम्।
उपदानवी हयशिराः शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी॥ ९१

बलिके सौ पुत्र थे। उनमें बाण (सबसे) बड़ा था। राजन्! धृतराष्ट्र, सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्रतापन, कुम्भनाभ, गर्दभाक्ष और कुक्षि आदि (बलिके सौ पुत्र थे)। इनमें अतिबली बाण बड़ा था और वह शिवका प्रिय भक्त था॥ ७५-७६॥ पहले कल्पमें बाणासुरने उमापति शङ्करको प्रसन्न करके यह वर माँगा था कि 'मैं आपके पास विहार करूँ'॥ ७७॥ बाणकी लोहिती नामकी पत्नीसे इन्द्रदमन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। राजन्! लाखों असुर उसके गण थे॥ ७८॥ हिरण्याक्षके झर्झर, शकुनि, भूतसंतापन, महानाभ और पराक्रमी कालनाभ नामक पाँच पुत्र हुए, वे विद्वान् और परम पराक्रमी थे॥ ७९॥ (अब दनुके वंशका वर्णन करते हैं—) दनुके सौ पुत्र हुए। वे सब परम पराक्रमी, तपस्वी और महावीर्यवान् थे। उनमेंसे मुख्य-मुख्य असुरोंका वर्णन सुनिये॥ ८०॥ द्विमूर्धा, शकुनि तथा विभु, शङ्कुशिरा, शङ्कुकर्ण, विराध और गवेष्ठी, दुन्दुभि तथा अयोमुख, शम्बर और कपिल, वामन तथा मरीचि, मघवान् और इरा, शङ्कुशिरा, वृक, विक्षोभण और केतु तथा केतुवीर्य, शतह्रद, इन्द्रजित्, सत्यजित् और वज्रनाभ तथा महानाभ और विक्रान्त, कालनाभ, महाभुज एकचक्र और महाबली तारक, वैश्वानर, पुलोमा, विद्रावण और महासुर, स्वर्भानु, वृषपर्वा और महान् असुर तुहुण्ड, सूक्ष्म और अतिचन्द्र तथा ऊर्णनाभ, महागिरि, असिलोमा और केशी एवं शठ तथा बलक, मद तथा गगनमूर्धा और महान् असुर कुम्भनाभ, प्रमद, मय और कुपथ, हयग्रीव और वीर्यवान् वैसृप, विरूपाक्षसहित सुपथ और हर, अहर, हिरण्यकशिपु तथा सैकड़ों प्रकारकी माया जाननेवाला शम्बर, शरभ, शलभ और वीर्यवान् विप्रचित्ति—ये सब दनुके पुत्र कश्यपजीसे उत्पन्न हुए थे। इनमें विप्रचित्ति प्रधान था। ये सब दानव बड़े बलवान् थे॥ ८१—८९॥ नराधिप! इनकी जो संतानें हुईं, उनकी गिनती नहीं की जा सकती। महीपाल! इनके अनन्त पुत्र-पौत्र उत्पन्न हुए॥ ९०॥ स्वर्भानुके प्रभा नामक पुत्री उत्पन्न हुई और पुलोमाके उपदानवी, हयशिरा (तथा शची) तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं। वृषपर्वाके शर्मिष्ठा नामकी पुत्री उत्पन्न हुई॥ ९१॥

पुलोमा कालिका चैव वैश्वानरसुते उभे।
बह्वपत्ये महावीर्ये मारीचेस्तु परिग्रहः॥ ९२
तयोः पुत्रसहस्राणि षष्टिं दानवनन्दनान्।
चतुर्दशशतानन्यान् हिरण्यपुरवासिनः॥ ९३
मारीचिर्जनयामास महता तपसान्वितः।
पौलोमाः कालकेयाश्च दानवास्ते महाबलाः॥ ९४
अवध्या देवतानां च हिरण्यपुरवासिनः।
कृताः पितामहेनाजौ निहताः सव्यसाचिना॥ ९५
प्रभाया नहुषः पुत्रः सृञ्जयश्च शचीसुतः।
पूरुं जज्ञेऽथ शर्मिष्ठा दुष्यन्तमुपदानवी॥ ९६
ततोऽपरे महावीर्या दानवास्त्वतिदारुणाः।
सिंहिकायामथोत्पन्ना विप्रचित्तेः सुतास्तदा॥ ९७
दैत्यदानवसंयोगाज्जातास्तीव्रपराक्रमाः।
सैंहिकेया इति ख्यातास्त्रयोदश महाबलाः॥ ९८
व्यंशः शल्यश्च बलिनौ नभश्चैव महाबलः।
वातापिर्नमुचिश्चैव इल्वलः खसृमस्तथा॥ ९९
आञ्जिको नरकश्चैव कालनाभस्तथैव च।
शुकः पोतरणश्चैव वज्रनाभश्च वीर्यवान्॥ १००
राहुर्ज्येष्ठस्तु तेषां वै सूर्यचन्द्रविमर्दनः।
मूकश्चैव तुहुण्डश्च ह्रादपुत्रौ बभूवतुः॥ १०१
मारीचः सुन्दपुत्रश्च ताडकायां व्यजायत।
शिवमाणस्तथा चैव सुरकल्पश्च वीर्यवान्॥ १०२
एते वै दानवाः श्रेष्ठा दनुवंशविवर्द्धनाः।
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः॥ १०३
संह्लादस्य तु दैत्यस्य निवातकवचाः कुले।
समुत्पन्नाः सुतपसा महान्तो भावितात्मनः॥ १०४
तिस्रः कोट्यः सुतास्तेषां मणिमत्यां निवासिनाम्।
तेऽप्यवध्यास्तु देवानामर्जुनेन निपातिताः॥ १०५
षट् सुताः सुमहासत्त्वास्ताम्राया: परिकीर्तिताः।
काकी श्येनी च भासी च सुग्रीवी शुचि गृध्रिका॥ १०६

वैश्वानर दानवकी पुलोमा और कालिका नामकी दो पुत्रियाँ हुईं। ये दोनों मरीचिनन्दन कश्यपको विवाही गयीं, ये बड़ी शक्तिशालिनी थीं। इन कन्याओंकी बहुत-सी संतानें उत्पन्न हुईं॥ ९२॥ परम तपस्वी मारीचि (कश्यप)-ने उन दोनों स्त्रियोंसे दानवोंको आनन्द देनेवाले साठ हजार पुत्रोंको जन्म दिया। फिर चौदह सौ पुत्र और उत्पन्न किये। ये सब हिरण्यपुरमें रहते थे। इन हिरण्यपुरमें रहनेवाले महाबली पौलोम और कालकेय दानवोंको ब्रह्माजीने (वर देकर) देवताओंसे भी अवध्य (न मारे जानेयोग्य) कर दिया था। अर्जुनने इनको रणमें मार डाला था॥ ९३—९५॥ प्रभाके नहुष नामक पुत्र हुआ और शचीके सृञ्जय। शर्मिष्ठाने पूरुको उत्पन्न किया और उपदानवीने दुष्यन्तको॥ ९६॥ तदनन्तर और भी बहुत-से महावीर्यवान् अतिदारुण दानव सिंहिकासे विप्रचित्तिद्वारा उत्पन्न हुए, फिर दैत्य-दानवोंके संयोगसे विप्रचित्तिके बहुत-से तीव्र पराक्रमी पुत्र हुए। इनमें तेरह महाबली दानव 'सैंहिकेय' नामसे प्रसिद्ध हैं॥ ९७-९८॥ (उनके नाम इस प्रकार हैं—) बलवान् व्यंश और शल्य, महाबली नभ, वातापि और नमुचि, इल्वल तथा खसृम, आञ्जिक और नरक तथा कालनाभ, शुक और पोतरण तथा वीर्यवान् वज्रनाभ॥ ९९-१००॥ इनमें राहु सबसे बड़ा है, जो सूर्य तथा चन्द्रमाको पीड़ा देता रहता है। ह्रादके मूक और तुहुण्ड नामवाले दो पुत्र उत्पन्न हुए॥ १०१॥ सुन्दके ताडकासे मारीच नामक पुत्र उत्पन्न हुआ तथा (सुन्द और ताडकाके) शिवमाण और वीर्यवान् सुरकल्प नामक पुत्र भी उत्पन्न हुए॥ १०२॥ ये सभी दानव श्रेष्ठ और दनुके वंशका विस्तार करनेवाले हैं, इनके सैकड़ों पुत्र और हजारों पौत्र हैं॥ १०३॥ संह्लाद दैत्यके कुलमें निवातकवच उत्पन्न हुए, वे सब उदार थे और उन्होंने बड़ा भारी तप करके अपने चित्तको पवित्र कर लिया था॥१०४॥ वे मणिमती नगरीमें निवास करते थे। उनके तीन करोड़ पुत्र थे। वे भी देवताओंसे अवध्य थे, उनको भी अर्जुनने मार डाला था॥ १०५॥ ताम्राकी काकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुचि और गृध्रिका नामकी अत्यन्त बलशालिनी छः पुत्रियाँ कही जाती हैं॥ १०६॥

काकी काकानजनयदुलूकी प्रत्युलूककान्।
श्येनी श्येनांस्तथा भासी भासान् गृध्रांश्च गृध्र्यपि॥ १०७
शुचिरौदकान् पक्षिगणान् सुग्रीवी तु परंतप।
अश्वानुष्ट्रान् गर्दभांश्च ताम्रावंशः प्रकीर्तितः॥ १०८
विनतायास्तु पुत्रौ द्वावरुणो गरुडस्तथा।
सुपर्णः पततां श्रेष्ठो दारुणः स्वेन कर्मणा॥ १०९
सुरसायाः सहस्रं तु सर्पाणाममितौजसाम्।
अनेकशिरसां तात खेचराणां महात्मनाम्॥ ११०
काद्रवेयाश्च बलिनः सहस्रममितौजसः।
सुपर्णवशगा नागा जज्ञिरेऽनेकमस्तकाः॥ १११
तेषां प्रधानाः सततं शेषवासुकितक्षकाः।
ऐरावतो महापद्मः कम्बलाश्वतरावुभौ॥ ११२
एलापत्रस्तथा शङ्खः कर्कोटकधनञ्जयौ।
महानीलमहाकर्णौ धृतराष्ट्रबलाहकौ॥ ११३
कुहरः पुष्पदंष्ट्रश्च दुर्मुखः सुमुखस्तथा।
शङ्खश्च शङ्खपालश्च कपिलो वामनस्तथा॥ ११४
नहुषः शङ्खरोमा च मणिरित्येवमादयः।
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च गरुडेन निपातिताः॥ ११५
चतुर्दश सहस्राणि क्रूराणां पवनाशिनाम्।
गणं क्रोधवशं विद्धि तस्य सर्वे च दंष्ट्रिणः॥ ११६
स्थलजाः पक्षिणोऽब्जाश्च धरायाः प्रसवाः स्मृताः।
गास्तु वै जनयामास सुरभिर्महिषांस्तथा॥ ११७
इरा वृक्षलतावल्लीस्तृणजातीश्च सर्वशः।
खशा तु यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा॥ ११८
अरिष्टा तु महासत्त्वान् गन्धर्वानमितौजसः।
एते कश्यपदायादाः कीर्तिताः स्थाणुजङ्गमाः॥ ११९
तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः।
एष मन्वन्तरे तात सर्गः स्वारोचिषे स्मृतः॥ १२०
वैवस्वते तु महति वारुणे वितते क्रतौ।
जुह्वानस्य ब्रह्मणो वै प्रजासर्ग इहोच्यते॥ १२१
पूर्वं यत्र तु ब्रह्मर्षीनुत्पन्नान् सप्त मानसान्।
पुत्रत्वे कल्पयामास स्वयमेव पितामहः॥ १२२

परंतप! काकीने कौओंको, उलूकीने उल्लुओंको, श्येनीने श्येनों (बाजों)-को, भासीने भास नामक पक्षियोंको और गृध्रीने गीधोंको उत्पन्न किया। शुचिने जलमें रहनेवाले पक्षियोंको और सुग्रीवीने घोड़े, ऊँट तथा गधोंको जन्म दिया। यह मैंने ताम्राके वंशका वर्णन किया है॥ १०७-१०८॥ विनताके अरुण और गरुड नामक दो पुत्र हुए। इनमेंसे पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड अपने कर्मके कारण बड़े दारुण माने गये हैं॥ १०९॥ सुरसाके हजारों सर्प उत्पन्न हुए। तात! वे सब सर्प अमित पराक्रमी, अनेक फनोंवाले, आकाशमें विचरण करनेवाले तथा विशालकाय हैं॥ ११०॥ कद्रूके भी परम पराक्रमी हजारों सर्प उत्पन्न हुए। उन बलवान् सर्पोंके अनेक मस्तक हैं और वे सर्वदा गरुडके अधीन रहते हैं। उनमें शेष, वासुकि, तक्षक, ऐरावत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, एलापत्र, शङ्ख, कर्कोटक, धनञ्जय, महानील, महाकर्ण, धृतराष्ट्र, बलाहक, कुहर, पुष्पदंष्ट्र, दुर्मुख, सुमुख, शङ्ख, शङ्खपाल, कपिल, वामन, नहुष, शङ्खरोमा तथा मणि आदि प्रधान हैं। इनके पुत्र और पौत्रोंको गरुडने मार डाला था॥ १११—११५॥ वायु पीकर रहनेवाले चौदह हजार क्रूर सर्पोंका क्रोधवश नामवाला एक गण है। उस गणके समस्त सर्प दाढ़ोंवाले हैं॥ ११६॥ स्थल और जलके पक्षी धराकी संतान कहलाते हैं। सुरभिने गौ, बैल और भैंसोंको उत्पन्न किया॥ ११७॥ इराने वृक्ष, लता, बेल तथा सब प्रकारकी घासोंको उत्पन्न किया। खशाने यक्षों और राक्षसोंको तथा मुनिने अप्सराओंको जन्म दिया॥ ११८॥ अरिष्टाने महासत्त्ववाले अमित पराक्रमी गन्धर्वोंको उत्पन्न किया। यह कश्यप ऋषिकी स्थावर और जंगम संतानोंका वर्णन हुआ॥ ११९॥ इनके सैकड़ों पुत्र और हजारों पौत्र हुए। तात! यह स्वारोचिष मन्वन्तरकी सृष्टिका वर्णन है॥ १२०॥ जब वैवस्वत मन्वन्तरमें वरुणदेवतासम्बन्धी बड़ा भारी यज्ञ चल रहा था, तब ब्रह्माजीके आहुति देते समय प्रजाओंको रचनेका जो क्रम चला था, उसका यहाँ वर्णन किया जाता है॥ १२१॥ उस समय पितामह ब्रह्माने पहले अपने मनके संकल्पसे उत्पन्न हुए सात ब्रह्मर्षियोंको स्वयं ही अपने औरस पुत्रके रूपमें स्वीकार किया॥ १२२॥

ततो विरोधे देवानां दानवानां च भारत।
दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम्॥ १२३

तां कश्यपः प्रसन्नात्मा सम्यगाराधितस्तया।
वरेण च्छन्दयामास सा च वव्रे वरं ततः॥ १२४

पुत्रमिन्द्रवधार्थाय समर्थममितौजसम्।
स च तस्यै वरं प्रादात् प्रार्थितं सुमहातपाः॥ १२५

दत्त्वा च वरमव्यग्रो मारीचस्तामभाषत।
भविष्यति सुतस्तेऽयं यद्येवं धारयिष्यसि॥ १२६

इन्द्रं सुतो निहन्ता ते गर्भं वै शरदां शतम्।
यदि धारयसे शौचं तत्परा व्रतमास्थिता॥ १२७

तथेत्यभिहितो भर्ता तया देव्या महातपाः।
धारयामास गर्भं तु शुचिः सा वसुधाधिप॥ १२८

ततोऽभ्युपागमद् दित्यां गर्भमाधाय कश्यपः।
रोचयन् वै गणश्रेष्ठं देवानाममितौजसाम्॥ १२९

तेजः सम्भृत्य दुर्धर्षमवध्यममरैरपि।
जगाम पर्वतायैव तपसे शंसितव्रतः॥ १३०

तस्याश्चैवान्तरप्रेप्सुरभवत् पाकशासनः।
ऊने वर्षशते चास्या ददर्शान्तरमच्युतः॥ १३१

अकृत्वा पादयोः शौचं दितिः शयनमाविशत्।
निद्रां च कारयामास तस्याः कुक्षिं प्रविश्य सः॥ १३२

वज्रपाणिस्ततो गर्भं सप्तधा तं न्यकृन्तत।
स पाट्यमानो वज्रेण गर्भस्तु प्ररुरोद ह॥ १३३

मा रोदीरिति तं शक्रः पुनः पुनरथाब्रवीत्।
सोऽभवत् सप्तधा गर्भस्तमिन्द्रो रुषितः पुनः॥ १३४

एकैकं सप्तधा चक्रे वज्रेणैवारिकर्शनः।
मरुतो नाम देवास्ते बभूवुर्भरतर्षभ॥ १३५

यथैवोक्तं मघवता तथैव मरुतोऽभवन्।
देवा एकोनपञ्चाशत् सहाया वज्रपाणिनः॥ १३६

भारत! तदनन्तर जब देवता और दैत्योंमें विरोध होनेपर दितिके पुत्र नष्ट हो गये, तब उसने (महर्षि) कश्यपको (फिर) प्रसन्न किया॥ १२३॥ उसके भलीभाँति आराधना करनेपर कश्यपजीका चित्त प्रसन्न हो गया और उन्होंने उससे वर माँगनेके लिये कहा। तब उस दितिने वर माँगा कि 'मुझे इन्द्रका वध करनेके लिये अमित पराक्रमी पुत्र दीजिये।' यह सुनकर उन महातपस्वी कश्यपने उसका माँगा हुआ वर उसको दे दिया॥ १२४-१२५॥ वह वर देकर कश्यप मुनि उससे शान्तभावसे बोले—'यदि तुम इस (गर्भ)-को मेरी बतायी हुई विधिसे धारण कर सकोगी तो तुम्हारा पुत्र इन्द्रको मारनेवाला होगा। तुम्हें पवित्रतापूर्वक रहनेका व्रत लेकर सौ वर्षतक अपने उदरमें इस गर्भको धारण करना पड़ेगा। यदि तुम ऐसा कर सकोगी तो वह पुत्र इन्द्रको मारनेवाला होगा'॥ १२६-१२७॥ तब उस देवीने अपने महातपस्वी स्वामीसे कहा कि 'अच्छा, मैं ऐसा ही करूँगी।' राजन्! फिर वह गर्भको धारण कर पवित्रतापूर्वक रहने लगी॥ १२८॥ अमित पराक्रमी देवताओंके श्रेष्ठ गणको प्रकाशित करनेवाले कश्यपजी इस प्रकार दितिमें गर्भको स्थापित कर वहाँसे चल दिये। वे प्रशंसित तपवाले (महर्षि दितिमें) देवताओंसे भी अवध्य अपने दुर्धर्ष तेजको स्थापित करके तप करनेके लिये पर्वतपर चले गये॥ १२९-१३०॥ (इधर) इन्द्र उसके छिद्रको ढूँढ़ने लगे और अच्युत इन्द्रने सौ वर्ष पूर्ण होनेसे पहले ही उसका दोष देख लिया॥ १३१॥ (एक बार) दिति बिना पैर धोये ही शयन करनेके लिये चली गयी। इसी समय इन्द्रने उसकी कोखमें घुसकर उसे (अपनी मायासे) निद्राके अधीन कर दिया॥ १३२॥ फिर वज्रपाणि इन्द्रने उस गर्भके सात टुकड़े कर डाले, वज्रसे काटे जानेपर वह गर्भ जोर-जोरसे रोने लगा॥ १३३॥ तब उस गर्भसे इन्द्रने बार-बार '**मा रोदीः**—मत रो' इस प्रकार कहा और उस गर्भके सात टुकड़े हो गये, तब शत्रुओंको नष्ट करनेवाले इन्द्र फिर क्रोधमें भरकर वज्रद्वारा उस प्रत्येक टुकड़ेके भी सात-सात टुकड़े कर डाले। भरतर्षभ! वे मरुत् नामक (उनचास) देवता हुए॥ १३४-१३५॥ इन्द्रने चूँकि (**मा रोदीः**) कहा था, इसलिये वे मरुत् नामक देवता हो गये। वे उनचास हैं और वज्रपाणि इन्द्रकी सहायता करते हैं॥ १३६॥

तेषामेवं प्रवृद्धानां भूतानां जनमेजय।
रोचयन् वै गणश्रेष्ठं देवानाममितौजसाम्॥ १३७
निकायेषु निकायेषु हरिः प्रादात् प्रजापतीन्।
क्रमशस्तानि राज्यानि पृथुपूर्वाणि भारत॥ १३८
स हरिः पुरुषो वीरः कृष्णो जिष्णुः प्रजापतिः।
पर्जन्यस्तपनोऽव्यक्तस्तस्य सर्वमिदं जगत्॥ १३९
भूतसर्गमिमं सम्यग्जानतो भरतर्षभ।
मरुतां च शुभं जन्म शृण्वतः पठतोऽपि वा।
नावृत्तिभयमस्तीह परलोकभयं कुतः॥ १४०

जनमेजय! जब वे प्राणी इस प्रकार बढ़ गये, तब अमित पराक्रमी देवताओंकी श्रेष्ठ मण्डलीको प्रकाशित करनेवाले हरिने उनकी टोलियोंमें प्रजापति नियुक्त कर दिये। भारत! फिर उन्होंने पृथुको पहले राज्य अर्पण किया, तबसे ये राज्य क्रमशः चले आ रहे हैं॥ १३७-१३८॥ वे हरि पुरुष, वीर, कृष्ण, जिष्णु और प्रजापति हैं तथा वे ही मेघ, सूर्य और अव्यक्त हैं एवं यह सब जगत् उन्हींका है॥ १३९॥ भरतर्षभ! इस भूतसृष्टिको पूर्णरूपसे जाननेवाले और मरुतोंके शुभ जन्मको सुनने या पढ़नेवालेको जन्म-मरणका भय नहीं रहता, फिर परलोकका भय तो होगा ही कहाँसे?॥ १४०॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि मरुदुत्पत्तिकथने तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें मरुतोंकी उत्पत्तिका वर्णनविषयक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ ३॥

चतुर्थोऽध्यायः

पृथुका उपाख्यान—राज्यवितरण और दिक्पालोंकी प्रतिष्ठा

वैशम्पायन उवाच

अभिषिच्याधिराज्ये तु पृथुं वैन्यं पितामहः।
ततः क्रमेण राज्यानि व्यादेष्टुमुपचक्रमे॥ १
द्विजानां वीरुधां चैव नक्षत्रग्रहयोस्तथा।
यज्ञानां तपसां चैव सोमं राज्येऽभ्यषेचयत्॥ २
अपां तु वरुणं राज्ये राज्ञां वैश्रवणं प्रभुम्।
बृहस्पतिं तु विश्वेषां ददावाङ्गिरसं पतिम्॥ ३
भृगूणामधिपं चैव काव्यं राज्येऽभ्यषेचयत्।
आदित्यानां तथा विष्णुं वसूनामथ पावकम्॥ ४
प्रजापतीनां दक्षं तु मरुतामथ वासवम्।
दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादममितौजसम्॥ ५
वैवस्वतं च पितॄणां यमं राज्येऽभ्यषेचयत्।
मातॄणां च व्रतानां च मन्त्राणां च तथा गवाम्॥ ६
यक्षाणां राक्षसानां च पार्थिवानां तथैव च।
नारायणं तु साध्यानां रुद्राणां वृषभध्वजम्॥ ७

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! पितामह (मैं विराजमान हरि)-ने राजाओंके ऊपर भी अधिराजारूपसे वेनके पुत्र पृथुका अभिषेक किया, फिर (उन प्रजापतिने) क्रमशः राज्यका वितरण आरम्भ किया॥ १॥ (प्रजापतिने) द्विज, लता, नक्षत्र, ग्रह, यज्ञ और तपके राज्यपर चन्द्रमाका अभिषेक किया॥ २॥ जलके राज्यपर वरुणका तथा राजाओं (और यक्षों)-के राज्यपर विश्रवाके पुत्र कुबेरका अभिषेक कर दिया। विश्वेदेवोंपर आङ्गिरसगोत्री बृहस्पतिको राजा बना दिया॥ ३॥ भृगुवंशियोंके स्वामीरूपसे शुक्राचार्यका राज्याभिषेक कर दिया। आदित्योंके ऊपर विष्णुको और वसुओंके ऊपर अग्निको (राजा बना दिया)॥ ४॥ दक्षको प्रजापतियोंका, इन्द्रको मरुतोंका तथा अमित पराक्रमी प्रह्लादको दैत्य और दानवोंका राजा बना दिया एवं पितरोंके राज्यपर विवस्वान् (सूर्य)-के पुत्र यमका अभिषेक कर दिया॥ ५ $\frac{1}{2}$ ॥ षोडशमातृका, व्रत, मन्त्र, गौ, यक्ष, राक्षस, पार्थिव पदार्थ और साध्य देवताओंके राज्यपर नारायणका अभिषेक कर दिया और रुद्रोंके राज्यपर वृषभध्वज (शंकरजी) अभिषिक्त हुए॥ ६-७॥

विप्रचित्तिं तु राजानं दानवानामथादिशत्।
सर्वभूतपिशाचानां गिरिशं शूलपाणिनम्॥ ८
शैलानां हिमवन्तं च नदीनामथ सागरम्।
गन्धानां मरुतां चैव भूतानामशरीरिणाम्।
शब्दाकाशवतां चैव वायुं च बलिनां वरम्॥ ९
गन्धर्वाणामधिपतिं चक्रे चित्ररथं प्रभुम्।
नागानां वासुकिं चक्रे सर्पाणामथ तक्षकम्॥ १०
वारणानां च राजानमैरावतमथादिशत्।
उच्चैःश्रवसमश्वानां गरुडं चैव पक्षिणाम्॥ ११
मृगाणामथ शार्दूलं गोवृषं च गवां पतिम्।
वनस्पतीनां राजानं प्लक्षमेवादिशत् प्रभुम्॥ १२
सागराणां नदीनां च मेघानां वर्षणस्य च।
आदित्यानामधिपतिं पर्जन्यमभिषिक्तवान्॥ १३
सर्वेषां दंष्ट्रिणां शेषं राजानमभ्यषेचयत्।
सरीसृपाणां सर्पाणां राजानं चैव तक्षकम्॥ १४
गन्धर्वाप्सरसां चैव कामदेवं तथा प्रभुम्।
ऋतूनामथ मासानां दिवसानां तथैव च॥ १५
पक्षाणां च क्षपाणां च मुहूर्ततिथिपर्वणाम्।
कलाकाष्ठाप्रमाणानां गतेरयनयोस्तथा॥ १६
गणितस्याथ योगस्य चक्रे संवत्सरं प्रभुम्।
एवं विभज्य राज्यानि क्रमेण स पितामहः॥ १७
दिशापालानथ ततः स्थापयामास भारत।
पूर्वस्यां दिशि पुत्रं तु वैराजस्य प्रजापतेः॥ १८
दिशापालं सुधन्वानं राजानं चाभ्यषेचयत्।
दक्षिणस्यां महात्मानं कर्दमस्य प्रजापतेः॥ १९
पुत्रं शङ्खपदं नाम राजानं सोऽभ्यषेचयत्।
पश्चिमायां दिशि तथा रजसः पुत्रमच्युतम्॥ २०
केतुमन्तं महात्मानं राजानं सोऽभ्यषेचयत्।
तथा हिरण्यरोमाणं पर्जन्यस्य प्रजापतेः॥ २१
उदीच्यां दिशि दुर्धर्षं राजानं सोऽभ्यषेचयत्।
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता॥ २२
यथाप्रदेशमद्यापि धर्मेण परिपाल्यते।
राजसूयाभिषिक्तस्तु पृथुरेभिर्नराधिपैः।
वेददृष्टेन विधिना राजराज्ये नराधिप॥ २३

विप्रचित्तिको दानवोंका राजा बननेका आदेश दे दिया और सकल भूत-पिशाचोंका शूलपाणि महादेवजीको राजा बना दिया॥ ८॥ हिमाचलको पर्वतोंका और समुद्रको नदियोंका राजा बना दिया। गन्धद्रव्यों, मरुद्गणों, अमूर्त भूतों तथा शब्द और आकाशवाली वस्तुओंके राज्यपर भी बलवानोंमें श्रेष्ठ वायुका अभिषेक कर दिया॥ ९॥ प्रभावशाली चित्ररथको गन्धर्वोंका स्वामी बना दिया, वासुकिको नागोंका और तक्षकको सर्पोंका राजा बनाया॥ १०॥ हाथियोंका ऐरावतको, घोड़ोंका उच्चैःश्रवाको और पक्षियोंका गरुड़को राजा बना दिया॥ ११॥ वनचारी पशुओंपर सिंहको तथा गौओंपर साँड़को स्वामी बनाया और पाकड़को वृक्षोंका प्रभावशाली राजा बना दिया॥ १२॥ सागर, नदी, मेघ, वर्षा और सूर्यकी किरणोंके अधिपतिपदपर पर्जन्यका अभिषेक कर दिया॥ १३॥ दाढ़वाले समस्त सर्पोंके ऊपर शेषको, (निर्विष डुण्डुभ आदि) सर्पों और सरीसृपों (पेटके बलपर चलनेवाले जीवों)-के ऊपर तक्षकको राजा बना दिया॥ १४॥ गन्धर्व और अप्सराओंके ऊपर ऐश्वर्यशाली कामदेवका अभिषेक कर दिया। ऋतु, मास, दिन, पक्ष, रात्रि, मुहूर्त, तिथि, पर्व, कलाकाष्ठाके प्रमाण—उत्तरायण और दक्षिणायनकी गति तथा उपराग अर्थात् ग्रहण (-के अभिमानी देवताओं)-पर प्रभु संवत्सरका अभिषेक कर दिया॥ १५-१६½॥ भारत! पितामहने इस प्रकार क्रमपूर्वक राज्योंका विभाग करके फिर दिक्पालोंकी स्थापना की थी॥ १७½॥ उन्होंने वैराज प्रजापतिके पुत्र राजा सुधन्वाको पूर्व दिशाके दिक्पालपदपर अभिषेक कर दिया॥ १८½॥ कर्दम प्रजापतिके पुत्र महात्मा राजा शङ्खपदको दक्षिण दिशाके दिक्पालपदपर अभिषिक्त किया॥ १९½॥ इसी प्रकार पश्चिम दिशामें रजस्के पुत्र अच्युत महात्मा केतुमान्‌का राजा (दिक्पाल)-के पदपर अभिषेक कर दिया॥ २०½॥ इसी प्रकार उत्तर दिशामें पर्जन्य प्रजापतिके पुत्र दुर्धर्ष हिरण्यरोमाका राजपद (दिक्पालपद)-पर अभिषेक कर दिया॥ २१½॥ उन पुरुषोंद्वारा सातों द्वीप और पर्वतोंसहित सारी पृथ्वी और उसके वे-वे प्रदेश आज भी धर्मानुसार पालित हो रहे हैं॥ २२½॥ जनेश्वर! इन राजाओंने वेदमें वर्णित विधिसे राजसूय यज्ञमें राजाओंके भी राजाके पदपर पृथुका अभिषेक किया था॥ २३॥

ततो मन्वन्तरेऽतीते चाक्षुषेऽमिततेजसि।
वैवस्वताय मनवे ब्रह्मा राज्यमथादिशत्।
तस्य विस्तरमाख्यास्ये मनोर्वैवस्वतस्य ह॥ २४

तवानुकूल्याद् राजेन्द्र यदि शुश्रूषसेऽनघ।
महच्छ्रेयतदधिष्ठानं पुराणं परिकीर्तितम्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्गवासकरं शुभम्॥ २५

जनमेजय उवाच

विस्तरेण पृथोर्जन्म वैशम्पायन कीर्तय।
यथा महात्मना तेन दुग्धा चेयं वसुंधरा॥ २६

यथा च पितृभिर्दुग्धा यथा देवैर्यथर्षिभिः।
यथा दैत्यैश्च नागैश्च यथा यक्षैर्यथा द्रुमैः॥ २७

यथा शैलैः पिशाचैश्च गन्धर्वैश्च द्विजोत्तमैः।
राक्षसैश्च महासत्त्वैर्यथा दुग्धा वसुंधरा॥ २८

तेषां पात्रविशेषांश्च वैशम्पायन कीर्तय।
वत्सान् क्षीरविशेषांश्च दोग्धारं चानुपूर्वशः॥ २९

यस्माच्च कारणात् पाणिर्वेनस्य मथितः पुरा।
क्रुद्धैर्महर्षिभिस्तात कारणं तच्च कीर्तय॥ ३०

वैशम्पायन उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि पृथोर्वैन्यस्य विस्तरम्।
एकाग्रः प्रयतश्चैव शृणुष्व जनमेजय॥ ३१

नाशुचेः क्षुद्रमनसः कुशिष्यायाव्रताय च।
कीर्तनीयमिदं राजन् कृतघ्नायाहिताय वा॥ ३२

स्वर्ग्यं यशस्यमायुष्यं धर्म्यं वेदेन सम्मितम्।
रहस्यमृषिभिः प्रोक्तं शृणु राजन् यथातथम्॥ ३३

तदनन्तर अमित तेजस्वी चाक्षुष मनुके मन्वन्तरके बीतनेपर ब्रह्माजीने वैवस्वत मनुको राज्य दे दिया था। निष्पाप राजेन्द्र! यदि आप अनुकूल रहकर सुनना चाहेंगे तो मैं आपसे वैवस्वत मनुके विस्तारका वर्णन करूँगा। मैंने आपको यह बड़ा भारी प्राचीन इतिहास कह सुनाया। इसको सुननेसे प्रतिष्ठा बढ़ती है, धन मिलता है, यश मिलता है, आयुकी वृद्धि होती है और इस शुभ आख्यानको सुननेसे (अन्तमें) स्वर्गकी प्राप्ति होती है॥ २४-२५॥

जनमेजयने कहा—वैशम्पायनजी! आप पृथुके जन्मका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये, उन महात्माने इस पृथ्वीको किस प्रकार दुहा था?॥ २६॥ पितरोंने इस पृथ्वीको जिस प्रकार दुहा था, देवता तथा ऋषियोंने, दैत्यों और नागोंने, यक्षों और वृक्षोंने इस पृथ्वीको जिस प्रकार दुहा था तथा पर्वत, पिशाच, गन्धर्व, द्विजोत्तम और महान् शक्तिशाली राक्षसोंने इस वसुंधरा पृथ्वीको जिस प्रकार दुहा था, वह बताइये। वैशम्पायनजी! इन सबके पास कैसे-कैसे पात्र थे, कैसे-कैसे बछड़े थे, कैसा-कैसा दूध दुहा गया था और कौन-कौन दुहनेवाले थे? इन सबका क्रमपूर्वक वर्णन कीजिये॥ २७—२९॥ तात! प्राचीन कालमें महर्षियोंने जिस कारणसे वेनके हाथका मन्थन किया था और महर्षियोंने जिस कारण क्रोध किया था, उस कारणका भी आप वर्णन कीजिये॥ ३०॥

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय! मैं तुमसे वेनके पुत्र पृथुका चरित्र अब विस्तारपूर्वक कहता हूँ, इस चरित्रको एकाग्र और सावधान होकर सुनो॥ ३१॥ राजन्! जिसका मन तुच्छ हो, जो अपवित्र हो, जो कुशिष्य हो और जो व्रत न करता हो तथा जो कृतघ्न हो एवं जो संसारका अहित करनेवाला हो, उससे इस चरित्रका वर्णन नहीं करना चाहिये॥ ३२॥ राजन्! यह (इतिहास) स्वर्ग, यश, आयु तथा धर्मकी प्राप्ति करानेवाला और वेदके समान है। ऋषियोंने इस रहस्यका वर्णन किया है, इसे तुम यथार्थ रीतिसे सुनो॥ ३३॥

यश्चैनं कथयेन्नित्यं पृथोर्वैन्यस्य विस्तरम्।
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य न स शोचेत् कृताकृतैः ॥ ३४

जो पुरुष ब्राह्मणोंको प्रणाम करके वेनके पुत्र पृथुके इस चरित्रको विस्तारपूर्वक कहता है, उसे कार्याकार्यके (मैंने सदा पाप-कर्म किये, धर्म कभी नहीं किया, ऐसे) पश्चात्तापसे शोक नहीं करना पड़ता अर्थात् इस चरित्रको सुननेसे सब प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं और सब यज्ञोंके फल प्राप्त होते हैं॥ ३४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पृथूपाख्याने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पृथुका उपाख्यानविषयक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

पृथुका उपाख्यान—वेनका अत्याचार करके नष्ट होना और पृथुका जन्म तथा चरित्र

वैशम्पायन उवाच

आसीद् धर्मस्य गोप्ता वै पूर्वमत्रिसमः प्रभुः।
अत्रिवंशसमुत्पन्नस्त्वङ्गो नाम प्रजापतिः ॥ १

तस्य पुत्रोऽभवद् वेनो नात्यर्थं धर्मकोविदः।
जातो मृत्युसुतायां वै सुनीथायां प्रजापतिः ॥ २

स मातामहदोषेण वेनः कालात्मजाऽऽत्मजः।
स्वधर्मं पृष्ठतः कृत्वा कामाल्लोभेष्ववर्तत ॥ ३

मर्यादां स्थापयामास धर्मापेतां स पार्थिवः।
वेदधर्मानतिक्रम्य सोऽधर्मनिरतोऽभवत् ॥ ४

निःस्वाध्यायवषट्कारास्तस्मिन् राजनि शासति।
प्रवृत्तं न पपुः सोमं हुतं यज्ञेषु देवताः ॥ ५

न यष्टव्यं न होतव्यमिति तस्य प्रजापतेः।
आसीत् प्रतिज्ञा क्रूरेयं विनाशे प्रत्युपस्थिते ॥ ६

अहमिज्यश्च यष्टा च यज्ञश्चेति कुरूद्वह।
मयि यज्ञो विधातव्यो मयि होतव्यमित्यपि ॥ ७

तमतिक्रान्तमर्यादमाददानमसाम्प्रतम्।
ऊचुर्महर्षयः सर्वे मरीचिप्रमुखास्तदा ॥ ८

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! प्राचीन कालकी बात है, धर्मके रक्षक अत्रिके वंशमें एक प्रजापति उत्पन्न हुए, जिनका नाम था अङ्ग। वे अत्रिके ही समान प्रभावशाली थे॥ १॥ उनका पुत्र वेन हुआ, परंतु उसे धर्मके रहस्यका पता न था। वह राजा वेन मृत्युकी पुत्री सुनीथाके गर्भसे उत्पन्न हुआ था॥ २॥ कालकी पुत्री सुनीथाका पुत्र वह वेन नानाके दोषसे अपने धर्मकी उपेक्षा कर कामके कारण लोभमें फँस गया॥ ३॥ वह राजा धर्मविहीन मर्यादाको स्थापित करने लगा और वेदोक्त धर्मोंका उल्लङ्घन कर अधर्ममें फँस गया॥ ४॥ उस राजाके शासनकालमें देवतालोग (उनकी तृप्तिके लिये किये जानेवाले) स्वाध्याय और वषट्कारसे वञ्चित हो गये थे; इसलिये अपने उद्देश्यसे अर्पित तथा यज्ञकुण्डोंमें होमे गये सोमका भी वे पान नहीं करते थे॥ ५॥ उसका विनाशकाल समीप आ गया था, अतः उस प्रजापतिने यह क्रूर प्रतिज्ञा घोषित की कि 'मेरे राज्यमें कोई यज्ञ और हवन न करे'॥ ६॥ कुरुश्रेष्ठ! (वह कहता था कि) 'मैं ही यज्ञोंद्वारा आराध्य और मैं ही यज्ञ करनेवाला हूँ तथा यज्ञ भी मैं ही हूँ। मेरे लिये ही यज्ञ और हवन करना चाहिये'॥ ७॥ जब वह इस प्रकार मर्यादाको तोड़ने लगा और अनुचितरूपसे (कर आदि लगाकर) सब कुछ लूटने लगा, तब जो मरीचि आदि बड़े-बड़े ऋषि थे, उन्होंने उससे कहा—॥ ८॥

वयं दीक्षां प्रवेक्ष्यामः संवत्सरगणान् बहून्।
अधर्मं कुरु मा वेन नैष धर्मः सनातनः॥ ९
निधनेऽत्र प्रसूतस्त्वं प्रजापतिरसंशयम्।
प्रजाश्च पालयिष्येऽहमिति ते समयः कृतः॥ १०
तांस्तदा ब्रुवतः सर्वान् महर्षीनब्रवीत् तदा।
वेनः प्रहस्य दुर्बुद्धिरिममर्थमनर्थवित्॥ ११

वेन उवाच

स्रष्टा धर्मस्य कश्चान्यः श्रोतव्यं कस्य वै मया।
श्रुतवीर्यतपःसत्यैर्मया वा कः समो भुवि॥ १२
प्रभवं सर्वभूतानां धर्माणां च विशेषतः।
सम्मूढा न विदुर्नूनं भवन्तो मामचेतसः॥ १३
इच्छन् दहेयं पृथिवीं प्लावयेयं तथा जलैः।
खं भुवं चैव रुन्धेयं नात्र कार्या विचारणा॥ १४
यदा न शक्यते मोहादवलेपाच्च पार्थिवः।
अनुनेतुं तदा वेनस्ततः क्रुद्धा महर्षयः॥ १५
निगृह्य तं महात्मानो विस्फुरन्तं महाबलम्।
ततोऽस्य सव्यमूरुं ते ममन्थुर्जातमन्यवः॥ १६
तस्मिंस्तु मथ्यमाने वै राज्ञ ऊरौ प्रजज्ञिवान्।
ह्रस्वोऽतिमात्रः पुरुषः कृष्णश्चाति बभूव ह॥ १७
स भीतः प्राञ्जलिर्भूत्वा स्थितवाञ्जनमेजय।
तमत्रिर्विह्वलं दृष्ट्वा निषीदेत्यब्रवीत् तदा॥ १८
निषादवंशकर्तासौ बभूव वदतां वर।
धीवरानसृजच्चाथ वेनकल्मषसम्भवान्॥ १९
ये चान्ये विन्ध्यनिलयास्तुषारास्तुम्बरास्तथा।
अधर्मरुचयो ये च विद्धि तान् वेनसम्भवान्॥ २०
ततः पुनर्महात्मानः पाणिं वेनस्य दक्षिणम्।
अरणीमिव संरब्धा ममन्थुस्ते महर्षयः॥ २१
पृथुस्तस्मात् समुत्तस्थौ कराज्ज्वलनसंनिभः।
दीप्यमानः स्ववपुषा साक्षादग्निरिव ज्वलन्॥ २२

हम बहुत वर्षोंमें पूर्ण होनेवाली दीक्षामें प्रवेश करेंगे। वेन! अब तुम अधर्म न करो; क्योंकि यह सनातन धर्म नहीं है॥ ९॥ निःसंदेह तुम इस वंशमें प्रजापतिके रूपमें उत्पन्न हुए हो और तुमने प्रतिज्ञा की थी कि 'मैं प्रजाका पालन करूँगा'॥ १०॥ जब महर्षि इस प्रकार कह रहे थे, उस समय अनर्थको अपनानेवाले दुर्बुद्धि वेनने हँसकर उन लोगोंसे ये बातें कहीं॥ ११॥

वेनने कहा—धर्मका रचनेवाला मेरे सिवा और कौन है? मैं किसकी बात सुनूँ? इस पृथ्वीपर वेद, वीर्य, तप और सत्यमें मेरे समान दूसरा कौन है?॥ १२॥ आपलोग मूर्ख हैं और अचेत हो रहे हैं, अतः सब भूतोंके और विशेषतः धर्मोंके उत्पत्तिस्थान मुझ वेनको नहीं जानते॥ १३॥ मैं चाहूँ तो पृथ्वीको भस्म कर दूँ अथवा इसको जलमें डुबो दूँ और पृथ्वी तथा आकाशको भी (अपने तेजसे) ढक दूँ; इसमें विचार करनेकी कोई बात नहीं है॥ १४॥ गर्व और मोहके वशमें पड़े हुए उस राजा वेनको जब वे ऋषि अधर्म करनेसे न रोक सके, तब वे क्रोधमें भर गये॥ १५॥ फिर तो वे महात्मा उस उछल-कूद मचाते हुए महाबली राजाको बलपूर्वक पकड़कर क्रोधमें भर उसकी दाहिनी जाँघको मथने लगे॥ १६॥ राजाकी उस जङ्घाके मथे जानेपर उसमेंसे बहुत ठिगना और बहुत ही काला एक पुरुष निकला॥ १७॥ जनमेजय! वह डरा हुआ था, अतः हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। तब अत्रिने उसे भयसे विह्वल देखकर उससे कहा 'निषीद—बैठ जा'॥ १८॥ वक्ताओंमें श्रेष्ठ जनमेजय! वह निषादोंके वंशका चलानेवाला हुआ और उसने धीवरोंको जन्म दिया। वे सभी वेनके पापसे उत्पन्न हुए थे॥ १९॥ इन धीवरोंके अतिरिक्त और भी जो विन्ध्यमें रहनेवाले तुषार, तुम्बर तथा अधर्मसे प्रेम करनेवाले वनवासी (गोण्ड-कोल आदि) हैं, इन सबको तुम वेन (-के पाप)-से उत्पन्न हुआ समझो॥ २०॥ तदनन्तर वे क्रोधमें भरे हुए महात्मा महर्षि वेनके दाहिने हाथको अरणीके समान मथने लगे॥ २१॥ तब उस हाथसे अग्निके समान पृथु उत्पन्न हुए, वे अपने शरीरसे साक्षात् प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहे थे॥ २२॥

स धन्वी कवची जातः पृथुरेव महायशाः।
आद्यमाजगवं नाम धनुर्गृह्य महारवम्।
शरांश्च दिव्यान् रक्षार्थं कवचं च महाप्रभम्॥ २३

तस्मिञ्जातेऽथ भूतानि सम्प्रहृष्टानि सर्वशः।
समापेतुर्महाराज वेनश्च त्रिदिवं गतः॥ २४

समुत्पन्नेन कौरव्य सत्पुत्रेण महात्मना।
त्रातः स पुरुषव्याघ्र पुन्नाम्नो नरकात् तदा॥ २५

तं समुद्राश्च नद्यश्च रत्नान्यादाय सर्वशः।
तोयानि चाभिषेकार्थं सर्व एवोपतस्थिरे॥ २६

पितामहश्च भगवान् देवैराङ्गिरसैः सह।
स्थावराणि च भूतानि जङ्गमानि तथैव च॥ २७

समागम्य तदा वैन्यमभ्यषिञ्चन्नराधिपम्।
महता राजराज्येन प्रजापालं महाद्युतिम्॥ २८

सोऽभिषिक्तो महातेजा विधिवद्धर्मकोविदैः।
आदिराज्ये तदा राज्ञां पृथुर्वैन्यः प्रतापवान्॥ २९

पित्रापरञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिताः।
अनुरागात् ततस्तस्य नाम राजेत्यजायत॥ ३०

आपस्तस्तम्भिरे चास्य समुद्रमभियास्यतः।
पर्वताश्च ददुर्मार्गं ध्वजभङ्गश्च नाभवत्॥ ३१

अकृष्टपच्या पृथिवी सिध्यन्त्यन्नानि चिन्तया।
सर्वकामदुघा गावः पुटके पुटके मधु॥ ३२

एतस्मिन्नेव काले तु यज्ञे पैतामहे शुभे।
सूतः सूत्यां समुत्पन्नः सौत्येऽहनि महामतिः॥ ३३

तस्मिन्नेव महायज्ञे जज्ञे प्राज्ञोऽथ मागधः।
पृथोः स्तवार्थे तौ तत्र समाहूतौ सुरर्षिभिः॥ ३४

तावूचुर्ऋषयः सर्वे स्तूयतामेष पार्थिवः।
कर्मैतदनुरूपं वां पात्रं चायं नराधिपः॥ ३५

महायशस्वी पृथु हाथमें धनुष और बाणको धारण किये हुए और रक्षाके लिये महाकान्तिमान् कवच और दिव्य बाणोंको धारण किये हुए ही उत्पन्न हुए। वे हाथमें महान् शब्द करनेवाले प्राचीन आजगव नामक धनुषको धारण किये हुए थे॥ २३॥ महाराज! उनके उत्पन्न होनेपर सब प्राणी प्रसन्न होकर उनके पास दौड़ आये और वेन स्वर्गको चला गया॥ २४॥ पुरुषव्याघ्र कौरव! उस महात्मा सत्पुत्रके उत्पन्न होनेपर उस वेनकी 'पुं' नामक नरकसे रक्षा हो गयी॥ २५॥ उन पृथुका अभिषेक करनेके लिये सब समुद्र और नदियाँ चारों ओरसे जल और रत्न लेकर वहाँ उपस्थित हुईं॥ २६॥ भगवान् पितामह भी अङ्गिराके पुत्र, पौत्रों तथा सभी देवताओंके साथ वहाँ आये और स्थावर-जङ्गम प्राणियोंने भी वहाँ आकर महाकान्तिमान् वेनके प्रजापालक पुत्र पृथुका बड़े भारी राजाधिराजपदपर अभिषेक कर दिया॥ २७-२८॥ जब धर्मके जाननेवालोंने महातेजस्वी और प्रतापी वेनके पुत्र पृथुका राजाओंके आदिराज्य (साम्राज्य)-पदपर विधिवत् अभिषेक कर दिया, तब उन्होंने पिताद्वारा पीड़ित की हुई प्रजाको अपनी सेवाओंसे खूब प्रसन्न किया। इस प्रकार प्रजासे अनुराग करनेके कारण उनका नाम राजा पड़ गया॥ २९-३०॥ जब ये समुद्रपर चलते थे, तब जल स्तम्भित हो जाता था (अर्थात् समुद्रका जल स्थलकी तरह कड़ा हो जाता था) और जब ये आकाशमें चलते थे, तब पर्वत इनके लिये मार्ग छोड़ देते थे। इस कारण इनके रथकी ध्वजा वृक्ष आदिसे कभी नहीं टूटती थी॥ ३१॥ (उनके शासनकालमें) पृथ्वी बिना जोते हुए ही अन्न देती थी। चिन्तनमात्रसे ही अन्न (भोज्य पदार्थ) तैयार हो जाते थे, गौएँ कामधेनुके समान सब कामनाओंको पूर्ण करती थीं और वृक्षोंके पत्ते-पत्तेमें मधुर रस भरा रहता था॥ ३२॥ इन्हींके (राज्यत्व) कालमें पितामहके शुभ यज्ञमें सोमको निकालनेके दिन सोमका अभिषव करते समय अर्थात् रस निकालनेके लिये सोमलताको कूटते समय महाबुद्धिमान् सूतकी उत्पत्ति हुई थी॥ ३३॥ तदनन्तर उसी महायज्ञमें बुद्धिमान् मागध प्रकट हुआ। देवता और ऋषियोंने पृथुकी स्तुति करनेके लिये उन दोनोंका वहाँ आवाहन किया था॥ ३४॥ सब ऋषियोंने उन दोनोंसे कहा कि तुम दोनों इन पृथ्वीपतिकी स्तुति करो, यह कर्म तुम्हारे अनुरूप है और ये राजा भी स्तुतिके पात्र हैं॥ ३५॥

तावूचतुस्तदा सर्वांस्तानृषीन् सूतमागधौ।
आवां देवानृषींश्चैव प्रीणयावः स्वकर्मभिः॥ ३६

न चास्य विद्वो वै कर्म न तथा लक्षणं यशः।
स्तोत्रं येनास्य कुर्याव राज्ञस्तेजस्विनो द्विजाः॥ ३७

ऋषिभिस्तौ नियुक्तौ च भविष्यैः स्तूयतामिति।
यानि कर्माणि कृतवान् पृथुः पश्चान्महाबलः॥ ३८

सत्यवाग् दानशीलोऽयं सत्यसंधो नरेश्वरः।
श्रीमाञ्जैत्रः क्षमाशीलो विक्रान्तो दुष्टशासनः॥ ३९

धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च दयावान् प्रियभाषणः।
मान्यो मानयिता यज्वा ब्रह्मण्यः सत्यसंगरः॥ ४०

शमः शान्तश्च निरतो व्यवहारस्थितो नृपः।
ततः प्रभृति लोकेषु स्तवेषु जनमेजय।
आशीर्वादाः प्रयुज्यन्ते सूतमागधवन्दिभिः॥ ४१

तयोः स्तवैस्तैः सुप्रीतः पृथुः प्रादात् प्रजेश्वरः।
अनूपदेशं सूताय मगधान् मागधाय च॥ ४२

तं दृष्ट्वा परमप्रीताः प्रजाः प्राहुर्महर्षयः।
वृत्तीनामेष वो दाता भविष्यति जनेश्वरः॥ ४३

ततो वैन्यं महाराज प्रजाः समभिदुद्रुवुः।
त्वं नो वृत्तिं विधत्स्वेति महर्षिवचनात् तदा॥ ४४

सोऽभिद्रुतः प्रजाभिस्तु प्रजाहितचिकीर्षया।
धनुर्गृह्य पृषत्कांश्च पृथिवीमाद्रवद् बली॥ ४५

ततो वैन्यभयत्रस्ता गौर्भूत्वा प्राद्रवन्मही।
तां पृथुर्धनुरादाय द्रवन्तीमन्वधावत॥ ४६

सा लोकान् ब्रह्मलोकादीन् गत्वा वैन्यभयात् तदा।
प्रददर्शाग्रतो वैन्यं प्रगृहीतशरासनम्॥ ४७

उस समय सूत और मागधने उन सब ऋषियोंसे कहा— 'हम अपने कर्मोंसे देवता और ऋषियोंको प्रसन्न करेंगे॥ ३६॥ परंतु ब्राह्मणो! इन तेजस्वी राजाके कर्म, लक्षण और यशको तो हम जानते ही नहीं, जिससे इनकी स्तुति करें'॥ ३७॥ तब ऋषियोंने उन्हें यह कहकर स्तुति-कार्यमें नियुक्त किया कि 'तुम दोनों इनके भविष्यमें होनेवाले गुणोंका उल्लेख करते हुए स्तवन करो।' उन्होंने वैसा ही किया। सूत और मागधने जो-जो कर्म बताये, उन्हींको महाबली पृथुने पीछेसे पूर्ण किया॥ ३८॥ (सूत और मागधने राजा पृथुकी स्तुति इस प्रकार आरम्भ की—) 'ये नरेश्वर सच्ची प्रतिज्ञा करनेवाले, सत्यवादी, दान देनेवाले, लक्ष्मीवान् और विजयी हैं। ये क्षमा करनेवाले, पराक्रमी तथा दुष्टोंका शासन करनेवाले हैं॥ ३९॥ ये धर्मज्ञ, कृतज्ञ, दयावान् और प्रिय भाषण करनेवाले हैं। ये माननीय हैं और (दूसरोंका) मान करनेवाले हैं। यज्ञ करनेवाले, ब्राह्मण-भक्त तथा सत्यप्रतिज्ञ हैं॥ ४०॥ ये राजा शमसम्पन्न, शान्त, कार्यतत्पर तथा अपने व्यवहारमें संलग्न रहनेवाले हैं।' जनमेजय! उसी समयसे लोगोंमें स्तुतिके अवसरोंपर सूत, मागध और बन्दियोंके द्वारा आशीर्वाद दिलानेकी प्रथा प्रचलित हुई॥ ४१॥ प्रजाओंके ईश्वर पृथुने उन दोनोंके इन स्तोत्रोंसे प्रसन्न होकर सूतको अनूप देश और मागधको मगध देश दे दिया॥ ४२॥ उसे देखकर महर्षि परम प्रसन्न हुए और उन्होंने प्रजाओंसे कहा—'ये जनेश्वर (राजा) तुम्हें वृत्ति—आजीविका देनेवाले होंगे'॥ ४३॥ महाराज! महर्षियोंके ऐसा कहनेपर प्रजा वेनपुत्र राजा पृथुके पास दौड़-दौड़कर आने और कहने लगी कि 'आप हमारी वृत्तिका प्रबन्ध कीजिये'॥ ४४॥ जब प्रजा उनके पास इस प्रकार दौड़कर आयी, तब वे महाबली नरेश प्रजाका हित करनेकी इच्छासे अपने धनुष और बाण लेकर पृथ्वीको लक्ष्य करके दौड़े॥ ४५॥ तब तो पृथ्वी वेन-कुमार पृथुके भयसे त्रस्त हो गौका रूप धारण कर भागने लगी। पृथु भी धनुष लेकर उस भागती हुई पृथ्वीके पीछे दौड़ने लगे॥ ४६॥ पृथ्वी राजा पृथुके भयसे ब्रह्मलोक आदि लोकोंमें गयी; परंतु (उसने सर्वत्र ही) वेनपुत्र पृथुको हाथमें धनुष-बाण धारण किये अपने सामने खड़ा हुआ देखा॥ ४७॥

ज्वलद्भिर्निशितैर्बाणैर्दीप्ततेजसमच्युतम् ।
महायोगं महात्मानं दुर्धर्षममरैरपि ॥ ४८

अलभन्ती तु सा त्राणं वैन्यमेवान्वपद्यत ।
कृताञ्जलिपुटा भूत्वा पूज्या लोकैस्त्रिभिः सदा ॥ ४९

उवाच वैन्यं नाधर्म्यं स्त्रीवधं कर्तुमर्हसि ।
कथं धारयिता चासि प्रजा राजन् विना मया ॥ ५०

मयि लोकाः स्थिता राजन् मयेदं धार्यते जगत् ।
मद्विनाशे विनश्येयुः प्रजाः पार्थिव विद्धि तत् ॥ ५१

न त्वमर्हसि मां हन्तुं श्रेयश्चेत् त्वं चिकीर्षसि ।
प्रजानां पृथिवीपाल शृणु चेदं वचो मम ॥ ५२

उपायतः समारब्धाः सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः ।
उपायं पश्य येन त्वं धारयेथाः प्रजा नृप ॥ ५३

हत्वापि मां न शक्तस्त्वं प्रजा धारयितुं नृप ।
अनुभूता भविष्यामि यच्छ कोपं महाद्युते ॥ ५४

अवध्याश्च स्त्रियः प्राहुस्तिर्यग्योनिगतेष्वपि ।
सत्त्वेषु पृथिवीपाल न धर्मं त्यक्तुमर्हसि ॥ ५५

एवं बहुविधं वाक्यं श्रुत्वा राजा महामनाः ।
कोपं निगृह्य धर्मात्मा वसुधामिदमब्रवीत् ॥ ५६

अपनी मर्यादासे कभी च्युत न होनेवाले पृथु प्रज्वलित तीखे बाणोंद्वारा और भी तेजसे उद्भासित हो रहे थे। वे महान् योगबलसे सम्पन्न महात्मा नरेश देवताओंके लिये भी दुर्धर्ष थे। जब पृथ्वीको कहीं भी शरण न मिली, तब वह पृथुकी ही शरणमें पहुँची और तीनों लोकोंकी सदासे पूजनीया पृथ्वी दोनों हाथ जोड़कर वेनपुत्र पृथुसे कहने लगी—'आपको स्त्रीवधरूप अधर्मका काम करना उचित नहीं है। राजन्! (पहले आप यह तो सोचिये कि) मेरे बिना इन प्रजाओंको कहाँ स्थापित करेंगे?॥ ४८—५०॥ राजन्! ये सब लोक मुझपर ही स्थित हैं, मैं ही इस जगत्को धारण कर रही हूँ; (अतः) भूपाल! आप इस बातको जान रखें कि मेरा विनाश होनेपर ये सब प्रजा भी नष्ट हो जायँगी॥ ५१॥ पृथ्वीपाल! यदि आप प्रजाका कल्याण करना चाहते हैं तो आपको मेरा वध करना उचित नहीं है। साथ ही आप मेरी इस बातको भी सुनिये॥ ५२॥ प्रायः सब कार्य ठीक उपायसे आरम्भ किये जानेपर ही सिद्ध होते हैं; अतः राजन्! उस उपायका विचार कीजिये, जिससे कि आप प्रजाका पालन कर सकें॥ ५३॥ राजन्! आप मेरा वध करके भी प्रजाका पालन एवं धारण न कर सकेंगे। अतः महाद्युते! आप अपने क्रोधको शान्त करें, मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगी॥ ५४॥ भूपाल! तिर्यक्-योनिके प्राणियोंमें भी स्त्रियोंको अवध्य कहा है, अतः आप धर्मका परित्याग न करें'॥ ५५॥ ऐसे ही और बहुत-से (अनुनय-विनयके) वाक्योंको सुनकर धर्मात्मा और उदार मनवाले राजा पृथु अपने क्रोधको रोककर वसुधासे इस प्रकार बोले॥ ५६॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पृथूपाख्याने पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पृथुका उपाख्यानविषयक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५॥

षष्ठोऽध्यायः

पृथुका उपाख्यान—पृथ्वीका पृथुकी पुत्री बनकर अनेक प्रकारके दूध देना तथा अनेक पात्रों एवं दुहनेवालोंका वर्णन

पृथुरुवाच

एकस्यार्थाय यो हन्यादात्मनो वा परस्य वा।
बहून् वै प्राणिनो लोके भवेत् तस्येह पातकम्॥ १

सुखमेधन्ति बहवो यस्मिंस्तु निहतेऽशुभे।
तस्मिन् नास्ति हते भद्रे पातकं चोपपातकम्॥ २

एकस्मिन् यत्र निधनं प्रापिते दुष्टकारिणि।
बहूनां भवति क्षेमं तत्र पुण्यप्रदो वधः॥ ३

सोऽहं प्रजानिमित्तं त्वां हनिष्यामि वसुंधरे।
यदि मे वचनं नाद्य करिष्यसि जगद्धितम्॥ ४

त्वां निहत्याद्य बाणेन मच्छासनपराङ्मुखीम्।
आत्मानं प्रथयित्वाहं प्रजा धारयिता चिरम्॥ ५

सा त्वं शासनमास्थाय मम धर्मभृतां वरे।
सञ्जीवय प्रजाः सर्वाः समर्था ह्यसि धारणे॥ ६

दुहितृत्वं च मे गच्छ तत एनमहं शरम्।
नियच्छेयं त्वद्वधार्थमुद्यतं घोरदर्शनम्॥ ७

पृथिव्युवाच

सर्वमेतदहं वीर विधास्यामि न संशयः।
उपायतः समारब्धाः सर्वे सिद्ध्यन्त्युपक्रमाः॥ ८

उपायं पश्य येन त्वं धारयेथाः प्रजा इमाः।
वत्सं तु मम सम्पश्य क्षरेयं येन वत्सला॥ ९

समां च कुरु सर्वत्र मां त्वं धर्मभृतां वर।
यथा विस्पन्दमानं मे क्षीरं सर्वत्र भावयेत्॥ १०

वैशम्पायन उवाच

तत उत्सारयामास शैलाञ्छतसहस्रशः।
धनुष्कोट्या तदा वैन्यस्तेन शैला विवर्द्धिताः॥ ११

पृथुने कहा—वसुधे! जो पुरुष इस संसारमें अपने या पराये किसी भी एक व्यक्तिके लिये बहुत-से जीवोंका वध करता है, उसे ही यहाँ पाप लगता है॥ १॥ भद्रे! जिस पापी व्यक्तिके मारे जानेसे बहुत-से प्राणियोंको सुख मिलता हो, उसको मारनेसे न तो पाप लगता है और न उपपातक ही॥ २॥ जहाँ दुष्टताका व्यवहार करनेवाले एक व्यक्तिका वध करनेसे बहुत-से मनुष्योंका कल्याण होता हो, वहाँ उसका वध करना पुण्यप्रद ही है॥ ३॥ अतः वसुंधरे! यदि आज तू जगत्‌का हित करनेवाले मेरे वचनको नहीं मानती है तो मैं प्रजाके हितके लिये तेरा अवश्य वध कर डालूँगा॥ ४॥ तू आज मेरे शासनसे पराङ्मुख हो रही है, अतः आज तुझे बाणसे मारकर अपने देहको ही फैलाकर मैं उसपर चिरकालतक प्रजाको धारण करूँगा॥ ५॥ अतएव धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ देवि! तू मेरे शासनको मानकर सारी प्रजाको जीवित रख; क्योंकि तू प्रजाको धारण करने—जीवित रखनेमें समर्थ है॥ ६॥ साथ ही तू मेरी पुत्री बन जा, तब मैं तेरे वधके लिये उठाये हुए इस भयंकर दीखनेवाले बाणको रोक लूँगा॥ ७॥

पृथिवीने कहा—वीर! मैं निःसंदेह यह सब कुछ करूँगी, परंतु ठीक उपायसे आरम्भ करनेपर ही सब कार्य सिद्ध होते हैं॥ ८॥ अतः आप उस उपायको देखिये या ढूँढ़ निकालिये, जिससे आप इन प्रजाओंको पुष्ट करके धारण कर सकें। (इसकी युक्ति मैं बताती हूँ) आप मेरे लिये एक बछड़ेकी खोज कीजिये, जिससे मैं (स्नेहसे) पेन्हाकर दूध दूँ॥ ९॥ धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ! आप मुझे सर्वत्र सम (चौरस) कीजिये, जिससे कि मेरा झरता हुआ दूध सर्वत्र (व्याप्त) हो जाय॥ १०॥

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय! तब वेनपुत्र पृथुने धनुषके कोनेसे सैकड़ों और सहस्रों पर्वतोंको उठाकर (ईंटोंकी दीवारके समान) खड़ा कर दिया, इससे पर्वत बड़े हो गये॥ ११॥

इत्थं वैन्यस्तदा राजा महीं चक्रे समां ततः।
मन्वन्तरेष्वतीतेषु विषमासीद् वसुंधरा॥ १२
स्वभावेनाभवन् ह्यस्याः समानि विषमाणि च।
चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमासीदेवं तदा किल॥ १३
न हि पूर्वविसर्गे वै विषमे पृथिवीतले।
प्रविभागः पुराणां च ग्रामाणां वा तदाभवत्॥ १४
न सस्यानि न गोरक्षा न कृषिर्न वणिक्पथः।
नैव सत्यानृतं तत्र न लोभो न च मत्सरः॥ १५
वैवस्वतेऽन्तरे चास्मिन् साम्प्रतं समुपस्थिते।
वैन्यात् प्रभृति राजेन्द्र सर्वस्यैतस्य सम्भवः॥ १६
यत्र यत्र समं त्वस्या भूमेरासीदिहानघ।
तत्र तत्र प्रजाः सर्वाः संवासं समरोचयन्॥ १७
आहारः फलमूलानि प्रजानामभवत् तदा।
कृच्छ्रेण महता युक्त इत्येवमनुशुश्रुम॥ १८
संकल्पयित्वा वत्सं तु मनुं स्वायम्भुवं प्रभुम्।
स्वपाणौ पुरुषश्रेष्ठ दुदोह पृथिवीं ततः।
सस्यजातानि सर्वाणि पृथुर्वैन्यः प्रतापवान्॥ १९
तेनान्नेन प्रजास्तात वर्तन्तेऽद्यापि नित्यशः।
ऋषिभिः श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुंधरा॥ २०
वत्सः सोमोऽभवत् तेषां दोग्धा चाङ्गिरसः सुतः।
बृहस्पतिर्महातेजाः पात्रं छन्दांसि भारत।
क्षीरमासीदनुपमं तपो ब्रह्म च शाश्वतम्॥ २१
पुनर्देवगणैः सर्वैः पुरंदरपुरोगमैः।
काञ्चनं पात्रमादाय दुग्धेयं श्रूयते मही॥ २२
वत्सस्तु मघवानासीद् दोग्धा च सविता प्रभुः।
क्षीरमूर्जस्करं चैव वर्तन्ते येन देवताः॥ २३
पितृभिः श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुंधरा।
राजतं पात्रमादाय स्वधाममितविक्रमैः॥ २४
यमो वैवस्वतस्तेषामासीद् वत्सः प्रतापवान्।
अन्तकश्चाभवद् दोग्धा कालो लोकप्रकालनः॥ २५
नागैश्च श्रूयते दुग्धा वत्सं कृत्वा तु तक्षकम्।
अलाबुं पात्रमादाय विषं क्षीरं नरोत्तम॥ २६
तेषामैरावतो दोग्धा धृतराष्ट्रः प्रतापवान्।
नागानां भरतश्रेष्ठ सर्पाणां च महीपते॥ २७

इस प्रकार वेनपुत्र राजा पृथुने पृथ्वीको सम (चौरस) कर दिया। पिछले मन्वन्तरोंमें यह पृथ्वी ऊँची-नीची थी॥ १२॥ पहले चाक्षुष मन्वन्तरमें इस पृथ्वीके प्रदेश स्वभावतः ऊँचे-नीचे थे॥ १३॥ पहले सर्गमें पृथ्वीके विषम होनेके कारण नगर और ग्रामोंका विभाग नहीं हुआ था॥ १४॥ उस समय न किसी प्रकारका धान्य होता था, न गोरक्षा होती थी और न खेती होती थी तथा न सत्य एवं मिथ्यासे मिला हुआ (वाणिज्य) होता था, उस समय न लोभ था न मत्सर॥ १५॥ राजेन्द्र! इस वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तरके आनेपर वेनपुत्र पृथुके समयसे ही इन सभी वस्तुओंकी उत्पत्ति हुई है॥ १६॥ निष्पाप नरेश! जहाँ-जहाँ यह भूमि सम हो गयी, वहाँ-वहाँ प्रजाने रहना पसंद किया॥ १७॥ हमने ऐसा सुना है कि (वेनपुत्र पृथुद्वारा भूमिका दोहन होनेसे) पहले प्रजाओंका आहार फल और मूल था तथा वह भी उन्हें बड़ी कठिनतासे मिलता था॥ १८॥ पुरुषश्रेष्ठ! वेन-पुत्र प्रतापी पृथुने प्रभु स्वायम्भुव मनुको बछड़ा बनाकर पृथ्वीसे सब प्रकारके धान्योंको अपने हाथमें ही दुहा। तात! उस दिनसे सब प्रजा उसी अन्नसे आजतक बढ़ रही है॥ १९½॥ भारत! सुना है, फिर ऋषियोंने भी भूमिको दुहा था, उस समय सोम उनका बछड़ा हुआ, अङ्गिराके पुत्र महातेजस्वी बृहस्पति दुहनेवाले बने और छन्द (वेद) पात्र बने थे। तपोमय शाश्वत ब्रह्म अनुपम दुग्धके रूपमें प्रकट हुआ था॥ २०-२१॥ (यह भी) सुना जाता है कि फिर इन्द्र आदि सब देवताओंने भी सुवर्णका पात्र लेकर इस पृथ्वीको दुहा था॥ २२॥ (उस समय) इन्द्र बछड़ा और भगवान् सूर्य दुहनेवाले बने तथा पुष्टिकारक अमृतरूपी क्षीर प्रकट हुआ, जिससे देवता सदा जीवित रहते हैं॥ २३॥ सुना है कि फिर अतुल पराक्रमी पितरोंने भी पृथ्वीको दुहा था, उन्होंने चाँदीका पात्र लेकर स्वधा (-रूपी दूध)-का दोहन किया था॥ २४॥ प्रतापी विवस्वान्-पुत्र यम उनका बछड़ा बने और लोकोंका अन्त करनेवाला काल—अन्तक उनका दुहनेवाला बना था॥ २५॥ नरोत्तम! (फिर यह भी) सुना जाता है कि नागोंने तक्षकको वत्स बनाकर अलाबु (तूम्बी)-के पात्रको लेकर विषरूपी दूध दुहा था॥ २६॥ भरतश्रेष्ठ भूपाल! उस समय दुहनेवाला नाग ऐरावत था और सर्पोंने प्रतापी धृतराष्ट्रको दुहनेवाला बनाया था॥ २७॥

तेनैव वर्तयन्त्युग्रा महाकाया विषोल्बणाः।
तदाहारास्तदाचारास्तद्वीर्यास्तदुपाश्रयाः॥ २८

असुरैः श्रूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुंधरा।
आयसं पात्रमादाय मायां शत्रुनिबर्हिणीम्॥ २९

विरोचनस्तु प्राह्लादिर्वत्सस्तेषामभूत् तदा।
ऋत्विग्द्विमूर्द्धा दैत्यानां मधुर्दोग्धा महाबलः॥ ३०

तयैते माययाद्यापि सर्वे मायाविनोऽसुराः।
वर्तयन्त्यमितप्रज्ञास्तदेषाममितं बलम्॥ ३१

यक्षैश्च श्रूयते तात पुनर्दुग्धा वसुंधरा।
आमपात्रे महाराज पुरान्तर्द्धानमक्षयम्॥ ३२

वत्सं वैश्रवणं कृत्वा यक्षैः पुण्यजनैस्तदा।
दोग्धा रजतनाभस्तु पिता मणिवरस्य यः॥ ३३

यक्षानुजो महातेजास्त्रिशीर्षः सुमहातपाः।
तेन ते वर्तयन्तीति परमर्षिरुवाच ह॥ ३४

राक्षसैश्च पिशाचैश्च पुनर्दुग्धा वसुंधरा।
शावं कपालमादाय प्रजा भोक्तुं नरर्षभ॥ ३५

दोग्धा रजतनाभस्तु तेषामासीत् कुरूद्वह।
वत्सः सुमाली कौरव्य क्षीरं रुधिरमेव च॥ ३६

तेन क्षीरेण यक्षाश्च राक्षसाश्चामरोपमाः।
वर्तयन्ति पिशाचाश्च भूतसंघास्तथैव च॥ ३७

पद्मपत्रे पुनर्दुग्धा गन्धर्वैः साप्सरोगणैः।
वत्सं चित्ररथं कृत्वा शुचीन् गन्धान् नरर्षभ॥ ३८

तेषां च सुरुचिस्त्वासीद् दोग्धा भरतसत्तम।
गन्धर्वराजोऽतिबलो महात्मा सूर्यसंनिभः॥ ३९

शैलैश्च श्रूयते राजन् पुनर्दुग्धा वसुंधरा।
औषधीर्वै मूर्तिमती रत्नानि विविधानि च॥ ४०

वत्सस्तु हिमवानासीन्मेरुर्दोग्धा महागिरिः।
पात्रं तु शैलमेवासीत् तेन शैला विवर्धिताः॥ ४१

जिनमें स्पष्टरूपसे विष झलकता है, ऐसे ये विशाल शरीरवाले सर्प उस विषसे अपनी आजीविका चलाते हैं। ये इस विषको खाते हैं और इस विषका प्रयोग कर दूसरा आहार प्राप्त करते हैं तथा ये इस विषरूपी बलका सहारा लेकर इस संसारमें अपनी प्रतिष्ठा बनाये हुए हैं॥ २८॥ सुना जाता है कि असुरोंने भी लोहेका पात्र लेकर शत्रुओंको नष्ट करनेवाली माया (रूपी दूध)-को इस पृथ्वीसे दुहा था॥ २९॥ उस समय प्रह्लादका पुत्र विरोचन उनका बछड़ा बना था और दैत्योंका ऋत्विक् दो सिरोंवाला महाबली मधु उनका दुहनेवाला था॥ ३०॥ अमित बुद्धिवाले मायावी असुर आजकल भी उसी मायासे काम लेते हैं, यह माया ही उनका अपार बल है॥ ३१॥ तात! यह भी सुना जाता है कि इसके बाद उस प्राचीन कालमें यक्षोंने भी पृथ्वीको दुहा था। महाराज! उन्होंने कच्चे पात्रमें अन्तर्धान (गुप्त) होनेकी अक्षय विद्याको दुहा था॥ ३२॥ उस समय यक्ष और राक्षसोंने विश्रवाके पुत्र कुबेरको बछड़ा तथा मणिवरके पिता रजतनाभको दुहनेवाला बनाया था॥ ३३॥ उन यक्षोंके छोटे भाई महातेजस्वी और महातपस्वी रजतनाभके तीन सिर हैं। इस अन्तर्धान-विद्यासे वे यक्ष जीविका चलाते हैं, इस प्रकार परमर्षि (व्यासदेव)-ने कहा था॥ ३४॥ नरश्रेष्ठ! फिर राक्षसों और पिशाचोंने मुर्देकी खोपड़ी लेकर अपनी संतानको तृप्त करनेके लिये इस वसुन्धराको दुहा था॥ ३५॥ कुरुवंशधर! उस समय रजतनाभ उनका दुहनेवाला था और सुमाली उनका बछड़ा था। कौरव्य! उस समय उन्होंने रक्तरूपी दूध दुहा था॥ ३६॥ देवताओंकी ही भाँति यक्ष, राक्षस, पिशाच और भूतोंकी भी मण्डलियाँ उस दूधसे अपनी-अपनी आजीविका चलाती हैं॥ ३७॥ नरर्षभ! फिर अप्सराओं और गन्धर्वोंने भी चित्ररथको बछड़ा बनाकर पद्मपत्रमें वसुधासे पवित्र गन्धोंको दुहा था॥ ३८॥ भरतसत्तम! उस समय सूर्यके तुल्य तेजस्वी और अत्यन्त बलवान् महात्मा गन्धर्वराज सुरुचि उनका दुहनेवाला था॥ ३९॥ राजन्! सुना जाता है कि पर्वतोंने भी पृथ्वीसे मूर्तिमती ओषधियों और नाना प्रकारके रत्नोंको दुहा था॥ ४०॥ उस समय हिमाचल बछड़ा बना था, महागिरि मेरु दुहनेवाला था तथा पत्थरके पात्रकी दोहनी बनी थी। उस दूधसे पर्वतोंकी वृद्धि हुई॥ ४१॥

वीरुद्भिः श्रूयते राजन् पुनर्दुग्धा वसुंधरा।
पालाशं पात्रमादाय दग्धच्छिन्नप्ररोहणम्॥ ४२

दुदोह पुष्पितः सालो वत्सः प्लक्षोऽभवत् तदा।
सेयं धात्री विधात्री च पावनी च वसुंधरा॥ ४३

चराचरस्य सर्वस्य प्रतिष्ठा योनिरेव च।
सर्वकामदुघा दोग्ध्री सर्वसस्यप्ररोहिणी॥ ४४

आसीदियं समुद्रान्ता मेदिनीति परिश्रुता।
मधुकैटभयोः कृत्स्ना मेदसाभिपरिप्लुता।
तेनेयं मेदिनी देवी प्रोच्यते ब्रह्मवादिभिः॥ ४५

ततोऽभ्युपगमाद् राज्ञः पृथोर्वैन्यस्य भारत।
दुहितृत्वमनुप्राप्ता देवी पृथ्वीति चोच्यते।
पृथुना प्रविभक्ता च शोधिता च वसुंधरा॥ ४६

सस्याकरवती स्फीता पुरपत्तनमालिनी।
एवंप्रभावो वैन्यः स राजासीद् राजसत्तमः॥ ४७

नमस्यश्चैव पूज्यश्च भूतग्रामैर्न संशयः।
ब्राह्मणैश्च महाभागैर्वेदवेदाङ्गपारगैः॥ ४८

पृथुरेव नमस्कार्यो ब्रह्मयोनिः सनातनः।
पार्थिवैश्च महाभागैः पार्थिवत्वमभीप्सुभिः॥ ४९

आदिराजो नमस्कार्यः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान्।
योधैरपि च विक्रान्तैः प्राप्तुकामैर्जयं युधि।
पृथुरेव नमस्कार्यो योधानां प्रथमो नृपः॥ ५०

यो हि योद्धा रणं याति कीर्तयित्वा पृथुं नृपम्।
स घोररूपान् संग्रामान् क्षेमी तरति कीर्तिमान्॥ ५१

वैश्यैरपि च वित्ताढ्यैः पण्यवृत्तिमनुष्ठितैः।
पृथुरेव नमस्कार्यो वृत्तिदाता महायशाः॥ ५२

राजन्! सुना जाता है कि इसके बाद पलाशके पत्तेका पात्र (दोना) लेकर वृक्षोंने भी पृथ्वीका दोहन किया। जल जाने या कट जानेपर जो पुनः अंकुरित होनेकी शक्ति है, वही उन्हें दूधके रूपमें प्राप्त हुई थी॥ ४२॥ उस समय खिले हुए साल-वृक्षने इस पृथ्वीको दुहा था और पाकड़का वृक्ष बछड़ा बना था। इस प्रकार यह पृथ्वी धात्री-विधात्री (माताके समान सबका धारण-पोषण करनेवाली) तथा पवित्र है॥ ४३॥ यह पृथ्वी समस्त चराचर प्राणियोंका आश्रय-स्थान और उत्पत्ति-स्थान है। यह समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली कामधेनु है तथा यही सब प्रकारके सस्यों (अन्नके पौधों)-को अंकुरित करनेवाली है॥ ४४॥ पहले यह समुद्रतककी सारी पृथ्वी मधु और कैटभके मेद (चरबी)-से भर गयी थी, इसलिये 'मेदिनी' नामसे विख्यात हुई; अतएव यह देवी ब्रह्मवादियोंद्वारा मेदिनी कही जाती है॥ ४५॥ भरतवंशी राजन्! फिर वेनपुत्र राजा पृथुके पुत्रीरूपमें अङ्गीकार करनेपर यह देवी उनकी पुत्री बन गयी, इससे यह पृथ्वी कहलाती है। इस पृथ्वीको पृथुने अनेक भागोंमें विभक्त एवं शुद्ध किया, इसको अन्न आदिकी खान बना दिया और समृद्धिशालिनी बनाकर इसे ग्रामों और नगरोंकी श्रेणियोंसे सुशोभित कर दिया। नृपश्रेष्ठ! महाराज पृथु ऐसे प्रभावशाली थे॥ ४६-४७॥ अतएव सभी प्राणियोंको निःसंदेह उनकी पूजा तथा वन्दना करनी चाहिये। वेद-वेदाङ्गके पारगामी महात्मा ब्राह्मणोंको भी (अत्रिकुलमें उत्पन्न होनेके कारण) ब्रह्मयोनि एवं सनातन पुरुष (विष्णुरूप) पृथुके प्रति निश्चय ही नमस्कार करना चाहिये॥ ४८½॥ पृथ्वीके स्वामित्वको चाहनेवाले महाभाग्यवान् राजाओंको भी आदि राजा वेनपुत्र प्रतापी पृथुको प्रणाम करना चाहिये॥ ४९½॥ जो पराक्रमी राजा युद्धमें विजय चाहते हों उनको भी योद्धाओंमें अग्रणी राजा पृथुको अवश्य प्रणाम करना चाहिये॥ ५०॥ जो योद्धा राजा पृथुका कीर्तन करके युद्धमें जाता है, वह भयङ्कर संग्रामको कुशलपूर्वक तर जाता (उसमें विजय प्राप्त करता) और यशस्वी होता है॥ ५१॥ वाणिज्य आदिसे आजीविका चलानेवाले धनवान् वैश्योंको भी चाहिये कि वे वृत्ति (आजीविका) प्रदान करनेवाले महायशस्वी पृथुको अवश्य प्रणाम करें॥ ५२॥

तथैव शूद्रैः शुचिभिस्त्रिवर्णपरिचारिभिः।
आदिराजो नमस्कार्यः श्रेयः परमभीप्सुभिः॥ ५३

एते वत्सविशेषाश्च दोग्धारः क्षीरमेव च।
पात्राणि च मयोक्तानि किं भूयो वर्णयामि ते॥ ५४

य इदं शृणुयान्नित्यं पृथोश्चरितमादितः।
पुत्रपौत्रसमायुक्तो मोदते सुचिरं भुवि॥ ५५

इसी प्रकार परम कल्याण चाहनेवाले एवं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—इन तीनों वर्णोंकी सेवामें परायण रहनेवाले पवित्र शूद्रोंको भी आदि राजा पृथुको प्रणाम करना चाहिये॥ ५३॥ मैंने तुमसे इन बछड़ोंका, पात्रोंका, दुहनेवालोंका और दुग्धोंका वर्णन कर दिया। अब मैं तुमसे और क्या कहूँ॥ ५४॥ जो पुरुष (प्रत्येक कल्पमें होनेवाले अतएव) नित्य इस पृथु-चरित्रको आदिसे (अन्ततक) सुनता है, वह पुरुष पुत्र-पौत्रोंके साथ इस पृथ्वीपर चिरकालतक आनन्द करता है॥ ५५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पृथूपाख्याने षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पृथुके उपाख्यानकी समाप्तिविषयक छठा अध्याय पूरा हुआ॥ ६॥

सप्तमोऽध्यायः

मन्वन्तर, मनु, देवता और ऋषियोंका पृथक्-पृथक् वर्णन

जनमेजय उवाच

मन्वन्तराणि सर्वाणि विस्तरेण तपोधन।
तेषां सृष्टिं विसृष्टिं च वैशम्पायन कीर्तय॥ १

यावन्तो मनवश्चैव यावन्तं कालमेव च।
मन्वन्तरं तथा ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥ २

वैशम्पायन उवाच

न शक्यो विस्तरस्तात वक्तुं वर्षशतैरपि।
मन्वन्तराणां कौरव्य संक्षेपं त्वेव मे शृणु॥ ३

स्वायम्भुवो मनुस्तात मनुः स्वारोचिषस्तथा।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा॥ ४

वैवस्वतश्च कौरव्य साम्प्रतो मनुरुच्यते।
सावर्णिश्च मनुस्तात भौत्यो रौच्यस्तथैव च॥ ५

तथैव मेरुसावर्णाश्चत्वारो मनवः स्मृताः।
अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये॥ ६

कीर्तिता मनवस्तात मयैते तु यथाश्रुतम्।
ऋषींस्तेषां प्रवक्ष्यामि पुत्रान् देवगणांस्तथा॥ ७

जनमेजयने कहा—तपोधन वैशम्पायनजी! सभी मन्वन्तरों तथा उनकी सृष्टि और विलीन होनेका वृत्तान्त अब आप विस्तारपूर्वक कहिये॥ १॥ ब्रह्मन्! जितने मनु होते हैं और जितने समयतक एक मन्वन्तर रहता है, उसको मैं ठीक-ठीक सुनना चाहता हूँ॥ २॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—तात! कौरव्य! मन्वन्तरोंके विस्तारका तो सौ वर्षोंमें भी वर्णन नहीं किया जा सकता, अतः उसे संक्षेपमें ही मुझसे सुनो॥ ३॥ तात! कौरव्य! स्वायम्भुव मनु, स्वारोचिष मनु, उत्तम मनु, तामस मनु, रैवत मनु एवं चाक्षुष मनु (बीत गये हैं) और वर्तमान (सातवें) मनुका नाम वैवस्वत मनु है। (अब भविष्यके मन्वन्तरोंका वर्णन करते हैं—) तात! सावर्णि मनु, भौत्य मनु और रौच्य मनु एवं चार मेरुसावर्ण (ब्रह्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, मेरुसावर्णि, दक्षसावर्णि—ये चारों मेरुपर्वतपर तप करके सिद्ध हो गये हैं, अतएव ये चारों मेरुसावर्णि कहलाते हैं,) कहे गये हैं। तात! मैंने भूत, भविष्यत् और वर्तमान (चौदह) मनुओंका गुरुओंसे जिस प्रकार सुना था वैसा वर्णन किया, अब मैं उनके ऋषि, पुत्र और देवताओंका वर्णन करता हूँ॥ ४—७॥

मरीचिरत्रिर्भगवानङ्गिराः पुलहः क्रतुः।
पुलस्त्यश्च वसिष्ठश्च सप्तैते ब्रह्मणः सुताः॥ ८
उत्तरस्यां दिशि तथा राजन् सप्तर्षयोऽपरे।
देवाश्च शान्तरजसस्तथा प्रकृतयः परे।
यामा नाम तथा देवा आसन् स्वायम्भुवेऽन्तरे॥ ९
आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च मेधा मेधातिथिर्वसुः।
ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्यः सवनः पुत्र एव च॥ १०
मनोः स्वायम्भुवस्यैते दश पुत्रा महौजसः।
एतत् ते प्रथमं राजन् मन्वन्तरमुदाहृतम्॥ ११
और्वो वसिष्ठपुत्रश्च स्तम्बः काश्यप एव च।
प्राणा बृहस्पतिश्चैव दत्तो निश्च्यवनस्तथा॥ १२
एते महर्षयस्तात वायुप्रोक्ता महाव्रताः।
देवाश्च तुषिता नाम स्मृताः स्वारोचिषेऽन्तरे॥ १३
हविर्ध्रः सुकृतिर्ज्योतिरापोमूर्तिरयस्मयः।
प्रथितश्च नभस्यश्च नभ ऊर्जस्तथैव च॥ १४
स्वारोचिषस्य पुत्रास्ते मनोस्तात महात्मनः।
कीर्तिताः पृथिवीपाल महावीर्यपराक्रमाः॥ १५
द्वितीयमेतत् कथितं तव मन्वन्तरं मया।
इदं तृतीयं वक्ष्यामि तन्निबोध नराधिप॥ १६
वसिष्ठपुत्राः सप्तासन् वासिष्ठा इति विश्रुताः।
हिरण्यगर्भस्य सुता ऊर्जा नाम सुतेजसः॥ १७
ऋषयोऽत्र मया प्रोक्ताः कीर्त्यमानान् निबोध मे।
औत्तमेयान् महाराज दश पुत्रान् मनोरमान्॥ १८
इष ऊर्जस्तनूजश्च मधुर्माधव एव च।
शुचिः शुक्रः सहश्चैव नभस्यो नभ एव च॥ १९
भानवस्तत्र देवाश्च मन्वन्तरमुदाहृतम्।
मन्वन्तरं चतुर्थं ते कथयिष्यामि तच्छृणु॥ २०
काव्यः पृथुस्तथैवाग्निर्जन्युर्धाता च भारत।
कपीवानकपीवांश्च तत्र सप्तर्षयोऽपरे॥ २१
पुराणे कथितास्तात पुत्राः पौत्राश्च भारत।
सत्या देवगणाश्चैव तामसस्यान्तरे मनोः॥ २२
पुत्रांश्चैव प्रवक्ष्यामि तामसस्य मनोर्नृप।
द्युतिस्तपस्यः सुतपास्तपोमूलस्तपोधनः॥ २३
तपोरतिरकल्माषस्तन्वी धन्वी परंतपः।
तामसस्य मनोरेते दश पुत्रा महाबलाः॥ २४

राजन्! स्वायम्भुव मन्वन्तरमें वर्तमान मन्वन्तरसे भिन्न मरीचि, भगवान् अत्रि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य और वसिष्ठ—ये ब्रह्माजीके सात पुत्र सप्तर्षि होकर उत्तर दिशामें रहते थे। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें शान्तरजा, प्रकृति तथा याम नामक देवता पूजित होते थे। स्वायम्भुव मनुके आग्नीध्र, अग्निबाहु, मेधा, मेधातिथि, वसु, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, सवन और पुत्र—ये दस महाबली पुत्र थे। राजन्! मैंने तुमसे यह पहले मन्वन्तरका वर्णन किया॥ ८—११॥ तात! वायुने स्वारोचिष मन्वन्तरमें वसिष्ठके पुत्र और्व, स्तम्ब, काश्यप, प्राण, बृहस्पति, दत्त और निश्च्यवन—ये सात महाव्रतधारी ऋषि बताये हैं और देवताओंका नाम तुषित कहा है॥ १२-१३॥ तात! महात्मा स्वारोचिष मनुके महावीर्यवान् और पराक्रमी हविर्ध्र, सुकृति, ज्योति, आप, मूर्ति, अयस्मय, प्रथित, नभस्य, ऊर्ज और नभ—ये (दस) पुत्र थे, उनका वर्णन कर दिया। पृथ्वीपाल! यह मैंने तुमसे दूसरे मन्वन्तरका वर्णन कर दिया॥ १४-१५ 1/2 ॥ राजन्! अब मैं तीसरे मन्वन्तरका वर्णन करता हूँ, सुनो। उत्तम नामक मन्वन्तरमें वासिष्ठ नामसे प्रसिद्ध वसिष्ठजीके सात पुत्र (सप्तर्षि) थे। वे पहले हिरण्यगर्भके पुत्र थे। उनके नाम ऊर्ज थे तथा वे बड़े तेजस्वी थे। इस प्रकार मैंने ऋषियोंका वर्णन कर दिया। महाराज! अब मैं उत्तम मनुके दस मनोहर पुत्रोंका वर्णन करता हूँ; सुनो—इष, ऊर्ज, तनूज, मधु, माधव, शुचि, शुक्र, सह, नभस्य और नभ (ये दस उत्तम मनुके पुत्र थे) और उस मन्वन्तरमें भानु नामक देवता थे। (इस प्रकार यह तीसरा) मन्वन्तर बताया गया॥ १६—१९ 1/2 ॥ भारत! अब मैं चौथे मन्वन्तरका वर्णन करता हूँ, सुनो। तामस नामक मन्वन्तरमें काव्य, पृथु, अग्नि, जन्यु, धाता, कपीवान् और अकपीवान्—ये सात सप्तर्षि थे। तात! पुराणोंमें इनके बहुत-से पुत्र-पौत्रोंका वर्णन है। तामस मन्वन्तरमें सत्य नामक देवता थे। भारत! अब मैं तामस मनुके पुत्रोंका वर्णन करता हूँ। राजन्! तामस मनुके द्युति, तपस्य, सुतपा, तपोमूल, तपोधन, तपोरति, कल्माष, तन्वी, धन्वी और परंतप—ये दस महाबली पुत्र थे॥ २०—२४॥

वायुप्रोक्ता महाराज पञ्चमं तदनन्तरम्।
वेदबाहुर्यदुध्रश्च मुनिर्वेदशिरास्तथा॥ २५
हिरण्यरोमा पर्जन्य ऊर्ध्वबाहुश्च सोमजः।
सत्यनेत्रस्तथाऽऽत्रेय एते सप्तर्षयोऽपरे॥ २६
देवाश्चाभूतरजसस्तथा प्रकृतयोऽपरे।
पारिप्लवश्च रैभ्यश्च मनोरन्तरमुच्यते॥ २७
अथ पुत्रानिमांस्तस्य निबोध गदतो मम।
धृतिमानव्ययो युक्तस्तत्त्वदर्शी निरुत्सुकः॥ २८
अरण्यश्च प्रकाशश्च निर्मोहः सत्यवाक् कविः।
रैवतस्य मनोः पुत्राः पञ्चमं चैतदन्तरम्॥ २९
षष्ठं ते सम्प्रवक्ष्यामि तन्निबोध नराधिप।
भृगुर्नभो विवस्वांश्च सुधामा विरजास्तथा॥ ३०
अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तैते वै महर्षयः।
चाक्षुषस्यान्तरे तात मनोर्देवानिमाञ्छृणु॥ ३१
आद्याः प्रभूता ऋभवः पृथग्भावा दिवौकसः।
लेखाश्च नाम राजेन्द्र पञ्च देवगणाः स्मृताः।
ऋषेरङ्गिरसः पुत्रा महात्मानो महौजसः॥ ३२
नाड्वलेया महाराज दश पुत्राश्च विश्रुताः।
ऊरुप्रभृतयो राजन् षष्ठं मन्वन्तरं स्मृतम्॥ ३३
अत्रिर्वसिष्ठो भगवान् कश्यपश्च महानृषिः।
गौतमोऽथ भरद्वाजो विश्वामित्रस्तथैव च॥ ३४
तथैव पुत्रो भगवानृचीकस्य महात्मनः।
सप्तमो जमदग्निश्च ऋषयः साम्प्रतं दिवि॥ ३५
साध्या रुद्राश्च विश्वे च मरुतो वसवस्तथा।
आदित्याश्चाश्विनौ चैव देवौ वैवस्वतौ स्मृतौ॥ ३६
मनोर्वैवस्वतस्यैते वर्तन्ते साम्प्रतेऽन्तरे।
इक्ष्वाकुप्रमुखाश्चैव दश पुत्रा महात्मनः॥ ३७
एतेषां कीर्तितानां तु महर्षीणां महौजसाम्।
राजन् पुत्राश्च पौत्राश्च दिक्षु सर्वासु भारत॥ ३८
मन्वन्तरेषु सर्वेषु प्राग्दिशः सप्तसप्तकाः।
स्थिता लोकव्यवस्थार्थं लोकसंरक्षणाय च॥ ३९
मन्वन्तरे व्यतिक्रान्ते चत्वारः सप्तका गणाः।
कृत्वा कर्म दिवं यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम्॥ ४०

इन सबका वायुने वर्णन किया है। महाराज! अब पाँचवें (रैवत मन्वन्तरका वर्णन करता हूँ।) मन्वन्तरमें वेदबाहु, यदुध्र, वेदशिरा मुनि, हिरण्यरोमा, पर्जन्य, सोमपुत्र ऊर्ध्वबाहु और अत्रिपुत्र सत्यनेत्र—ये सात ऋषि थे। उस मन्वन्तरमें अभूतरजा, प्रकृति, पारिप्लव और रैभ्य नामक देवगण थे। यह सब (पञ्चम) मन्वन्तरका वर्णन है। अब मैं रैवत मनुके पुत्रोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। धृतिमान्, अव्यय, युक्त, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक, अरण्य, प्रकाश, निर्मोह, सत्यवाक् और कवि—ये रैवत मनुके पुत्र हैं। यह पञ्चम मन्वन्तरका वर्णन हुआ॥ २५—२९॥ नराधिप! अब मैं छठे (चाक्षुष मन्वन्तर)-का वर्णन करता हूँ, सुनो। तात! चाक्षुष मन्वन्तरमें भृगु, नभ, विवस्वान्, सुधामा, विरजा, अतिनामा और सहिष्णु—ये सात महर्षि थे। राजेन्द्र! अब (इस मन्वन्तरके) देवताओंका परिचय सुनो। आद्य, प्रभूत, ऋभु, पृथग्भाव और लेखा नामवाले देवताओंके पाँच गण थे, ये स्वर्गमें रहते थे। ये सब अङ्गिरा ऋषिके पुत्र थे और सभी परम तेजस्वी महात्मा थे। इनकी माताका नाम नड्वला था। महाराज! (चाक्षुष मनुके) ऊरु आदि दस प्रसिद्ध पुत्र थे। राजन्! यह छठे मन्वन्तरका वर्णन किया गया॥ ३०—३३॥ (अब सातवें मन्वन्तरका वर्णन करते हैं—) इस वर्तमान समयमें स्वर्गमें स्थित अत्रि, भगवान् वसिष्ठ, महर्षि कश्यप, गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र और सातवें महात्मा ऋचीकके पुत्र भगवान् जमदग्नि—ये सप्तर्षि हैं॥ ३४-३५॥ साध्य, रुद्र, विश्वेदेव, मरुत्, वसु, आदित्य और दोनों अश्विनीकुमार, जो कि सूर्यके पुत्र कहलाते हैं, ये सब इस वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तरके देवता हैं और इन महात्मा वैवस्वत मनुके इक्ष्वाकु आदि दस पुत्र हैं॥ ३६-३७॥ भरतवंशी राजन्! जिनकी चर्चा हुई है, इन परम तेजस्वी महर्षियोंके पुत्र और पौत्र सब दिशाओंमें (व्याप्त हैं)॥ ३८॥ सब मन्वन्तरोंमें पूर्वकथित उनचास पवन लोकोंकी व्यवस्था और रक्षा करनेके लिये स्थित रहते हैं॥ ३९॥ प्रत्येक मन्वन्तरके बीतनेपर उनमेंसे अट्ठाईस पवन अपने कर्मको (पूर्ण) करके स्वर्गमें जाकर अनामय (व्याधिरहित) ब्रह्मलोकको प्राप्त हो जाते हैं॥ ४०॥

ततोऽन्ये तपसा युक्ताः स्थानमापूरयन्त्युत।
अतीता वर्तमानाश्च क्रमेणैतेन भारत॥ ४१
एतान्युक्तानि कौरव्य सप्तातीतानि भारत।
मन्वन्तराणि षट् चापि निबोधानागतानि मे॥ ४२
सावर्णा मनवस्तात पञ्च तांश्च निबोध मे।
एको वैवस्वतस्तेषां चत्वारस्तु प्रजापतेः॥ ४३
परमेष्ठिसुतास्तात मेरुसावर्णतां गतः।
दक्षस्यैते हि दौहित्राः प्रियायास्तनया नृप।
महान्तस्तपसा युक्ता मेरुपृष्ठे महौजसः॥ ४४
रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नाम मनुः स्मृतः।
भूत्यां चोत्पादितो देव्यां भौत्यो नाम रुचेः सुतः॥ ४५
अनागताश्च सप्तैते स्मृता दिवि महर्षयः।
मनोरन्तरमासाद्य सावर्णस्य ह ताञ्छृणु॥ ४६
रामो व्यासस्तथाऽऽत्रेयो दीप्तिमानिति विश्रुतः।
भारद्वाजस्तथा द्रौणिरश्वत्थामा महाद्युतिः॥ ४७
गौतमस्यात्मजश्चैव शरद्वान् गौतमः कृपः।
कौशिको गालवश्चैव रुरुः काश्यप एव च॥ ४८
एते सप्त महात्मानो भविष्या मुनिसत्तमाः।
ब्रह्मणः सदृशाश्चैते धन्याः सप्तर्षयः स्मृताः॥ ४९
अभिजात्याथ तपसा मन्त्रव्याकरणैस्तथा।
ब्रह्मलोकप्रतिष्ठास्तु स्मृताः सप्तर्षयोऽमलाः॥ ५०
भूतभव्यभवज्ज्ञानं बुद्ध्वा चैव तु ये स्वयम्।
तपसा वै प्रसिद्धा ये संगताः प्रविचिन्तकाः॥ ५१
मन्त्रव्याकरणाद्यैश्च ऐश्वर्यात् सर्वशश्च ये।
एतान् भार्यान् द्विजो ज्ञात्वा नैष्ठिकानि च नाम च॥ ५२
सप्तैते सप्तभिश्चैव गुणैः सप्तर्षयः स्मृताः।
दीर्घायुषो मन्त्रकृत ईश्वरा दीर्घचक्षुषः॥ ५३
बुद्ध्या प्रत्यक्षधर्माणो गोत्रप्रावर्तकास्तथा।
कृतादिषु युगाख्येषु सर्वेष्वेव पुनः पुनः॥ ५४
प्रावर्तयन्ति ते वर्णानाश्रमांश्चैव सर्वशः।
सप्तर्षयो महाभागाः सत्यधर्मपरायणाः॥ ५५

भारत! तब मन्वन्तरके अन्तमें दूसरे वायु तपोबलसे उनके पदपर आरूढ़ होकर उनके स्थानको पूर्ण कर देते हैं। कौरव्य! बीते हुए और वर्तमान सात मन्वन्तरोंका वर्णन कर दिया। भरतनन्दन! अब भविष्यके छः (सात) मन्वन्तरोंका वर्णन मुझसे सुनो॥ ४१-४२॥ तात! सावर्णि मनु पाँच हैं, उनको मुझसे सुनो। उनमेंसे एक तो सूर्यके पुत्र हैं और चार प्रजापति परमेष्ठीके, ये सब दक्षके नाती हैं तथा (दक्षकन्या) प्रियाके पुत्र हैं। राजन्! मेरुपर्वतपर बड़ा भारी तप करके ये महातपस्वी मनु मेरुसावर्णि नामको प्राप्त हुए॥ ४३-४४॥ प्रजापति रुचिके पुत्र रौच्य मनु कहलाते हैं और भूतिदेवीके गर्भसे उत्पन्न रुचिके पुत्र भौत्य कहलाते हैं॥ ४५॥ अब भविष्यत् कालमें होनेवाले सावर्णि मन्वन्तरके जो सात महर्षि स्वर्गमें विराजमान हैं, उन (अष्टम मन्वन्तरके) ऋषियोंको सुनो॥ ४६॥ (परशु-) राम, व्यास, अत्रिपुत्र दीप्तिमान्, भरद्वाजगोत्री द्रोणपुत्र महातेजस्वी अश्वत्थामा, गौतमके वंशज एवं गौतम-गोत्री शरद्वान् (-के पुत्र) कृपाचार्य, कौशिकगोत्री गालव और काश्यपगोत्री रुरु॥ ४७-४८॥ ये ब्रह्माजीके समान धन्यवादके पात्र भविष्यके सात मुनिश्रेष्ठ महात्मा सप्तर्षि कहे गये हैं॥ ४९॥ ये जन्म, तप, मन्त्र और व्याकरणके प्रभावसे पवित्र सात ऋषि ब्रह्मलोकमें रहते हैं॥ ५०॥ ये ऋषि स्वयं अपने तपसे भूत, भविष्य और वर्तमान कालके सब वृत्तान्तको जानकर प्रसिद्ध हो गये हैं तथा परस्पर मिलकर परमात्मतत्त्वका विचार करते रहते हैं॥ ५१॥ ये मन्त्र, व्याकरण आदिसे तथा ऐश्वर्यके कारण भी सभी प्रकार प्रसिद्ध हैं। ब्राह्मण इन भरण करनेयोग्य ऋषियोंको तथा इनके नैष्ठिक कर्मों और नामोंको जानकर कल्याणका भागी होता है॥ ५२॥ ये सातों अपने सात गुणोंके कारण सप्तर्षि कहलाते हैं और दीर्घायु, मन्त्रद्रष्टा, सर्वसमर्थ तथा दीर्घदर्शी हैं॥ ५३॥ इन्हें अपनी बुद्धिसे धर्मके महत्त्वका प्रत्यक्ष अनुभव होता है तथा ये गोत्रप्रवर्तक (गोत्र चलानेवाले) हैं। सत्यधर्ममें परायण रहनेवाले ये महाभाग सप्तर्षि सत्ययुग आदि सभी युगोंमें सर्वत्र (ब्राह्मण आदि चारों) वर्णों और (ब्रह्मचर्य आदि चारों) आश्रमोंको बारम्बार स्वधर्ममें प्रवृत्त करते रहते हैं॥ ५४-५५॥

तेषां चैवान्वयोत्पन्ना जायन्तीह पुनः पुनः।
मन्त्रब्राह्मणकर्तारो धर्मे प्रशिथिले तथा॥ ५६
यस्माच्च वरदाः सप्त परेभ्य एव याचिताः।
तस्मान्न कालो न वयः प्रमाणमृषिभावने॥ ५७
एष सप्तर्षिकोद्देशो व्याख्यातस्ते मया नृप।
सावर्णस्य मनोः पुत्रान् भविष्याञ्छृणु सत्तम॥ ५८
वरीयांश्चावरीयांश्च सम्मतो धृतिमान् वसुः।
चरिष्णुरप्यधृष्णुश्च वाजः सुमतिरेव च।
सावर्णस्य मनोः पुत्रा भविष्या दश भारत॥ ५९
प्रथमे मेरुसावर्णे प्रवक्ष्यामि मुनीञ्छृणु।
मेधातिथिस्तु पौलस्त्यो वसुः काश्यप एव च॥ ६०
ज्योतिष्मान् भार्गवश्चैव द्युतिमानङ्गिरास्तथा।
सावनश्चैव वासिष्ठ आत्रेयो हव्यवाहनः॥ ६१
पौलहः सप्त इत्येते मुनयो रोहितेऽन्तरे।
देवतानां गणास्तत्र त्रय एव नराधिप॥ ६२
दक्षपुत्रस्य पुत्रास्ते रोहितस्य प्रजापतेः।
मनोः पुत्रो धृष्टकेतुः पञ्चहोत्रो निराकृतिः॥ ६३
पृथुः श्रवा भूरिधामा ऋचीकोऽष्टहतो गयः।
प्रथमस्य तु सावर्णेर्नव पुत्रा महौजसः॥ ६४
दशमे त्वथ पर्याये द्वितीयस्यान्तरे मनोः।
हविष्मान् पौलहश्चैव सुकृतिश्चैव भार्गवः॥ ६५
आपोमूर्तिस्तथाऽऽत्रेयो वासिष्ठश्चाष्टमः स्मृतः।
पौलस्त्यः प्रमितिश्चैव नभोगश्चैव काश्यपः।
अङ्गिरा नभसः सत्यः सप्तैते परमर्षयः॥ ६६
देवतानां गणौ द्वौ तौ ऋषिमन्त्राश्च ये स्मृताः।
मनोः सुतोत्तमौजाश्च निकुषञ्जश्च वीर्यवान्॥ ६७
शतानीको निरामित्रो वृषसेनो जयद्रथः।
भूरिद्युम्नः सुवर्चाश्च दश त्वेते मनोः सुताः॥ ६८
एकादशेऽथ पर्याये तृतीयस्यान्तरे मनोः।
तस्य सप्त ऋषींश्चापि कीर्त्यमानान् निबोध मे॥ ६९

धर्मके शिथिल होनेपर इन्हीं ऋषियोंके वंशज विद्वान् पुरुष मन्त्र और ब्राह्मण भागके प्रणेता होकर बारम्बार यहाँ धर्मोद्धारके लिये जन्म धारण करते हैं॥ ५६॥ ये सातों वर देनेवाले हैं और दूसरे पुरुष इनसे याचना करते हैं, अतएव इन ऋषियोंके सम्बन्धमें विचार करनेपर न तो इनकी उत्पत्तिका समय बताया जा सकता है और न इनकी अवस्थाका परिमाण ही॥ ५७॥ राजन्! मैंने तुमसे यह सप्तर्षियोंकी बात संक्षेपसे कह दी। सत्तम! अब सावर्णि मनुके भविष्यमें होनेवाले पुत्रोंका वर्णन सुनो॥ ५८॥ भरतवंशी राजन्! वरीयान्, अवरीयान्, सम्मत, धृतिमान्, वसु, चरिष्णु, अधृष्णु, वाज, सुमति (तथा एक और)—ये सावर्णि मनुके भविष्यमें होनेवाले दस पुत्र हैं॥ ५९॥ अब मैं प्रथम मेरुसावर्ण अर्थात् नवम मनुके समकालीन ऋषियोंका वर्णन करता हूँ, सुनिये! पुलस्त्यगोत्री मेधातिथि, कश्यपगोत्री वसु, भृगुवंशी ज्योतिष्मान्, अङ्गिरागोत्री द्युतिमान्, वसिष्ठगोत्री सावन, अत्रिपुत्र हव्यवाहन और पुलहगोत्री सप्त—रोहित* मन्वन्तरके ये सात ऋषि हैं और राजन्! उस मन्वन्तरमें देवताओंके तीन ही गण होंगे॥ ६०—६२॥ ये दक्षके पुत्र रोहित प्रजापतिके पुत्र हैं और इन प्रथम सावर्णि मनुके धृष्टकेतु, पञ्चहोत्र, निराकृति, पृथु, श्रवा, भूरिधामा, ऋचीक, अष्टहत और गय—ये नौ महाबली पुत्र होंगे॥ ६३-६४॥ दसवें और दूसरे सावर्णि मनु (दक्षसावर्णि)-के मन्वन्तरमें पुलहगोत्री हविष्मान्, भृगुवंशी सुकृति, अत्रिवंशी आपोमूर्ति, वसिष्ठपुत्र अष्टम, पुलस्त्यगोत्री प्रमिति, कश्यपगोत्री नभोग और अङ्गिरावंशी नभस्के पुत्र सत्य—ये सात परम ऋषि होंगे॥ ६५-६६॥ उस समय (दक्षिणमार्गके अभिमानी धूम आदि और उत्तरमार्गके अभिमानी अग्नि आदि ये) दो देवताओंके गण होंगे तथा ऋषियुक्त मन्त्रोंद्वारा जिन देवताओंका प्रतिपादन होता है, वे भी उस समयके देवता होंगे एवं मनुसुत, उत्तमौजा, निकुषञ्ज, वीर्यवान्, शतानीक, निरामित्र, वृषसेन, जयद्रथ, भूरिद्युम्न और सुवर्चा—ये मनुके दस पुत्र होंगे॥ ६७-६८॥ अब ग्यारहवें मनु—एवं तीसरे सावर्णि मनु (रुद्रसावर्णि)-के मन्वन्तरमें जो सात ऋषि और देवता होंगे, उनका वर्णन करता हूँ, सुनो॥ ६९॥

* मेरुसावर्णिका ही दूसरा नाम रोहित है।

हविष्मान् काश्यपश्चापि हविष्मान् यश्च भार्गवः।
तरुणश्च तथाऽऽत्रेयो वासिष्ठस्त्वनघस्तथा॥ ७०
अङ्गिराश्चोदधिष्ण्यश्च पौलस्त्यो निश्चरस्तथा।
पुलहश्चाग्नितेजाश्च भाव्याः सप्त महर्षयः॥ ७१
ब्रह्मणस्तु सुता देवा गणास्तेषां त्रयः स्मृताः।
संवर्तकः सुशर्मा च देवानीकः पुरूद्वहः॥ ७२
क्षेमधन्वा दृढायुश्च आदर्शः पण्डको मनुः।
सावर्णस्य तु पुत्रा वै तृतीयस्य नव स्मृताः॥ ७३
चतुर्थस्य तु सावर्णेर्ऋषीन् सप्त निबोध मे।
द्युतिर्वसिष्ठपुत्रश्च आत्रेयः सुतपास्तथा॥ ७४
अङ्गिरास्तपसो मूर्तिस्तपस्वी काश्यपस्तथा।
तपोऽशनश्च पौलस्त्यः पौलहश्च तपो रविः॥ ७५
भार्गवः सप्तमस्तेषां विज्ञेयस्तु तपोधृतिः।
पञ्च देवगणाः प्रोक्ता मानसा ब्रह्मणश्च ते॥ ७६
देववायुरदूरश्च देवश्रेष्ठो विदूरथः।
मित्रवान् मित्रदेवश्च मित्रसेनश्च मित्रकृत्।
मित्रबाहुः सुवर्चाश्च द्वादशस्य मनोः सुताः॥ ७७
त्रयोदशेऽथ पर्याये भाव्ये मन्वन्तरे मनोः।
अङ्गिराश्चैव धृतिमान् पौलस्त्यो हव्यपस्तु यः॥ ७८
पौलहस्तत्त्वदर्शी च भार्गवश्च निरुत्सुकः।
निष्प्रकम्पस्तथाऽऽत्रेयो निर्मोहः काश्यपस्तथा॥ ७९
सुतपाश्चैव वासिष्ठः सप्तैते तु महर्षयः।
त्रय एव गणाः प्रोक्ता देवतानां स्वयम्भुवा॥ ८०
त्रयोदशस्य पुत्रास्ते विज्ञेयास्तु रुचेः सुताः।
चित्रसेनो विचित्रश्च नयो धर्मभृतो धृतः॥ ८१
सुनेत्रः क्षत्रवृद्धिश्च सुतपा निर्भयो दृढः।
रौच्यस्यैते मनोः पुत्रा अन्तरे तु त्रयोदशे॥ ८२
चतुर्दशेऽथ पर्याये भौत्यस्यैवान्तरे मनोः।
भार्गवो ह्यतिबाहुश्च शुचिराङ्गिरसस्तथा॥ ८३
युक्तश्चैव तथाऽऽत्रेयः शुक्रो वासिष्ठ एव च।
अजितः पौलहश्चैव अन्त्याः सप्तर्षयश्च ते॥ ८४
एतेषां कल्य उत्थाय कीर्तनात् सुखमेधते।
यशश्चाप्नोति सुमहदायुष्मांश्च भवेन्नरः॥ ८५
अतीतानागतानां वै महर्षीणां सदा नरः।
देवतानां गणाः प्रोक्ताः पञ्च वै भरतर्षभ॥ ८६

कश्यपगोत्री हविष्मान्, भृगुवंशी हविष्मान्, अत्रिगोत्रोत्पन्न तरुण, वसिष्ठगोत्री अनघ, अङ्गिरागोत्री उदधिष्ण्य, पुलस्त्यगोत्री निश्चर एवं पुलहगोत्री अग्नितेजा—ये सात महर्षि होंगे। ये सब-के-सब ब्रह्माजीके (मानस) पुत्र हैं। उस मन्वन्तरमें देवताओंके तीन गण होंगे तथा इन तीसरे सावर्णि मनुके संवर्तक, सुशर्मा, देवानीक, पुरूद्वह, क्षेमधन्वा, दृढायु, आदर्श, पण्डक और मनु—ये नौ पुत्र माने गये हैं॥ ७०—७३॥ अब मैं चतुर्थ सावर्णिके (अर्थात् बारहवें मन्वन्तरके) ऋषियोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। वसिष्ठजीके पुत्र द्युति, अत्रिगोत्रमें उत्पन्न सुतपा, अङ्गिरागोत्री तपोमूर्ति, कश्यपगोत्री तपस्वी, पुलस्त्यवंशमें उत्पन्न तपोऽशन, पुलहगोत्री तपोरवि और सातवाँ भृगुवंशी तपोधृति (-को) समझना चाहिये। (इस मन्वन्तरमें) देवताओंके पाँच गण होंगे। वे सब ब्रह्माजीके संकल्पसे उत्पन्न होंगे॥ ७४—७६॥ इन बारहवें मनुके देववायु, अदूर, देवश्रेष्ठ, विदूरथ, मित्रवान्, मित्रदेव, मित्रसेन, मित्रकृत्, मित्रबाहु और सुवर्चा (—ये दस) पुत्र होंगे॥ ७७॥ फिर भविष्यके तेरहवें मनुके मन्वन्तरमें अङ्गिरागोत्री धृतिमान्, पुलस्त्यवंशी हव्यप, पुलहवंशोत्पन्न तत्त्वदर्शी, भृगुगोत्री निरुत्सुक, अत्रिगोत्री निष्प्रकम्प, कश्यपगोत्री निर्मोह और वसिष्ठगोत्री सुतपा—ये सात महर्षि होंगे और देवताओंके तीन गण होंगे, ऐसा स्वयं ब्रह्माजीने कहा है॥ ७८—८०॥ अब तेरहवें मनु रुचिके पुत्रोंको इस प्रकार जानो—चित्रसेन, विचित्र, नय, धर्मभृत, धृत, सुनेत्र, क्षत्रवृद्धि, सुतपा, निर्भय और दृढ—ये तेरहवें मन्वन्तरमें रौच्य नामक मनुके पुत्र होंगे॥ ८१-८२॥ चौदहवें भौत्य नामक मनुके मन्वन्तरमें भृगुगोत्रोत्पन्न अतिबाहु, अङ्गिरागोत्री शुचि, अङ्गिरागोत्री युक्त, अत्रिगोत्रोत्पन्न युक्त, अत्रिगोत्री शुक्र, वसिष्ठगोत्री शुक्र तथा पुलहगोत्री अजित—ये अन्तिम सप्तर्षि होंगे॥ ८३-८४॥ मनुष्य प्रातःकाल उठकर इन भूत-भविष्यत्-कालके महर्षियोंका कीर्तन करनेसे सदा सुख पाता है, साथ ही वह बड़ा भारी यश पाता है और दीर्घायु होता है। भरतर्षभ! उस समय देवताओंके पाँच गण होंगे॥ ८५-८६॥

तरङ्गभीरुर्वप्रश्च तरस्वानुग्र एव च।
अभिमानी प्रवीणश्च जिष्णुः संक्रन्दनस्तथा॥ ८७

तेजस्वी सबलश्चैव भौत्यस्यैते मनोः सुताः।
भौत्यस्यैवाधिकारे तु पूर्णं कल्पस्तु पूर्यते॥ ८८

इत्येते नामतोऽतीता मनवः कीर्तिता मया।
तैरियं पृथिवी तात समुद्रान्ता सपत्तना॥ ८९

पूर्णं युगसहस्रं तु परिपाल्या नराधिप।
प्रजाभिश्चैव तपसा संहारस्तेषु भागशः॥ ९०

भौत्य मनुके तरङ्गभीरु, वप्र, तरस्वान्, उग्र, अभिमानी, प्रवीण, जिष्णु, संक्रन्दन, तेजस्वी और सबल—ये (दस) पुत्र होंगे तथा भौत्य मनुका अधिकारकाल पूर्ण होनेपर कल्प (अर्थात् ब्रह्माजीकी आयुका एक दिन) पूरा हो जाता है॥ ८७-८८॥ यह मैंने नाम लेकर बीते हुए (वर्तमान और होनेवाले) मनुओंका वर्णन किया। नराधिप! ये (मनु) तपस्याके प्रभावसे हजार चतुर्युगी पूर्ण होनेतक नगरोंसे लेकर समुद्रतककी पृथ्वीका तथा प्रजाका सर्वदा पालन करते हैं। उक्त सभी मन्वन्तरोंमें अलग-अलग प्रजाका संहार होता है॥ ८९-९०॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि मन्वन्तरवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें मन्वन्तर-वर्णनविषयक सातवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७॥

अष्टमोऽध्यायः

चारों युगों, मन्वन्तरों और ब्रह्माजीके दिन एवं वर्षका मान

जनमेजय उवाच

मन्वन्तरस्य संख्यानं युगानां च महामते।
ब्रह्मणोऽह्नः प्रमाणं च वक्तुमर्हसि मे द्विज॥ १

वैशम्पायन उवाच

अहोरात्रं भजेत् सूर्यो मानवं लौकिकं परम्।
तामुपादाय गणनां शृणु संख्यामरिंदम॥ २

निमेषैः पञ्चदशभिः काष्ठा त्रिंशत् तु ताः कलाः।
त्रिंशत्कलो मुहूर्तस्तु त्रिंशता तैर्मनीषिणः॥ ३

अहोरात्रमिति प्राहुश्चन्द्रसूर्यगतिं नृप।
विशेषेण तु सर्वेषु अहोरात्रे च नित्यशः॥ ४

अहोरात्राः पञ्चदश पक्ष इत्यभिशब्दितः।
द्वौ पक्षौ तु स्मृतो मासो मासौ द्वावृतुरुच्यते॥ ५

अब्दं द्व्ययनमुक्तं च अयनं त्वृतुभिस्त्रिभिः।
दक्षिणं चोत्तरं चैव संख्यातत्त्वविशारदैः॥ ६

जनमेजयने कहा—परम बुद्धिमान् द्विजवर! आप मुझसे मन्वन्तरोंके युगोंकी संख्याका वर्णन कीजिये तथा ब्रह्माजीके दिनका प्रमाण भी बताइये॥ १॥

वैशम्पायनजी बोले—शत्रुदमन! सूर्य मनुष्योंके दिन और रात्रिका विभाग करते हैं। इस लौकिक गणनासे आरम्भ करके मनुसे भी परे द्विपरार्ध नामक ब्राह्म-गणनातकका वर्णन सुनो॥ २॥ राजन्! पंद्रह निमेषोंकी एक काष्ठा होती है और तीस काष्ठाओंकी एक कला होती है। तीस कलाओंका एक मुहूर्त होता है और बुद्धिमान् पुरुष तीस मुहूर्तोंको एक दिन-रात कहते हैं, जिसका निर्माण चन्द्रमा तथा सूर्यकी गतिद्वारा होता है। विशेषकर सूर्य-चन्द्रमाके उदय-अस्तसे मेरुके परिवर्ती भू-प्रदेशमें रात-दिन होता है॥ ३-४॥ पंद्रह अहोरात्र (दिन-रात)-का नाम पक्ष है और दो पक्षों—पखवाड़ोंका एक महीना माना जाता है तथा दो महीनोंकी एक ऋतु कहलाती है॥ ५॥ तीन ऋतुओंका एक अयन होता है और दो अयनोंका एक वर्ष होता है। संख्याके तत्त्वको जाननेमें चतुर पुरुषोंने उन दोनों अयनोंका नाम दक्षिणायन और उत्तरायण बताया है॥ ६॥

मानेनानेन यो मासः पक्षद्वयसमन्वितः।
पितॄणां तदहोरात्रमिति कालविदो विदुः॥ ७

कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लपक्षस्तु शर्वरी।
कृष्णपक्षं त्वहः श्राद्धं पितॄणां वर्तते नृप॥ ८

मानुषेण तु मानेन यो वै संवत्सरः स्मृतः।
देवानां तदहोरात्रं दिवा चैवोत्तरायणम्।
दक्षिणायनं स्मृता रात्रिः प्राज्ञैस्तत्त्वार्थकोविदैः॥ ९

दिव्यमब्दं दशगुणमहोरात्रं मनोः स्मृतम्।
अहोरात्रं दशगुणं मानवः पक्ष उच्यते॥ १०

पक्षो दशगुणो मासो मासैर्द्वादशभिर्गुणैः।
ऋतुर्मनूनां संप्रोक्तः प्राज्ञैस्तत्त्वार्थदर्शिभिः।
ऋतुत्रयेण त्वयनं तद्द्वयेनैव वत्सरः॥ ११

चत्वार्येव सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम्।
तावच्छती भवेत् संध्या संध्यांशश्च तथा नृप॥ १२

त्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेता स्यात् परिमाणतः।
तस्याश्च त्रिशती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः॥ १३

तथा वर्षसहस्रे द्वे द्वापरं परिकीर्तितम्।
तस्यापि द्विशती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः॥ १४

कलिर्वर्षसहस्रं च संख्यातोऽत्र मनीषिभिः।
तस्यापि शतिका संध्या संध्यांशश्चैव तद्विधः॥ १५

इस मानसे जो दो पक्षोंका (एक) मास होता है, उसे समयको जाननेवाले (चतुर पुरुष) पितरोंका (एक) दिन-रात कहते हैं॥ ७॥ कृष्णपक्ष उन पितरोंका दिन होता है और शुक्लपक्ष उनकी रात्रि होती है, इसलिये राजन्! कृष्णपक्षरूप दिनमें पितरोंका श्राद्ध होता है*॥ ८॥ मनुष्योंके मानसे जो एक वर्ष कहा गया है, वह देवताओंका एक दिन-रात होता है। तत्त्वको जाननेमें चतुर बुद्धिमान् पुरुषोंने उत्तरायणको देवताओंका दिन और दक्षिणायनको देवताओंकी रात्रि बताया है†॥ ९॥ देवताओंके दस वर्षोंका मनुका एक दिन-रात कहा है और इस दिन-रातका दसगुना मनुका एक पक्ष कहलाता है॥ १०॥ दस पक्षोंका मनुका एक मास होता है, बारह महीनोंकी एक ऋतु होती है। तत्त्वार्थदर्शी बुद्धिमानोंने तीन ऋतुओंका एक अयन माना है और दो अयनोंका एक वर्ष कहा है‡॥ ११॥ राजन्! देवताओंके चार हजार वर्षोंका एक सत्ययुग होता है, चार सौ वर्षोंकी उसकी संध्या होती है और इतना ही उसका संध्यांश होता है§॥ १२॥ तीन हजार वर्षोंके परिमाणका त्रेतायुग होता है और तीन सौ वर्षोंकी उसकी संध्या होती है तथा इतना ही उसका संध्यांश होता है॥ १३॥ इसी प्रकार दो हजार वर्षोंका द्वापरयुग कहा गया है, दो सौ वर्षोंकी उसकी संध्या होती है और इतना ही उसका संध्यांश होता है॥ १४॥ इसी गणनाके अनुसार बुद्धिमान् पुरुषोंने कलियुगको एक हजार वर्षोंवाला बताया है। सौ वर्षोंकी उसकी संध्या होती है और इतना ही उसका संध्यांश होता है॥ १५॥

* चन्द्रलोकमें रहनेवाले पितर शुक्लपक्षमें चन्द्रमासे ढके हुए सूर्यको नहीं देखते। कृष्णपक्षमें सूर्य और चन्द्रमा एक-दूसरेके सम्मुख होनेके कारण उन्हें सूर्यका दर्शन होता है, इसलिये शुक्लपक्षको पितरोंकी रात्रि और कृष्णपक्षको पितरोंका दिन कहा है। इसीलिये सम्पूर्ण कृष्णपक्षको अथवा अत्यन्त आवश्यकता होनेपर दिनका अन्त होनेके कारण अमावास्याको श्राद्ध-काल बताया है।

† तात्पर्य यह है कि मकर-संक्रान्तिसे मिथुन-संक्रान्तिके अन्ततक सूर्यके रथकी किरणोंके और अक्षांशकी किरणोंके प्रतिदिन ध्रुवकी ओर खिंचते रहनेसे उत्तरकी ओर चलनेवाला सूर्य मेरु पर्वतके शिखरपर रहनेवाले देवताओंको दीखता रहता है, अतः उत्तरायण देवताओंका दिन होता है तथा कर्क-संक्रान्तिसे लेकर धनु-संक्रान्तिके अन्ततक उन दोनों प्रकारकी किरणोंके ध्रुवको प्रतिदिन क्रमशः छोड़ते रहनेसे दक्षिणकी ओर चलता हुआ सूर्य देवताओंको नहीं दीखता। अतएव दक्षिणायन देवताओंकी रात है।

‡ अर्थात् देवताओंके बहत्तर हजार वर्षोंका मनुका एक दिन होता है।

§ युगके पहले भागका नाम संध्या और युगके अन्तिम भागका नाम संध्यांश है।

एषा द्वादशसाहस्त्री युगसंख्या प्रकीर्तिता।
दिव्येनानेन मानेन युगसंख्यां निबोध मे॥ १६
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चैव चतुर्युगी।
युगं तदेकसप्तत्या गणितं नृपसत्तम॥ १७
मन्वन्तरमिति प्रोक्तं संख्यानार्थविशारदैः।
अयनं चापि तत्प्रोक्तं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे॥ १८
मनुः प्रलीयते यत्र समाप्ते चायने प्रभोः।
ततोऽपरो मनुः कालमेतावन्तं भवत्युत॥ १९
समतीतेषु राजेन्द्र प्रोक्तः संवत्सरः स वै।
तदेव चायुतं प्रोक्तं मुनिना तत्त्वदर्शिना॥ २०
ब्रह्मणस्तदहः प्रोक्तं कल्पश्चेति स कथ्यते।
सहस्त्रयुगपर्यन्ता या निशा प्रोच्यते बुधैः॥ २१
निमज्जत्यप्सु यत्रोर्वी सशैलवनकानना।
तस्मिन् युगसहस्त्रे तु पूर्णे भरतसत्तम॥ २२
ब्राह्मे दिवसपर्यन्ते कल्पो निःशेष उच्यते।
युगानि सप्ततिस्तानि साग्राणि कथितानि ते॥ २३
कृतत्रेतानिबद्धानि मनोरन्तरमुच्यते।
चतुर्दशैते मनवः कीर्तिताः कीर्तिवर्द्धनाः॥ २४
वेदेषु सपुराणेषु सर्वेषु प्रभविष्णवः।
प्रजानां पतयो राजन् धन्यमेषां प्रकीर्तनम्॥ २५
मन्वन्तरेषु संहाराः संहारान्तेषु सम्भवाः।
न शक्यमन्तरं तेषां वक्तुं वर्षशतैरपि॥ २६
विसर्गस्य प्रजानां वै संहारस्य च भारत।
मन्वन्तरेषु संहाराः श्रूयन्ते भरतर्षभ॥ २७
सशेषास्तत्र तिष्ठन्ति देवाः सप्तर्षिभिः सह।
तपसा ब्रह्मचर्येण श्रुतेन च समाहिताः॥ २८

यह बारह हजार वर्षोंकी एक चतुर्युगकी संख्या कही गयी। राजन्! इस दिव्यमानसे तुम युगोंके वर्षोंकी गिनती समझ लो*॥ १६॥ सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—इन चारोंको चतुर्युगी कहते हैं। नृपश्रेष्ठ! संख्या करनेमें चतुर पुरुषोंने इकहत्तर चौकड़ी युगों (-से कुछ अधिक काल)-का नाम मन्वन्तर कहा है (क्योंकि हजारका चौदहवाँ भाग इतना ही होता है)। इसके भी दक्षिणायन और उत्तरायण—ये दो अयन कहे गये हैं†॥ १७-१८॥ उत्तरायणके पूर्ण होनेपर मनु ब्रह्ममें लीन हो जाते हैं। फिर इतने ही समयतक दूसरे मनु रहते हैं॥ १९॥ राजेन्द्र! तत्त्वदर्शी मुनिने दस हजार (अस्सी) मनुओंका ब्रह्माजीका एक वर्ष कहा है‡॥ २०॥ भरतसत्तम! ब्रह्माजीका जो दिन कहा है, उसीका नाम कल्प है और विद्वान् पुरुषोंने हजार युगोंकी ब्रह्माजीकी जो रात्रि कही है, उसमें वन और पर्वतोंसहित पृथ्वी जलमें डूब जाती है और उन हजार चतुर्युगियोंके पूर्ण होनेपर जो ब्रह्माजीका दिन आरम्भ होता है, उसकी समाप्तितकका समय एक कल्प कहलाता है। राजन्! सत्ययुग, त्रेतायुगादिसहित इकहत्तर चतुर्युगीसे कुछ अधिक कालका एक मन्वन्तर कहलाता है$। यह कीर्ति बढ़ानेवाले चौदह मनुओंका वर्णन कर दिया। सभी पुराणों और वेदोंमें इन प्रभावशाली प्रजापति मनुओंका वर्णन आता है। राजन्! इनका कीर्तन करनेसे धनकी प्राप्ति होती है॥ २१—२५॥ मन्वन्तरोंमें कितने ही संहार होते हैं और संहारके बाद कितनी ही सृष्टियाँ होती रहती हैं। इनके अन्तरको सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं बताया जा सकता॥ २६॥ भारत! भरतश्रेष्ठ! प्रायः सभी मन्वन्तरोंमें यदा-कदा प्रजाकी सृष्टि और संहारकी परम्पराका उपसंहार हो जाता है—यह बात सुननेमें आती है॥ २७॥ मन्वन्तरोंके बाद जो संहार होता है, उसमें तपस्या, ब्रह्मचर्य और शास्त्र-ज्ञानसे सम्पन्न कुछ देवता और सप्तर्षि शेष रह जाते हैं॥ २८॥

* सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुगकी एक चतुर्युगी देवताओंके बारह हजार वर्षोंकी होती है अर्थात् दिव्य दस हजार वर्षोंके ये चारों युग होते हैं। इन चारों युगोंकी संध्याएँ एक हजार दिव्य वर्षोंकी होती हैं और इनके संध्यांश भी एक हजार दिव्य वर्षोंके होते हैं।

† अर्थात् वे पहले धूमादिमार्गसे देवलोकमें पहुँचकर अपने अधिकारको भोगनेके अनन्तर उत्तरायणके मार्गसे ब्रह्मलोकमें पहुँच जाते हैं।

‡ $ इकहत्तर चतुर्युगके हिसाबसे चौदह मन्वन्तरोंमें ९९४ चतुर्युग होते हैं तथा ब्रह्माके एक दिनमें एक हजार चतुर्युग होते हैं, अतः छः चतुर्युग और बचे। छः चतुर्युगका चौदहवाँ भाग कुछ कम पाँच हजार एक सौ तीन दिव्य वर्ष होता है। इस प्रकार एक मन्वन्तरमें इकहत्तर चतुर्युगके अतिरिक्त इतने दिव्य वर्ष और अधिक होते हैं।

पूर्णे युगसहस्त्रे तु कल्पो निःशेष उच्यते।
तत्र सर्वाणि भूतानि दग्धान्यादित्यतेजसा॥ २९

ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा सहादित्यगणैर्विभुम्।
योगं योगीश्वरं देवमजं क्षेत्रज्ञमच्युतम्।
प्रविशन्ति सुरश्रेष्ठं हरिं नारायणं प्रभुम्॥ ३०

यः स्त्रष्टा सर्वभूतानां कल्पान्तेषु पुनः पुनः।
अव्यक्तः शाश्वतो देवस्तस्य सर्वमिदं जगत्॥ ३१

तत्र संवर्तते रात्रिः सकलैकार्णवे तदा।
नारायणो दधे निद्रां ब्राह्मं वर्षसहस्त्रकम्॥ ३२

तावन्तमिति कालस्य रात्रिरित्यभिशब्दिता।
निद्रायोगमनुप्राप्तो यस्यां शेते पितामहः॥ ३३

सा च रात्रिरपक्रान्ता सहस्त्रयुगपर्यया।
तदा प्रबुद्धो भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः॥ ३४

पुनः सिसृक्षया युक्तः सर्गाय विदधे मनः।
सैव स्मृतिः पुराणेयं तद्वृत्तं तद्विचेष्टितम्॥ ३५

देवस्थानानि तान्येव केवलं च विपर्ययः।
ततो दग्धानि भूतानि सर्वाण्यादित्यरश्मिभिः॥ ३६

देवर्षियक्षगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः।
जायन्ते च पुनस्तात युगे भरतसत्तम॥ ३७

यथर्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा ब्राह्मीषु रात्रिषु॥ ३८

निष्क्रमित्वा प्रजाकारः प्रजापतिरसंशयम्।
ये च वै मानवा देवाः सर्वे चैव महर्षयः॥ ३९

ते सङ्गताः शुद्धसङ्गाः शश्वद्धर्मविसर्गतः।
न भवन्ति पुनस्तात युगे भरतसत्तम॥ ४०

सहस्त्र चतुर्युगियोंके पूर्ण होनेपर कल्प पूरा हो जाता है। उस समय सब भूत द्वादश आदित्योंकी किरणोंसे भस्म हो जाते हैं॥ २९॥ और वे (द्वादश सूर्य) भी (जिसका ईंधन जल गया है, ऐसे अग्निकी भाँति अपनी आत्माका उपसंहार करके) देवताओंसहित ब्रह्माजीको आगे करके योगीश्वर योगस्वरूप, देव, अज, क्षेत्रज्ञ, अच्युत, सुरश्रेष्ठ, सर्वव्यापी, प्रभु श्रीहरि नारायणमें प्रवेश कर जाते हैं॥ ३०॥ जो प्रत्येक कल्पका अन्त होनेपर (दूसरे कल्पका आरम्भ होनेके समय) बारम्बार सब भूतोंको रचते हैं, जो अप्रकट, शाश्वत देव हैं, उन्हींका यह सम्पूर्ण जगत् है॥ ३१॥ (यह प्रलय सुषुप्तिके समय होता है, अतएव) जब सम्पूर्ण विश्व एकार्णवके जलमें निमग्न हो जाता है, तब रात्रि होती है और ब्रह्माजीके हजार वर्षोंतक नारायण निद्रा लेते हैं॥ ३२॥ जितने समयतक ब्रह्माजी योगनिद्राका आश्रय लेकर शयन करते हैं, उतना समय उनकी रात्रि कहलाती है॥ ३३॥ जब वह रात्रि सहस्त्र चतुर्युगी बीतनेपर समाप्त होती है, तब लोकोंके पितामह भगवान् ब्रह्माजी जागते हैं। फिर रचनेकी इच्छासे युक्त होकर मनमें सृष्टि करनेका विचार करते हैं। उस समय उनकी चेष्टा और स्मृति पहले कल्पकी तरह ही होती है॥ ३४-३५॥ तात! उस समय (ब्रह्माण्डमें सूर्य आदि) देवताओंके (और पिण्डमें चक्षु आदिके) स्थान भी वे ही होते हैं। परंतु (जीवोंका) विपर्यय (उलट-फेर) होता रहता है। भरतसत्तम! सूर्यकी किरणोंसे भस्म होकर (भगवान् विष्णुमें लीन हुए) सब भूत तथा देवता, ऋषि, गन्धर्व, यक्ष, पिशाच, सर्प और राक्षस भी फिर उस युगमें उत्पन्न हो जाते हैं॥ ३६-३७॥ जैसे (ग्रीष्म-शीत आदि) ऋतुओंके चिह्न उन ऋतुओंके आनेपर प्रकट होने लगते हैं, इसी प्रकार ब्रह्माजीकी रात्रियोंके बीतनेपर (पूर्व कल्पके समान) अनेक रूपोंवाले प्राणी (फिर) दीखने लगते हैं॥ ३८॥ तात! प्रजाओंको रचनेवाले प्रजापति (उस समय नारायणमेंसे) निकलकर (फिर भूतोंको रचने लगते हैं।) जो-जो मनुष्य, देवता और महर्षिगण शाश्वतधर्म अर्थात् देहादिमें आत्मबुद्धिरूप स्वाभाविक दोषोंको त्यागकर शुद्ध ब्रह्ममें पहुँचकर उसमें लीन हो जाते हैं, भरतसत्तम! वे फिर (दूसरे) कल्पमें उत्पन्न नहीं होते॥ ३९-४०॥

तत्सर्वं क्रमयोगेन कालसंख्याविभागवित्।
सहस्त्रयुगसंख्यानं कृत्वा दिवसमीश्वरः॥ ४१
रात्रिं युगसहस्त्रान्तां कृत्वा च भगवान् विभुः।
संहरत्यथ भूतानि सृजते च पुनः पुनः॥ ४२
व्यक्ताव्यक्तो महादेवो हरिर्नारायणः प्रभुः।
तस्य ते कीर्तयिष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य ह॥ ४३
विसर्गं भरतश्रेष्ठ साम्प्रतस्य महाद्युते।
वृष्णिवंशप्रसङ्गेन कथ्यमानं पुरातनम्॥ ४४
यत्रोत्पन्नो महात्मा स हरिर्वृष्णिकुले प्रभुः।
सर्वासुरविनाशाय सर्वलोकहिताय च॥ ४५

कालकी संख्याका विभाग करनेमें चतुर वे सर्वसमर्थ भगवान् परमात्मा क्रमानुसार सहस्र युगोंकी संख्यावाले दिन और (इसी प्रकार) सहस्र चतुर्युगियोंकी रात्रिको बनाकर प्राणियोंकी बारम्बार रचना और संहार करते रहते हैं॥ ४१-४२॥ महादेव श्रीहरिनारायण प्रभु ही स्थूल-सूक्ष्म-रूप (-से सर्वत्र विराजमान) हैं। महाद्युते! वर्तमान वैवस्वत मनु भी उनके ही अंश हैं। वृष्णिवंशके प्रसङ्गसे मैं उनकी पुरातन सृष्टिका वर्णन करूँगा। भरतश्रेष्ठ! वे परमात्मा और प्रभु श्रीहरि सारे असुरोंका विनाश तथा सम्पूर्ण लोकोंका कल्याण करनेके लिये इसी वृष्णिवंशमें उत्पन्न हुए थे॥ ४३—४५॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि मन्वन्तरगणनायामष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें मन्वन्तरगणनाविषयक आठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८॥

नवमोऽध्यायः

वैवस्वत मनु, यम, यमी (यमुना), अश्विनीकुमारों एवं शनैश्चरकी उत्पत्ति

वैशम्पायन उवाच

विवस्वान् कश्यपाज्जज्ञे दाक्षायण्यामरिंदम।
तस्य भार्याभवत् संज्ञा त्वाष्ट्री देवी विवस्वतः॥ १
सुरेणुरिति विख्याता त्रिषु लोकेषु भाविनी।
सा वै भार्या भगवती मार्तण्डस्य महात्मनः॥ २
भर्तृरूपेण नातुष्यद् रूपयौवनशालिनी।
संज्ञा नाम सुतपसा दीप्तेनेह समन्विता॥ ३
आदित्यस्य हि तद्रूपं मण्डलस्य सुतेजसा।
गात्रेषु परिदग्धं वै नातिकान्तमिवाभवत्॥ ४
न खल्वयं मृतोऽण्डस्थ इति स्नेहादभाषत।
अज्ञानात् कश्यपस्तस्मान्मार्तण्ड इति चोच्यते॥ ५
तेजस्त्वभ्यधिकं तात नित्यमेव विवस्वतः।
येनातितापयामास त्रीँल्लोकान् कश्यपात्मजः॥ ६

वैशम्पायनजी कहते हैं—शत्रुदमन! कश्यपजीसे दक्षकी पुत्रीमें विवस्वान् उत्पन्न हुए और त्वष्टाकी पुत्री संज्ञादेवी उन विवस्वान् (सूर्य)-की भार्या हुई॥ १॥ महात्मा मार्तण्डकी वह पवित्र अन्तःकरणवाली भार्या भगवती संज्ञा तीनों लोकोंमें सुरेणुके नामसे (भी) प्रसिद्ध है॥ २॥ वह रूपयौवनशालिनी संज्ञा अपने पति सूर्यदेवके मण्डलके तीव्र तप, तेज एवं दीप्तिके कारण प्रसन्न नहीं रहती थी॥ ३॥ उस संज्ञाका रूप सूर्यमण्डलके तेजसे अङ्गोंके संतप्त होनेके कारण (झुलस-सा गया। अतएव सूर्य उसको) बहुत अच्छे नहीं लगते थे॥ ४॥ (अदितिके) अज्ञानमें पड़नेपर कश्यपजीने स्नेहपूर्वक कहा था कि यह मरा नहीं है, किंतु अण्ड (गर्भ)-में स्थित है, इसलिये तबसे सूर्य 'मार्तण्ड' कहे जाते हैं*॥ ५॥ तात! (कश्यपके माहात्म्यके कारण जीवित हुए) विवस्वान्‌में सर्वदा अधिक तेज रहता है। उसी तेजसे कश्यपजीके पुत्र सूर्य तीनों लोकोंको तपाते रहते हैं॥ ६॥

* जब सूर्य अदितिके गर्भमें थे, उस समय बुध उनके पास भिक्षा माँगनेके लिये आये; परंतु अदिति गर्भके बोझके कारण शीघ्रतासे चलकर भिक्षा न दे सकी, तब बुधने अदितिको शाप दे दिया कि तेरा गर्भ मृत हो जाय। यह सुनकर अदिति व्याकुल हो गयी, तब कश्यपजीने अपनी शक्तिसे बुधके शापको दूर कर दिया और कहा कि यह वास्तवमें मृत नहीं हुआ, अण्ड (गर्भ)-के भीतर वर्तमान है। अदितिके (मेरा गर्भ मृत हो गया) इस विपरीत ज्ञानके कारण ही सूर्य 'मार्तण्ड' कहलाते हैं।

त्रीण्यपत्यानि कौरव्य संज्ञायां तपतां वरः।
आदित्यो जनयामास कन्यां द्वौ च प्रजापती॥ ७

मनुर्वैवस्वतः पूर्वं श्राद्धदेवः प्रजापतिः।
यमश्च यमुना चैव यमजौ सम्बभूवतुः॥ ८

सा विवर्णं तु तद्रूपं दृष्ट्वा संज्ञा विवस्वतः।
असहन्ती च स्वां छायां सवर्णां निर्ममे ततः॥ ९

मायामयी तु सा संज्ञा तस्याश्छाया समुत्थिता।
प्राञ्जलिः प्रणता भूत्वा छाया संज्ञां नरेश्वर॥ १०

उवाच किं मया कार्यं कथयस्व शुचिस्मिते।
स्थितास्मि तव निर्देशे शाधि मां वरवर्णिनि॥ ११

संज्ञोवाच

अहं यास्यामि भद्रं ते स्वमेव भवनं पितुः।
त्वयेह भवने मह्यं वस्तव्यं निर्विकारया॥ १२
इमौ च बालकौ मह्यं कन्या चेयं सुमध्यमा।
सम्भाव्यास्ते न चाख्येयमिदं भगवते क्वचित्॥ १३

छायोवाच

आ कचग्रहणाद् देवि आ शापान्नैव कर्हिचित्।
आख्यास्यामि मतं तुभ्यं गच्छ देवि यथासुखम्॥ १४

वैशम्पायन उवाच

समादिश्य सवर्णां तां तथेत्युक्ता च सा तया।
त्वष्टुः समीपमगमद् व्रीडितेव तपस्विनी॥ १५
पितुः समीपगा सा तु पित्रा निर्भर्त्सिता तदा।
भर्तुः समीपं गच्छेति नियुक्ता च पुनः पुनः॥ १६
अगच्छद् वडवा भूत्वाऽऽच्छाद्य रूपमनिन्दिता।
कुरूनथोत्तरान् गत्वा तृणान्येव चचार ह॥ १७
द्वितीयायां तु संज्ञायां संज्ञेयमिति चिन्तयन्।
आदित्यो जनयामास पुत्रमात्मसमं तदा॥ १८
पूर्वजस्य मनोस्तात सदृशोऽयमिति प्रभुः।
सवर्णत्वान्मनोर्भूयः सावर्ण इति चोक्तवान्॥ १९

कुरुवंशी राजन्! तपनेवालोंमें श्रेष्ठ आदित्यने संज्ञाके गर्भसे दो प्रजापति और एक कन्या—इन तीन संतानोंको उत्पन्न किया॥ ७॥ उनमें एक प्रजापति तो विवस्वान् (सूर्य)-के पुत्र वैवस्वत मनु थे और दूसरे प्रजापति श्राद्धदेव यम थे। इस तरह यम तथा यमुना नामक दो जुड़वीं संतान उत्पन्न हुई थी॥ ८॥ तदनन्तर संज्ञाने सूर्यके कठिनतासे सहने योग्य तेजस्वी रूपको देखकर उनके तेजको न सह सकनेके कारण अपनी छायाको ही अपने समान नाम और रूपवाली बनाकर तैयार कर दिया*॥ ९॥ वह मायामयी संज्ञा संज्ञाकी छायासे उत्पन्न हुई थी। नरेश्वर! वह छाया संज्ञाको प्रणामकर हाथ जोड़कर बोली—'शुचिस्मिते! बताओ, मुझे क्या करना चाहिये? श्रेष्ठ अङ्गोंवाली! मैं तुम्हारी आज्ञाका पालन करूँगी, तुम मुझे आज्ञा दो'॥ १०-११॥

संज्ञाने कहा—तुम्हारा कल्याण हो! मैं अब अपने पिताके घर जा रही हूँ, तुम मेरे इस घरमें शान्त होकर रहो। ये मेरे दोनों पुत्र हैं और यह एक सुमध्यमा (सुन्दर कटिवाली) कन्या है। इनका तू ध्यान रखना और इस रहस्यको भगवान् सूर्यसे कभी न बतलाना॥ १२-१३॥

छायाने कहा—देवि! मेरे बाल पकड़े जाने तथा शाप देनेकी नौबत आनेके पूर्व मैं यह बात किसी प्रकार भी न कहूँगी। आप सुखपूर्वक (अपने पिताके यहाँ) जायँ॥ १४॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—अपने समान नाम-रूपवाली छायाको आज्ञा देकर और उससे 'तथास्तु' कहे जानेपर वह तपस्विनी लज्जित-सी होती हुई अपने पिता त्वष्टाके यहाँ चली गयी। पिताके पास पहुँचनेपर उसके पिताने उसे बड़े जोरोंसे डाँटा तथा उससे बार-बार पतिके पास ही जानेके लिये कहा। तब निन्दित कर्मोंसे सदा दूर रहनेवाली वह संज्ञा अपने रूपको बदलकर घोड़ीका रूप धारण करके उत्तरकुरुके देशोंमें जाकर घास चरने लगी॥ १५—१७॥ उस दूसरी संज्ञाको भी संज्ञा ही समझते हुए सूर्य देवताने उसके गर्भसे अपने ही समान पुत्र उत्पन्न किया॥ १८॥ तात! ये अपने बड़े भाई मनुके समान वर्ण तथा शक्तिवाले थे, अतएव सावर्ण कहलाये॥ १९॥

* संज्ञाके समान नाम और वर्णवाली होनेसे छायाका नाम सवर्णा भी है। इसीके पुत्र सावर्णि मनु हैं।

मनुरेवाभवन्नाम्ना सावर्ण इति चोच्यते।
द्वितीयो यः सुतस्तस्याः स विज्ञेयः शनैश्चरः॥ २०

संज्ञा तु पार्थिवी तात स्वस्य पुत्रस्य वै तदा।
चकाराभ्यधिकं स्नेहं न तथा पूर्वजेषु वै॥ २१

मनुस्तस्याक्षमत्तत्तु यमस्तस्या न चक्षमे।
तां स रोषाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात्।
पदा संतर्जयामास संज्ञां वैवस्वतो यमः॥ २२

तं शशाप ततः क्रोधात् सावर्णजननी नृप।
चरणः पततामेष तवेति भृशदुःखिता॥ २३

यमस्तु तत् पितुः सर्वं प्राञ्जलिः प्रत्यवेदयत्।
भृशं शापभयोद्विग्नः संज्ञावाक्यप्रतोदितः॥ २४

शापोऽयं विनिवर्तेत प्रोवाच पितरं तदा।
मात्रा स्नेहेन सर्वेषु वर्तितव्यं सुतेषु वै॥ २५

सेयमस्मानपाहाय यवीयांसं बुभूषति।
तस्यां मयोद्यतः पादो न तु देहे निपातितः॥ २६
बाल्याद्वा यदि वा मोहात् तद्भवान् क्षन्तुमर्हति।
यस्मात् ते पूजनीयाहं लङ्घितास्मि त्वया सुत॥ २७
तस्मात् तवैष चरणः पतिष्यति न संशयः।
अपत्यं दुरपत्यं स्यान्नाम्बा कुजननी भवेत्॥ २८

शप्तोऽहमस्मि लोकेश जनन्या तपतां वर।
तव प्रसादाच्चरणो न पतेन्मम गोपते॥ २९

विवस्वानुवाच

असंशयं पुत्र महद् भविष्यत्यत्र कारणम्।
येन त्वामाविशत् क्रोधो धर्मज्ञं सत्यवादिनम्॥ ३०
न शक्यमन्यथा कर्तुं मया मातुर्वचस्तव।
कृमयो मांसमादाय यास्यन्ति धरणीतलम्॥ ३१
तव पादान्महाप्राज्ञ ततस्त्वं प्राप्स्यसे सुखम्।
कृतमेवं वचस्तथ्यं मातुस्तव भविष्यति॥ ३२
शापस्य परिहारेण त्वं च त्रातो भविष्यसि।
आदित्योऽथाब्रवीत् संज्ञां किमर्थं तनयेषु वै॥ ३३
तुल्येष्वभ्यधिकः स्नेहः क्रियतेऽति पुनः पुनः।
सा तत्परिहसन्ती तु नाचचक्षे विवस्वते॥ ३४

वे ही मनु हुए, जिनका नाम सावर्ण मनु हैं। उस (छाया)-से जो दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ, उनको तुम शनैश्चर समझो॥ २०॥ वह पार्थिवी* संज्ञा अपने पुत्रसे तो अधिक स्नेह करती थी, परंतु वैसा स्नेह उनसे पहलेकी संतानोंसे नहीं करती थी। मनुने तो इस बातको सह लिया, परंतु यम इसे न सह सके। वे वैवस्वत यम बालस्वभाव एवं रोषके कारण तथा होनहार (भावी)-के वशीभूत हो संज्ञाको पैर दिखाकर डाँटने लगे॥ २१-२२॥ राजन्! इसपर सावर्णकी माताने अति दुःखित हो कोपमें भरकर उन्हें शाप दिया कि 'तुम्हारा यह चरण गिर जाय'॥ २३॥ छाया-संज्ञाके उस वाक्यसे पीड़ित और शापके भयसे अत्यन्त व्याकुल होकर यमने हाथ जोड़कर पितासे वह सब बात कह दी॥ २४॥ वे पितासे बोले—'मुझे यह शाप न लगे। (देखिये) माताको तो सब पुत्रोंके प्रति समानरूपसे स्नेहपूर्वक व्यवहार करना चाहिये॥ २५॥ पर यह हम सबको छोड़कर सबसे छोटेसे ही स्नेहका व्यवहार करती है। सो मैंने उसके ऊपर पैर उठाया ही था, शरीरपर मारा नहीं था। मैंने यह काम लड़कपनसे किया हो अथवा मोहवश, परंतु आप मुझे क्षमा कर दें'। (संज्ञाने कहा—) 'बेटा! मैं तुम्हारी पूजनीया हूँ तो भी तुमने मेरा तिरस्कार किया है, अतः तुम्हारा यह पैर निःसंदेह गिर जायगा।' संतान तो कुसंतान हो सकती है, परंतु माता कुमाता नहीं हो सकती॥ २६—२८॥ 'लोकेश्वर! माताने मुझे शाप दे दिया है, परंतु तपनेवालोंमें श्रेष्ठ गोपते! आपकी कृपासे मेरा पैर न गिरे (ऐसी कृपा कीजिये)'॥ २९॥

सूर्यने कहा—पुत्र! तुम धर्मज्ञ और सत्यवादी हो, तुमको जो क्रोध चढ़ आया इसमें निःसंदेह कोई बड़ा भारी कारण होगा॥ ३०॥ मैं तुम्हारी माताके वचनको (सर्वथा तो) लौटा नहीं सकता। (पर) महाप्राज्ञ! कीड़े तुम्हारे चरणमेंसे मांस लेकर पृथ्वीतलपर चले जायँगे, तब तुम्हें सुख मिलेगा। इस प्रकार तुम्हारी माताका कहा हुआ वचन (भी) सत्य हो जायगा और शापका परिहार होनेसे तुम्हारी भी रक्षा हो जायगी। फिर सूर्यने संज्ञासे कहा—'सभी पुत्र बराबर हैं तो भी तू (किसीसे कम और किसीसे) अधिक स्नेह क्यों करती है।' सूर्यने यह बात बार-बार कही, परंतु वह हँसती ही रह गयी और उसने सूर्यसे कुछ भी न कहा॥ ३१—३४॥

* संज्ञाकी छायाके पृथ्वीमें पड़नेके कारण वह पृथ्वीसे उत्पन्न हुई, अतएव 'पार्थिवी' कहलाती थी।

आत्मानं सुसमाधाय योगात् तथ्यमपश्यत।
तां शप्तुकामो भगवान् नाशाय कुरुनन्दन॥ ३५

मूर्धजेषु च जग्राह समयेऽतिगतेऽपि च।
सा तत् सर्वं यथावृत्तमाचचक्षे विवस्वते॥ ३६

विवस्वानथ तच्छ्रुत्वा क्रुद्धस्त्वष्टारमभ्यगात्।
त्वष्टा तु तं यथा न्यायमर्चयित्वा विभावसुम्।
निर्दग्धुकामं रोषेण सान्त्वयामास वै तदा॥ ३७

त्वष्टोवाच

तवातितेजसाविष्टमिदं रूपं न शोभते।
असहन्ती च तत् संज्ञा वने चरति शाद्वले॥ ३८
द्रष्टा हि तां भवानद्य स्वां भार्यां शुभचारिणीम्।
नित्यं तपस्यभिरतां वडवारूपधारिणीम्॥ ३९
पर्णाहारां कृशां दीनां जटिलां ब्रह्मचारिणीम्।
हस्तिहस्तपरिक्लिष्टां व्याकुलां पद्मिनीमिव।
श्लाघ्यां योगबलोपेतां योगमास्थाय गोपते॥ ४०
अनुकूलं तु देवेश यदि स्यान्मम तन्मतम्।
रूपं निर्वर्तयाम्यद्य तव कान्तमरिंदम॥ ४१
रूपं विवस्वतश्चासीत् तिर्यगूर्ध्वसमं तु वै।
तेनासौ सम्भृतो देवरूपेण तु विभावसुः॥ ४२
तस्मात् त्वष्टुः स वै वाक्यं बहु मेने प्रजापतिः।
समनुज्ञातवांश्चैव त्वष्टारं रूपसिद्धये॥ ४३
ततोऽभ्युपगमात् त्वष्टा मार्तण्डस्य विवस्वतः।
भ्रमिमारोप्य तत् तेजः शातयामास भारत॥ ४४
ततो निर्भासितं रूपं तेजसा संहृतेन वै।
कान्तात् कान्ततरं द्रष्टुमधिकं शुशुभे तदा॥ ४५
मुखे निर्वर्तितं रूपं तस्य देवस्य गोपतेः।
ततः प्रभृति देवस्य मुखमासीत् तु लोहितम्।
मुखरागं तु यत्पूर्वं मार्तण्डस्य मुखच्युतम्॥ ४६
आदित्या द्वादशैवेह सम्भूता मुखसम्भवाः।
धातार्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा॥ ४७
इन्द्रो विवस्वान् पूषा च पर्जन्यो दशमस्तथा।
ततस्त्वष्टा ततो विष्णुरजघन्यो जघन्यजः॥ ४८

कुरुनन्दन! भगवान् सूर्यने अपने चित्तको एकाग्र करके योगके द्वारा सत्य बात जान ली और शापद्वारा उसका विनाश करनेके लिये उसके केश पकड़ लिये। तब अपनी शपथके उतर जानेपर छायाने सूर्यनारायणसे सारी बात ज्यों-की-त्यों बतला दी॥ ३५-३६॥ सूर्यनारायण इस बातको सुनते ही क्रोधमें भरकर त्वष्टाके पास पहुँचे। त्वष्टाने विधिपूर्वक उनकी पूजा करके जब देखा कि ये तो रोषसे मुझे भस्म ही करना चाहते हैं, तब उन्होंने सूर्यनारायणको इस प्रकार शान्त करना—समझाना आरम्भ किया॥ ३७॥

त्वष्टाने कहा—आदित्य! आपका यह अतितेजस्वी रूप अच्छा नहीं लगता। इसको न सह सकनेके कारण ही संज्ञा हरी घासवाले वनमें (हरी घासोंको) चर रही है॥ ३८॥ किरणोंके स्वामी! आज आप हाथीके सूँड़से खींचे जानेके कारण पद्मिनीके समान व्याकुल हुई, शुद्ध आचरणवाली और योगके बलसे सम्पन्न अतएव योगसे घोड़ीका रूप धारण करके सदा तप करती हुई, पत्तोंका आहार करनेवाली, दुबली, दीन, जटा-धारिणी और ब्रह्मचारिणी अपनी उस प्रशंसनीया भार्याको देखेंगे॥ ३९-४०॥ देवेश! यदि आपको मेरी बात ठीक लगे तो शत्रुदमन! मैं आज आपके रूपको मनोहर बना दूँ॥ ४१॥ पहले सूर्यका रूप तिरछा, ऊँचा और सब ओरसे एक-सा था। उस रूपसे सम्पन्न होनेके कारण ही वे विभावसु कहे जाते हैं॥ ४२॥ इसलिये उन प्रजापति सूर्यनारायणने त्वष्टाकी बातको बहुत अच्छा समझा और उन्होंने अपना रूप ठीक करनेके लिये त्वष्टाको अनुमति दे दी॥ ४३॥ भारत! तब त्वष्टाने मार्तण्ड (सूर्य)-के समीप जाकर उनको सानपर चढ़ाकर उनके तेजको खरादना आरम्भ कर दिया॥ ४४॥ इस प्रकार तेजके छिल जानेसे उनका रूप खिल उठा और उनका रूप रम्यातिरम्य होकर अधिक सुशोभित होने लगा॥ ४५॥ तबसे किरणोंके स्वामी भगवान् सूर्यके मुखका रूप बदल गया। उस समयसे उनका मुख रक्तवर्णका हो गया। उन मार्तण्डके मुखसे जो मुखराग छूटा था, उससे बारह आदित्य उत्पन्न हुए। उनके मुखसे धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, दसवें पर्जन्य, त्वष्टा, बारहवें विष्णु उत्पन्न हुए, जो अन्तमें प्रकट होनेके कारण सबसे छोटे होकर भी गुणोंमें सर्वश्रेष्ठ थे॥ ४६—४८॥

हर्षं लेभे ततो देवो दृष्ट्वाऽऽदित्यान् स्वदेहजान्।
गन्धैः पुष्पैरलंकारैर्भास्वता मुकुटेन च॥ ४९
एवं सम्पूजयामास त्वष्टा वाक्यमुवाच ह।
गच्छ देव निजां भार्यां कुरूंश्चरति सोत्तरान्॥ ५०
वडवारूपमास्थाय वने चरति शाद्वले।
स तथा रूपमास्थाय स्वभार्यारूपलीलया॥ ५१
ददर्श योगमास्थाय स्वां भार्यां वडवां ततः।
अधृष्यां सर्वभूतानां तेजसा नियमेन च॥ ५२
वडवावपुषा राजंश्चरन्तीमकुतोभयाम्।
सोऽश्वरूपेण भगवांस्तां मुखे समभावयत्॥ ५३
मैथुनाय विचेष्टन्ती परपुंसोपशङ्कया।
सा तन्निरवमच्छुक्रं नासिकायां विवस्वतः॥ ५४
देवौ तस्यामजायेतामश्विनौ भिषजां वरौ।
नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनाविति॥ ५५
मार्तण्डस्यात्मजावेतावष्टमस्य प्रजापतेः।
संज्ञायां जनयामास वडवायां स भारत।
तां तु रूपेण कान्तेन दर्शयामास भास्करः॥ ५६
सा च दृष्ट्वैव भर्तारं तुतोष जनमेजय।
यमस्तु कर्मणा तेन भृशं पीडितमानसः॥ ५७
धर्मेण रञ्जयामास धर्मराज इव प्रजाः।
स लेभे कर्मणा तेन परमेण महाद्युतिः॥ ५८
पितॄणामाधिपत्यं च लोकपालत्वमेव च।
मनुः प्रजापतिस्त्वासीत् सावर्णः स तपोधनः॥ ५९
भाव्यः सोऽनागते काले मनुः सावर्णिकेऽन्तरे।
मेरुपृष्ठे तपो घोरमद्यापि चरति प्रभुः॥ ६०
भ्राता शनैश्चरश्चास्य ग्रहत्वमुपलब्धवान्।
नासत्यौ यौ समाख्यातौ स्वर्वैद्यौ तौ बभूवतुः॥ ६१
सेवतोऽपि तथा राजन्नश्वानां शान्तिदोऽभवत्।
त्वष्टा तु तेजसा तेन विष्णोश्चक्रमकल्पयत्॥ ६२
तदप्रतिहतं युद्धे दानवान्तचिकीर्षया।

गन्ध, पुष्प, अलंकार और प्रकाशमान मुकुटोंसे सुशोभित अपने शरीरसे उत्पन्न हुए उन आदित्योंको देखकर भगवान् सूर्य बड़े प्रसन्न हुए॥ ४९॥ इस प्रकार सूर्यनारायणका पूजन कर त्वष्टाने उनसे कहा—'देव! अब आप अपनी पत्नीके पास जाइये। वह उत्तर कुरु (देशों)-में भ्रमण कर रही है और हरी घाससे भरे हुए वनमें घोड़ीका रूप धारण करके विचर रही है'॥ ५०½॥ तब सूर्यनारायणने भी अपनी पत्नीके रूपके अनुसार घोड़ेके समान विचरण करनेके लिये घोड़ेका ही रूप धारण कर लिया। उस समय सूर्यने ध्यानसे देखा तो उन्हें तेज और नियमके कारण सब भूतोंसे अधृष्य घोड़ीका रूप धारण करके किसी ओरसे भी भयकी आशंका न कर निर्भय हो विचरती हुई अपनी भार्या (संज्ञा) दीख पड़ी। राजन्! फिर तो घोड़ेके रूपमें भगवान् सूर्य उसके मुखके समीप पहुँचे। पर वह पर-पुरुषकी आशंकासे मैथुनके प्रतिकूल चेष्टा करने लगी और सूर्यके वीर्यको उसने अपनी नाकपरसे गिरा दिया॥ ५१—५४॥ उससे वैद्योंमें श्रेष्ठ अश्विनीकुमार नामक देवता उत्पन्न हुए। वे दोनों अश्विनीकुमार नासत्य और दस्र नामसे प्रसिद्ध हैं॥ ५५॥ भारत! ये दोनों आठवें प्रजापति मार्तण्डके पुत्र हैं। इन्हें सूर्यभगवान्ने अश्वारूपा संज्ञाके गर्भसे उत्पन्न किया था। तदनन्तर सूर्यने उसे अपने मनोहर रूपमें दर्शन दिया॥ ५६॥ जनमेजय! तब वह स्वामीको देखकर बड़ी संतुष्ट हुई। इधर यम अपने उस कर्मसे मन-ही-मन बड़े दुःखित रहते थे॥ ५७॥ अतएव वे अपने धर्मराजत्वके अनुरूप ही धर्मयुक्त आचरणसे प्रजाओंको प्रसन्न रखने लगे। उस श्रेष्ठ कर्मके कारण उन महाकान्तिमान् धर्मराजको पितरोंका आधिपत्य और लोकपालका पद मिला तथा वे तपस्याके धनी प्रजापति सावर्ण मनु हुए॥ ५८-५९॥ वे सर्वसमर्थ सावर्ण भविष्यके (आठवें) मन्वन्तरके मनु होंगे। वे आज भी सुमेरुपर्वतके शिखरपर घोर तप कर रहे हैं॥ ६०॥ इनके भाई शनैश्चर ग्रह बन गये और जिन नासत्योंका वर्णन किया है, वे स्वर्गके वैद्य बन गये॥ ६१॥ वे उपासना करनेवालेके घोड़ोंको शान्ति देते हैं। उसी तेज (-की छीलन)-से त्वष्टाने विष्णुभगवान्का (सुदर्शन) चक्र बनाया। वह दानवोंके अन्त करनेकी इच्छासे बनाया गया चक्र युद्धमें किसी प्रकार भी व्यर्थ नहीं जाता॥ ६२½॥

यवीयसी तयोर्या तु यमी कन्या यशस्विनी ॥ ६३
अभवत् सा सरिच्छ्रेष्ठा यमुना लोकभाविनी।
मनुरित्युच्यते लोके सावर्ण इति चोच्यते ॥ ६४

द्वितीयो यः सुतस्तस्य मनोर्भ्राता शनैश्चरः।
ग्रहत्वं स च लेभे वै सर्वलोकाभिपूजितम् ॥ ६५

य इदं जन्म देवानां शृणुयाद् वापि धारयेत्।
आपद्भ्यः स विमुच्येत प्राप्नुयाच्च महद् यशः ॥ ६६

उन दोनोंमें छोटी जो यमी नामकी यशस्विनी कन्या थी, वह नदियोंमें श्रेष्ठ, लोकोंको पवित्र करनेवाली यमुना हुई। मनु संसारमें मनु कहलाते हैं और सावर्ण भी कहलाते हैं॥ ६३-६४॥ उनके दूसरे पुत्र और मनुके भ्राता जो शनैश्चर हैं, उन्होंने सब लोकोंसे पूजित ग्रहका पद प्राप्त किया॥ ६५॥ जो मनुष्य देवताओंके जन्म (-की इस कथा)-को सुनता है अथवा मनमें धारण करता है, वह आपत्तियोंसे छूट जाता और बड़ा भारी यश पाता है॥ ६६॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि वैवस्वतोत्पत्तौ नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें वैवस्वत मनु (आदि)-की उत्पत्तिविषयक नवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

वैवस्वत मनुके वंशजोंका वर्णन और पुरूरवाकी उत्पत्ति

वैशम्पायन उवाच

मनोर्वैवस्वतस्यासन् पुत्रा वै नव तत्समाः।
इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्णुः शर्यातिरेव च ॥ १
नरिष्यंश्च तथा प्रांशुर्नाभागारिष्टसप्तमाः।
करूषश्च पृषध्रश्च नवैते भरतर्षभ ॥ २
अकरोत् पुत्रकामस्तु मनुरिष्टिं प्रजापतिः।
मित्रावरुणयोस्तात पूर्वमेव विशाम्पते ॥ ३
अनुत्पन्नेषु नवसु पुत्रेष्वेतेषु भारत।
तस्यां तु वर्तमानायामिष्ट्यां भरतसत्तम ॥ ४
मित्रावरुणयोरंशे मुनिराहुतिमाजुहोत्।
आहुत्यां हूयमानायां देवगन्धर्वमानुषाः ॥ ५
तुष्टिं तु परमां जग्मुर्मुनयश्च तपोधनाः।
अहोऽस्य तपसो वीर्यमहोऽस्य श्रुतमद्भुतम् ॥ ६
तत्र दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता।
दिव्यसंहनना चैव इला जज्ञे इति श्रुतिः ॥ ७
तामिलेत्येव होवाच मनुर्दण्डधरस्तदा।
अनुगच्छस्व मां भद्रे तमिला प्रत्युवाच ह।
धर्मयुक्तमिदं वाक्यं पुत्रकामं प्रजापतिम् ॥ ८

वैशम्पायनजी कहते हैं— भरतर्षभ! वैवस्वत मनुके उनके ही समान इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्णु, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, सातवें नाभागारिष्ट, करूष और पृषध्र—ये नौ पुत्र हुए॥ १-२॥ प्रजापालक तात! इन नौ पुत्रोंके उत्पन्न होनेसे पहिले प्रजापति मनुने पुत्रकी कामनासे मित्रावरुणकी इष्टि (यज्ञ) की थी। भारत! जब यह इष्टि हो रही थी, उस समय मुनिने मित्रावरुणके लिये आहुति दी। भरतश्रेष्ठ! आहुतिके सम्पन्न होनेपर देवता, गन्धर्व, मनुष्य और तपोधन मुनि परम प्रसन्न हुए (और कहने लगे—) 'अहो! इसका तपोबल आश्चर्यजनक है और इसका शास्त्रीय ज्ञान भी अद्भुत है!'॥ ३—६॥ उस यज्ञमें दिव्य वस्त्रोंको धारण किये हुए, दिव्य आभूषणोंसे विभूषित और दिव्य शरीरवाली इला नामक कन्या उत्पन्न हुई थी, ऐसी ख्याति है॥ ७॥ राजा मनुने उस कन्याको 'इला' कहकर पुकारा और कहा—'भद्रे! तू मेरे पीछे-पीछे आ।' तब पुत्रकी कामनावाले प्रजापतिको इलाने यह धर्ममय उत्तर दिया॥ ८॥

इलोवाच

मित्रावरुणयोरंशे जातास्मि वदतां वर।
तयोः सकाशं यास्यामि न मां धर्मो हतोऽवधीत्॥ ९
सैवमुक्त्वा मनुं देवं मित्रावरुणयोरिला।
गत्वान्तिकं वरारोहा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्॥ १०
अंशेऽस्मि युवयोर्जाता देवौ किं करवाणि वाम्।
मनुना चाहमुक्ता वै अनुगच्छस्व मामिति॥ ११
तां तथावादिनीं साध्वीमिलां धर्मपरायणाम्।
मित्रश्च वरुणश्चोभावूचतुर्यन्निबोध तत्॥ १२
अनेन तव धर्मेण प्रश्रयेण दमेन च।
सत्येन चैव सुश्रोणि प्रीतौ स्वो वरवर्णिनि॥ १३
आवयोस्त्वं महाभागे ख्यातिं कन्येति यास्यसि।
मनोर्वंशधरः पुत्रस्त्वमेव च भविष्यसि॥ १४
सुद्युम्न इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु शोभने।
जगत्प्रियो धर्मशीलो मनोर्वंशविवर्धनः॥ १५
निवृत्ता सा तु तच्छ्रुत्वा गच्छन्ती पितुरन्तिकम्।
बुधेनान्तरमासाद्य मैथुनायोपमन्त्रिता॥ १६
सोमपुत्राद् बुधाद् राजंस्तस्यां जज्ञे पुरूरवाः।
जनयित्वा सुतं सा तमिला सुद्युम्नतां गता॥ १७
सुद्युम्नस्य तु दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः।
उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्वश्च भारत॥ १८
उत्कलस्योत्कला राजन् विनताश्वस्य पश्चिमा।
दिक् पूर्वा भरतश्रेष्ठ गयस्य तु गया पुरी॥ १९
प्रविष्टे तु मनौ तात दिवाकरमरिंदम।
दशधा तद्दधत्क्षत्रमकरोत् पृथिवीमिमाम्॥ २०
यूपाङ्किता वसुमती यस्येयं सवनाकरा।
इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठदायादो मध्यदेशमवाप्तवान्॥ २१
कन्याभावाच्च सुद्युम्नो नैनं गुणमवाप्तवान्।
वसिष्ठवचनाच्चासीत् प्रतिष्ठाने महात्मनः॥ २२
प्रतिष्ठा धर्मराजस्य सुद्युम्नस्य कुरूद्वह।

इलाने कहा—वक्ताओंमें श्रेष्ठ! मैं धर्मकी हत्या नहीं कर सकती, अन्यथा धर्म मुझे भी मार डालेगा। मैं मित्रावरुणके अंशसे उत्पन्न हुई हूँ, अतः उनके ही पास जाऊँगी॥ ९॥ श्रेष्ठ नितम्बोंवाली इला राजा मनुसे इस प्रकार कहकर मित्रावरुणके पास गयी और दोनों हाथ जोड़कर उनसे इस प्रकार कहने लगी—॥ १०॥ 'देवताओ! मैं आप दोनोंके अंशसे उत्पन्न हुई हूँ; अतः आपलोग बताइये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ? मनुजीने मुझसे कहा है कि तू मेरे पीछे-पीछे आ'॥ ११॥ राजन्! धर्मपरायणा साध्वी इलाके इस प्रकार कहनेपर मित्र और वरुणने उससे जो कुछ कहा था, उसे सुनो॥ १२॥ 'सुन्दर कटिभागवाली सुन्दरी! तेरे इस धर्म, विनय, इन्द्रियसंयम और सत्यसे हम दोनों तुमपर बहुत प्रसन्न हैं॥ १३॥ महाभागे! तू हमारी पुत्रीरूपसे प्रसिद्ध होगी और मनुका वंशधर पुत्र भी तू ही होगी॥ १४॥ शोभने! (उस समय) तू मनुके वंशको बढ़ानेवाले, जगत्में प्रिय, धर्मशील सुद्युम्नके नामसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध होगी'॥ १५॥ इस बातको सुनकर वह अपने पिता मनुके पास वापस जा रही थी, इसी बीचमें अवसर देखकर बुधने उसे सहवासके लिये आमन्त्रित किया॥ १६॥ राजन्! चन्द्रमाके पुत्र बुधद्वारा उस इलाके गर्भसे पुरूरवा उत्पन्न हुए और उस पुत्रको उत्पन्न करके वह इला सुद्युम्न हो गयी॥ १७॥ भारत! सुद्युम्नके उत्कल, गय और विनताश्व नामक तीन परम धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुए॥ १८॥ राजन्! उत्कलकी राजधानी उत्कला (उड़ीसा) हुई। विनताश्वको पश्चिम दिशाका राज्य मिला और भरतश्रेष्ठ! गयकी राजधानी पूर्व दिशामें गया नामकी पुरी हुई॥ १९॥ तात! शत्रुसूदन! मनुके सूर्यमें प्रवेश कर जानेपर उनके इक्ष्वाकु आदि दस पुत्रोंने पृथ्वीको दस भागोंमें बाँट लिया॥ २०॥ मनुके बड़े पुत्र इक्ष्वाकुको मध्यदेशका राज्य मिला। यज्ञस्तम्भोंसे अलंकृत एवं वन और खानोंसहित यह सारी पृथ्वी इक्ष्वाकुकी ही है॥ २१॥ सुद्युम्न कन्याभावके कारण इस सौभाग्यपूर्ण पदको न पा सके। परंतु कुरूद्वह! वसिष्ठजीके वचनसे महात्मा धर्मराज सुद्युम्नको भी प्रतिष्ठानपुर (झूँसी—प्रयाग)-का राज्य मिल गया था॥ २२½॥

तत्पुरूरवसे प्रादाद् राज्यं प्राप्य महायशाः ॥ २३
सुद्युम्नः कारयामास प्रतिष्ठाने नृपक्रियाम्।

उत्कलस्य त्रयः पुत्रास्त्रिषु लोकेषु विश्रुताः।
धृष्टकश्चाम्बरीषश्च दण्डश्चेति सुतास्त्रयः ॥ २४

यश्चकार महात्मा वै दण्डकारण्यमुत्तमम्।
वनं तल्लोकविख्यातं तापसानामनुत्तमम् ॥ २५
तत्र प्रविष्टमात्रस्तु नरः पापात् प्रमुच्यते।

सुद्युम्नश्च दिवं यात ऐलमुत्पाद्य भारत ॥ २६
मानवेयो महाराज स्त्रीपुंसोर्लक्षणैर्युतः।
धृतवान् य इलेत्येव सुद्युम्नश्चातिविश्रुतः ॥ २७

नरिष्यतः शकाः पुत्रा नाभागस्य तु भारत।
अम्बरीषोऽभवत् पुत्रः पार्थिवर्षभसत्तमः ॥ २८

धृष्णोस्तु धार्ष्टकं क्षत्रं रणधृष्टं बभूव ह।
करूषस्य तु कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ॥ २९

सहस्रं क्षत्रियगणो विक्रान्तः सम्बभूव ह।
नाभागारिष्टपुत्राश्च क्षत्रिया वैश्यतां गताः ॥ ३०

प्रांशोरेकोऽभवत् पुत्रः शर्यातिरिति विश्रुतः।
नरिष्यन्तस्य दायादो राजा दण्डधरो दमः।
शर्यातेर्मिथुनं चासीदानर्तो नाम विश्रुतः ॥ ३१

पुत्रः कन्या सुकन्याख्या या पत्नी च्यवनस्य ह।
आनर्तस्य तु दायादो रेवो नाम महाद्युतिः ॥ ३२

आनर्तविषयश्चासीत् पुरी चास्य कुशस्थली।
रेवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मी नाम धार्मिकः ॥ ३३

महायशस्वी सुद्युम्नने राज्य पानेके बाद प्रतिष्ठानमें (कुछ दिनतक) राज्य किया, फिर उन्होंने अपना राज्य पुरूरवाको दे दिया। उत्कलके तीन पुत्र थे, जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध थे। उनके नाम थे—धृष्टक, अम्बरीष और दण्ड। महात्मा दण्डने दण्डकारण्य नामक वनका निर्माण किया, जो तपस्वियोंके लिये परमोत्तम (आश्रम) तथा लोकमें अत्यन्त विख्यात है। उसमें प्रवेश करते ही मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। भरतवंशी महाराज! सुद्युम्न कन्यावस्थामें ऐल (पुरूरवा)-को (और पुरुषावस्थामें उत्कल आदि अन्य तीन पुत्रोंको) उत्पन्न करके स्वर्ग चले गये। ये सुद्युम्न स्त्री तथा पुरुष दोनोंके ही लक्षणोंसे संयुक्त हुए थे। इन्होंने इलाके रूपमें रहनेपर गर्भ धारण किया था, फिर ये ही (पुरुषत्व प्राप्त होनेपर) सुद्युम्न नामसे प्रसिद्ध हो गये थे॥ २३—२७॥ भारत! (मनुके पञ्चम पुत्र) नरिष्यन्तके पुत्र शक हुए और (मनुके द्वितीय पुत्र) नाभागके पुत्र राजराजेश्वर अम्बरीष हुए॥ २८॥ (मनुके तृतीय पुत्र) धृष्णुके धार्ष्टक नामक क्षत्रिय हुए। वे रणमें ढीठ थे। (मनुके आठवें पुत्र) करूषसे कारूष नामवाले युद्धदुर्मद क्षत्रिय हुए। यह हजारों क्षत्रियोंका मण्डल परम पराक्रमी था। (मनुके सप्तम पुत्र) नाभागारिष्टके क्षत्रिय पुत्र वैश्य हो गये थे*॥ २९-३०॥ (मनुके छठे पुत्र) प्रांशुके एक पुत्र हुआ, वह शर्याति नामसे प्रसिद्ध था। (मनुके पञ्चम पुत्र) नरिष्यन्तका पुत्र दण्डधारी राजा दम हुआ। (मनुके चौथे पुत्र) शर्यातिकी दो संतान उत्पन्न हुईं; उनमें एक तो पुत्र था, जो आनर्त नामसे प्रसिद्ध हुआ और एक कन्या थी, जिसका नाम सुकन्या था। वह च्यवन ऋषिकी पत्नी हुई। आनर्तके रेव नामका महाकान्तिमान् पुत्र उत्पन्न हुआ॥ ३१-३२॥ उसका राज्य आनर्त (जहाँ आज द्वारका है) देशमें था और उसकी पुरी (राजधानी)-का नाम कुशस्थली (आजकी द्वारकापुरी) था। रेवके पुत्र रैवत हुए, इन्हींका दूसरा नाम ककुद्मी था। ये धार्मिक थे॥ ३३॥

* युद्धमें हार जानेके कारण क्षत्रिय होनेपर भी इनका नाना अपनेको वैश्य कहता था; अतः ऐसी वैश्यपुत्रीके पुत्र होनेसे ये वैश्य कहलाये। इस ग्रन्थके ग्यारहवें अध्यायके नवें श्लोककी टिप्पणीमें इसका पूर्ण समाधान है।

ज्येष्ठः पुत्रशतस्यासीद् राज्यं प्राप्य कुशस्थलीम्।
स कन्यासहितः श्रुत्वा गान्धर्वं ब्रह्मणोऽन्तिके॥ ३४

मुहूर्तभूतं देवस्य गतं बहुयुगं प्रभो।
आजगाम युवैवाथ स्वां पुरीं यादवैर्वृताम्॥ ३५

कृतां द्वारवतीं नाम्ना बहुद्वारां मनोरमाम्।
भोजवृष्ण्यन्धकैर्गुप्तां वासुदेवपुरोगमैः॥ ३६

ततः स रैवतो ज्ञात्वा यथातत्त्वमरिंदम।
कन्यां तां बलदेवाय सुव्रतां नाम रेवतीम्॥ ३७

दत्त्वा जगाम शिखरं मेरोस्तपसि संस्थितः।
रेमे रामोऽपि धर्मात्मा रेवत्या सहितः सुखी॥ ३८

(रेवके) सौ पुत्रोंमें ये सबसे ज्येष्ठ थे। कुशस्थलीका राज्य पानेके अनन्तर एक दिन ये अपनी कन्याके साथ (ब्रह्मलोकमें) गये, वहाँ ब्रह्माजीके समीप गन्धर्वोंका गीत सुनने लगे। राजन्! संगीत सुनते-सुनते ये दो घड़ी वहाँ ठहरे रहे। इतने ही समयमें मानवलोकमें अनेक युग बीत गये। तत्पश्चात् ये यादवोंसे घिरी हुई अपनी पुरीमें आये। उस समयतक इनकी युवावस्था ज्यों-की-त्यों बनी हुई थी॥ ३४-३५॥ (उस समय उस पुरीमें) बहुत-से दरवाजे बन गये थे और वासुदेव आदि भोज, वृष्णि और अन्धकवंशी उस रमणीय पुरीकी रक्षा कर रहे थे। यादवोंने उसका नाम बदलकर द्वारवती रख दिया था॥ ३६॥ शत्रुमर्दन! इन सब बातोंको यथार्थ रीतिसे जानकर राजा रैवत अपनी रेवती नामकी सुव्रता कन्याको बलदेवजीके हाथमें देकर स्वयं मेरुपर्वतके शिखरपर चले गये और वहाँ तपस्यामें लग गये। (इधर) धर्मात्मा बलरामजी भी रेवतीके साथ सुखपूर्वक विहार करने लगे॥ ३७-३८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि ऐलोत्पत्तिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पुरूरवाकी उत्पत्तिका वर्णनविषयक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०॥

एकादशोऽध्यायः

धुन्धुमारकी कथा

जनमेजय उवाच

कथं बहुयुगे काले समतीते द्विजोत्तम।
न जरा रेवतीं प्राप्ता रैवतं च ककुद्मिनम्॥ १

मेरुं गतस्य वा तस्य शार्यातेः संततिः कथम्।
स्थिता पृथिव्यामद्यापि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥ २

जनमेजयने पूछा—द्विजोत्तम! बहुत-से युगोंका समय बीत जानेपर भी रेवती और ककुद्मी रैवतको बुढ़ापा क्यों नहीं व्याप्त हुआ?॥ १॥ शर्यातिके प्रपौत्र रैवत मेरुपर्वतपर चले गये, तब भी उनकी संतान आजतक पृथिवीपर कैसे वर्तमान है? इस बातको मैं यथार्थ रीतिसे सुनना चाहता हूँ॥ २॥

वैशम्पायन उवाच

न जरा क्षुत्पिपासे वा न मृत्युर्भरतर्षभ।
ऋतुचक्रं न भवति ब्रह्मलोके सदानघ॥ ३

ककुद्मिनस्तु तं लोकं रैवतस्य गतस्य ह।
हता पुण्यजनैस्तात राक्षसैः सा कुशस्थली॥ ४

वैशम्पायनजीने उत्तर दिया—निष्पाप भरतश्रेष्ठ! ब्रह्मलोकमें मृत्यु, भूख-प्यास और बुढ़ापा नहीं होते और वहाँ ऋतुचक्र भी अपना प्रभाव नहीं दिखाता (वहाँ तो सदा एक-सी दशा रहती है)॥ ३॥ तात! जब रैवत ककुद्मी ब्रह्मलोकको चले गये, तब यक्षों और राक्षसोंने कुशस्थलीको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया॥ ४॥

तस्य भ्रातृशतं चासीद् धार्मिकस्य महात्मनः।
तद् वध्यमानं रक्षोभिर्दिशः प्राद्रवदच्युतम्॥ ५

विद्रुतस्य तु राजेन्द्र तस्य भ्रातृशतस्य वै।
तेषां तु ते भयाक्रान्ताः क्षत्रियास्तत्र तत्र ह॥ ६

अन्ववायस्तु सुमहांस्तत्र तत्र विशाम्पते।
येषामेते महाराज शार्याता इति विश्रुताः॥ ७

क्षत्रिया भरतश्रेष्ठ दिक्षु सर्वासु धार्मिकाः।
सर्वशः पर्वतगणान् प्रविष्टाः कुरुनन्दन॥ ८

नाभागारिष्टपुत्रौ द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणतां गतौ।
करूषस्य च कारूषाः क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः॥ ९

प्रांशोरेकोऽभवत् पुत्रः प्रजातिरिति नः श्रुतम्।
पृषध्रो हिंसयित्वा तु गुरोर्गां जनमेजय॥ १०

शापाच्छूद्रत्वमापन्नो नवैते परिकीर्तिताः।
वैवस्वतस्य तनया मनोर्वै भरतर्षभ॥ ११

क्षुवतश्च मनोस्तात इक्ष्वाकुरभवत् सुतः।
तस्य पुत्रशतं त्वासीदिक्ष्वाकोर्भूरिदक्षिणम्॥ १२

तेषां विकुक्षिर्ज्येष्ठस्तु विकुक्षित्वादयोधताम्।
प्राप्तः परमधर्मज्ञः सोऽयोध्याधिपतिः प्रभुः॥ १३

शकुनिप्रमुखास्तस्य पुत्राः पञ्चाशदुत्तमाः।
उत्तरापथदेशस्था रक्षितारो महीपते॥ १४

चत्वारिंशदथाष्टौ च दक्षिणस्यां तथा दिशि।
शशादप्रमुखाश्चान्ये रक्षितारो विशाम्पते॥ १५

इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षिं वै अष्टकायामथादिशत्।
मांसमानय श्राद्धार्थं मृगान् हत्वा महाबलः॥ १६

श्राद्धकर्मणि चोद्दिष्टमकृते श्राद्धकर्मणि।
भक्षयित्वा शशं तात शशादो मृगयागतः॥ १७

धर्मात्मा एवं महात्मा रैवतके सौ भाई थे। वे राक्षसोंसे हारे नहीं, परंतु राक्षसोंके बार-बार आक्रमण करनेके कारण (अनेक) दिशाओंमें भाग गये॥ ५॥ राजेन्द्र! जब उनके सौ भाई भाग गये, तब उस कुलके अन्य क्षत्रिय भी राक्षसोंके भयसे भागकर जहाँ-तहाँ बस गये॥ ६॥ प्रजानाथ! उनका बड़ा भारी वंश जहाँ-तहाँ फैल गया। महाराज! उनके वंशके ही ये धार्मिक क्षत्रिय सब दिशाओंमें शार्यात नामसे प्रसिद्ध हैं। भरतश्रेष्ठ कुरुनन्दन! वे सब क्षत्रिय चारों ओरके पर्वतोंकी कन्दराओंमें प्रविष्ट हो गये थे॥ ७-८॥ नाभाग और अरिष्टके पुत्र ये दोनों वैश्य होकर पुनः* ब्राह्मणत्वको प्राप्त हो गये। करूषके कारूष नामक युद्धदुर्मद क्षत्रिय उत्पन्न हुए॥ ९॥ हमने सुना है कि (मनुके छठे पुत्र) प्रांशुके प्रजाति नामका एक ही पुत्र उत्पन्न हुआ था। जनमेजय! गुरुकी गौको मारनेपर (गुरुके) शापसे पृषध्र शूद्रत्वको प्राप्त हो गया था। भरतर्षभ! यहाँतक वैवस्वत मनुके नौ पुत्रोंका मैंने वर्णन किया॥ १०-११॥ तात! मनुके छींकनेसे इक्ष्वाकु नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई थी। उन इक्ष्वाकुके भी सौ पुत्र उत्पन्न हुए। ये सब-के-सब बड़ी-बड़ी दक्षिणा देनेवाले थे॥ १२॥ उनमें सबसे बड़ा पुत्र विकुक्षि था। वह विकुक्षि—विशाल कोख (वक्षःस्थल)-वाला होनेसे सर्वथा अयोध्य था; अर्थात् उसके सामने कोई योद्धा ठहर नहीं सकता था। वही परम धार्मिक राजा विकुक्षि अयोध्याका स्वामी हुआ॥ १३॥ राजन्! उसके शकुनि आदि पचास उत्तम पुत्र थे, वे उत्तरापथ देशमें रहकर उस देशकी रक्षा करते थे॥ १४॥ जनेश्वर! उसके शशाद आदि अड़तालीस पुत्र दक्षिण दिशामें रहकर दक्षिण दिशाकी रक्षा करते थे॥ १५॥ महाबली इक्ष्वाकुने अष्टका श्राद्धके लिये (अपने पुत्र) विकुक्षिको आज्ञा दी कि तू मृग नामक कन्दविशेषको काटकर श्राद्धके लिये उसका गूदा ला॥ १६॥ परंतु तात! विकुक्षिने श्राद्धकर्मके लिये नियत किये हुए शश (कन्दविशेष)-को श्राद्ध पूर्ण होनेसे पहले ही खाकर उच्छिष्ट कर दिया और शिकार करके वापस लौट आया॥ १७॥

* मातृजातयः पुत्राः स्युः—'पुत्र माताकी जातिके होते हैं' इस शास्त्रीय वचनसे वैश्य-स्त्रीमें उत्पन्न होनेके कारण ये पुत्र वैश्य कहलाते थे और इस वैश्य-स्त्रीका पिता भी क्षत्रिय था, परंतु संग्राममें शत्रुओंसे हार जानेके कारण अपनेको वैश्य कहने लगा था। इस कथाका विस्तृत वर्णन मार्कण्डेयपुराणके ११३ वें अध्यायमें है।

इक्ष्वाकुणा परित्यक्तो वसिष्ठवचनात् प्रभुः।
इक्ष्वाकौ संस्थिते तात शशादः पुरमावसत्॥ १८

शशादस्य तु दायादः ककुत्स्थो नाम वीर्यवान्।
इन्द्रस्य वृषभूतस्य ककुत्स्थोऽजयतासुरान्॥ १९

पूर्वं देवासुरे युद्धे ककुत्स्थस्तेन हि स्मृतः।
अनेनास्तु ककुत्स्थस्य पृथुरानेनसः स्मृतः॥ २०

विष्टराश्वः पृथोः पुत्रस्तस्मादार्द्रस्त्वजायत।
आर्द्रस्य युवनाश्वस्तु श्रावस्तस्य तु चात्मजः॥ २१

जज्ञे श्रावस्तको राजा श्रावस्ती येन निर्मिता।
श्रावस्तस्य तु दायादो बृहदश्वो महायशाः॥ २२

कुवलाश्वः सुतस्तस्य राजा परमधार्मिकः।
यः स धुन्धुवधाद् राजा धुन्धुमारत्वमागतः॥ २३

जनमेजय उवाच

धुन्धोर्वधमहं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।
यदर्थं कुवलाश्वः सन् धुन्धुमारत्वमागतः॥ २४

वैशम्पायन उवाच

कुवलाश्वस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम्।
सर्वे विद्यासु निष्णाता बलवन्तो दुरासदाः॥ २५
बभूवुर्धार्मिकाः सर्वे यज्वानो भूरिदक्षिणाः।
कुवलाश्वं सुतं राज्ये बृहदश्वो न्ययोजयत्॥ २६
पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु वनं राजा समाविशत्।
तमुत्तङ्कोऽथ विप्रर्षिः प्रयान्तं प्रत्यवारयत्॥ २७

उत्तङ्क उवाच

भवता रक्षणं कार्यं तत् तावत् कर्तुमर्हसि।
निरुद्विग्नस्तपश्चर्तुं न हि शक्नोषि पार्थिव॥ २८

त्वया हि पृथिवी राजन् रक्ष्यमाणा महात्मना।
भविष्यति निरुद्विग्ना नारण्यं गन्तुमर्हसि॥ २९

पालने हि महान् धर्मः प्रजानामिह दृश्यते।
न तथा दृश्यतेऽरण्ये मा ते भूद् बुद्धिरीदृशी॥ ३०

उस समय इक्ष्वाकुने वसिष्ठजीके कहनेसे शशादको त्याग दिया। तात! फिर इक्ष्वाकुके मरनेपर शशाद नगरमें आया (और राज्यका स्वामी बनकर राज्य करने लगा)॥ १८॥ शशादके ककुत्स्थ नामवाला वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न हुआ, उसे पहले देवासुर-संग्राममें इन्द्रने स्मरण किया था। उस समय उसने इन्द्रको बैल बनाकर उनके ककुद् (पीठ)-पर बैठकर असुरोंको जीता था; इसलिये इसका नाम ककुत्स्थ हुआ। ककुत्स्थके अनेना नामक पुत्र हुआ और अनेनाका पुत्र पृथु हुआ॥ १९-२०॥ पृथुके विष्टराश्व और विष्टराश्वके आर्द्र नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, आर्द्रके युवनाश्व और युवनाश्वका पुत्र श्राव हुआ॥ २१॥ वह श्रावस्तक नाम धारण करके राजसिंहासनपर बैठा, उसीने श्रावस्तीपुरी बसायी। श्रावस्तका पुत्र महायशस्वी बृहदश्व हुआ॥ २२॥ उसका पुत्र परमधार्मिक राजा कुवलाश्व हुआ, धुन्धु नामक दैत्यको मारनेके कारण वह राजा 'धुन्धुमार' नामसे भी प्रसिद्ध हुआ॥ २३॥

जनमेजयने कहा—ब्रह्मन्! मैं धुन्धुके वधकी उस कथाको यथार्थ रीतिसे सुनना चाहता हूँ, जिससे कुवलाश्वका नाम धुन्धुमार पड़ गया था॥ २४॥

वैशम्पायनजी बोले—कुवलाश्वके धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ सौ पुत्र थे। वे सभी समस्त विद्याओंमें निपुण, बलवान् तथा दुर्दम्य थे॥ २५॥ वे सभी धार्मिक पुत्र यज्ञ करके बहुत-सी दक्षिणा दिया करते थे। बृहदश्वने अपने ज्येष्ठ पुत्र कुवलाश्वको राजसिंहासनपर बैठाया॥ २६॥ अपनी राज्यलक्ष्मीको पुत्रके अधीन करके राजा बृहदश्व स्वयं वनको चले। उस समय ब्रह्मर्षि उत्तङ्कने उन्हें वनमें जानेसे रोका॥ २७॥

उत्तङ्क ऋषिने कहा—राजन्! हमारी रक्षा करना आपका कर्तव्य है; अतः पहले वही कीजिये। अन्यथा आप निश्चिन्त होकर तप नहीं कर सकते॥ २८॥ राजन्! जब आप-जैसे महात्मा इस पृथ्वीकी रक्षा करेंगे, तभी इस पृथ्वीपर शान्ति होगी; अतः आपका वनमें जाना उचित नहीं है॥ २९॥ हम देखते हैं कि यहाँ रहकर प्रजाका पालन करनेसे आपको महान् पुण्य होगा। वनमें रहनेपर ऐसे पुण्यकी प्राप्ति आपको हो, यह हमें नहीं दीखता। इसलिये आप ऐसा विचार न करें॥ ३०॥

ईदृशो न हि राजेन्द्र धर्मः क्वचन दृश्यते।
प्रजानां पालने यो वै पुरा राजर्षिभिः कृतः।
रक्षितव्याः प्रजा राज्ञा तास्त्वं रक्षितुमर्हसि॥ ३१

ममाश्रमसमीपे हि समेषु मरुधन्वसु।
समुद्रो वालुकापूर्ण उज्जानक इति श्रुतः।
देवतानामवध्यश्च महाकायो महाबलः॥ ३२

अन्तर्भूमिगतस्तत्र वालुकान्तर्हितो महान्।
राक्षसस्य मधोः पुत्रो धुन्धुनामा महासुरः।
शेते लोकविनाशाय तप आस्थाय दारुणम्॥ ३३

संवत्सरस्य पर्यन्ते स निःश्वासं प्रमुञ्चति।
यदा तदा भूश्चलति सशैलवनकानना॥ ३४

तस्य निःश्वासवातेन रज उद्धूयते महत्।
आदित्यपथमावृत्य सप्ताहं भूमिकम्पनम्॥ ३५

सविस्फुलिङ्गं साङ्गारं सधूममतिदारुणम्।
तेन तात न शक्नोमि तस्मिन् स्थातुं स्वकाश्रमे॥ ३६

तं मारय महाकायं लोकानां हितकाम्यया।
लोकाः स्वस्था भवन्त्वद्य तस्मिन् विनिहतेऽसुरे॥ ३७

त्वं हि तस्य वधायैकः समर्थः पृथिवीपते।
विष्णुना च वरो दत्तो मह्यं पूर्वयुगेऽनघ॥ ३८

यस्त्वं महासुरं रौद्रं हनिष्यसि महाबलम्।
तस्य त्वं वरदानेन तेज आप्याययिष्यसि॥ ३९

न हि धुन्धुर्महातेजास्तेजसाल्पेन शक्यते।
निर्दग्धुं पृथिवीपाल स हि वर्षशतैरपि।
वीर्यं हि सुमहत्तस्य देवैरपि दुरासदम्॥ ४०

स एवमुक्तो राजर्षिरुत्तङ्केन महात्मना।
कुवलाश्वं सुतं प्रादात् तस्मै धुन्धुनिवारणे॥ ४१

बृहदश्व उवाच

भगवन् न्यस्तशस्त्रोऽहमयं तु तनयो मम।
भविष्यति द्विजश्रेष्ठ धुन्धुमारो न संशयः॥ ४२

राजेन्द्र! प्राचीन कालमें राजर्षियोंने प्रजाओंका पालन करके जैसा पुण्य-संचय किया है, वैसा पुण्य और कहीं नहीं दिखायी देता। राजाको प्रजाओंकी रक्षा करनी चाहिये; अतः आप प्रजाकी रक्षा करें॥ ३१॥ मेरे आश्रमके समीप मरुप्रदेशकी समतल भूमिमें बालूसे भरा हुआ उज्जानक नामवाला समुद्र है। वहीं एक विशालकाय महाबली राक्षस रहता है, जो देवताओंके लिये भी अवध्य है। वह महान् असुर मधु नामक राक्षसका पुत्र है। उसका नाम धुन्धु है। वह वहाँ पृथ्वीके भीतर बालूमें छिपकर सोता है और सम्पूर्ण लोकोंका संहार करनेके लिये कठोर तपस्या कर रहा है॥ ३२-३३॥ वह एक वर्ष बीतनेपर जब बड़े जोरसे साँस छोड़ता है, उस समय पर्वत और वनोंसहित सारी पृथिवी डोलने लगती है॥ ३४॥ उसके श्वासकी वायुसे बड़ी भारी धूलि उड़ती है, जो सूर्यके मार्गको भी ढँक लेती है; साथ ही एक सप्ताहतक भूकम्प होता रहता है॥ ३५॥ तात! (उस समय पृथिवीमेंसे) चिनगारियाँ, अंगारे और अत्यन्त दारुण धुएँ निकलने लगते हैं। इसलिये तात! मैं अपने आश्रममें (सुखपूर्वक) नहीं रह पाता॥ ३६॥ आप लोकोंका हित करनेकी इच्छासे उस विशाल शरीरवाले दैत्यका संहार करें, आज उस असुरके मारे जानेपर सब लोग सुखी हो जायँ॥ ३७॥ पृथिवीपते! एक आप ही उसका वध कर सकते हैं, क्योंकि निष्पाप नरेश! भगवान् विष्णुने पहले युगमें मुझे एक वर दिया था॥ ३८॥ भगवान्के उस वरदानके अनुसार जब कि (अयोध्याके राजा) आप इस महाबली भयंकर दानवका संहार करेंगे, अपने तेजको (वैष्णव तेजसे) परिपुष्ट कर लेंगे॥ ३९॥ पृथिवीपाल! महातेजस्वी धुन्धुको अल्प तेजवाला पुरुष सौ वर्षमें भी नहीं मार सकता। उसमें इतना अधिक बल है कि देवताओंके लिये भी उसे दबाना कठिन है॥ ४०॥ महात्मा उत्तङ्कने जब उन राजर्षिसे इस प्रकार कहा, तब उन्होंने धुन्धु दैत्यको नष्ट करनेके लिये अपने पुत्र कुवलाश्वको उनकी सेवामें दे दिया॥ ४१॥

बृहदश्वने कहा—भगवन्! मैंने तो शस्त्र त्याग दिये हैं, किंतु द्विजश्रेष्ठ! यह मेरा पुत्र (आपको समर्पित) है, यह अवश्य धुन्धुमार होगा॥ ४२॥

स तं व्यादिश्य तनयं राजर्षिर्धुन्धुमारणे।
जगाम पर्वतायैव तपसे संशितव्रतः॥ ४३

कुवलाश्वस्तु पुत्राणां शतेन सह पार्थिवः।
प्रायादुत्तङ्कसहितो धुन्धोस्तस्य विनिग्रहे॥ ४४

तमाविशत् तदा विष्णुर्भगवांस्तेजसा प्रभुः।
उत्तङ्कस्य नियोगाद् वै लोकस्य हितकाम्यया॥ ४५

तस्मिन् प्रयाते दुर्धर्षे दिवि शब्दो महानभूत्।
एष श्रीमानवध्योऽद्य धुन्धुमारो भविष्यति॥ ४६

दिव्यैर्माल्यैश्च तं देवाः समन्तात् समवाकिरन्।
देवदुन्दुभयश्चापि प्रणेदुर्भरतर्षभ॥ ४७

स गत्वा जयतां श्रेष्ठस्तनयैः सह वीर्यवान्।
समुद्रं खानयामास वालुकार्णवमव्ययम्॥ ४८

नारायणेन कौरव्य तेजसाऽऽप्यायितः स वै।
बभूव स महातेजा भूयो बलसमन्वितः॥ ४९

तस्य पुत्रैः खनद्भिस्तु वालुकान्तर्हितस्तदा।
धुन्धुरासादितो राजन् दिशमावृत्य पश्चिमाम्॥ ५०

मुखजेनाग्निना क्रोधाल्लोकानुद्वर्तयन्निव।
वारि सुस्राव वेगेन महोदधिरिवोदये॥ ५१

सोमस्य भरतश्रेष्ठ धारोर्मिकलिलं महत्।
तस्य पुत्रशतं दग्धं त्रिभिरूनं तु रक्षसा॥ ५२

ततः स राजा कौरव्य राक्षसं तं महाबलम्।
आससाद महातेजा धुन्धुं धुन्धुनिबर्हणः॥ ५३

तस्य वारिमयं वेगमापीय स नराधिपः।
योगी योगेन वह्निं च शमयामास वारिणा॥ ५४

निहत्य तं महाकायं बलेनोदकराक्षसम्।
उत्तङ्कं दर्शयामास कृतकर्मा नराधिपः॥ ५५

(यह कहकर) प्रशंसनीय व्रतवाले वे राजर्षि अपने पुत्रको धुन्धुका वध करनेकी आज्ञा देकर स्वयं तप करनेके लिये पर्वतपर चले गये॥ ४३॥ तब राजा कुवलाश्व अपने सौ पुत्रों और उत्तङ्कको साथमें लेकर धुन्धुको दण्ड देनेके लिये चल दिये॥ ४४॥ उस समय भगवान् विष्णु उत्तङ्क ऋषिकी प्रेरणासे लोकोंका हित करनेके लिये अपने तेजःस्वरूपसे उस राजाके शरीरमें प्रविष्ट हो गये॥ ४५॥ तब उस दुर्धर्ष राजाके प्रस्थान करनेपर आकाशसे गम्भीर वाणी सुनायी दी कि 'ये श्रीमान् राजा अवध्य हैं, आज इनके हाथसे धुन्धु अवश्य मारा जायगा'॥ ४६॥ भरतर्षभ! तदनन्तर देवताओंने अपनी दुन्दुभियाँ बजाकर उनके ऊपर चारों ओरसे दिव्य पुष्पोंकी वर्षा की॥ ४७॥ विजय पानेवालोंमें श्रेष्ठ वह वीर्यवान् राजा अपने पुत्रोंके साथ वहाँ पहुँचकर अपार रेतेसे भरे हुए समुद्रको खुदवाने लगे॥ ४८॥ कौरव्य! वे महाबली राजा भगवान् नारायणके तेजसे पुष्ट होनेके कारण और भी अधिक तेजस्वी हो गये॥ ४९॥ राजन्! धरती खोदते हुए कुवलाश्वपुत्रोंने बालूके भीतर छिपे हुए धुन्धुका पता लगा लिया। वह पश्चिम दिशाको घेरकर पड़ा था॥ ५०॥ धुन्धु अपने मुखकी आगसे सम्पूर्ण लोकोंका संहार-सा करता हुआ जलका स्रोत बहाने लगा। भरतश्रेष्ठ! जैसे चन्द्रमाके उदयकालमें समुद्रमें ज्वार आता है, उसकी उत्ताल तरङ्गें बढ़ने लगती हैं, उसी प्रकार वहाँ धारा, लहर और कीचड़से युक्त महान् जलस्रोत वेगपूर्वक बढ़ने लगा। उस राक्षसने कुवलाश्वके सौ पुत्रोंमेंसे तीनको छोड़कर शेष सबको अपनी मुखाग्निसे जलाकर भस्म कर दिया॥ ५१-५२॥ कुरुनन्दन! तब धुन्धुका संहार करनेके लिये आये हुए वे महातेजस्वी राजा उस महाबली राक्षसके सामने पहुँचे॥ ५३॥ फिर उन योगी नरेशने योगके प्रभावसे उसके जलमय वेगको पी लिया तथा जलसे अग्निको शान्त कर दिया॥ ५४॥ इस प्रकार उस विशाल शरीरवाले जल-राक्षसको बलपूर्वक मारकर राजाने अपना काम पूर्ण करके उस मारे हुए राक्षसको उत्तङ्क ऋषिको दिखाया॥ ५५॥

उत्तङ्कस्तु वरं प्रादात् तस्मै राज्ञे महात्मने।
ददौ तस्याक्षयं वित्तं शत्रुभिश्चापराजयम्॥ ५६

धर्मे रतिं च सततं स्वर्गवासं तथाक्षयम्।
पुत्राणां चाक्षयाँल्लोकान् स्वर्गे ये रक्षसा हताः ॥ ५७

उस समय उत्तङ्कने उन महात्मा राजाको वरदान दिया कि 'आपके पास अक्षय धन रहेगा तथा शत्रुओंसे आप कभी पराजित नहीं होंगे॥ ५६॥ धर्मपर आपकी श्रद्धा सर्वदा बनी रहेगी तथा आप अनन्त कालतक स्वर्गमें रहेंगे। साथ ही राक्षसने आपके जिन पुत्रोंको मार डाला है, उन्हें भी स्वर्गमें अक्षय लोक मिलेंगे'॥ ५७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि धुन्धुवधे एकादशोऽध्यायः॥ ११॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें धुन्धुवधविषयक ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११॥

द्वादशोऽध्यायः

धुन्धुमारके वंशका वर्णन और गालवकी उत्पत्ति

वैशम्पायन उवाच

तस्य पुत्रास्त्रयः शिष्टा दृढाश्वो ज्येष्ठ उच्यते।
चन्द्राश्वकपिलाश्वौ तु कुमारौ द्वौ कनीयसौ॥ १
धौन्धुमारिर्दृढाश्वस्तु हर्यश्वस्तस्य चात्मजः।
हर्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत् क्षत्रधर्मरतः सदा॥ २
संहताश्वो निकुम्भस्य पुत्रो रणविशारदः।
अकृशाश्वः कृशाश्वश्च संहताश्वसुतौ नृप॥ ३
तस्य हैमवती कन्या सतां माता दृषद्वती।
विख्याता त्रिषु लोकेषु पुत्रश्चास्याः प्रसेनजित्॥ ४
लेभे प्रसेनजिद् भार्यां गौरीं नाम पतिव्रताम्।
अभिशप्ता तु सा भर्त्रा नदी वै बाहुदाभवत्॥ ५
तस्याः पुत्रो महानासीद् युवनाश्वो महीपतिः।
मान्धाता युवनाश्वस्य त्रिलोकविजयी सुतः॥ ६
तस्य चैत्ररथी भार्या शशविन्दोः सुताभवत्।
साध्वी विन्दुमती नाम रूपेणासदृशी भुवि॥ ७
पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातॄणामयुतस्य सा।
तस्यामुत्पादयामास मान्धाता द्वौ सुतौ नृप॥ ८
पुरुकुत्सं च धर्मज्ञं मुचुकुन्दं च धार्मिकम्।
पुरुकुत्ससुतस्त्वासीत् त्रसदस्युर्महीपतिः॥ ९

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! उन (धुन्धुमार)-के तीन पुत्र बच गये थे, जिनमें दृढाश्व सबसे बड़ा था तथा चन्द्राश्व और कपिलाश्व दो छोटे थे॥ १॥ धुन्धुमारके दृढाश्व, दृढाश्वके हर्यश्व और हर्यश्वके निकुम्भ नामक पुत्र हुआ, जो सदा क्षत्रियधर्ममें तत्पर रहता था॥ २॥ निकुम्भके संहताश्व नामक पुत्र हुआ, जो युद्धकी कलामें निपुण था। राजन्! संहताश्वके अकृशाश्व और कृशाश्व नामक दो पुत्र हुए॥ ३॥ उस (संहताश्व)-की भार्या हिमवान्‌की पुत्री थी, जो तीनों लोकोंमें दृषद्वतीके नामसे प्रसिद्ध है। उससे प्रसेनजित् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। वह श्रेष्ठ पुत्रोंकी जननी थी॥ ४॥ प्रसेनजित्‌की गौरी नामवाली भार्या थी। वह पतिव्रता थी। वह पतिके शाप देनेपर बाहुदा नदी हो गयी॥ ५॥ उसके पुत्र महाराज युवनाश्व थे, युवनाश्वके त्रिलोकविजयी मान्धाता नामक पुत्र हुआ॥ ६॥ शशविन्दुकी पुत्री विन्दुमती, जिसका दूसरा नाम चैत्ररथी था, मान्धाताकी भार्या थी। वह साध्वी पृथ्वीमें अनुपम रूपवती थी॥ ७॥ उसके दस हजार भाई थे और वह पतिव्रता उनमें सबसे बड़ी थी। राजन्! मान्धाताने उसके गर्भसे धर्मज्ञ पुरुकुत्स और धार्मिक मुचुकुन्द—इन दो पुत्रोंको उत्पन्न किया। पुरुकुत्सका पुत्र राजा त्रसदस्यु हुआ॥ ८-९॥

नर्मदायामथोत्पन्नः सम्भूतस्तस्य चात्मजः।
सम्भूतस्य तु दायादः सुधन्वा नाम पार्थिवः॥ १०

सुधन्वनः सुतश्चासीत् त्रिधन्वा रिपुमर्दनः।
राज्ञस्त्रिधन्वनस्त्वासीद् विद्वांस्त्रय्यारुणः सुतः॥ ११

तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः।
पाणिग्रहणमन्त्राणां विघ्नं चक्रे सुदुर्मतिः॥ १२

येन भार्या हृता पूर्वं कृतोद्वाहा परस्य वै।
बाल्यात् कामाच्च मोहाच्च संहर्षाच्चापलेन च॥ १३

जहार कन्यां कामात् स कस्यचित् पुरवासिनः।
अधर्मशङ्कुना तेन राजा त्रय्यारुणोऽत्यजत्॥ १४

अपध्वंसेति बहुशो वदन् क्रोधसमन्वितः।
पितरं सोऽब्रवीत् त्यक्तः क्व गच्छामीति वै मुहुः॥ १५

पिता त्वेनमथोवाच श्वपाकैः सह वर्तय।
नाहं पुत्रेण पुत्रार्थी त्वयाद्य कुलपांसन॥ १६

इत्युक्तः स निराक्रामन्नगराद् वचनात् पितुः।
न च तं वारयामास वसिष्ठो भगवानृषिः॥ १७

स तु सत्यव्रतस्तात श्वपाकावसथान्तिके।
पित्रा त्यक्तोऽवसद् धीरः पिता तस्य वनं ययौ॥ १८

ततस्तस्मिंस्तु विषये नावर्षत् पाकशासनः।
समा द्वादश राजेन्द्र तेनाधर्मेण वै तदा॥ १९

दारांस्तु तस्य विषये विश्वामित्रो महातपाः।
संन्यस्य सागरानूपे चचार विपुलं तपः॥ २०

तस्य पत्नी गले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम्।
शेषस्य भरणार्थाय व्यक्रीणाद् गोशतेन वै॥ २१

तं तु बद्धं गले दृष्ट्वा विक्रीयन्तं नृपात्मजः।
महर्षिपुत्रं धर्मात्मा मोक्षयामास भारत॥ २२

त्रसदस्युके नर्मदा नामवाली स्त्रीके गर्भसे सम्भूत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सम्भूतका पुत्र सुधन्वा नामक राजा था॥ १०॥ सुधन्वाके त्रिधन्वा नामक पुत्र हुआ, जो शत्रुओंका मर्दन करनेवाला था। राजा त्रिधन्वाके त्रय्यारुण नामक विद्वान् पुत्र हुआ॥ ११॥ त्रय्यारुणके सत्यव्रत नामवाला महाबली कुमार हुआ। उसकी बुद्धि बड़ी खोटी थी। वह (परस्त्रीहरणद्वारा) विवाहके मन्त्रोंमें विघ्न डालने लगा॥ १२॥ उसने बालकपन, काम, मोह, हर्ष और चपलताके कारण किसी दूसरे (नागरिक)-की विवाहिता स्त्रीको छीन लिया था॥ १३॥ इसी प्रकार उसने कामके वशमें होकर एक पुरवासीकी कन्याको हर लिया था। इस पापरूपी कीलसे विद्ध होनेके कारण राजा त्रय्यारुणने क्रोधमें उसे बार-बार कहा—'ओ नीच! भाग जा यहाँसे।' पिताके त्याग देनेपर उसने बार-बार उनसे पूछा—'मैं कहाँ जाऊँ?'॥ १४-१५॥ तब उसके पिताने कहा—'ओ कुलकलंक! जा तू श्वपाकों*-के साथ रह, मैं तुझ-जैसे पुत्रसे पुत्रवान् बनना नहीं चाहता'॥ १६॥ पिताके इस प्रकार कहनेपर वह उनके कथनानुसार नगरसे बाहर निकल गया। उस समय भगवान् वसिष्ठ ऋषिने भी उसके पिताको इस प्रकार कहनेसे नहीं रोका॥ १७॥ तात! धीर सत्यव्रत पिताके त्याग देनेपर चाण्डालोंकी बस्तीमें रहने लगा और उसके पिता त्रय्यारुण (विरक्त होकर) वनको चले गये॥ १८॥ राजेन्द्र! उस समय उस देशमें (उस कन्याहरणरूप) अधर्मके कारण इन्द्रने बारह वर्षोंतक वर्षा नहीं की॥ १९॥ उस समय महातपस्वी विश्वामित्र भी सत्यव्रतके उस देशमें अपनी स्त्रीको न्यास (धरोहर)-के रूपमें रखकर समुद्रके तटपर भयंकर तप कर रहे थे॥ २०॥ विश्वामित्रकी स्त्री अपने शेष कुटुम्बके पालनके लिये अपने मध्यम पुत्रके गलेमें रस्सी बाँधकर उसको सौ गौओंके मूल्यपर बेचनेके लिये लेकर घूमने लगी॥ २१॥ भारत! धर्मात्मा राजकुमार (सत्यव्रत)-ने उस महर्षिपुत्रको गलेमें बँधा तथा बिकता देखकर छुड़ा लिया॥ २२॥

* श्वपाक चाण्डालोंकी एक जातिका नाम है।

सत्यव्रतो महाबाहुर्भरणं तस्य चाकरोत्।
विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुकम्पार्थमेव च॥ २३

सोऽभवद् गालवो नाम गलबन्धान्महातपाः।
महर्षिः कौशिकस्तात तेन वीरेण मोक्षितः॥ २४

फिर महाबाहु सत्यव्रतने विश्वामित्रको संतुष्ट करने और उनकी कृपा प्राप्त करनेके लिये उस पुत्रका भरण-पोषण किया॥ २३॥ वह महातपस्वी गलेमें बन्धन पड़नेके कारण गालव नामसे प्रसिद्ध हुआ। तात! (इस प्रकार) उस वीरने कुशिकवंशी महर्षि (गालव)-को (इस आपत्तिसे) मुक्त किया था॥ २४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि गालवोत्पत्तौ द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें गालवकी उत्पत्तिविषयक बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२॥

त्रयोदशोऽध्यायः

त्रिशङ्कुके चरित्रका वर्णन तथा उनके वंशमें हरिश्चन्द्र आदिका उत्पन्न होना

वैशम्पायन उवाच

सत्यव्रतस्तु भक्त्या च कृपया च प्रतिज्ञया।
विश्वामित्रकलत्रं तद् बभार विनये स्थितः॥ १
हत्वा मृगान् वराहांश्च महिषांश्च वनेचरान्।
विश्वामित्राश्रमाभ्याशे मांसं वृक्षे बबन्ध सः॥ २
उपांशुव्रतमास्थाय दीक्षां द्वादशवार्षिकीम्।
पितुर्नियोगादवसत् तस्मिन् वनगते नृपे॥ ३
अयोध्यां चैव राष्ट्रं च तथैवान्तःपुरं मुनिः।
याज्योपाध्यायसम्बन्धाद् वसिष्ठः पर्यरक्षत॥ ४
सत्यव्रतस्तु बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वा बलात्।
वसिष्ठेऽभ्यधिकं मन्युं धारयामास वै तदा॥ ५
पित्रा तु तं तदा राष्ट्रात् त्यज्यमानं स्वमात्मजम्।
न वारयामास मुनिर्वसिष्ठः कारणेन ह॥ ६
पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात् सप्तमे पदे।
न च सत्यव्रतस्तस्य तमुपांशुमबुध्यत॥ ७
जानन् धर्मं वसिष्ठस्तु न मां त्रातीति भारत।
सत्यव्रतस्तदा रोषं वसिष्ठे मनसाकरोत्॥ ८
गुणबुद्ध्या तु भगवान् वसिष्ठः कृतवांस्तथा।
न च सत्यव्रतस्तस्य तमुपांशुमबुध्यत॥ ९

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! विश्वामित्रजीके प्रति श्रद्धा-भक्ति, उनके असहाय कुटुम्बके प्रति दयाभाव तथा अपनी की हुई प्रतिज्ञासे प्रेरित हो सत्यव्रत विनयपूर्वक विश्वामित्रजीकी स्त्रीका पालन करने लगा॥ १॥ वह ढूँढ़नेसे मिलनेवाले कंदविशेष, बराही कंद तथा महिष कंद आदि जंगली कंद-मूलोंको काटकर उनका गूदा विश्वामित्रके आश्रमके पासके वृक्षोंमें बाँध देता था॥ २॥ पिता (राजा)-के वन चले जानेपर बारह वर्षोंके लिये वह चुपचाप (किसीको विदित न हो इस प्रकार) व्रत करने लगा॥ ३॥ इधर पुरोहिताई और यजमानीके सम्बन्धके कारण मुनि वसिष्ठ अयोध्याकी, राज्यकी और रनिवासकी रक्षा करने लगे॥ ४॥ इधर सत्यव्रत अपनी मूर्खता या होनहारके कारण वसिष्ठजीके ऊपर अधिक कुपित रहने लगा॥ ५॥ परंतु मुनि वसिष्ठने तो उसके पिताको, उनके द्वारा अपने पुत्रके राज्यसे निकाले जाते समय विशेष कारणवश ही नहीं रोका था॥ ६॥ पाणिग्रहण अर्थात् विवाहके मन्त्र सप्तपदीके पूर्ण होनेपर पूर्ण हुए माने जाते हैं। (इसके पहले स्त्रीमें कन्यात्व ही रहता है; अतः वसिष्ठजी सत्यव्रतसे बारह वर्षोंतक कन्याहरणका प्रायश्चित्त कराना चाहते थे।) परंतु वसिष्ठजीके इस गूढ़ आशयको सत्यव्रत समझ न सका॥ ७॥ 'वसिष्ठजी धर्मको जानते हैं, तब भी मेरी रक्षा नहीं करते हैं।' भारत! यह विचारकर सत्यव्रत अपने मनमें उनपर कुपित रहने लगा॥ ८॥ भगवान् वसिष्ठजीने तो गुणबुद्धिसे ऐसा किया था, परंतु सत्यव्रत उनके इस गुप्त अभिप्रायको समझ न सका॥ ९॥

तस्मिन्नपरितोषो यः पितुरासीन्महात्मनः।
तेन द्वादशवर्षाणि नावर्षत् पाकशासनः॥ १०

तेन त्विदानीं वहता दीक्षां तां दुर्वहां भुवि।
कुलस्य निष्कृतिस्तात कृता सा वै भवेदिति॥ ११

न तं वसिष्ठो भगवान् पित्रा त्यक्तं न्यवारयत्।
अभिषेक्ष्याम्यहं पुत्रमस्येत्येवं मतिर्मुनेः॥ १२

स तु द्वादशवर्षाणि दीक्षां तामुद्वहद् बली।
उपांशुव्रतमास्थाय महत् सत्यव्रतो नृप॥ १३

अविद्यमाने मांसे तु वसिष्ठस्य महात्मनः।
सर्वकामदुघां दोग्ध्रीं ददर्श स नृपात्मजः॥ १४

तां वै क्रोधाच्च मोहाच्च श्रमाच्चैव क्षुधार्दितः।
दशधर्मान् गतो राजा जघान जनमेजय॥ १५

तच्च मांसं स्वयं चैव विश्वामित्रस्य चात्मजान्।
भोजयामास तच्छ्रुत्वा वसिष्ठोऽप्यस्य चुक्रुधे।
क्रुद्धस्तु भगवान् वाक्यमिदमाह नृपात्मजम्॥ १६

वसिष्ठ उवाच

पातयेयमहं क्रूर तव शङ्कुमसंशयम्।
यदि ते द्वाविमौ शङ्कू न स्यातां वै कृतौ पुनः॥ १७

पितुश्चापरितोषेण गुरोर्दोग्ध्रीवधेन च।
अप्रोक्षितोपयोगाच्च त्रिविधस्ते व्यतिक्रमः॥ १८

वैशम्पायन उवाच

एवं त्रीण्यस्य शङ्कूनि तानि दृष्ट्वा महातपाः।
त्रिशङ्कुरिति होवाच त्रिशङ्कुरिति स स्मृतः॥ १९
विश्वामित्रस्तु दाराणामागतो भरणे कृते।
स तु तस्मै वरं प्रादान्मुनिः प्रीतस्त्रिशङ्कवे॥ २०
छन्द्यमानो वरेणाथ वरं वव्रे नृपात्मजः।
सशरीरो व्रजे स्वर्गमित्येवं याचितो मुनिः॥ २१

उसके महात्मा पिताको सत्यव्रतके ऊपर जो असंतोष उत्पन्न हो गया, इस कारण इन्द्रने उसके राज्यमें बारह वर्षोंतक वर्षा नहीं की॥ १०॥ तात! 'यदि (सत्यव्रत) भूतलपर कठिनतासे पूर्ण होनेवाली इस दीक्षाको पूर्ण कर लेगा तो इसके कुलका उद्धार हो जायगा'। यह विचारकर भगवान् वसिष्ठने उसके पिताद्वारा त्यागे गये सत्यव्रतको नहीं रोका था, उनका विचार था कि '(प्रायश्चित्तके अनन्तर) इसके पुत्रको ही मैं राज्यपर अभिषिक्त कर दूँगा'॥ ११-१२॥ राजन्! बलवान् सत्यव्रतने भी चुपचाप दीक्षा लेकर बारह वर्षतक इस महाव्रतको धारण किया॥ १३॥ एक समय कंद-मूलके गूदेके न रहनेपर उस राजकुमारकी दृष्टि सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाली महात्मा वसिष्ठकी दुधार गौके ऊपर पड़ी॥ १४॥ जनमेजय! राजकुमार सत्यव्रतने उस गौको क्रोध, मोह और कामके कारण तथा भूखसे पीड़ा पानेके कारण दस अनिष्ट धर्मों (अवस्थाओं)* -को प्राप्त होनेकी दशामें मार डाला॥ १५॥ उस मांसको उसने विश्वामित्रके पुत्रोंको खिलाया और अपने-आप भी खाया। यह सुनकर वसिष्ठजी भी क्रोधमें भर गये और क्रोधमें भरे हुए वसिष्ठजीने राजाके पुत्रसे यह बात कही॥ १६॥

वसिष्ठजीने कहा—क्रूर! यदि तुझमें फिर किये हुए ये दो शङ्कु (पाप) न होते तो मैं तेरे प्रथम शङ्कु (पाप)-को अवश्य नष्ट कर देता॥ १७॥ पिताको संतुष्ट न रखने, गुरुकी दूध देनेवाली गौकी हत्या कर डालने और अप्रोक्षित मांस खानेसे तुम्हारे द्वारा तीन प्रकारके पाप बन गये॥ १८॥

वैशम्पायनजी बोले—इस प्रकार उसके तीन शङ्कुओंको देखकर महातपस्वी वसिष्ठजीने जो उसे त्रिशङ्कु कहा, इसके कारण वह त्रिशङ्कु ही कहलाने लगा॥ १९॥ जब विश्वामित्रजी लौटे, तब अपनी स्त्री आदिका भरण-पोषण करनेके कारण प्रसन्न होकर त्रिशङ्कुको वर देने लगे॥ २०॥ जब विश्वामित्रजीने राजकुमारसे इच्छानुसार वर माँगनेके लिये कहा, तब उसने मुनिसे वर माँगा कि 'मैं सदेह स्वर्गमें जाऊँ'॥ २१॥

* वे दस धर्म या अवस्थाएँ इस प्रकार हैं—

मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः। त्वरमाणश्च भीरुश्च लुब्धः कामी च ते दश॥

अर्थात् मद, प्रमाद, उन्माद, श्रम, क्रोध, भूख, उतावली, भय, लोभ और काम—इन दस दशाओंमें पड़े हुए मनुष्य पाप कर बैठते हैं।

अनावृष्टिभये तस्मिन् गते द्वादशवार्षिके।
राज्येऽभिषिच्य पित्र्ये तु याजयामास तं मुनिः॥ २२
मिषतां देवतानां च वसिष्ठस्य च कौशिकः।
सशरीरं तदा तं तु दिवमारोपयत् प्रभुः॥ २३
तस्य सत्यरथा नाम भार्या कैकयवंशजा।
कुमारं जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम्॥ २४
स वै राजा हरिश्चन्द्रस्त्रैशङ्कव इति स्मृतः।
आहर्ता राजसूयस्य स सम्राडिति विश्रुतः॥ २५
हरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद्रोहितो नाम वीर्यवान्।
येनेदं रोहितपुरं कारितं राज्यसिद्धये॥ २६
कृत्वा राज्यं स राजर्षिः पालयित्वा त्वथ प्रजाः।
संसारासारतां ज्ञात्वा द्विजेभ्यस्तत्पुरं ददौ॥ २७
हरितो रोहितस्याथ चञ्चुर्हारीत उच्यते।
विजयश्च सुदेवश्च चञ्चुपुत्रौ बभूवतुः॥ २८
जेता क्षत्रस्य सर्वस्य विजयस्तेन संस्मृतः।
रुरुकस्तनयस्तस्य राजधर्मार्थकोविदः॥ २९
रुरुकस्य वृकः पुत्रो वृकाद् बाहुस्तु जज्ञिवान्।
शकैर्यवनकाम्बोजैः पारदैः पह्लवैः सह॥ ३०
हैहयास्तालजङ्घाश्च निरस्यन्ति स्म तं नृपम्।
नात्यर्थं धार्मिकस्तात स हि धर्मयुगेऽभवत्॥ ३१
सगरस्तु सुतो बाहोर्जज्ञे सह गरेण च।
और्वस्याश्रममागम्य भार्गवेणाभिरक्षितः॥ ३२
आग्नेयमस्त्रं लब्ध्वा च भार्गवात् सगरो नृपः।
जिगाय पृथिवीं हत्वा तालजङ्घान् सहैहयान्॥ ३३
शकानां पह्लवानां च धर्मं निरसदच्युतः।
क्षत्रियाणां कुरुश्रेष्ठ पारदानां स धर्मवित्॥ ३४

(विश्वामित्रके प्रसादमात्रसे) बारह वर्षोंकी अनावृष्टिका भय दूर हो जानेपर विश्वामित्र (मुनि अपने तपसे उसके पापोंको भस्म करके) उसका पिताके राज्यपर अभिषेक कर उसका यज्ञ कराने लगे॥ २२॥ तदनन्तर तपकी शक्तिसे सम्पन्न कौशिकगोत्री विश्वामित्र वसिष्ठ और देवताओंके देखते-देखते ही त्रिशङ्कुको सशरीर स्वर्गमें भेज दिया॥ २३॥ त्रिशङ्कुके कैकयवंशमें उत्पन्न हुई एक सत्यरथा नामकी भार्या थी। उसमें उसने हरिश्चन्द्र नामवाले निष्पाप पुत्रको उत्पन्न किया॥ २४॥ वे राजा हरिश्चन्द्र त्रैशङ्कव नामसे प्रसिद्ध थे, उन्होंने राजसूय यज्ञ किया था, अतएव वे सम्राट् कहलाते थे॥ २५॥ हरिश्चन्द्रके रोहित नामवाला वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने अपने राज्य-कार्यकी सिद्धिके लिये रोहितपुर बसाया था॥ २६॥ उस राजर्षिने राज्य तथा प्रजाका पालन करनेके अनन्तर संसारकी असारताको जानकर अपना नगर ब्राह्मणोंको दे दिया था॥ २७॥ रोहितका पुत्र हरित और हरितका पुत्र चञ्चु हुआ—यह प्रसिद्ध है। चञ्चुके विजय और सुदेव नामवाले दो पुत्र हुए॥ २८॥ उस (विजय)-ने सम्पूर्ण क्षत्रियोंको जीत लिया था, इसलिये वह विजय कहलाता था। उसके राजकार्य, धर्मकार्य और आर्थिक विषयोंमें चतुर रुरुक नामवाला पुत्र हुआ॥ २९॥ रुरुकका पुत्र वृक हुआ और वृकके बाहु नामवाला पुत्र उत्पन्न हुआ। वह राजा उस (राज) धर्मके युगमें अति धार्मिक नहीं था, इसलिये हैहय और तालजङ्घ वंशके राजाओंने शक, यवन, काम्बोज, पारद और पह्लव (आदि) राजाओंका साथ देकर बाहुकको उसके राज्यसे भ्रष्ट कर दिया॥ ३०-३१॥ बाहुकका जो पुत्र उत्पन्न हुआ वह गर अर्थात् विषके साथ ही उत्पन्न हुआ था। इससे वह सगर कहलाने लगा। (उसकी माताके) और्वके आश्रममें आनेपर भृगुवंशी और्वने उसकी रक्षा की थी॥ ३२॥ सगरने भृगुवंशी और्वसे आग्नेय अस्त्रको सीखकर तालजङ्घ और हैहय राजाओंको मारकर पृथिवीको जीत लिया॥ ३३॥ कुरुश्रेष्ठ! धर्मको जाननेवाले पूर्णशक्ति-सम्पन्न सगरने शक, पह्लव और पारद क्षत्रियोंको धर्मभ्रष्ट कर दिया था॥ ३४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि त्रिशङ्कुचरितकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें त्रिशङ्कुके चरित्रका वर्णनविषयक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

सगरकी उत्पत्ति और चरित्र तथा सगर-पुत्रोंके उद्योगसे समुद्रका 'सागर' होना

जनमेजय उवाच

कथं स सगरो जातो गरेणैव सहाच्युतः।
किमर्थं च शकादीनां क्षत्रियाणां महौजसाम्॥ १
धर्मं कुलोचितं क्रुद्धो राजा निरसदच्युतः।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण तपोधन॥ २

वैशम्पायन उवाच

बाहोर्व्यसनिनस्तात हृतं राज्यमभूत् किल।
हैहयैस्तालजङ्घैश्च शकैः सार्द्धं विशाम्पते॥ ३
यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पह्लवाः खसाः।
एते ह्यपि गणाः पञ्च हैहयार्थे पराक्रमन्॥ ४
हृतराज्यस्तदा राजा स वै बाहुर्वनं ययौ।
पत्न्या चानुगतो दुःखी वने प्राणानवासृजत्॥ ५
पत्नी तु यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतोऽन्वगात्।
सपत्न्या च गरस्तस्यै दत्तः पूर्वमभूत् किल॥ ६
सा तु भर्तुश्चितां कृत्वा वने तामध्यरोहत।
और्वस्तां भार्गवस्तात कारुण्यात् समवारयत्॥ ७
तस्याश्रमे च तं गर्भं गरेणैव सहाच्युतम्।
व्यजायत महाबाहुं सगरं नाम पार्थिवम्॥ ८
और्वस्तु जातकर्मादि तस्य कृत्वा महात्मनः।
अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त्रं प्रत्यपादयत्॥ ९
आग्नेयं तु महाघोरममरैरपि दुःसहम्।
स तेनास्त्रबलेनाजौ बलेन च समन्वितः॥ १०
हैहयान्निजघानाशु क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव।
आजहार च लोकेषु कीर्तिं कीर्तिमतां वरः॥ ११
ततः शकान् सयवनान् काम्बोजान् पारदांस्तथा।
पह्लवांश्चैव निःशेषान् कर्तुं व्यवसितस्तदा॥ १२

जनमेजयने कहा—तपोधन! वे राजा सगर विषके साथ क्यों उत्पन्न हुए थे? विषके साथ रहते हुए भी मरे क्यों नहीं? और मर्यादासे च्युत न होनेवाले उन नरेशने क्रोधमें भरकर महाबली शक आदि क्षत्रियोंके कुलोचित धर्मको क्यों नष्ट कर दिया था? इसका आप मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये॥ १-२॥

वैशम्पायनजी बोले—राजन्! राजा बाहु शिकार और जुए आदि व्यसनोंमें ही पड़ा रहता था। तात! (इस अवसरसे लाभ उठाकर) बाहुके राज्यको हैहय, तालजङ्घ तथा शकोंने छीन लिया॥ ३॥ यवन, पारद, काम्बोज, पह्लव और खस—इन पाँच गणोंने भी हैहय राजाओंके लिये पराक्रम किया था॥ ४॥ राज्यके छिन जानेपर राजा बाहु वनको चला गया और उसकी पत्नी भी उसके पीछे-पीछे गयी। इसके बाद उस राजाने दुःखी होकर वनमें ही अपने प्राणोंको त्याग दिया॥ ५॥ उसकी पत्नी यदुवंशकी कन्या थी। वह गर्भवती थी, तब भी बाहुके पीछे-पीछे वनमें गयी थी। उसकी सौतने उसे पहले ही विष दे दिया था॥ ६॥ तात! जब वह स्वामीकी चिता बनाकर उसपर चढ़ने लगी, उसी समय वनमें विराजमान भृगुवंशी और्व ऋषिने दयाके कारण उसे रोका॥ ७॥ तब उसने उनके आश्रममें ही विष (गर)-सहित गर्भको, जो आगे चलकर सगर नामक महाबाहु राजाके रूपमें प्रसिद्ध हुआ, उत्पन्न किया। राजा सगर कभी धर्मसे च्युत नहीं हुए थे॥ ८॥ और्वने महामना सगरके जातकर्म आदि संस्कार कराकर उन्हें वेद और शास्त्र पढ़ाये, फिर अस्त्रविद्या सिखायी॥ ९॥ उन्होंने सगरको देवताओंके लिये भी असह्य महाघोर आग्नेय अस्त्र दिया था। जब वे अस्त्रबल और शारीरिक बलसे सम्पन्न हो गये, तब क्रोधमें भरकर रुद्र जैसे शीघ्रतासे पशुओंका संहार करते हैं, उसी प्रकार उन्होंने हैहयोंका संहार कर डाला। इस प्रकार कीर्तिमानोंमें श्रेष्ठ उन वीर पुरुषने संसारमें (अद्भुत) कीर्ति पायी थी॥ १०-११॥ इसके अनन्तर उन्होंने शक, यवन, काम्बोज, पारद और पह्लवोंको भी निःशेष (सर्वथा नष्ट) करनेका निश्चय किया॥ १२॥

ते वध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना।
वसिष्ठं शरणं गत्वा प्रणिपेतुर्मनीषिणम्॥ १३

वसिष्ठस्त्वथ तान् दृष्ट्वा समयेन महाद्युतिः।
सगरं वारयामास तेषां दत्त्वाभयं तदा॥ १४

सगरः स्वां प्रतिज्ञां च गुरोर्वाक्यं निशम्य च।
धर्मं जघान तेषां वै वेषान्यत्वं चकार ह॥ १५

अर्द्धं शकानां शिरसो मुण्डं कृत्वा व्यसर्जयत्।
यवनानां शिरः सर्वं काम्बोजानां तथैव च॥ १६

पारदा मुक्तकेशाश्च पह्लवाः श्मश्रुधारिणः।
निःस्वाध्यायवषट्काराः कृतास्तेन महात्मना॥ १७

शका यवनकाम्बोजाः पारदाश्च विशाम्पते।
कोलिसर्पाः समहिषा दार्द्याश्चोलाः सकेरलाः॥ १८

सर्वे ते क्षत्रियास्तात धर्मस्तेषां निराकृतः।
वसिष्ठवचनाद् राजन् सगरेण महात्मना॥ १९

खसांस्तुषारांश्चोलांश्च मद्रान् किष्किन्धकांस्तथा।
कौन्तलांश्च तथा वङ्गान् साल्वान् कौङ्कणकांस्तथा॥ २०

स धर्मविजयी राजा विजित्येमां वसुंधराम्।
अश्वं वै प्रेरयामास वाजिमेधाय दीक्षितः॥ २१

तस्य चारयतः सोऽश्वः समुद्रे पूर्वदक्षिणे।
वेलासमीपेऽपहृतो भूमिं चैव प्रवेशितः॥ २२

स तं देशं तदा पुत्रैः खानयामास पार्थिवः।
आसेदुस्ते ततस्तत्र खन्यमाने महार्णवे॥ २३

तमादिपुरुषं देवं हरिं कृष्णं प्रजापतिम्।
विष्णुं कपिलरूपेण स्वपन्तं पुरुषोत्तमम्॥ २४

तस्य चक्षुःसमुत्थेन तेजसा प्रतिबुध्यतः।
दग्धास्ते वै महाराज चत्वारस्त्ववशेषिताः॥ २५

बर्हकेतुः सुकेतुश्च तथा धर्मरथो नृपः।
शूरः पञ्चजनश्चैव तस्य वंशकरो नृपः॥ २६

जब वीर और महात्मा सगर उनका सर्वनाश करने लगे, तब वे (शक, यवनादि) बुद्धिमान् वसिष्ठजीकी शरणमें गये और उनके पैरोंमें गिर पड़े॥ १३॥ परम यशस्वी वसिष्ठजीने कुछ विशेष शर्तोंपर उनको अभयदान दिया और सगरको (उन्हें मारनेसे) रोका॥ १४॥ सगरने अपनी प्रतिज्ञा और गुरुके वाक्यकी ओर ध्यान देकर (उनके प्राण नहीं लिये) उनके धर्मको नष्ट कर दिया; और उनका वेष बदल दिया॥ १५॥ उन्होंने शकोंके आधे सिरको मूँड़कर छोड़ दिया, यवनोंके सारे सिरको मूँड़ दिया और पह्लवोंके भी सिरको मुँड़वा दिया॥ १६॥ उन महात्मा नरेशने पारदोंके सिरको मुक्तकेश (खुले हुए केशोंवाला) कर दिया और पह्लवोंको श्मश्रुधारी (केवल दाढ़ीवाला) बना दिया और सबको स्वाध्याय तथा वषट्कारसे रहित कर दिया॥ १७॥ तात! जनेश्वर! शक, यवन, काम्बोज, पारद, कोलिसर्प, महिष, दर्द, चोल और केरल—ये सब क्षत्रिय ही थे। वसिष्ठजीके वचनसे महात्मा सगरने (इन सबका संहार न करके केवल) इनके धर्मको ही नष्ट कर दिया था॥ १८-१९॥ उन धर्मविजयी राजाने अश्वमेधकी दीक्षा लेकर खस, तुषार, चोल, मद्र, किष्किन्धक, कौन्तल, वङ्ग, साल्व तथा कौङ्कण देशके राजाओंको जीता। इस प्रकार पृथ्वीका विजय करते हुए उन्होंने अश्वमेधयज्ञके लिये अपना घोड़ा छोड़ा॥ २०-२१॥ जब उनका घोड़ा घुमाया जा रहा था, उस समय पूर्व-दक्षिणमें समुद्रके किनारे किसीने उस घोड़ेको चुरा लिया और उसे भूमिमें छिपा दिया॥ २२॥ उस समय राजा (सगर)-ने अपने पुत्रोंसे उस स्थानको खुदवाया। समुद्रके खोदनेपर उनके पुत्रोंने आदिपुरुष, हरि (अविद्याको हरनेवाले), कृष्ण (सच्चिदानन्दस्वरूप) प्रजापति पुरुषोत्तम, कपिलरूपी विष्णुको वहाँ सोते हुए समाधिमें स्थित देखा॥ २३-२४॥ उनके योगनिद्राको त्यागनेपर उनके नेत्रमेंसे निकलते हुए तेजसे वे सब (राजकुमार) भस्म हो गये। महाराज! केवल बर्हकेतु, सुकेतु, राजा धर्मरथ और वंशको चलानेवाला शूर पञ्चजन—ये चार राजकुमार ही जीवित बच सके थे॥ २५-२६॥

प्रादाच्च तस्मै भगवान् हरिर्नारायणो वरान्।
अक्षयं वंशमिक्ष्वाकोः कीर्तिं चाप्यनिवर्तनीम्॥ २७

पुत्रं समुद्रं च विभुः स्वर्गवासं तथाक्षयम्।
पुत्राणां चाक्षयाँल्लोकांस्तस्य ये चक्षुषा हताः॥ २८

समुद्रश्चार्घ्यमादाय ववन्दे तं महीपतिम्।
सागरत्वं च लेभे स कर्मणा तेन तस्य वै॥ २९

तं चाश्वमेधिकं सोऽश्वं समुद्रादुपलब्धवान्।
आजहाराश्वमेधानां शतं स सुमहायशाः।
पुत्राणां च सहस्राणि षष्टिस्तस्येति नः श्रुतम्॥ ३०

उन्हें (कपिलरूपी) विभु हरिनारायण भगवान्ने यह वरदान दिया था कि इक्ष्वाकुका वंश अक्षय रहेगा और राजा सगरकी कीर्ति कभी नष्ट नहीं होगी। समुद्र उनका पुत्र कहा जायगा (अर्थात् भविष्यमें यह सागर नामसे प्रसिद्ध होगा) और उन्हें अक्षय स्वर्गवास मिलेगा। कपिलजीने अपने नेत्रके तेजसे भस्म हुए सगर-पुत्रोंको भी अक्षयलोकोंकी प्राप्ति होनेका वर दिया॥ २७-२८॥ (उस समय) समुद्रने अर्घ्य लेकर उन राजा (सगर)-को प्रणाम किया और सगरके इस कर्मके कारण समुद्रका सागर नाम पड़ गया॥ २९॥ उन्होंने अश्वमेधयज्ञके घोड़ेको भी समुद्रसे प्राप्त किया। इस तरह उन महायशस्वी राजाने सौ अश्वमेधयज्ञ किये थे—ऐसा सुना जाता है। इन महाराजके पुत्रोंकी संख्या साठ हजार थी॥ ३०॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि सगरोत्पत्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें सगरकी उत्पत्तिका वर्णनविषयक चौदहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

सूर्यवंशका वर्णन

जनमेजय उवाच

सगरस्यात्मजा वीराः कथं जाता महात्मनः।
विक्रान्ताः षष्टिसाहस्रा विधिना केन वा द्विज॥ १

वैशम्पायन उवाच

द्वे भार्ये सगरस्यास्तां तपसा दग्धकिल्बिषे।
ज्येष्ठा विदर्भदुहिता केशिनी नाम विश्रुता॥ २

कनीयसी तु या तस्य पत्नी परमधर्मिणी।
अरिष्टनेमिदुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि॥ ३

और्वस्ताभ्यां वरं प्रादात् तं निबोध जनाधिप।
षष्टिं पुत्रसहस्राणि गृह्णात्वेका तपस्विनी॥ ४

एकं वंशधरं त्वेका यथेष्टं वरयत्विति।
तत्रैका जगृहे पुत्राँल्लुब्धा शूरान् बहूंस्तथा॥ ५

एकं वंशधरं त्वेका तथेत्याह च तां मुनिः।
केशिन्यसूत सगरादसमञ्जसमात्मजम्॥ ६

जनमेजयने कहा—द्विज! महात्मा सगरके साठ हजार वीर और पराक्रमी पुत्र किस प्रकार उत्पन्न हुए थे?॥ १॥

वैशम्पायनजीने उत्तर दिया—सगरकी दो रानियाँ थीं। तपसे उनके पाप नष्ट हो गये थे। उनमें बड़ी रानी विदर्भ-नरेशकी पुत्री थीं और केशिनी नामसे प्रसिद्ध थीं॥ २॥ उन राजाकी जो छोटी पत्नी थी, वह बड़ी ही धर्मात्मा थी। वह अरिष्टनेमि (कश्यप)-की पुत्री थी। उसके समान पृथिवीपर कोई भी दूसरी रूपवती स्त्री नहीं थी॥ ३॥ जनाधिप! और्वने उन दोनोंको जो वर दिया था, उसे सुनो! (और्वने कहा था) दोनोंमेंसे कोई एक तपस्विनी रानी तो साठ हजार पुत्र माँग ले और एक वंश चलानेवाले एक ही पुत्रको माँगे। अब जिसे जो वर अच्छा लगता हो वह उस वरको माँग ले। उनमेंसे एक पुत्रलोभिनी स्त्रीने तो बहुत-से शूरवीर पुत्रोंको माँग लिया तथा एकने एक ही वंशधर पुत्रको माँगा। तब मुनिने तथास्तु—ऐसा ही होगा, कहकर वरदान दे दिया। केशिनीके सगरसे असमञ्जस नामक पुत्र उत्पन्न हुआ॥ ४—६॥

राजा पञ्चजनो नाम बभूव सुमहाबलः।
इतरा सुषुवे तुम्बीं बीजपूर्णामिति श्रुतिः॥ ७

तत्र षष्टिसहस्राणि गर्भास्ते तिलसम्मिताः।
सम्बभूवुर्यथाकालं ववृधुश्च यथाक्रमम्॥ ८

घृतपूर्णेषु कुम्भेषु तान् गर्भान् निदधे पिता।
धात्रीश्चैकैकशः प्रादात् तावतीरेव पोषणे॥ ९

ततो दशसु मासेषु समुत्तस्थुर्यथासुखम्।
कुमारास्ते यथाकालं सगरप्रीतिवर्धनाः॥ १०

षष्टिः पुत्रसहस्राणि तस्यैवमभवन् नृप।
गर्भादलाबुमध्याद् वै जातानि पृथिवीपते॥ ११

तेषां नारायणं तेजः प्रविष्टानां महात्मनाम्।
एकः पञ्चजनो नाम पुत्रो राजा बभूव ह॥ १२

सुतः पञ्चजनस्यासीदंशुमान् नाम वीर्यवान्।
दिलीपस्तनयस्तस्य खट्वाङ्ग इति विश्रुतः॥ १३

येन स्वर्गादिहागत्य मुहूर्तं प्राप्य जीवितम्।
त्रयोऽनुसंधिता लोका बुद्ध्या सत्येन चानघ॥ १४

दिलीपस्य तु दायादो महाराजो भगीरथः।
यः स गङ्गां सरिच्छ्रेष्ठामवातारयत प्रभुः॥ १५

कीर्तिमान् स महाभागः शक्रतुल्यपराक्रमः।
समुद्रमानयच्चैनां दुहितृत्वेन कल्पयत्।
तस्माद् भागीरथी गङ्गा कथ्यते वंशचिन्तकैः॥ १६

भगीरथसुतो राजा श्रुत इत्यभिविश्रुतः।
नाभागस्तु श्रुतस्यासीत् पुत्रः परमधार्मिकः॥ १७

अम्बरीषस्तु नाभागिः सिन्धुद्वीपपिताभवत्।
अयुताजित् तु दायादः सिन्धुद्वीपस्य वीर्यवान्॥ १८

अयुताजित्सुतस्त्वासीदृतुपर्णो महायशाः।
दिव्याक्षहृदयज्ञो वै राजा नलसखो बली॥ १९

ऋतुपर्णसुतस्त्वासीदार्तुपर्णिर्महीपतिः।
सुदासस्तस्य तनयो राजा त्विन्द्रसखोऽभवत्॥ २०

वह पञ्चजन नामसे प्रसिद्ध महाबलवान् राजा था। दूसरीने बीजोंसे भरी हुई एक तूँबी उत्पन्न की, यह बात प्रसिद्ध है॥ ७॥ उस तूँबीमें तिलके समान साठ हजार गर्भ थे, जो समय आनेपर उत्पन्न हुए और क्रमशः बढ़ने लगे॥ ८॥ पिताने उन गर्भोंको घृतसे भरे हुए घड़ोंमें डाल दिया और उनका पोषण करनेके लिये एक-एक घड़ेपर एक-एक करके उतनी ही धाइयोंको नियुक्त कर दिया॥ ९॥ दस महीने बीतनेपर सगरकी प्रीतिको बढ़ानेवाले बहुत-से बच्चे सुखपूर्वक समयानुसार उत्पन्न होने लगे॥ १०॥ राजन्! इस प्रकार सगरके साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए थे और पृथिवीपते! वे तूँबीके बीजोंकी तरह तूँबी (लौकी)-के मध्यमें रखे हुए गर्भोंसे उत्पन्न हुए थे॥ ११॥ भगवान् नारायण (कपिलदेव)-के तेजमें प्रविष्ट हुए राजकुमारोंमेंसे एक पञ्चजन (असमंजस) नामक राजपुत्र ही राजा हो पाया॥ १२॥ पञ्चजन (असमंजस)-का पुत्र वीर्यवान् अंशुमान् हुआ। उसका पुत्र दिलीप हुआ, जो खट्वाङ्ग नामसे भी प्रसिद्ध है॥ १३॥ अनघ! उसने मुहूर्तभरका (४८ मिनटका) जीवन पाकर स्वर्गसे इस मृत्युलोकमें आकर सूक्ष्म बुद्धिसे तथा सत्य (ब्रह्मभाव)-के द्वारा तीनों लोकोंको तत्त्वतः जान लिया था॥ १४॥ दिलीपके पुत्र महाराज भगीरथ हुए। उन प्रभुने नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गाजीको (स्वर्गसे भूमिपर) उतारा था॥ १५॥ इन्द्रके तुल्य पराक्रमी उन यशस्वी महापुरुषने गङ्गाजीको समुद्रतक पहुँचा दिया और उन्होंने गङ्गाजीको अपनी पुत्री बनाया; इसीलिये वंशका कीर्तन करनेवाले विद्वान् गङ्गाजीको भागीरथी (भगीरथकी पुत्री) कहते हैं॥ १६॥ भगीरथका पुत्र श्रुत नामसे प्रसिद्ध है। श्रुतका नाभाग नामक परमधार्मिक पुत्र उत्पन्न हुआ॥ १७॥ नाभागका पुत्र अम्बरीष हुआ। वह सिन्धुद्वीपका पिता था। सिन्धुद्वीपके अयुताजित् नामक वीर्यवान् पुत्र हुआ॥ १८॥ अयुताजित्के ऋतुपर्ण नामवाला महायशस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। वह दिव्य अक्ष (द्यूत)-विद्याका रहस्यवेत्ता, राजा नलका सखा तथा बड़ा बली था॥ १९॥ ऋतुपर्णका पुत्र राजा आर्तुपर्णि हुआ। उसका पुत्र राजा सुदास हुआ, जो इन्द्रका मित्र था॥ २०॥

सुदासस्य सुतस्त्वासीत् सौदासो नाम पार्थिवः।
ख्यातः कल्माषपादो वै नाम्ना मित्रसहस्तथा ॥ २१

कल्माषपादस्य सुतः सर्वकर्मेति विश्रुतः।
अनरण्यस्तु पुत्रोऽभूद् विश्रुतः सर्वकर्मणः ॥ २२

अनरण्यसुतो निघ्नो निघ्नपुत्रौ बभूवतुः।
अनमित्रो रघुश्चैव पार्थिवर्षभ सत्तमौ ॥ २३

अनमित्रस्य धर्मात्मा विद्वान् दुलिदुहोऽभवत्।
दिलीपस्तनयस्तस्य रामप्रप्रपितामहः ॥ २४

दीर्घबाहुर्दिलीपस्य रघुर्नाम्नाभवत् सुतः।
अयोध्यायां महाराजो रघुश्चासीन्महाबलः ॥ २५

अजस्तु रघुतो जज्ञे अजाद् दशरथोऽभवत्।
रामो दशरथाज्जज्ञे धर्मात्मा सुमहायशाः ॥ २६

रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुतः।
अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चात्मजः ॥ २७

निषधस्य नलः पुत्रो नभः पुत्रो नलस्य तु।
नभस्य पुण्डरीकस्तु क्षेमधन्वा ततः स्मृतः ॥ २८

क्षेमधन्वसुतस्त्वासीद् देवानीकः प्रतापवान्।
आसीदहीनगुर्नाम देवानीकसुतः प्रभुः ॥ २९

अहीनगोस्तु दायादः सुधन्वा नाम पार्थिवः।
सुधन्वनः सुतश्चैव ततो जज्ञेऽनलो नृपः ॥ ३०

उक्थो नाम स धर्मात्मानलपुत्रो बभूव ह।
वज्रनाभः सुतस्तस्य उक्थस्य च महात्मनः ॥ ३१

शङ्खस्तस्य सुतो विद्वान् व्युषिताश्व इति श्रुतः।
पुष्पस्तस्य सुतो विद्वानर्थसिद्धिस्तु तत्सुतः ॥ ३२

सुदर्शनः सुतस्तस्य अग्निवर्णः सुदर्शनात्।
अग्निवर्णस्य शीघ्रस्तु शीघ्रस्य तु मरुः सुतः ॥ ३३

मरुस्तु योगमास्थाय कलापद्वीपमास्थितः।
तस्यासीद् विश्रुतवतः पुत्रो राजा बृहद्बलः ॥ ३४

नलौ द्वावेव विख्यातौ पुराणे भरतर्षभ।
वीरसेनात्मजश्चैव यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्वहः ॥ ३५

इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः प्राधान्येनेह कीर्तिताः।
एते विवस्वतो वंशे राजानो भूरितेजसः ॥ ३६

सुदासके सौदास नामका पुत्र हुआ, जो राजा कल्माषपाद और मित्रसह नामसे भी प्रसिद्ध था ॥ २१ ॥ कल्माषपादके सर्वकर्मा नामसे प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ और सर्वकर्माका पुत्र अनरण्य नामसे विख्यात हुआ ॥ २२ ॥ नृपश्रेष्ठ! अनरण्यका पुत्र निघ्न हुआ, निघ्नके अनमित्र और रघु नामक दो श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २३ ॥ अनमित्रके दुलिदुह नामवाला धर्मात्मा और विद्वान् पुत्र उत्पन्न हुआ। दुलिदुहके पुत्र दिलीप हुए, जो श्रीरामचन्द्रजीके वृद्ध प्रपितामह थे ॥ २४ ॥ दिलीपके रघु नामक महाबाहु पुत्र उत्पन्न हुए। ये रघु अयोध्यामें महाबली सम्राट् हुए ॥ २५ ॥ रघुसे अज उत्पन्न हुए। अजसे दशरथ हुए तथा दशरथसे धर्मात्मा एवं महायशस्वी श्रीरामचन्द्र प्रकट हुए ॥ २६ ॥ श्रीरामके कुश नामसे प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ। कुशके अतिथि नामक पुत्र हुआ और अतिथिके पुत्रका नाम निषध था ॥ २७ ॥ निषधका पुत्र नल, नलका पुत्र नभ, नभका पुत्र पुण्डरीक और पुण्डरीकका पुत्र क्षेमधन्वा हुआ ॥ २८ ॥ क्षेमधन्वाका पुत्र प्रतापी देवानीक हुआ, देवानीकके अहीनगु नामक प्रभावशाली पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २९ ॥ अहीनगुका पुत्र राजा सुधन्वा हुआ और सुधन्वाका पुत्र अनल नामक राजा हुआ ॥ ३० ॥ अनलके उक्थ नामक धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ और उन महात्मा उक्थके पुत्रका नाम वज्रनाभ हुआ ॥ ३१ ॥ वज्रनाभके शङ्ख नामक विद्वान् पुत्र उत्पन्न हुआ, जो व्युषिताश्वके नामसे भी प्रसिद्ध है। शङ्खका पुत्र पुष्प और पुष्पका पुत्र विद्वान् अर्थसिद्धि था ॥ ३२ ॥ अर्थसिद्धिका पुत्र सुदर्शन, सुदर्शनसे अग्निवर्ण, अग्निवर्णका पुत्र शीघ्र और शीघ्रके मरु नामका पुत्र हुआ ॥ ३३ ॥ मरु योगका आश्रय लेकर कलापद्वीपमें रहने लगे। परम प्रसिद्ध मरुके पुत्र राजा बृहद्बल हुए ॥ ३४ ॥ भरतर्षभ! पुराणमें नल नामसे दो ही राजा प्रसिद्ध हैं—एक वीरसेन-पुत्र नल और दूसरा इक्ष्वाकु-कुलोत्पन्न (निषध-पुत्र) नल ॥ ३५ ॥ विवस्वान् (सूर्य)-के वंशमें ये परम तेजस्वी राजा उत्पन्न हुए हैं। यहाँ इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुए मुख्य-मुख्य राजाओंका वर्णन किया गया है ॥ ३६ ॥

पठन् सम्यगिमां सृष्टिमादित्यस्य विवस्वतः।
श्राद्धदेवस्य देवस्य प्रजानां पुष्टिदस्य च॥ ३७
प्रजावानेति सायुज्यमादित्यस्य विवस्वतः।
विपाप्मा विरजाश्चैव आयुष्मांश्च भवत्युत॥ ३८

जो मनुष्य अदितिनन्दन भगवान् सूर्यकी तथा प्रजाओंके पोषक देवता श्राद्धदेवकी इस सृष्टि-परम्पराका भलीभाँति पाठ करता है, वह संतानवान् होता और निष्पाप, रजोगुणरहित एवं दीर्घायु हो अन्तमें भगवान् सूर्यका सायुज्य प्राप्त कर लेता है॥ ३७-३८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि आदित्यस्य वंशानुकीर्तनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें सूर्यवंशका वर्णनविषयक पंद्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १५॥

षोडशोऽध्यायः

श्राद्धकल्प—जनमेजयद्वारा पिताका श्राद्ध तथा पितृस्वरूपनिर्णयसम्बन्धी प्रश्न, शन्तनुका अपने श्राद्धमें स्वयं हाथ बढ़ाकर भीष्मसे पिण्ड माँगना

जनमेजय उवाच

कथं वै श्राद्धदेवत्वमादित्यस्य विवस्वतः।
श्रोतुमिच्छामि विप्राग्र्य श्राद्धस्य च परं विधिम्॥ १
पितॄणामादिसर्गं च क एते पितरः स्मृताः।
एवं च श्रुतमस्माभिः कथ्यमानं द्विजातिभिः॥ २
स्वर्गस्थाः पितरो ये च देवानामपि देवताः।
इति वेदविदः प्राहुरेतदिच्छामि वेदितुम्॥ ३
ये च तेषां गणाः प्रोक्ता यच्च तेषां बलं परम्।
यथा च कृतमस्माभिः श्राद्धं प्रीणाति वै पितॄन्॥ ४
प्रीताश्च पितरो ये स्म श्रेयसा योजयन्ति हि।
एवं वेदितुमिच्छामि पितॄणां सर्गमुत्तमम्॥ ५

जनमेजयने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! अदितिनन्दन भगवान् सूर्यके पुत्र यम श्राद्धदेव क्यों कहलाते हैं? और श्राद्धकी उत्तम विधि क्या है? इसे मैं सुनना चाहता हूँ॥ १॥ पितरोंकी आदि सृष्टि कैसे हुई? ये पितर कौन हैं? हमने ब्राह्मणोंके मुखसे यह बात सुनी है कि जो पितर स्वर्गमें स्थित हैं, वे देवताओंके भी देवता हैं। वेदके जाननेवाले भी ऐसा ही कहते हैं। अतः मैं इस बातको भलीभाँति जानना चाहता हूँ॥ २-३॥ उनके जो गण कहे गये हैं, उनका जो परम बल है और हमारा किया हुआ श्राद्ध जिस प्रकार उन्हें तृप्त करता है तथा जो पितर प्रसन्न होकर मनुष्योंका कल्याण करते हैं, उन सबको एवं उत्तम पितृसर्गको मैं जानना चाहता हूँ॥ ४-५॥

वैशम्पायन उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि पितॄणां सर्गमुत्तमम्।
यथा च कृतमस्माभिः श्राद्धं प्रीणाति वै पितॄन्।
प्रीताश्च पितरो ये स्म श्रेयसा योजयन्ति हि॥ ६

मार्कण्डेयेन कथितं भीष्माय परिपृच्छते।
अपृच्छद् धर्मराजो हि शरतल्पगतं पुरा।
एवमेव पुरा प्रश्नं यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥ ७

तत् तेऽनुपूर्व्या वक्ष्यामि भीष्मेणोदाहृतं यथा।
गीतं सनत्कुमारेण मार्कण्डेयाय पृच्छते॥ ८

वैशम्पायनजी बोले—बहुत अच्छा, मैं तुमसे पितरोंके उत्तम सर्गका वर्णन करूँगा, हमारा किया हुआ श्राद्ध जिस प्रकार पितरोंको तृप्त करता है तथा जो पितर श्राद्धसे संतुष्ट होकर हमें कल्याणके भागी बनाते हैं, उनका परिचय दूँगा। पूर्वकालमें भीष्मके पूछनेपर मार्कण्डेयजीने उनसे इस विषयका वर्णन किया था। फिर महाभारतकालमें शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीसे धर्मराज युधिष्ठिरने भी पहले ऐसा ही प्रश्न किया था, जैसा इस समय तुम मुझसे पूछ रहे हो। भीष्मजीने युधिष्ठिरको जिस प्रकार उत्तर दिया था, वह सब मैं तुम्हें क्रमशः बताऊँगा। पहले मार्कण्डेयजीके पूछनेपर सनत्कुमारजीने जो उपदेश दिया था, वही युधिष्ठिर और भीष्मके संवादमें कहा गया है॥ ६—८॥

युधिष्ठिर उवाच

पुष्टिकामेन धर्मज्ञ कथं पुष्टिरवाप्यते।
एतद् वै श्रोतुमिच्छामि किं कुर्वाणो न शोचति॥ ९

भीष्म उवाच

श्राद्धैः प्रीणाति हि पितॄन् सर्वकामफलैस्तु यः।
तत्परः प्रयतः श्राद्धी प्रेत्य चेह च मोदते॥ १०

पितरो धर्मकामस्य प्रजाकामस्य च प्रजाम्।
पुष्टिकामस्य पुष्टिं च प्रयच्छन्ति युधिष्ठिर॥ ११

युधिष्ठिर उवाच

वर्तन्ते पितरः स्वर्गे केषांचिन्नरके पुनः।
प्राणिनां नियतं वापि कर्मजं फलमुच्यते॥ १२

श्राद्धानि चैव कुर्वन्ति फलकामाः सदा नराः।
अभिसंधाय पितरं पितुश्च पितरं तथा॥ १३

पितुः पितामहं चैव त्रिषु पिण्डेषु नित्यशः।
तानि श्राद्धानि दत्तानि कथं गच्छन्ति वै पितॄन्॥ १४

कथं च शक्तास्ते दातुं नरकस्थाः फलं पुनः।
के वा ते पितरोऽन्ये स्म कान् यजामो वयं पुनः॥ १५

देवा अपि पितॄन् स्वर्गे यजन्तीति च नः श्रुतम्।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण महाद्युते॥ १६

स भवान् कथयत्वेतां कथाममितबुद्धिमान्।
यथा दत्तं पितॄणां वै तारणायेह कल्पते॥ १७

भीष्म उवाच

अत्र ते कीर्तयिष्यामि यथाश्रुतमरिंदम।
ये च ते पितरोऽन्ये स्म यान् यजामो वयं पुनः।
पित्रा मम पुरा गीतं लोकान्तरगतेन वै॥ १८

श्राद्धकाले मम पितुर्मया पिण्डः समुद्यतः।
तं पिता मम हस्तेन भित्त्वा भूमिमयाचत॥ १९

हस्ताभरणपूर्णेन केयूराभरणेन च।
रक्ताङ्गुलितलेनाथ यथा दृष्टः पुरा मया॥ २०

युधिष्ठिरने पूछा—धर्मज्ञ! पुष्टि चाहनेवाला पुरुष किस प्रकार पुष्टि पा सकता है और कैसा कर्म करनेसे मनुष्यको शोक नहीं करना पड़ता? इसे मैं सुनना चाहता हूँ॥ ९॥

भीष्मजीने कहा—युधिष्ठिर! जो समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले श्राद्धोंद्वारा तत्पर होकर पितरोंको तृप्त करता है, वह पितरोंकी प्रीतिमें लीन रहनेवाला श्राद्धकर्ता इस संसारमें आनन्दभागी होता है और मरनेके बाद परलोकमें सुख भोगता है॥ १०॥ युधिष्ठिर! पितर धर्म चाहनेवालेको धर्म, संतान चाहनेवालेको संतान और पुष्टि चाहनेवालेको पुष्टि भी प्रदान करते हैं॥ ११॥

युधिष्ठिरने पूछा—किन्हींके पितर स्वर्गमें रहते हैं और किन्हींके नरकमें; क्योंकि यह बात प्रसिद्ध है कि प्राणियोंको (अपने) कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाला फल अवश्य भोगना पड़ता है॥ १२॥ फल चाहनेवाले पुरुष सदा पिता, पितामह और प्रपितामहको लक्ष्य करके श्राद्ध करते हैं। सर्वदा इन तीन पिण्डोंमें ही दिये गये श्राद्ध पितरोंको कैसे प्राप्त होते हैं?॥ १३-१४॥ और वे पितर (जब स्वयं) नरकमें निवास कर रहे हैं, तब वे फल भी कैसे दे सकते हैं? अथवा यदि वे पितर उनसे भिन्न हैं तो कौन हैं—उनका क्या परिचय है? हम किन पितरोंकी पूजा करें?॥ १५॥ हमने सुना है कि स्वर्गमें (रहनेवाले) देवता भी पितरोंका पूजन करते हैं। महाद्युते! इन सब बातोंको मैं विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ॥ १६॥ पितरोंके निमित्त किया हुआ श्राद्ध किस प्रकार प्राणियोंका उद्धार करता है? इस कथाका आप वर्णन कीजिये, क्योंकि आपकी बुद्धि अथाह है॥ १७॥

भीष्मजीने कहा—शत्रुमर्दन! हमलोग जिनकी पूजा करते हैं, इस विषयको जैसा मैंने सुना है, वह सब तुमसे कहूँगा। जो अन्य (पिता-पितामह आदिसे भिन्न) पितर हैं, इस विषयमें मेरे परलोकवासी पिताने भी गाथा गायी है॥ १८॥ श्राद्धके समय जब मैं अपने पिताको पिण्ड देने लगा, तब उनका हाथ भूमिको फाड़कर निकल आया और वे उस हाथमें ही मुझसे पिण्ड माँगने लगे॥ १९॥ उनका बाजूबंद आदि हाथके आभूषणोंसे विभूषित और लाल-लाल अङ्गुलियोंवाला वह हाथ वैसा ही था जैसा मैंने पहले (जीवित अवस्थामें) देखा था॥ २०॥

नैष कल्पे विधिर्दृष्ट इति संचिन्त्य चाप्यहम्।
कुशेष्वेव ततः पिण्डं दत्तवानविचारयन्॥ २१

ततः पिता मे सुप्रीतो वाचा मधुरया तदा।
उवाच भरतश्रेष्ठ प्रीयमाणो मयानघ॥ २२

त्वया दायादवानस्मि कृतार्थोऽमुत्र चेह च।
सत्पुत्रेण त्वया पुत्र धर्मज्ञेन विपश्चिता॥ २३

मया तु तव जिज्ञासा प्रयुक्तैषा दृढव्रत।
व्यवस्थानं तु धर्मेषु कर्तुं लोकस्य चानघ॥ २४

यथा चतुर्थं धर्मस्य रक्षिता लभते फलम्।
पापस्य हि तथा मूढः फलं प्राप्नोत्यरक्षिता॥ २५

प्रमाणं यद्धि कुरुते धर्माचारेषु पार्थिवः।
प्रजास्तदनुवर्तन्ते प्रमाणाचरितं सदा॥ २६

त्वया च भरतश्रेष्ठ वेदधर्माश्च शाश्वताः।
कृताः प्रमाणं प्रीतिश्च मम निर्वर्तितातुला॥ २७

तस्मात् तवाहं सुप्रीतः प्रीत्या च वरमुत्तमम्।
ददामि तं प्रतीच्छ त्वं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्॥ २८

न ते प्रभविता मृत्युर्यावज्जीवितुमिच्छसि।
त्वत्तोऽभ्यनुज्ञां सम्प्राप्य मृत्युः प्रभविता तव॥ २९

किं वा ते प्रार्थितं भूयो ददामि वरमुत्तमम्।
तद् ब्रूहि भरतश्रेष्ठ यत् ते मनसि वर्तते॥ ३०

इत्युक्तवन्तं तमहमभिवाद्य कृताञ्जलिः।
अब्रवं कृतकृत्योऽहं प्रसन्ने त्वयि सत्तम॥ ३१

यदि त्वनुग्रहं भूयस्त्वत्तोऽर्हामि महाद्युते।
प्रश्नमिच्छामि वै किंचिद् व्याहृतं भवता स्वयम्॥ ३२

स मामुवाच धर्मात्मा ब्रूहि भीष्म यदिच्छसि।
छेत्तास्मि संशयं सर्वं यन्मां पृच्छसि भारत॥ ३३

अपृच्छं तमहं तातं तत्रान्तर्हितमेव च।
गतं सुकृतिनां लोकं कौतूहलसमन्वितः॥ ३४

उस समय मैंने विचारा कि कल्पसूत्रोंमें तो मैंने ऐसी विधि कहीं नहीं देखी है, यह विचारकर मैंने बिना कुछ परवा किये ही पिण्डको कुशाओंपर ही रख दिया॥ २१॥ निष्पाप भरतश्रेष्ठ! उस समय मेरे द्वारा संतुष्ट किये गये पिता परम प्रसन्न हुए और मधुर वाणीमें मुझसे कहने लगे॥ २२॥ 'पुत्र! तू धर्मज्ञ और विद्वान् है। तुझ-सरीखा सुपुत्र होनेसे मुझे पुत्रवान् होनेका फल मिल गया तथा मैं इस लोक और परलोक—दोनोंमें कृतार्थ हो गया॥ २३॥ दृढ़तापूर्वक ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करनेवाले निष्पाप भीष्म! धर्ममें लोगोंकी आस्था दृढ़ करनेके लिये ही मैंने यह तेरी परीक्षा ली है॥ २४॥ धर्मकी रक्षा करनेवालेको जैसे धर्मका चौथाई फल मिलता है, इसी प्रकार धर्मकी रक्षा न करनेवाला मूढ़ मनुष्य पापके चौथाई फलको पाता है॥ २५॥ धर्मविषयक आचारमें राजा जिस बातको प्रामाणिक बता देता है, प्रजा उस प्रमाणभूत राजाके आचरणका अनुकरण करती है॥ २६॥ भरतश्रेष्ठ! तूने सनातन वैदिक धर्मको ही प्रमाण माना है, इसलिये मैं तुमपर बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ॥ २७॥ अब इस प्रसन्नताके कारण मैं तुम्हें श्रेष्ठ वर देना चाहता हूँ। तू तीनों लोकोंमें दुर्लभ वरको ग्रहण कर॥ २८॥ तू जबतक जीवित रहना चाहेगा, तबतक तुझपर मृत्युका प्रभाव न होगा। तेरी आज्ञा पानेपर ही तुझपर मृत्यु प्रभाव डाल सकेगी॥ २९॥ भरतश्रेष्ठ! और जो बात तेरे मनमें हो उसे बता, मैं तुझे तेरी प्रार्थनाके अनुसार और कौन-सा उत्तम वर दूँ?'॥ ३०॥ पिताजीके इस प्रकार कहनेपर मैंने उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा—'श्रेष्ठतम पुरुष! मैं आपकी प्रसन्नतासे ही कृतकृत्य हो गया॥ ३१॥ महाद्युते! यदि मैं इससे भी अधिक आपके अनुग्रहका पात्र होऊँ, तो मैं आपके मुखसे एक प्रश्नका उत्तर सुनना चाहता हूँ'॥ ३२॥ तब उन धर्मात्माने मुझसे कहा—'भीष्म! बता, तू मुझसे क्या पूछना चाहता है? भारत! तू मुझसे जो कुछ पूछेगा, तेरे उस संदेहको मैं दूर करूँगा'॥ ३३॥ तब मैंने वहाँ अदृश्य होकर खड़े और पुण्यात्माओंके लोकोंमें पहुँचे हुए अपने पितासे कौतूहलमें भरकर पूछा॥ ३४॥

भीष्म उवाच

श्रूयन्ते पितरो देवा देवानामपि देवताः।
देवाश्च पितरोऽन्ये वा कान् यजामो वयं पुनः॥ ३५
कथं च दत्तमस्माभिः श्राद्धं प्रीणात्यथो पितॄन्।
लोकान्तरगतांस्तात किन्नु श्राद्धस्य वा फलम्॥ ३६
कान् यजन्ति स्म लोका वै सदेवनरदानवाः।
सयक्षोरगगन्धर्वाः सकिन्नरमहोरगाः॥ ३७
अत्र मे संशयस्तीव्रः कौतूहलमतीव च।
तद् ब्रूहि मम धर्मज्ञ सर्वज्ञो ह्यसि मे मतः।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य भीष्मस्योवाच वै पिता॥ ३८

शन्तनुरुवाच

संक्षेपेणैव ते वक्ष्ये यन्मां पृच्छसि भारत।
पितरश्च यथोद्भूताः फलं दत्तस्य चानघ॥ ३९
पितॄणां कारणं श्राद्धे शृणु सर्वं समाहितः।
आदिदेवसुतास्तात पितरो दिवि देवताः॥ ४०
तान् यजन्ति स्म वै लोकाः सदेवासुरमानुषाः।
सयक्षोरगगन्धर्वाः सकिन्नरमहोरगाः॥ ४१
आप्यायिताश्च ते श्राद्धे पुनराप्याययन्ति च।
जगत् सदेवगन्धर्वमिति ब्रह्मानुशासनम्॥ ४२
तान् यजस्व महाभाग श्राद्धैरग्र्यैरतन्द्रितः।
ते ते श्रेयो विधास्यन्ति सर्वकामफलप्रदाः॥ ४३
त्वया चाराध्यमानास्ते नामगोत्रादिकीर्तनैः।
अस्मानाप्याययिष्यन्ति स्वर्गस्थानपि भारत॥ ४४
मार्कण्डेयस्तु ते शेषमेतत् सर्वं प्रवक्ष्यति।
एष वै पितृभक्तश्च विदितात्मा च भारत॥ ४५
उपस्थितश्च श्राद्धेऽद्य ममैवानुग्रहाय वै।
एनं पृच्छ महाभागमित्युक्त्वान्तरधीयत॥ ४६

भीष्मजीने पूछा—पिताजी! पितृगण देवताओंके भी देवता सुने जाते हैं। देवता ही पितर हैं या दोनों भिन्न-भिन्न हैं? हम किनकी पूजा करें*॥ ३५॥ तात! दूसरे लोकोंमें गये हुए पितरोंको हमारा दिया हुआ श्राद्ध कैसे तृप्त करता है? और श्राद्धका क्या फल है?॥ ३६॥ देवता, दानव और मनुष्य तथा यक्ष, नाग, गन्धर्व, किन्नर और महासर्प आदि किसकी पूजा करते हैं?॥ ३७॥ धर्मज्ञ! इस विषयमें मुझे बड़ा कौतूहल और संदेह है; अतः आप इसका मुझसे वर्णन कीजिये, क्योंकि मेरे विचारसे आप सर्वज्ञ हैं। भीष्मके इस वचनको सुनकर पिता (शन्तनु) बोले॥ ३८॥

शन्तनुजीने कहा—भारत! जो बात तू मुझसे पूछता है, उसे मैं संक्षेपसे कहता हूँ। निष्पाप! पितर जिस प्रकार उत्पन्न हुए हैं और उनको (अन्न आदि) देनेसे जो फल मिलता है, श्राद्धमें पितरोंके कारणको अर्थात् जिनके ये कार्य हैं, उनको तू सावधान होकर सुन। तात! स्वर्गमें स्थित पितृदेवता आदिदेव ब्रह्माजीके पुत्र हैं॥ ३९-४०॥ देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, नाग, गन्धर्व, किन्नर और महासर्प आदि उनकी ही पूजा करते हैं॥ ४१॥ वे श्राद्धोंमें तृप्त किये जानेपर देवताओं और गन्धर्वोंसहित जगत्‌को तृप्त करते हैं—यह वेद (अथवा ब्रह्माजी)-का अनुशासन है॥ ४२॥ महाभाग! तू आलस्य-रहित होकर श्रेष्ठ श्राद्धोंद्वारा उन पितरोंका यजन कर, तब वे सब कामनाओंका फल देनेवाले पितर तेरा कल्याण करेंगे॥ ४३॥ भारत! यदि तू नाम-गोत्र आदिका उच्चारण करके उनकी आराधना करेगा तो वे पितर हमें और हमारे स्वर्गीय पितरोंको भी तृप्त करेंगे॥ ४४॥ और बाकी सब बातोंको मार्कण्डेयजी तुझसे कहेंगे। भारत! वे पितृभक्त और आत्मज्ञानसे परिपूर्ण हैं॥ ४५॥ आज ये मेरे ऊपर अनुग्रह करनेके लिये ही श्राद्धमें आये हैं, अतः इन महाभाग्यवान् मार्कण्डेयजीसे ही तू इन प्रश्नोंको पूछ। इतना कहकर शन्तनुजी अन्तर्धान हो गये॥ ४६॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि श्राद्धकल्पप्रसङ्गो नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें श्राद्धकल्पविषयक सोलहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १६॥

---

* अर्थात् 'कर्मणा पितृलोको विद्यया देवलोकः' इस श्रुतिमें कहा है कि कर्मसे पितृलोक मिलता है और विद्यासे देवलोक। ब्रह्मलोकसे नीचेके लोक पितृलोक कहलाते हैं और देवलोक-पदसे ब्रह्मलोक समझा जाता है। क्रमशः पितृयान और देवयान दोनोंमें ले जानेवाले मार्ग हैं। स्वर्गलोकमें रहनेवाले देवताओंके लोकसे ऊपरके तीन लोकोंमें पितर रहते हैं। इससे उनकी भिन्नता सिद्ध होती है। साथ ही 'देवाः पितरः पितरो देवताः' इस प्रकार देवता और पितरोंका अभेद भी सुननेमें आता है। फिर मरे हुए पिता-पितामहादि भी पितर हैं। इस तरह तीन प्रकारके पितर होनेपर हम किनका पूजन करें?

सप्तदशोऽध्यायः

पितृकल्प—भीष्म-मार्कण्डेय-संवाद और मार्कण्डेयजीके साथ सनत्कुमारजीकी बातचीत

भीष्म उवाच

ततोऽहं तस्य वचनान्मार्कण्डेयं समाहितः।
प्रश्नं तमेवान्वपृच्छं यन्मे पृष्टः पुरा पिता॥ १

स मामुवाच धर्मात्मा मार्कण्डेयो महातपाः।
भीष्म वक्ष्यामि कार्त्स्न्येन शृणुष्व प्रयतोऽनघ॥ २

अहं पितृप्रसादाद् वै दीर्घायुष्ट्वमवाप्तवान्।
पितृभक्त्यैव लब्धं च प्राग्लोके परमं यशः॥ ३

सोऽहं युगस्य पर्यन्ते बहुवर्षसहस्रिके।
अधिरुह्य गिरिं मेरुं तपोऽतप्यं सुदुश्चरम्॥ ४

ततः कदाचित् पश्यामि दिवं प्रज्वाल्य तेजसा।
विमानं महदायान्तमुत्तरेण गिरेस्तदा॥ ५

तस्मिन् विमाने पर्यङ्के ज्वलितादित्यसंनिभम्।
अपश्यं तत्र चैवाहं शयानं दीप्ततेजसम्॥ ६

अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषमग्नावग्निमिवाहितम्।
सोऽहं तस्मै नमस्कृत्य प्रणम्य शिरसा विभुम्॥ ७

संनिविष्टं विमानस्थं पाद्यार्घ्याभ्यामपूजयम्।
अपृच्छं चैव दुर्धर्षं विद्याम त्वां कथं विभो॥ ८

तपोवीर्यात् समुत्पन्नं नारायण गुणात्मकम्।
दैवतं ह्यसि देवानामिति मे वर्तते मतिः॥ ९

स मामुवाच धर्मात्मा स्मयमान इवानघ।
न ते तपः सुचरितं येन मां नावबुध्यसे॥ १०

क्षणेनैव प्रमाणं स बिभ्रदन्यदनुत्तमम्।
रूपेण न मया कश्चिद् दृष्टपूर्वः पुमान् क्वचित्॥ ११

सनत्कुमार उवाच

विद्धि मां ब्रह्मणः पुत्रं मानसं पूर्वजं विभोः।
तपोवीर्यसमुत्पन्नं नारायणगुणात्मकम्॥ १२

भीष्मजी कहते हैं—युधिष्ठिर! तब मैंने पिताजीके कथनानुसार एकाग्रचित्त हो मार्कण्डेयजीसे फिर वही प्रश्न पूछा, जिसके विषयमें पहले पिताजीसे जिज्ञासा की थी॥ १॥ तब महातपस्वी धर्मात्मा मार्कण्डेयजी मुझसे कहने लगे—निष्पाप भीष्म! मैं तुझसे सब बात कहता हूँ, तू सावधान होकर सुन॥ २॥ प्राचीन कालमें मैंने पितृप्रसादसे ही दीर्घायु प्राप्त की थी और पितृ-भक्तिसे ही इस संसारमें बड़ा भारी यश पाया है॥ ३॥ एक समय मैं मेरुपर्वतके ऊपर जाकर अनेक सहस्र वर्षोंमें पूर्ण होनेवाले युगान्त कालतक घोर तप करता रहा॥ ४॥ इसी बीच मैंने एक समय पर्वतके उत्तरकी ओरसे एक बड़े भारी विमानको आते हुए देखा, वह अपने तेजसे (सम्पूर्ण) आकाशको प्रकाशित कर रहा था॥ ५॥ उस विमानके सिंहासनपर मैंने चमकते हुए सूर्यके समान दीप्त तेजवाले तथा अग्निमें स्थापित किये हुए अग्निके समान अङ्गुष्ठमात्र पुरुषको लेटे हुए देखा। मैंने उन विभुको सिर झुकाकर प्रणाम किया और विमानमें विराजमान उन दुर्धर्ष पुरुषकी पाद्य और अर्घ्यसे पूजाकर उनसे पूछा—विभो! हम आपको कैसे जानें कि आप कौन हैं?॥ ६—८॥ 'नारायण! यद्यपि आपका यह स्वरूप नारायणके गुण शुद्ध सत्त्वसे निर्मित तथा तपके प्रभावसे प्रकट हुआ है, मेरा विचार है कि आप देवताओंके भी देवता हैं'॥ ९॥ 'तब वे धर्मात्मा मुसकराकर कहने लगे—निष्पाप! तुमने (अभी) भली प्रकार तप नहीं किया है, इस कारण तुम मुझे पहचान न सके'॥ १०॥ 'क्षणभरमें ही उन्होंने दूसरे उत्तम स्वरूपको धारण कर लिया। ऐसे रूपवाला दूसरा कोई पुरुष मैंने पहले कभी नहीं देखा था'॥ ११॥

सनत्कुमारजी बोले—मुने! तुम मुझे विभु ब्रह्माजीका ज्येष्ठ मानस पुत्र जानो। मैं उनके तपके प्रभावसे उत्पन्न हुआ हूँ और मेरा शरीर नारायणके गुण—शुद्ध सत्त्वसे भरा हुआ है॥ १२॥

सनत्कुमार इति यः श्रुतो देवेषु वै पुरा।
सोऽस्मि भार्गव भद्रं ते कं कामं करवाणि ते॥ १३

ये त्वन्ये ब्रह्मणः पुत्रा यवीयांसस्तु ते मम।
भ्रातरः सप्त दुर्धर्षास्तेषां वंशाः प्रतिष्ठिताः॥ १४

क्रतुर्वसिष्ठः पुलहः पुलस्त्योऽत्रिस्तथाङ्गिराः।
मरीचिस्तु तथा धीमान् देवगन्धर्वसेविताः।
त्रींल्लोकान् धारयन्तीमान् देवगन्धर्वपूजिताः॥ १५

वयं तु यतिधर्माणः संयोज्यात्मानमात्मनि।
प्रजाधर्मं च कामं च व्यपहाय महामुने॥ १६

यथोत्पन्नस्तथैवाहं कुमार इति विद्धि माम्।
तस्मात् सनत्कुमारेति नामैतन्मे प्रतिष्ठितम्॥ १७

मद्भक्त्या ते तपश्चीर्णं मम दर्शनकाङ्क्षया।
एष दृष्टोऽस्मि भवता कं कामं करवाणि ते॥ १८

इत्युक्तवन्तं तमहं प्रत्यवोचं सनातनम्।
अनुज्ञातो भगवता प्रीयमाणेन भारत॥ १९

ततोऽहमेनमर्थं वै तमपृच्छं सनातनम्।
पृष्टः पितॄणां सर्गं च फलं श्राद्धस्य चानघ॥ २०

चिच्छेद संशयं भीष्म स तु देवेश्वरो मम।
स मामुवाच धर्मात्मा कथान्ते बहुवार्षिके।
रमे त्वयाहं विप्रर्षे शृणु सर्वं यथातथम्॥ २१

देवानसृजत ब्रह्मा मां यक्ष्यन्तीति भार्गव।
तमुत्सृज्य तथात्मानमयजंस्ते फलार्थिनः॥ २२

ते शप्ता ब्रह्मणा मूढा नष्टसंज्ञा दिवौकसः।
न स्म किंचिद् विजानन्ति ततो लोकोऽप्यमुह्यत॥ २३

प्राचीन कालसे ही देवताओंमें जो सनत्कुमार प्रसिद्ध हैं, मैं वही हूँ। भार्गव! तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुम्हारी किस कामनाको पूर्ण करूँ?॥ १३॥ ब्रह्माजीके जो दूसरे पुत्र हैं, वे मेरे छोटे भाई हैं। वे मेरे सात भाई परम दुर्धर्ष हैं, उनके वंश प्रतिष्ठित हैं॥ १४॥ (उनके नाम इस प्रकार हैं—) क्रतु, वसिष्ठ, पुलह, पुलस्त्य, अत्रि, अङ्गिरा और बुद्धिमान् मरीचि—इन सबकी देवता और गन्धर्व सेवा करते हैं। ये देवता और गन्धर्वोंसे पूजित ऋषि तीनों लोकोंको (अपने तपसे) धारण किये हुए हैं॥ १५॥ महामुने! हम (सनत्कुमार, सनक आदि) तो अपने आत्माको आत्मामें लीनकर प्रजा (उत्पन्न करने)-के धर्म और कामको दूर करके यतिधर्मका पालन करनेवाले हैं॥ १६॥ मैं जैसे उत्पन्न हुआ हूँ, वैसा ही कुमार हूँ। अर्थात् बालकके समान राग-द्वेष आदिसे शून्य हूँ; अतः तुम मुझे कुमार जानो। इसीलिये मेरा नाम सनत्कुमार* प्रसिद्ध है॥ १७॥ तुमने मेरा दर्शन करनेकी अभिलाषासे भक्ति (श्रद्धा)-पूर्वक तपस्या की है, अतः मैं तुम्हारे सामने प्रकट हुआ हूँ। बताओ! अब मैं तुम्हारी किस इच्छाको पूर्ण करूँ?॥ १८॥ भारत! वे सनातन कुमार सनत्कुमार जब इस प्रकार कह चुके और जब प्रसन्न होकर उन्होंने मुझे प्रश्न करनेकी आज्ञा दे दी, तब मैंने उनसे वार्तालाप किया था॥ १९॥ निष्पाप भीष्म! तब मैंने उन सनातन ऋषिसे पितरोंकी उत्पत्ति और श्राद्धके फल-सम्बन्धी विषयको लेकर ही प्रश्न किया। मेरे पूछनेपर उन देवेश्वरने मेरे संदेहको दूर कर दिया। बहुत कालसे आरम्भ की हुई कथाके अन्तमें उन धर्मात्माने मुझसे कहा—'विप्रर्षे! मैं तुम्हारे प्रश्नसे संतुष्ट हूँ। तुम इन सब प्रश्नोंका उत्तर यथार्थ रीतिसे सुनो॥ २०-२१॥ भार्गव! देवतालोग मेरी पूजा करेंगे—इस विचारसे ब्रह्माजीने उनकी रचना की, किंतु वे फलके लोभमें पड़कर ब्रह्माजीको छोड़ अपनी ही पूजामें लग गये—इन्द्रिय-तृप्तिके चक्करमें ही पड़ गये॥ २२॥ इसपर ब्रह्माजीने उन्हें शाप दे दिया, जिससे उन मोहग्रस्त देवताओंकी चेतना नष्ट हो गयी और उन्हें कुछ भी ज्ञान न रह गया। फिर तो उनका अनुसरण करनेवाला संसार भी मोहमें पड़ गया॥ २३॥

* सनत् अर्थात् निरन्तर कुमारके समान राग-द्वेष आदिसे शून्य—यह सनत्कुमार शब्दका अर्थ है।

ते भूयः प्रणताः शप्ताः प्रायाचन्त पितामहम्।
अनुग्रहाय लोकानां ततस्तानब्रवीदिदम्॥ २४

प्रायश्चित्तं चरध्वं वै व्यभिचारो हि वः कृतः।
पुत्रांश्च परिपृच्छध्वं ततो ज्ञानमवाप्स्यथ॥ २५

प्रायश्चित्तक्रियार्थं ते पुत्रान् पप्रच्छुरार्तवत्।
तेभ्यस्ते प्रयतात्मानः शशंसुस्तनयास्तदा॥ २६

प्रायश्चित्तानि धर्मज्ञा वाङ्मनःकर्मजानि वै।
शंसन्ति कुशला नित्यं चक्षुर्भ्यामपि नित्यशः॥ २७

प्रायश्चित्तार्थतत्त्वज्ञा लब्धसंज्ञा दिवौकसः।
गम्यन्तां पुत्रकाश्चेति पुत्रैरुक्ताश्च ते तदा॥ २८

अभिशप्तास्तु ते देवाः पुत्रवाक्येन निन्दिताः।
पितामहमुपागच्छन् संशयच्छेदनाय वै॥ २९

ततस्तानब्रवीद् देवो यूयं वै ब्रह्मवादिनः।
तस्माद् यदुक्तं युष्माकं तत् तथा न तदन्यथा॥ ३०

यूयं शरीरकर्तारस्तेषां देवा भविष्यथ।
ते तु ज्ञानप्रदातारः पितरो वो न संशयः॥ ३१

अन्योन्यं पितरो यूयं ते चैवेति न संशयः।
देवाश्च पितरश्चैव तद् बुध्यध्वं दिवौकसः॥ ३२

ततस्ते पुनरागम्य पुत्रानूचुर्दिवौकसः।
ब्रह्मणा च्छिन्नसंदेहाः प्रीतिमन्तः परस्परम्॥ ३३

यूयं वै पितरोऽस्माकं यैर्वयं प्रतिबोधिताः।
धर्मज्ञाः कश्च वः कामः को वरो वः प्रदीयताम्॥ ३४

यदुक्तं चैव युष्माभिस्तत् तथा न तदन्यथा।
उक्ताश्च यस्माद् युष्माभिः पुत्रका इति वै वयम्।
तस्माद् भवन्तः पितरो भविष्यन्ति न संशयः॥ ३५

योऽनिष्ट्वा तु पितॄञ्छ्राद्धैः क्रियाः काश्चित् करिष्यति।
राक्षसा दानवा नागाः फलं प्राप्स्यन्ति तस्य तत्॥ ३६

इस प्रकार शाप हो जानेपर वे फिर ब्रह्माजीके चरणोंमें जाकर गिरे और उनसे क्षमा-याचना की। तब ब्रह्माजीने लोककल्याणकी दृष्टिसे उन देवताओंसे इस प्रकार कहा—॥ २४॥ अब तुम प्रायश्चित्त करो; क्योंकि तुमने व्यभिचार (पूज्य-पूजाका व्यतिक्रम) किया है; इसलिये तुम अपने पुत्रोंसे पूछो, तब तुमलोगोंको ज्ञान प्राप्त होगा॥ २५॥ तब देवताओंने दुःखी होकर अपने पुत्रोंसे प्रायश्चित्त-कर्मके विषयमें पूछा। फिर तो वे जितात्मा पुत्र बहुत सोच-विचारकर उनसे बोले॥ २६॥ धर्म-ज्ञानमें निपुण पुरुषोंका कहना है कि वाणी, मन और कर्मसे तथा नेत्रोंसे भी सदा प्रायश्चित्त होता है॥ २७॥ अतः देवताओ! तुम प्रायश्चित्तके तत्त्वको जानकर सचेत हो जाओ! फिर पुत्रोंने उनसे कहा कि पुत्रो! अब तुम जाओ॥ २८॥ तब वे देवता पुत्रोंद्वारा पुत्र कहे जानेपर अपनी निन्दा समझते हुए तथा पुत्रोंसे भी अभिशप्त होकर अपना संशय दूर करनेके लिये ब्रह्माजीके पास पहुँचे॥ २९॥ तब ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा—तुमलोग ब्रह्मवादी हो। इसलिये उन्होंने तुमसे जो कुछ कहा है, वह ठीक ही है। इसमें कुछ भी अनुचित नहीं है॥ ३०॥ तुम तो उनके शरीरकी रचना करनेवाले देवता होगे और वे ज्ञान प्रदान करनेवाले तुम्हारे पितर होंगे—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है॥ ३१॥ देवताओ और पितरो! तुम दोनों आपसमें एक-दूसरेके पितर हो, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। स्वर्गवासियो! इस बातको तुम भलीभाँति जान लो॥ ३२॥ तब वे देवता, जिनका सारा संशय ब्रह्माजीद्वारा नष्ट हो गया था और जो परस्पर प्रीतियुक्त थे, पुनः पुत्रोंके पास आये और उनसे बोले—॥ ३३॥ तुम हमारे पितर हो, क्योंकि तुमने हमको ज्ञान प्रदान किया है, तुम धर्मज्ञ हो, तुम्हारी क्या इच्छा है? तुम्हें क्या वर दिया जाय?॥ ३४॥ तुमने जो बात कही है, वह ठीक है, इसमें कुछ अनुचित नहीं है। परंतु तुमने जो हमें '**पुत्रकाः**' कहकर सम्बोधित किया है, इस कारण तुम पितर होओगे, इसमें कुछ संदेह नहीं है॥ ३५॥ जो प्राणी श्राद्धोंद्वारा (पहले) पितरोंका पूजन किये बिना ही जो कुछ क्रियाएँ करेगा, उन क्रियाओंका फल राक्षस, दानव और सर्पोंको प्राप्त होगा॥ ३६॥

श्राद्धैराप्यायिताश्चैव पितरः सोममव्ययम्।
आप्याय्यमाना युष्माभिर्वर्द्धयिष्यन्ति नित्यदा॥ ३७

श्राद्धैराप्यायितः सोमो लोकानाप्याययिष्यति।
समुद्रपर्वतवनं जङ्गमाजङ्गमैर्वृतम्॥ ३८

श्राद्धानि पुष्टिकामाश्च ये करिष्यन्ति मानवाः।
तेभ्यः पुष्टिं प्रजाश्चैव दास्यन्ति पितरः सदा॥ ३९

श्राद्धे ये च प्रदास्यन्ति त्रीन् पिण्डान् नामगोत्रतः।
सर्वत्र वर्तमानांस्तान् पितरः सपितामहान्।
भावयिष्यन्ति सततं श्राद्धदानेन तर्पिताः॥ ४०

एवमाज्ञापितं पूर्वं ब्रह्मणा परमेष्ठिना।
इति तद्वचनं सत्यं भवत्वद्य दिवौकसः।
पुत्राश्च पितरश्चैव वयं सर्वे परस्परम्॥ ४१

सनत्कुमार उवाच

त एते पितरो देवा देवाश्च पितरस्तथा।
अन्योन्यं पितरो ह्येते देवाश्च पितरश्च ह॥ ४२

तुम दिव्य पितर हो, तुम्हारे द्वारा श्राद्धोंसे परिपुष्ट किये गये लौकिक पितर स्वयं तृप्त हो अपने अधिदेवता सोमकी वृद्धि करेंगे॥ ३७॥ श्राद्धोंसे आप्यायित होता हुआ चन्द्रमा समुद्र, पर्वत, वन और चर-अचर प्राणियोंसे भरे हुए लोकोंको आप्यायित (तृप्त) करेगा॥ ३८॥ जो मनुष्य पुष्टि पानेकी इच्छासे श्राद्ध करेंगे, पितर उनको सदा पुष्टि और संतान देंगे॥ ३९॥ जो पुरुष सर्वत्र विद्यमान पिता, पितामह और प्रपितामहको उनके नाम और गोत्रका उच्चारण कर तीन पिण्ड देंगे, श्राद्ध-दानसे तृप्त हुए वे पितर उनकी सदा वृद्धि करेंगे॥ ४०॥ परमेष्ठी ब्रह्माजीने पहले ही ऐसी आज्ञा दी है। स्वर्गवासियो! उनका वचन अब सत्य हो, हम सब परस्पर पुत्र और पितर हैं॥ ४१॥

सनत्कुमारजीने कहा—मुने! जो देवता हैं, वे ही पितर हैं और जो पितर हैं, वे ही देवता हैं। इस प्रकार ये देवता और पितर आपसमें एक-दूसरेके पिता और पूज्य हैं॥ ४२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पितृकल्पे सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पितरोंका उत्पत्तिविषयक सत्रहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १७॥

अष्टादशोऽध्यायः

पितृकल्प—मार्कण्डेय-सनत्कुमार-संवादमें पितरोंके गण, लोक, शक्ति और कन्याओंका वर्णन तथा पितरोंके प्रभावको देखनेके लिये मार्कण्डेयजीको दिव्य दृष्टिकी प्राप्ति

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तोऽहं भगवता देवदेवेन भास्वता।
सनत्कुमारेण पुनः पृष्टवान् देवमव्ययम्॥ १

संदेहममरश्रेष्ठं भगवन्तमरिंदमम्।
निबोध तन्मे गाङ्गेय निखिलं सर्वमादितः॥ २

कियन्तो वै पितृगणाः कस्मिंल्लोके प्रतिष्ठिताः।
वर्तन्ते देवप्रवरा देवानां सोमवर्द्धनाः॥ ३

मार्कण्डेयजी कहते हैं—गङ्गानन्दन भीष्म! तेजस्वी देवदेव भगवान् सनत्कुमारके इस प्रकार कहनेपर मैंने काम-क्रोधादि शत्रुओंका दमन करनेवाले उन देवश्रेष्ठ अव्यय भगवान् सनत्कुमारसे अपने जिन सारे संदेहोंको आरम्भसे पूछा था, उन्हें मुझसे सुनो॥ १-२॥ (श्राद्धके द्वारा) चन्द्रमाको पुष्ट करनेवाले तथा देवताओंके भी श्रेष्ठ देवता पितरोंके कितने गण हैं और वे किस लोकमें प्रतिष्ठित रहते हैं?॥ ३॥

सनत्कुमार उवाच

सप्तैते यजतां श्रेष्ठ स्वर्गे पितृगणाः स्मृताः।
चत्वारो मूर्तिमन्तश्च त्रयस्तेषाममूर्तयः॥ ४
तेषां लोकं विसर्गं च कीर्तयिष्यामि तच्छृणु।
प्रभावं च महत्त्वं च विस्तरेण तपोधन॥ ५
धर्ममूर्तिधरास्तेषां त्रयो ये परमा गणाः।
तेषां नामानि लोकांश्च कथयिष्यामि तच्छृणु॥ ६
लोकाः सनातना नाम यत्र तिष्ठन्ति भास्वराः।
अमूर्तयः पितृगणास्ते वै पुत्राः प्रजापतेः॥ ७
विराजस्य द्विजश्रेष्ठ वैराजा इति विश्रुताः।
यजन्ति तान् देवगणा विधिदृष्टेन कर्मणा॥ ८
एते वै योगविभ्रष्टा लोकान् प्राप्य सनातनान्।
पुनर्युगसहस्रान्ते जायन्ते ब्रह्मवादिनः॥ ९
ते तु प्राप्य स्मृतिं भूयः साङ्ख्यं योगमनुत्तमम्।
यान्ति योगगतिं सिद्धाः पुनरावृत्तिदुर्लभाम्॥ १०
एते स्युः पितरस्तात योगिनां योगवर्द्धनाः।
आप्याययन्ति ये पूर्वं सोमं योगबलेन च॥ ११
तस्माच्छ्राद्धानि देयानि योगिनां तु विशेषतः।
एष वै प्रथमः सर्गः सोमपानां महात्मनाम्॥ १२
एतेषां मानसी कन्या मेना नाम महागिरेः।
पत्नी हिमवतः श्रेष्ठा यस्या मैनाक उच्यते॥ १३
मैनाकस्य सुतः श्रीमान् क्रौञ्चो नाम महागिरिः।
पर्वतप्रवरः पुत्रो नानारत्नसमन्वितः॥ १४
तिस्रः कन्यास्तु मेनायां जनयामास शैलराट्।
अपर्णामेकपर्णां च तृतीयामेकपाटलाम्॥ १५
तपश्चरन्त्यः सुमहद् दुश्चरं देवदानवैः।
लोकान् संतापयामासुस्तास्तिस्रः स्थाणुजङ्गमान्॥ १६
आहारमेकपर्णेन एकपर्णा समाचरत्।
पाटलापुष्पमेकं च आदधावेकपाटला॥ १७

सनत्कुमारजीने कहा—याजकोंमें श्रेष्ठ मार्कण्डेय! स्वर्गमें रहनेवाले सात पितर माने गये हैं, उनमें चार तो मूर्तिमान् हैं और तीन मूर्तिरहित*॥ ४॥ तपोधन! मैं उनके लोक, सृष्टि, प्रभाव और महत्त्वका विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ, उसे सुनिये॥ ५॥ (साथ ही) धर्ममय शरीर धारण करनेवाले पितरोंके जो तीन परम गण हैं, उनके नाम और लोकोंका भी मैं वर्णन करता हूँ, उसे भी सुनिये॥ ६॥ उन पितरोंके 'सनातन' नामवाले लोक हैं, जहाँ वे तेजस्वी, भौतिक शरीरसे रहित—दिव्य रूपवाले पितृगण, जो प्रजापतिके पुत्र हैं, निवास करते हैं॥ ७॥ द्विजश्रेष्ठ! विराज प्रजापतिके पुत्र होनेके कारण वे वैराज नामसे प्रसिद्ध हैं। देवगण शास्त्रोक्त विधिसे इन वैराज पितरोंका पूजन करते हैं॥ ८॥ ये योगभ्रष्ट होनेके कारण सनातन ब्रह्मलोकमें पहुँचनेपर भी सहस्र युगोंके अन्तमें ब्रह्माजीके साथ मुक्त नहीं होते; अतः दूसरे कल्पमें (प्रजापतिसे ही) ब्रह्मवादी मुनिके रूपमें फिर प्रकट हो जाते हैं॥ ९॥ वे फिर पूर्व-कल्पकी स्मृति होनेसे परम उत्तम सांख्ययोगका अनुष्ठान करके सिद्ध हो जाते हैं और पुनरावृत्ति (जन्म-मरण)-से रहित योगगतिको प्राप्त होते हैं॥ १०॥ तात! जो पहले योगबलसे सोमको पुष्ट करते हैं, वे ही ये पितर योगियोंके योगको बढ़ानेवाले हैं॥ ११॥ इसलिये इन योगियोंके लिये विशेषरूपसे श्राद्ध करना चाहिये। यही सोमकी वृद्धि करनेवाले 'सोमपा' नामक पितरोंका प्रथम सर्ग है॥ १२॥ इन (वैराज पितरों)-की मानसी कन्याका नाम मेना है। वह महागिरि हिमाचलकी श्रेष्ठ पत्नी है। उसका पुत्र मैनाक कहा जाता है॥ १३॥ मैनाकका पुत्र महागिरि श्रीमान् क्रौञ्च (पर्वत) है, जो पर्वतोंमें श्रेष्ठ और नाना प्रकारके रत्नोंसे भरा-पूरा है॥ १४॥ पर्वतराज हिमालयने मेनाके गर्भसे तीन कन्याएँ उत्पन्न कीं, जिनके नाम थे—अपर्णा, एकपर्णा तथा तीसरी एकपाटला॥ १५॥ इन तीनों कन्याओंने ऐसी घोर तपस्याका अनुष्ठान प्रारम्भ किया, जो देवताओं और दानवोंके लिये भी दुष्कर थी, इससे उन तीनोंने स्थावर-जङ्गमसहित समस्त लोकोंको संतप्त कर दिया॥ १६॥ (उन दिनों) एकपर्णा एक ही पत्ता खाकर रह जाती थी और एकपाटला पाटला (ताम्रपुष्पी)-के एक ही पुष्पको आहाररूपमें ग्रहण करती थी॥ १७॥

* अर्थात् सुकाल, आङ्गिरस, सुस्वधा और सोमपा—ये चार मूर्तिमान् हैं। इन्हें दिव्य शरीर प्राप्त हुआ है। वैराज, अग्निष्वात्त और बर्हिषद्—ये तीन अमूर्त हैं। (नीलकण्ठीसे)

एका तत्र निराहारा तां माता प्रत्यषेधयत्।
'उ' 'मा' इति निषेधन्ती मातृस्नेहेन दुःखिता॥ १८

सा तथोक्ता तया मात्रा देवी दुश्चरचारिणी।
उमेत्येवाभवत् ख्याता त्रिषु लोकेषु सुन्दरी॥ १९

तथैव नाम्ना तेनेह विश्रुता योगधर्मिणी।
एतत् तु त्रिकुमारीकं जगत् स्थास्यति भार्गव॥ २०

तपःशरीरास्ताः सर्वास्तिस्रो योगबलान्विताः।
सर्वाश्च ब्रह्मवादिन्यः सर्वाश्चैवोर्ध्वरेतसः॥ २१

उमा तासां वरिष्ठा च ज्येष्ठा च वरवर्णिनी।
महायोगबलोपेता महादेवमुपस्थिता॥ २२

असितस्यैकपर्णा तु देवलस्य महात्मनः।
पत्नी दत्ता महाब्रह्मन् योगाचार्याय धीमते॥ २३

जैगीषव्याय तु तथा विद्धि तामेकपाटलाम्।
एते चापि महाभागे योगाचार्यावुपस्थिते॥ २४

लोकाः सोमपदा नाम मरीचेर्यत्र वै सुताः।
पितरो यत्र वर्तन्ते देवास्तान् भावयन्त्युत॥ २५

अग्निष्वात्ता इति ख्याताः सर्व एवामितौजसः।
एतेषां मानसी कन्या अच्छोदा नाम निम्नगा॥ २६

अच्छोदं नाम विख्यातं सरो यस्याः समुत्थितम्।
तया न दृष्टपूर्वास्ते पितरस्तु कदाचन॥ २७

अप्यमूर्तानथ पितॄन् सा ददर्श शुचिस्मिता।
सम्भूता मनसा तेषां पितॄन् स्वान् नाभिजानती॥ २८

व्रीडिता तेन दुःखेन बभूव वरवर्णिनी।
सा दृष्ट्वा पितरं वव्रे वसुं नामान्तरिक्षगम्॥ २९

अमावसुरिति ख्यातमायोः पुत्रं यशस्विनम्।
अद्रिकाप्सरसायुक्तं विमानेऽधिष्ठितं दिवि॥ ३०

सा तेन व्यभिचारेण मनसः कामरूपिणी।
पितरं प्रार्थयित्वान्यं योगभ्रष्टा पपात ह॥ ३१

उनमेंसे एक (अपर्णा सर्वथा) निराहार रहने लगी। तब मातृस्नेहके कारण दुःखित हो उसकी माताने उससे 'उ' 'मा' (अरी! ऐसा मत कर) कहकर (निराहार रहनेका) निषेध किया॥ १८॥ वह दुश्चर तप करनेवाली सुन्दरी देवी इस प्रकार माताद्वारा कहे जानेपर इस 'उमा' नामसे ही तीनों लोकोंमें विख्यात हो गयी॥ १९॥ उसी प्रकार वह योगधर्मका पालन करनेवाली उसी नामसे विख्यात हुई। भार्गव! इन तीन कुमारियों (-की तपःशक्ति)-से युक्त होकर ही यह जगत् स्थिर रहेगा॥ २०॥ इन तीनोंका शरीर तपोमय है, ये सब योगबलसे सम्पन्न हैं तथा ये सभी ब्रह्मवादिनी और ऊर्ध्वरेता हैं॥ २१॥ उमा उन सबमें ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, सुन्दरी तथा महान् योगबलसे सम्पन्न थीं। उनका विवाह महादेवजीसे हुआ॥ २२॥ महाब्रह्मन्! एकपर्णा बुद्धिमान् महात्मा योगाचार्य असित-देवलको पत्नीरूपमें दी गयी॥ २३॥ इसी प्रकार एकपाटला जैगीषव्यको ब्याही गयी थी, ये दोनों महाभाग्यवती कन्याएँ योगाचार्योंकी सेवामें उपस्थित हुई हैं॥ २४॥ (अब दूसरे गण अग्निष्वात्त पितरोंका वर्णन करते हैं—) पितरोंके लिये दूसरे सोमपद नामवाले लोक हैं, जहाँ मरीचि प्रजापतिके पुत्र 'पितर' होकर रहते हैं। वहाँ देवता इनकी पूजा करते हैं॥ २५॥ ये सब अमिततेजस्वी पितर अग्निष्वात्त नामसे प्रसिद्ध हैं। अच्छोदा नामकी नदी इनकी मानसी कन्या है॥ २६॥ उसीसे अच्छोद नामक प्रसिद्ध सरोवर प्रकट हुआ है। उस (नदीरूपी मानसी कन्या)-ने इन पितरोंको पहले कभी नहीं देखा था॥ २७॥ उस पवित्र मुसकानवालीने अमूर्त पितरोंको भी दिव्यदृष्टिसे देखा। पर उन्हें देखकर भी वह यह न जान सकी कि ये मेरे पिता हैं और मैं इनके मनसे उत्पन्न हुई हूँ॥ २८॥ तब वह सुन्दरी अच्छोदा उस दुःखके कारण लज्जित हो गयी। फिर उसने वसुको, जो आयुके यशस्वी पुत्र, अमावसु नामसे विख्यात, अन्तरिक्षचारी और स्वर्गमें अद्रिका अप्सराके साथ विमानमें बैठे थे, देखा और उन्हींको अपना पिता मान लिया॥ २९-३०॥ वह इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली स्त्री दूसरेको पिता बनाकर मानसिक व्यभिचारके कारण योगभ्रष्ट होकर गिरने लगी॥ ३१॥

त्रीण्यपश्यद् विमानानि पतमाना दिवश्च्युता।
त्रसरेणुप्रमाणानि सापश्यत् तेषु तान् पितॄन्॥ ३२

सुसूक्ष्मानपरिव्यक्तानग्नीनग्निष्विवाहितान्।
त्रायध्वमित्युवाचार्ता पतन्ती तानवाक्शिराः॥ ३३

तैरुक्ता सा तु मा भैषीरिति व्योम्नि व्यवस्थिता।
ततः प्रसादयामास तान् पितॄन् दीनया गिरा॥ ३४

ऊचुस्ते पितरः कन्यां भ्रष्टैश्वर्यां व्यतिक्रमात्।
भ्रष्टैश्वर्या स्वदोषेण पतसि त्वं शुचिस्मिते॥ ३५

यैः क्रियन्ते हि कर्माणि शरीरैर्दिवि दैवतैः।
तैरेव तत्कर्मफलं प्राप्नुवन्तीह देवताः॥ ३६

सद्यः फलन्ति कर्माणि देवत्वे प्रेत्य मानुषे।
तस्मात् त्वं तपसः पुत्रि प्रेत्येदं प्राप्स्यसे फलम्॥ ३७

इत्युक्ता पितृभिः सा तु पितॄन् प्रासादयत् स्वकान्।
ध्यात्वा प्रसादं ते चक्रुस्तस्याः सर्वेऽनुकम्पया॥ ३८

अवश्यं भाविनं ज्ञात्वा तेऽर्थमूचुस्ततस्तु ताम्।
अस्य राज्ञो वसोः कन्या त्वमपत्यं भविष्यसि॥ ३९

उत्पन्नस्य पृथिव्यां तु मानुषेषु महात्मनः।
कन्या च भूत्वा लोकान् स्वान् पुनः प्राप्स्यसि दुर्लभान्॥ ४०

पराशरस्य दायादं त्वं पुत्रं जनयिष्यसि।
स वेदमेकं ब्रह्मर्षिश्चतुर्धा विभजिष्यति॥ ४१

महाभिषस्य पुत्रौ द्वौ शन्तनोः कीर्तिवर्द्धनौ।
विचित्रवीर्यं धर्मज्ञं तथा चित्राङ्गदं शुभम्॥ ४२

एतानुत्पाद्य पुत्रांस्त्वं पुनर्लोकानवाप्स्यसि।
व्यतिक्रमात् पितॄणां च जन्म प्राप्स्यसि कुत्सितम्॥ ४३

अस्यैव राज्ञः कन्या त्वमद्रिकाया भविष्यसि।
अष्टाविंशे भवित्री त्वं द्वापरे मत्स्ययोनिजा॥ ४४

एवमुक्ता तु दाशेयी जाता सत्यवती तदा।
मत्स्ययोनौ समुत्पन्ना राज्ञस्तस्य वसोः सुता॥ ४५

स्वर्गसे भ्रष्ट होकर नीचेको गिरती हुई अच्छोदाने त्रसरेणुके आकारके तीन विमानोंको देखा। तदनन्तर उसने उनमें (बैठे हुए) उन पितरोंको देखा, जो अत्यन्त सूक्ष्म, स्पष्ट न दीख पड़नेवाले और अग्नियोंमें स्थापित अग्निके समान उद्दीप्त हो रहे थे। नीचे सिर करके गिरती हुई अच्छोदाने उनसे आर्त स्वरमें कहा—'मेरी रक्षा कीजिये'॥ ३२-३३ ॥ उन पितरोंने कहा—'डरो मत' उनके ऐसा कहते ही अच्छोदा आकाशमें रुक गयी और फिर दीन वाणीसे उन पितरोंको प्रसन्न करने लगी॥ ३४॥ व्यतिक्रमके कारण पुत्रीको ऐश्वर्यसे भ्रष्ट हुई देख वे पितर कहने लगे—'शुचिस्मिते! तू अपने ही दोषसे ऐश्वर्यसे भ्रष्ट होकर गिर रही है'॥ ३५॥ स्वर्गस्थ देवता जिन शरीरोंके द्वारा जैसा कर्म करते हैं, उन कर्मोंका फल वे उन शरीरोंको ही धारण करके भोगते हैं॥ ३६ ॥ देवयोनिमें दैवयोगवश बने हुए कर्म तत्काल ही फल देते हैं और मनुष्ययोनिमें किये हुए कर्मोंका फल मरनेके बाद मिला करता है, अतः पुत्रि! तू मरनेके बाद तपस्याका फल प्राप्त करेगी॥ ३७॥ पितरोंके इस प्रकार कहनेपर उसने अपने पितरोंको प्रसन्न किया। तब उन लोगोंने दयापूर्वक उसके कल्याणके विषयमें विचार किया॥ ३८ ॥ वे अवश्य होनेवाली घटनाको जानकर उससे कहने लगे—'जब यह महात्मा वसु मृत्युलोकमें मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होगा, तब तू इस राजाकी कन्या होगी। इस प्रकार इसकी कन्या बनकर तू फिर अपने दुर्लभ लोकोंको प्राप्त करेगी॥ ३९-४० ॥ तू पराशर ऋषिका वंशधर पुत्र उत्पन्न करेगी। वह ब्रह्मर्षि एक वेदको चार भागोंमें विभक्त करेगा। फिर तू (जो) महाभिष* शन्तनु नामवाले राजाकी कीर्तिको बढ़ानेवाले दो पुत्रोंको उत्पन्न करेगी, उनमेंसे एक धर्मज्ञ पुत्रका नाम विचित्रवीर्य होगा और दूसरे कल्याणमय पुत्रका नाम चित्राङ्गद॥ ४१-४२ ॥ इन पुत्रोंको उत्पन्न करके तू अपने लोकोंमें फिर आ जायगी। पितरोंका व्यतिक्रम करनेके कारण तुझे कुत्सित जन्म मिलेगा॥ ४३ ॥ तू इसी राजाके द्वारा अद्रिकाके गर्भसे कन्यारूपमें उत्पन्न होगी और अट्ठाईसवें द्वापरमें मछलीकी संतानके रूपमें प्रकट होगी॥ ४४॥ पितरोंके इस प्रकार कहनेपर वह राजा वसुकी पुत्री (बनकर) मत्स्ययोनिमें उत्पन्न हुई। वही दाशेयी (दाशराजकी पुत्री) तथा सत्यवती कहलाती है॥ ४५॥

* शन्तनु ही पूर्वजन्ममें महाभिष थे।

वैभ्राजा नाम ते लोका दिवि सन्ति सुदर्शनाः।
यत्र बर्हिषदो नाम पितरो दिवि विश्रुताः॥ ४६

तान् वै देवगणाः सर्वे यक्षगन्धर्वराक्षसाः।
नागाः सर्पाः सुपर्णाश्च भावयन्त्यमितौजसः॥ ४७

एते पुत्रा महात्मानः पुलस्त्यस्य प्रजापतेः।
महात्मनो महाभागास्तेजोयुक्तास्तपस्विनः॥ ४८

एतेषां मानसी कन्या पीवरी नाम विश्रुता।
योगा च योगिपत्नी च योगिमाता तथैव च॥ ४९

भवित्री द्वापरं प्राप्य युगं धर्मभृतां वरा।
पराशरकुलोद्भूतः शुको नाम महातपाः॥ ५०

भविष्यति युगे तस्मिन् महायोगी द्विजर्षभः।
व्यासादरण्यां सम्भूतो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन्॥ ५१

स तस्यां पितृकन्यायां पीवर्यां जनयिष्यति।
कन्यां पुत्रांश्च चतुरो योगाचार्यान् महाबलान्॥ ५२

कृष्णं गौरं प्रभुं शम्भुं कृत्वीं कन्यां तथैव च।
ब्रह्मदत्तस्य जननीं महिषीं त्वणुहस्य च॥ ५३

एतानुत्पाद्य धर्मात्मा योगाचार्यान् महाव्रतान्।
श्रुत्वा स्वजनकाद् धर्मान् व्यासादमितबुद्धिमान्॥ ५४

महायोगी ततो गन्तापुनरावर्तिनीं गतिम्।
यत्तत्पदमनुद्विग्नमव्ययं ब्रह्म शाश्वतम्॥ ५५

अमूर्तिमन्तः पितरो धर्ममूर्तिधरा मुने।
कथा यत्रेयमुत्पन्ना वृष्ण्यन्धककुलान्वया॥ ५६

सुकाला नाम पितरो वसिष्ठस्य प्रजापतेः।
निरता दिवि लोकेषु ज्योतिर्भासिषु भासुराः।
सर्वकामसमृद्धेषु द्विजास्तान् भावयन्त्युत॥ ५७

तेषां वै मानसी कन्या गौर्नाम्ना दिवि विश्रुता।
तवैव वंशे या दत्ता शुकस्य महिषी प्रिया।
एकशृङ्गेति विख्याता साध्यानां कीर्तिवर्द्धिनी॥ ५८

(अब पितरोंके तीसरे गण बर्हिषदोंका वर्णन करते हैं—) स्वर्गमें वैभ्राज* नामके दर्शनीय लोक हैं। जहाँ बर्हिषद् नामवाले द्युलोक-विख्यात पितृगण निवास करते हैं॥ ४६॥ समस्त देवगण, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, नाग, सर्प तथा अमिततेजस्वी गरुड आदि उन (बर्हिषद् नामवाले पितरों)-की उपासना करते हैं॥ ४७॥ ये बर्हिषद् नामक पितर महाभाग्यवान्, तेजस्वी, तपस्वी और महात्मा हैं तथा महान् आत्मबलसे युक्त प्रजापति पुलस्त्यके पुत्र हैं॥ ४८॥ इन (बर्हिषद् पितरों)-की मानसी कन्या पीवरी नामसे विख्यात है। पीवरी स्वयं योगिनी, योगीकी पत्नी तथा योगियोंकी माता है। धर्मधारिणी स्त्रियोंमें श्रेष्ठ यह पीवरी द्वापरमें उत्पन्न होनेवाली है। उसी युगमें पराशरके कुलमें व्यासजीके द्वारा अरणीसे आविर्भूत धूमरहित अग्निके समान प्रकाशमान्, महातपस्वी, महायोगी, द्विजश्रेष्ठ शुक उत्पन्न होंगे॥ ४९—५१॥ वे ही शुकदेव पितरोंकी इस कन्या पीवरीमें कृष्ण, गौर, प्रभु और शम्भु—इन चार महाबली योगाचार्य पुत्रों तथा ब्रह्मदत्तकी जननी और अणुहकी पत्नी कृत्वी नामवाली कन्याको उत्पन्न करेंगे॥ ५२-५३॥ वे धर्मात्मा इन महाव्रतधारी योगाचार्योंको उत्पन्न कर अपने पिता व्यासजीसे धर्मोंका रहस्य सुनेंगे। तदनन्तर अपार बुद्धिवाले महायोगी शुक अपुनरावर्तिनी गतिको प्राप्त होंगे। वह परमगति उद्वेगरहित, कभी नष्ट न होनेवाला तथा सनातन ब्रह्मपदरूप है॥ ५४-५५॥ मुने! अमूर्तिमान् पितर धर्ममय शरीर धारण करनेवाले हैं। इन्हींसे वृष्णि और अन्धक कुलोंसे सम्बन्ध रखनेवाली यह कथा आरम्भ होती है॥ ५६॥ सुकाल नामक पितर प्रजापति वसिष्ठके पुत्र हैं। वे दीप्तिमान् पितर स्वर्गमें सभी कामोपभोगोंसे परिपूर्ण तथा ज्योतिर्मय लोकोंमें निवास करते हैं। ब्राह्मणलोग उनकी आराधना करते हैं॥ ५७॥ (मार्कण्डेयजी कहते हैं—भीष्म!) इन (सुकाल नामक पितरों)-की मानसी कन्या स्वर्गमें गौ नामसे विख्यात है। वह तुम्हारे ही वंशमें दी गयी है। वह शुककी प्रिया भार्या है। साध्योंकी कीर्ति बढ़ानेवाली वह गौ (यहाँ) एकशृङ्गा नामसे प्रसिद्ध है॥ ५८॥

* विभ्राट् सूर्यनारायणका एक नाम है। उन विभ्राट् सूर्यदेवके लोक वैभ्राज कहलाते हैं।

मरीचिगर्भास्ताँल्लोकान् समाश्रित्य व्यवस्थिताः।
ये त्वथाङ्गिरसः पुत्राः साध्यैः संवर्द्धिताः पुरा॥ ५९

तान् क्षत्रियगणास्तात भावयन्ति फलार्थिनः।
तेषां तु मानसी कन्या यशोदा नाम विश्रुता॥ ६०

पत्नी सा विश्वमहतः स्नुषा वै वृद्धशर्मणः।
राजर्षेर्जननी चापि दिलीपस्य महात्मनः॥ ६१

तस्य यज्ञे पुरा गीता गाथाः प्रीतैर्महर्षिभिः।
तदा देवयुगे तात वाजिमेधे महामखे॥ ६२

अग्नेर्जन्म तथा श्रुत्वा शाण्डिल्यस्य महात्मनः।
दिलीपं यजमानं ये पश्यन्ति सुसमाहिताः।
सत्यवन्तं महात्मानं तेऽपि स्वर्गजितो नराः॥ ६३

सुस्वधा नाम पितरः कर्दमस्य प्रजापतेः।
समुत्पन्नास्तु पुलहान्महात्मानो द्विजर्षभाः॥ ६४

लोकेषु दिवि वर्तन्ते कामगेषु विहङ्गमाः।
तांश्च वैश्यगणास्तात भावयन्ति फलार्थिनः॥ ६५

तेषां वै मानसी कन्या विरजा नाम विश्रुता।
ययातेर्जननी ब्रह्मन् महिषी नहुषस्य च॥ ६६

त्रय एते गणाः प्रोक्ताश्चतुर्थं तु निबोध मे।
उत्पन्ना ये स्वधायां ते सोमपा वै कवेः सुताः।
हिरण्यगर्भस्य सुताः शूद्रास्तान् भावयन्त्युत॥ ६७

मानसा नाम ते लोका यत्र तिष्ठन्ति ते दिवि।
तेषां वै मानसी कन्या नर्मदा सरितां वरा॥ ६८

या भावयति भूतानि दक्षिणापथगामिनी।
पुरुकुत्सस्य या पत्नी त्रसद्दस्योर्जनन्यपि॥ ६९

तेषामथाभ्युपगमान्मनुस्तात युगे युगे।
प्रवर्तयति श्राद्धानि नष्टे धर्मे प्रजापतिः॥ ७०

(अब क्षत्रियोंद्वारा पूज्य आङ्गिरस पितरोंका वर्णन करते हैं—) पहले जिनका साध्योंने पोषण किया था, वे अङ्गिरा ऋषिके पुत्र आङ्गिरस पितर सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशित होनेवाले लोकोंका आश्रय लेकर रहते हैं॥ ५९॥ तात! फल चाहनेवाले क्षत्रिय लोग उन (आङ्गिरस पितरों)-का पूजन करते हैं। उन (आङ्गिरस पितरों)-की मानसी कन्या यशोदा नामसे प्रसिद्ध है॥ ६०॥ वह विश्वमहान्‌की पत्नी, वृद्धशर्माकी पुत्रवधू एवं राजर्षि महात्मा दिलीपकी माता है॥ ६१॥ तात! उस समय देवयुगमें उस (दिलीप)-के अश्वमेध नामक महायज्ञमें महर्षियोंने प्रसन्न होकर यह गाथा गायी थी— ॥ ६२॥ जो मनुष्य चित्तको एकाग्र करके शाण्डिल्यगोत्रमें उत्पन्न महात्मा अग्निके जन्मको सुनकर सत्यवादी महात्मा दिलीपको यज्ञ करते देखते हैं, वे भी स्वर्गको जीत लेंगे॥ ६३॥ कर्दम प्रजापतिके सुस्वधा नामवाले पितर हैं, जो ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ और महान् आत्मबलसे सम्पन्न हैं तथा महर्षि पुलहसे उत्पन्न हुए हैं॥ ६४॥ तात! ये आकाशमें विचरण करनेवाले (सुस्वधा संज्ञक पितर) स्वर्गमें इच्छानुसार सब कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले लोकोंमें रहते हैं। फल-कामुक वैश्यगण इनकी उपासना करते हैं॥ ६५॥ (सनत्कुमारजी कहते हैं—) ब्रह्मन्! उनकी मानसी कन्या विरजा नामसे प्रसिद्ध है। वह ययातिकी माता और नहुषकी पत्नी है॥ ६६॥ यह मैंने मनुष्यपूज्य पितरोंके तीन गणोंका वर्णन कर दिया। अब चौथे गणका वर्णन सुनो। ये पितृगण कविकी पुत्री स्वधाके गर्भसे उत्पन्न हुए पुत्र हैं और सोमपा कहलाते हैं। ये अग्निके आत्मज हैं। शूद्र इनकी उपासना करते हैं॥ ६७॥ वे स्वर्गमें जिन लोकोंमें निवास करते हैं, वे मानसलोक कहलाते हैं। उनकी मानसी कन्या नर्मदा कहलाती है, जो नदियोंमें श्रेष्ठ है॥ ६८॥ वह दक्षिणापथकी ओर बहकर प्राणियोंको पवित्र करती है। वह पुरुकुत्सकी पत्नी और त्रसद्दस्युकी माता है॥ ६९॥ तात! प्रजापति मनु प्रत्येक युगके आरम्भमें इन पितरोंको पूज्य समझकर लुप्त हुए श्राद्ध-धर्मका उद्धार करनेके लिये श्राद्धोंको फिर प्रचलित किया करते हैं॥ ७०॥

पितॄणामादिसर्गेण सर्वेषां द्विजसत्तम।
तस्मादेनं स्वधर्मेण श्राद्धदेवं वदन्ति वै॥ ७१

सर्वेषां राजतं पात्रमथ वा रजतान्वितम्।
दत्तं स्वधां पुरोधाय श्राद्धं प्रीणाति वै पितॄन्॥ ७२

सोमस्याप्यायनं कृत्वा अग्नेर्वैवस्वतस्य च।
उदगायनमप्यग्नावग्न्यभावेऽप्सु वा पुनः॥ ७३

पितॄन् प्रीणाति यो भक्त्या पितरः प्रीणयन्ति तम्।
यच्छन्ति पितरः पुष्टिं प्रजाश्च विपुलास्तथा॥ ७४

स्वर्गमारोग्यमेवाथ यदन्यदपि चेप्सितम्।
देवकार्यादपि मुने पितृकार्यं विशिष्यते॥ ७५

देवतानां हि पितरः पूर्वमाप्यायनं स्मृतम्।
शीघ्रप्रसादा ह्यक्रोधा लोकस्याप्यायनं परम्॥ ७६

स्थिरप्रसादाश्च सदा तान् नमस्यस्व भार्गव।
पितृभक्तोऽसि विप्रर्षे मद्भक्तश्च विशेषतः॥ ७७

श्रेयस्तेऽद्य विधास्यामि प्रत्यक्षं कुरु तत् स्वयम्।
दिव्यं चक्षुः सविज्ञानं प्रदिशामि च तेऽनघ॥ ७८

गतिमेतामप्रमत्तो मार्कण्डेय निशामय।
न हि योगगतिर्दिव्या पितॄणां च परा गतिः॥ ७९

त्वद्विधेनापि सिद्धेन दृश्यते मांसचक्षुषा।
स एवमुक्त्वा देवेशो मामुपस्थितमग्रतः॥ ८०

चक्षुर्दत्त्वा सविज्ञानं देवानामपि दुर्लभम्।
जगाम गतिमिष्टां वै द्वितीयोऽग्निरिव ज्वलन्॥ ८१

तन्निबोध कुरुश्रेष्ठ यन्मयासीन्निशामितम्।
प्रसादात् तस्य देवस्य दुर्ज्ञेयं भुवि मानुषैः॥ ८२

द्विजसत्तम! (यम) इन सब सात प्रकारके पितरोंके आदिमें उत्पन्न होते हैं और ये अपने धर्मके प्रवर्तक हैं। इस कारण इनको श्राद्धदेव कहते हैं॥ ७१॥

इन सब पितरोंको चाँदीका या चाँदी मिला हुआ पात्र तथा '**स्वधा पितृभ्यः**' कहकर दिया हुआ श्राद्ध तृप्ति एवं प्रसन्नता प्रदान करता है॥ ७२॥ जो मनुष्य सोम, अग्नि और वैवस्वत यमका आप्यायन करके फिर अग्निमें उदगायन करता है अथवा अग्निके अभावमें जलमें उदगायन करके पितरोंको भक्तिपूर्वक तृप्त करता है, उसे पितर तृप्त करते हैं तथा बहुत-सी संतान, पुष्टि, स्वर्ग एवं आरोग्य और समस्त अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करते हैं। मुने! पितृकार्य देवकार्यसे भी श्रेष्ठ है॥ ७३—७५॥ पितर आप्यायन (तृप्त) करनेपर देवताओंसे भी पहले प्रसन्न हो जाते हैं। ये पितर शीघ्र प्रसन्न होनेवाले तथा क्रोधरहित हैं और लोकोंको प्रसन्न रखनेवाले हैं॥ ७६॥ (सनत्कुमारजी मार्कण्डेय ऋषिसे कहते हैं—) भार्गव! पितरोंका प्रसाद सदा स्थिर रहनेवाला होता है, इसलिये तुम उन्हें प्रणाम किया करो। विप्रर्षे! तुम पितरोंके भक्त हो और मेरे तो बहुत बड़े भक्त हो॥ ७७॥ निष्पाप महर्षे! इसलिये मैं आज तुम्हारा कल्याण करूँगा, उसे तुम स्वयं प्रत्यक्ष देख लो। मैं तुम्हें विज्ञानसहित दिव्य नेत्र प्रदान करता हूँ॥ ७८॥ मार्कण्डेय! अब तुम (श्राद्धके फलरूपमें मिलनेवाली) इस गतिको सावधान होकर देखो। तुम-जैसा सिद्ध पुरुष भी इस मांसमय चक्षुसे योगियोंकी दिव्य गतिको और पितरोंकी परा गतिको नहीं देख सकता। यों कहकर वे देवेश सामने खड़े हुए मुझको देवताओंके लिये भी दुर्लभ विज्ञानसहित दिव्य नेत्र देकर द्वितीय अग्निके समान प्रकाशित होते हुए अपने इष्ट-स्थानको चले गये॥ ७९—८१॥ कुरुश्रेष्ठ भीष्म! उन देवताकी कृपासे मैंने जो घटना देखी थी, उसे तुम सुनो। पृथिवीमें उस घटनाका जानना मनुष्योंके लिये महा कठिन है॥ ८२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पितृकल्पे अष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पितृकल्पविषयक अठारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

पितृकल्प—भरद्वाजके पुत्रोंकी कथा, योगभ्रष्ट पुरुषोंकी गति, योगसिद्धिके अधिकारी पुरुषोंके लक्षण तथा मार्कण्डेय-सनत्कुमार-संवादकी समाप्ति

मार्कण्डेय उवाच

आसन् पूर्वयुगे तात भरद्वाजात्मजा द्विजाः।
योगधर्ममनुप्राप्य भ्रष्टा दुश्चरितेन वै॥ १

अपभ्रंशमनुप्राप्ता योगधर्मापचारिणः।
महतः सरसः पारे मानसस्य विसंज्ञिताः॥ २

तमेवार्थमनुध्यायन्तो नष्टमप्स्विव मोहिताः।
अप्राप्य योगं ते सर्वे संयुक्ताः कालधर्मणा॥ ३

ततस्ते योगविभ्रष्टा देवेषु सुचिरोषिताः।
जाताः कौशिकदायादाः कुरुक्षेत्रे नरर्षभाः॥ ४

हिंसया विहरिष्यन्तो धर्मं पितृकृतेन वै।
ततस्ते पुनराजातिं भ्रष्टाः प्राप्स्यन्ति कुत्सिताम्॥ ५

तेषां पितृप्रसादेन पूर्वजातिकृतेन वै।
स्मृतिरुत्पत्स्यते प्राप्य तां तां जातिं जुगुप्सिताम्॥ ६

ते धर्मचारिणो नित्यं भविष्यन्ति समाहिताः।
ब्राह्मण्यं प्रतिलप्स्यन्ति ततो भूयः स्वकर्मणा॥ ७

ततश्च योगं प्राप्स्यन्ति पूर्वजातिकृतं पुनः।
भूयः सिद्धिमनुप्राप्ताः स्थानं प्राप्स्यन्ति शाश्वतम्॥ ८

एवं धर्मे च ते बुद्धिर्भविष्यति पुनः पुनः।
योगधर्मे च नितरां प्राप्स्यसे बुद्धिमुत्तमाम्॥ ९

योगो हि दुर्लभो नित्यमल्पप्रज्ञैः कदाचन।
लब्ध्वापि नाशयन्त्येनं व्यसनैः कटुतामिताः।
अधर्मेष्वेव वर्तन्ते प्रार्दयन्ते गुरूनपि॥ १०

मार्कण्डेयजी कहते हैं— (सनत्कुमारजीने अन्तर्धान होनेसे पहले मुझसे इस प्रकार कहा—) तात! पूर्वयुगमें कुछ ब्राह्मण रहते थे, जो भरद्वाजके पुत्र थे। वे योगधर्मका सेवन करते-करते दुराचारमें फँस जानेके कारण (स्वर्गसे) भ्रष्ट हो गये थे॥ १॥ वे योगधर्मका उल्लङ्घन करनेवाले ब्राह्मण अचेतन-से होकर महान् मानसरोवरके तटपर आकर गिरे॥ २॥ वे सभी जलमें डूबते हुए पुरुषके समान मोहमें पड़ गये और उसी योगविषयका विचार करते-करते योगके तत्त्वको बिना पाये ही मर गये॥ ३॥ अब वे योगभ्रष्ट नरश्रेष्ठ भरद्वाज-पुत्र, जो दीर्घकालतक देवताओंमें रह चुके हैं, कुरुक्षेत्रमें कौशिकके पुत्र बनकर उत्पन्न होंगे॥ ४॥ वे (ब्राह्मण होनेपर भी) पितरोंके लिये धर्म (श्राद्ध)-के बहाने हिंसा करेंगे, फिर वह हिंसारूपी पाप करनेके कारण भ्रष्ट होकर कुत्सित योनिमें उत्पन्न होंगे॥ ५॥ परंतु पूर्वजन्मके पितरोंकी कृपाके कारण उस-उस निन्दित योनिमें उत्पन्न होनेपर भी उनको पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रहेगी॥ ६॥ वे प्रत्येक जन्ममें धर्मात्मा रहकर अपने चित्तको सावधान रखेंगे और (अन्तमें) अपने कर्मवश फिर ब्राह्मणत्वको प्राप्त कर लेंगे॥ ७॥ उस जन्ममें वे पुनः अपने पूर्वजन्मके योगको पायेंगे और फिर सिद्धिको पाकर शाश्वत स्थानको प्राप्त करेंगे॥ ८॥ इसी प्रकार तुम्हारी बुद्धि भी बारम्बार धर्ममें ही लगी रहेगी और तुम्हें योगधर्मके विषयमें सब प्रकारसे उत्तम बुद्धि प्राप्त होगी॥ ९॥ अल्पबुद्धि मनुष्योंको योगसिद्धि मिलना सदा दुर्लभ है। उन्हें कदाचित् योगसिद्धि मिल भी जाय तो वे (मृगया आदि) व्यसनोंसे क्रूर होकर उसे नष्ट कर डालते हैं। वे अधर्मके कामोंमें ही लगे रहते हैं तथा अपने गुरुजनोंको भी कष्टमें डालते रहते हैं॥ १०॥

याचन्ते न त्वयाच्यानि रक्षन्ति शरणागतान्।
नावजानन्ति कृपणान् माद्यन्ते न धनोष्मणा॥ ११

युक्ताहारविहाराश्च युक्तचेष्टाः स्वकर्मसु।
ध्यानाध्ययनयुक्तांश्च न नष्टानुगवेषिणः॥ १२

नोपभोगरता नित्यं न मांसमधुभक्षणाः।
न च कामपरा नित्यं न विप्रासेविनस्तथा॥ १३

नानार्यसंकथासक्ता नालस्योपहतास्तथा।
नात्यन्तमानसंसक्ता गोष्ठीषु निरतास्तथा॥ १४

प्राप्नुवन्ति नरा योगं योगो वै दुर्लभो भुवि।
प्रशान्ताश्च जितक्रोधा मानाहङ्कारवर्जिताः॥ १५

कल्याणभाजनं ये तु ते भवन्ति यतव्रताः।
एवंविधास्तु ते तात ब्राह्मणा ह्यभवंस्तदा॥ १६

स्मरन्ति ह्यात्मनो दोषं प्रमादकृतमेव तु।
ध्यानाध्ययनयुक्ताश्च शान्ते वर्त्मनि संस्थिताः॥ १७

योगधर्माद्धि धर्मज्ञ न धर्मोऽस्ति विशेषवान्।
वरिष्ठः सर्वधर्माणां तमेवाचर भार्गव॥ १८

कालस्य परिणामेन लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
तत्परः प्रयतः श्राद्धी योगधर्ममवाप्स्यसि॥ १९

इत्युक्त्वा भगवान् देवस्तत्रैवान्तरधीयत।
अष्टादशैव वर्षाणि त्वेकाहमिव मेऽभवत्॥ २०

उपासतस्तं देवेशं वर्षाण्यष्टादशैव मे।
प्रसादात् तस्य देवस्य न ग्लानिरभवत् तदा॥ २१

न क्षुत्पिपासे कालं वा जानामि स्म तदानघ।
पश्चाच्छिष्यसकाशात् तु कालः संविदितो मया॥ २२

जो अयाच्यसे याचना नहीं करते, शरणागतोंकी रक्षा करते हैं, कृपण (दीन) पुरुषोंका अपमान नहीं करते तथा जो धनकी गर्मीसे मदमत्त नहीं होते, जिनका आहार-विहार शास्त्रानुकूल होता है, जो अपने कर्मोंमें शास्त्रानुसार चेष्टा करते हैं, ईश्वरके ध्यान तथा स्वाध्यायमें परायण रहते हैं, नष्ट हुई वस्तुको पानेके लिये चोर आदिको नहीं ढूँढ़ते, सर्वदा भोगमें ही लीन नहीं रहते, सर्वदा मधु-मांसका भक्षण नहीं करते और सर्वदा कामपरायण भी नहीं रहते तथा जो सर्वदा ब्राह्मणोंकी सेवा करते हैं, अनार्य पुरुषोंकी बातोंमें आसक्त नहीं होते, जिनको कभी आलस्य नहीं सताता, जो अत्यन्त अभिमानमें आसक्त नहीं रहते, सदा आत्ममीमांसा करनेमें लगे रहते हैं, ऐसे शान्त चित्तवाले, क्रोधको जीतनेवाले, मान तथा अहंकाररहित मनुष्योंको योगसिद्धि मिलती है; क्योंकि पृथ्वीमें योगकी प्राप्ति अति दुर्लभ है॥ ११—१५॥ ऐसे व्रतोंका पालन करनेवाले मनुष्य ही कल्याणके पात्र होते हैं। तात! वे (भरद्वाजपुत्र) ऐसे ही ब्राह्मण बनकर उत्पन्न हुए हैं॥ १६॥ वे अपने प्रमादवश हुए दोषका स्मरण करते रहते हैं और ध्यान तथा स्वाध्यायमें लगे रहकर शान्त मार्गमें स्थित रहते थे॥ १७॥ धर्मज्ञ भार्गव! योगधर्मसे श्रेष्ठ और कोई धर्म नहीं है। वह सभी धर्मोंसे श्रेष्ठ है, अतः तुम उसीका आचरण करो॥ १८॥ यदि तुम श्रद्धापूर्वक प्रयत्नशील एवं योगधर्ममें परायण रहकर हलका भोजन करते हुए जितेन्द्रिय रहोगे तो कालक्रमसे तुम्हें योगसिद्धि प्राप्त हो जायगी॥ १९॥ (मार्कण्डेयजी कहते हैं कि) इतनी बातें कहकर भगवान् सनत्कुमार वहीं अन्तर्धान हो गये। ये (सनत्कुमारकी सेवामें बीते हुए) अठारह वर्ष मुझे एक दिनके समान प्रतीत हुए॥ २०॥ अठारह वर्षतक उन देवेशकी उपासना करते रहनेपर भी उनकी कृपाके कारण उस समय मुझे कुछ भी ग्लानि नहीं हुई॥ २१॥ निष्पाप! मुझे भूख, प्यास और समय आदि कुछ न मालूम हुआ। बादमें शिष्यके द्वारा मुझे समयका पता लगा॥ २२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पितृकल्पे एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पितृकल्पविषयक उन्नीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १९॥

विंशोऽध्यायः

पितृकल्प—ब्रह्मदत्त और उग्रायुधके वंश तथा पूजनीया चिड़ियाद्वारा शुक्रनीतिका वर्णन

मार्कण्डेय उवाच

तस्मिन्नन्तर्हिते देवे वचनात् तस्य वै प्रभोः।
चक्षुर्दिव्यं सविज्ञानं प्रादुरासीत् तदा मम॥ १

ततोऽहं तानपश्यं वै ब्राह्मणान् कौशिकात्मजान्।
आपगेय कुरुक्षेत्रे यानुवाच विभुर्मम॥ २

ब्रह्मदत्तोऽभवद् राजा यस्तेषां सप्तमो द्विजः।
पितृवर्तीति विख्यातो नाम्ना शीलेन कर्मणा॥ ३

शुकस्य कन्या कृत्वी तं जनयामास पार्थिवम्।
अणुहात् पार्थिवश्रेष्ठात् काम्पिल्ये नगरोत्तमे॥ ४

भीष्म उवाच

यथोवाच महाभागो मार्कण्डेयो महातपाः।
तस्य वंशमहं राजन् कीर्तयिष्यामि तच्छृणु॥ ५

युधिष्ठिर उवाच

अणुहः कस्य वै पुत्रः कस्मिन् काले बभूव ह।
राजा धर्मभृतां श्रेष्ठो यस्य पुत्रो महायशाः॥ ६

ब्रह्मदत्तो नरपतिः किंवीर्यः स बभूव ह।
कथं च सप्तमस्तेषां स बभूव नराधिपः॥ ७

न ह्यल्पवीर्याय शुको भगवाँल्लोकपूजितः।
कन्यां प्रदद्याद् योगात्मा कृत्वीं कीर्तिमतीं प्रभुः॥ ८

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण महाद्युते।
ब्रह्मदत्तस्य चरितं तद् भवान् वक्तुमर्हति॥ ९

यथा च वर्तमानास्ते संसारे च द्विजातयः।
मार्कण्डेयेन कथितास्तद् भवान् प्रब्रवीतु मे॥ १०

भीष्म उवाच

प्रतीपस्य तु राजर्षेस्तुल्यकालो नराधिपः।
पितामहस्य मे राजन् बभूवेति मया श्रुतम्॥ ११

मार्कण्डेयजी बोले—उन सनत्कुमारदेवके अन्तर्धान होनेपर उन्हीं प्रभुके वरदानसे मुझे दिव्य विज्ञानमय नेत्र प्राप्त हो गया॥ १॥ गङ्गानन्दन भीष्म! तब मैंने उन कौशिकपुत्र ब्राह्मणोंको कुरुक्षेत्रमें देखा, जिनका विभु सनत्कुमारजीने मुझसे वर्णन किया था॥ २॥ उन कुशिकपुत्रोंमें जो सातवाँ पितृवर्ती नामसे विख्यात ब्राह्मण था, वह अपने शील और कर्मसे (सातवें जन्ममें) ब्रह्मदत्त नामक राजा हुआ॥ ३॥ काम्पिल्य नामक श्रेष्ठ नगरमें पार्थिवश्रेष्ठ अणुहके यहाँ शुककी कन्या कृत्वीके उदरसे राजा ब्रह्मदत्त उत्पन्न हुआ॥ ४॥

भीष्मजी बोले—राजन्! महाभाग्यवान् एवं महातपस्वी मार्कण्डेयजीने जिस प्रकार मुझसे कहा था, (उसी तरह) मैं उस राजाके वंशका वर्णन करूँगा, तुम सुनो—॥ ५॥

युधिष्ठिरने पूछा—(पितामह!) जिनके पुत्र महायशस्वी (ब्रह्मदत्त) थे, धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ वे राजा अणुह किनके पुत्र थे और किस समय उत्पन्न हुए थे?॥ ६॥ राजा ब्रह्मदत्तका पराक्रम कैसा था? और वे उन (भरद्वाजपुत्रों)-में सातवें कैसे थे?॥ ७॥ लोकोंमें पूजनीय योगकी मूर्ति सर्वशक्तिसम्पन्न भगवान् शुकदेवजीने अपनी कीर्तिमती कन्या कृत्वीको किसी साधारण शक्तिवाले पुरुषके हाथमें नहीं दिया होगा॥ ८॥ महाद्युते! मैं ब्रह्मदत्तके इस चरित्रको विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ, अतः आप उसका वर्णन कीजिये॥ ९॥ मार्कण्डेयजीने उन द्विजोंके संसारमें विचरण करनेका वृत्तान्त जिस प्रकार कहा हो, उसे आप उसी भाँति मुझसे कहिये॥ १०॥

भीष्मजीने कहा—राजन्! मैंने सुना है कि राजा ब्रह्मदत्त मेरे पितामह राजर्षि प्रतीपके समयमें ही हुए थे॥ ११॥

ब्रह्मदत्तो महाभागो योगी राजर्षिसत्तमः।
रुतज्ञः सर्वभूतानां सर्वभूतहिते रतः॥ १२
सखाऽऽस गालवो यस्य योगाचार्यो महायशाः।
शिक्षामुत्पाद्य तपसा क्रमो येन प्रवर्तितः।
कण्डरीकश्च योगात्मा तस्यैव सचिवो महान्॥ १३
जात्यन्तरेषु सर्वेषु सखायः सर्व एव ते।
सप्तजातिषु सप्तैव बभूवुरमितौजसः।
यथोवाच महाभागो मार्कण्डेयो महातपाः॥ १४
तस्य वंशमहं राजन् कीर्तयिष्यामि तच्छृणु।
ब्रह्मदत्तस्य पौराणां पौरवस्य महात्मनः॥ १५
बृहत्क्षत्रस्य दायादः सुहोत्रो नाम धार्मिकः।
सुहोत्रस्यापि दायादो हस्ती नाम बभूव ह॥ १६
तेनेदं निर्मितं पूर्वं हस्तिनापुरमुत्तमम्।
हस्तिनश्चापि दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः॥ १७
अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढस्तथैव च।
अजमीढस्य धूमिन्यां जज्ञे बृहदिषुर्नृप।
बृहद्धनुर्बृहदिषोः पुत्रस्तस्य महायशाः॥ १८
बृहद्धर्मेति विख्यातो राजा परमधार्मिकः।
सत्यजित् तनयस्तस्य विश्वजित् तस्य चात्मजः॥ १९
पुत्रो विश्वजितश्चापि सेनजित् पृथिवीपतिः।
पुत्राः सेनजितश्चासंश्चत्वारो लोकविश्रुताः॥ २०
रुचिरः श्वेतकेतुश्च महिम्नारस्तथैव च।
वत्सश्चावन्तको राजा यस्यैते परिवत्सकाः॥ २१
रुचिरस्य तु दायादः पृथुसेनो महायशाः।
पृथुसेनस्य पारस्तु पारान्नीपस्तु जज्ञिवान्॥ २२
नीपस्यैकशतं तात पुत्राणाममितौजसाम्।
महारथानां राजेन्द्र शूराणां बाहुशालिनाम्।
नीपा इति समाख्याता राजानः सर्व एव ते॥ २३
तेषां वंशकरो राजा नीपानां कीर्तिवर्धनः।
काम्पिल्ये समरो नाम सचेष्टसमरोऽभवत्॥ २४
समरस्य परः पारः सदश्व इति ते त्रयः।
पुत्राः परमधर्मज्ञाः परपुत्रः पृथुर्बभौ॥ २५

ब्रह्मदत्त सब प्राणियोंके हितमें लगे रहनेवाले, राजर्षियोंमें श्रेष्ठ, महाभाग्यवान् और योगी थे। वे सभी प्राणियोंकी बोली समझ लेते थे॥ १२॥ जिन्होंने तपोबलसे वेदाङ्गभूत शिक्षाका आविर्भाव करके वैदिक संहिताके मन्त्रोंका क्रमपाठ प्रचलित किया था, वे महायशस्वी योगाचार्य गालव ब्रह्मदत्तके सखा थे तथा योगात्मा कण्डरीक इन्हीं राजाके प्रधान मन्त्री थे॥ १३॥ इन सात भरद्वाजपुत्रोंके सात जातियोंमें सात बार जन्म हुए थे और ये सभी अमिततेजस्वी द्विज उन सम्पूर्ण जन्मान्तरोंमें एक-दूसरेके मित्र बने रहते थे। राजन्! महाभाग्यवान् एवं महातपस्वी मार्कण्डेयजीने जिस प्रकार मुझसे कहा था, उसी प्रकार मैं पुरुवंशियों एवं पुरुवंशी महात्मा ब्रह्मदत्तके वंशका वर्णन करता हूँ, उसे सुनो॥ १४-१५॥ बृहत्क्षत्रके पुत्र धार्मिक सुहोत्र हुए और सुहोत्रके भी पुत्र हस्ती हुए॥ १६॥ राजन्! उन्होंने ही इस उत्तम हस्तिनापुरको बसाया था। हस्तीके भी अजमीढ, द्विमीढ और पुरुमीढ नामवाले परम धार्मिक तीन पुत्र हुए। अजमीढके धूमिनी नामकी पत्नीके गर्भसे बृहदिषु उत्पन्न हुए और बृहदिषुके पुत्र महायशस्वी बृहद्धनु हुए॥ १७-१८॥ वे परम धर्मात्मा राजा बृहद्धर्मा नामसे भी प्रसिद्ध थे। उनके पुत्र सत्यजित् हुए और सत्यजित्के पुत्र विश्वजित् हुए॥ १९॥ विश्वजित्के भी पुत्र राजा सेनजित् हुए और सेनजित्के चार पुत्र हुए, जो समस्त विश्वमें विख्यात थे॥ २०॥ राजा (सेनजित्) अवन्तीमें रहते थे। उनके रुचिर, श्वेतकेतु, महिम्नार और वत्स नामक (चार) पुत्र थे॥ २१॥ रुचिरके पुत्र महायशस्वी पृथुसेन हुए। पृथुसेनके पार और पारके पुत्र नीप हुए॥ २२॥ तात! नीपके परम पराक्रमी, बाहुशाली एवं महारथी सौ वीर पुत्र उत्पन्न हुए। राजेन्द्र! वे सब नीपवंशी राजा कहलाते थे॥ २३॥ काम्पिल्य नगरमें उन नीपोंके वंशप्रवर्तक एवं कीर्तिवर्धन राजा समर हुए। उनको संग्राम बहुत प्रिय था॥ २४॥ समरके पर, पार और सदश्व—ये तीन परम धर्मज्ञ पुत्र हुए। परके पुत्र पृथु हुए॥ २५॥

पृथोस्तु सुकृतो नाम सुकृतेनेह कर्मणा।
जज्ञे सर्वगुणोपेतो विभ्राजस्तस्य चात्मजः॥ २६
विभ्राजस्य तु पुत्रोऽभूदणुहो नाम पार्थिवः।
बभौ शुकस्य जामाता कृत्वीभर्ता महायशाः॥ २७
पुत्रोऽणुहस्य राजर्षिर्ब्रह्मदत्तोऽभवत् प्रभुः।
योगात्मा तस्य तनयो विष्वक्सेनः परंतपः॥ २८
विभ्राजः पुनरायातः स्वकृतेनेह कर्मणा।
ब्रह्मदत्तस्य पुत्रोऽन्यः सर्वसेन इति श्रुतः॥ २९
चक्षुषी तस्य निर्भिन्ने पक्षिण्या पूजनीयया।
सुचिरोषितया राजन् ब्रह्मदत्तस्य वेश्मनि॥ ३०
अथास्य पुत्रस्त्वपरो ब्रह्मदत्तस्य जज्ञिवान्।
विष्वक्सेन इति ख्यातो महाबलपराक्रमः॥ ३१
विष्वक्सेनस्य पुत्रोऽभूद् दण्डसेनो महीपतिः।
भल्लाटोऽस्य कुमारोऽभूद् राधेयेन हतः पुरा॥ ३२
दण्डसेनात्मजः शूरो महात्मा कुलवर्द्धनः।
भल्लाटपुत्रो दुर्बुद्धिरभवच्च युधिष्ठिर॥ ३३
स तेषामभवद् राजा नीपानामन्तकृन्नृप।
तेन उग्रायुधस्यार्थे सर्वे नीपा विनाशिताः॥ ३४
उग्रायुधो मदोत्सिक्तो मया विनिहतो युधि।
दर्पान्वितो दर्परुचिः सततं चानये रतः॥ ३५

युधिष्ठिर उवाच

उग्रायुधः कस्य सुतः कस्मिन् वंशेऽथ जज्ञिवान्।
किमर्थं चैव भवता निहतस्तद् ब्रवीहि मे॥ ३६

भीष्म उवाच

अजमीढस्य दायादो विद्वान् राजा यवीनरः।
धृतिमांस्तस्य पुत्रस्तु तस्य सत्यधृतिः सुतः॥ ३७
जज्ञे सत्यधृतेः पुत्रो दृढनेमिः प्रतापवान्।
दृढनेमिसुतश्चापि सुधर्मा नाम पार्थिवः॥ ३८
आसीत् सुधर्मणः पुत्रः सार्वभौमः प्रजेश्वरः।
सार्वभौम इति ख्यातः पृथिव्यामेकराड् विभुः॥ ३९

संसारमें पुण्यकर्म (सुकृत) करनेके कारण पृथुके सर्वगुणसम्पन्न सुकृत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और सुकृतके पुत्र विभ्राज हुए॥ २६॥ विभ्राजके पुत्र अणुह हुए। वे महायशस्वी राजा शुकके जामाता और कृत्वीके भर्ताके रूपमें सुशोभित हुए॥ २७॥ अणुहके पुत्र राजर्षि ब्रह्मदत्त हुए। उनके पुत्र योगात्मा विष्वक्सेन हुए, जो बड़े प्रभावशाली और शत्रुओंको संतप्त करनेवाले थे। विभ्राज अपने कर्मके कारण ब्रह्मदत्तके पुत्र (विष्वक्सेन) बनकर फिर उत्पन्न हुए थे। ब्रह्मदत्तके दूसरे पुत्र सर्वसेन नामसे प्रसिद्ध थे। राजन्! उनके दोनों नेत्रोंको बहुत समयसे ब्रह्मदत्तके महलमें रहनेवाली पूजनीया नामकी पक्षिणी (चिड़िया)-ने फोड़ दिया था॥ २८—३०॥ तदनन्तर ब्रह्मदत्तके दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ। यह महाबली एवं पराक्रमी (विभ्राजावतार) विष्वक्सेनके नामसे प्रसिद्ध था॥ ३१॥ विष्वक्सेनके पुत्र राजा दण्डसेन हुए। इनका पुत्र भल्लाट हुआ, जिसे राधापुत्र कर्णने मार डाला था॥ ३२॥ युधिष्ठिर! दण्डसेनका पुत्र भल्लाट शूरवीर, महात्मा और कुलको बढ़ानेवाला था; परंतु भल्लाटका पुत्र बड़ा दुर्बुद्धि निकला॥ ३३॥ राजन्! वह उन नीपोंका अन्त करनेवाला राजा हुआ। उसने उग्रायुधके लिये समस्त नीपोंका विनाश करवा दिया था॥ ३४॥ निरन्तर अनीतिमें लगे रहनेवाले और दर्पमें रुचि रखनेवाले उस अभिमानी मदोन्मत्त उग्रायुधको मैंने ही युद्धमें मार डाला था॥ ३५॥

युधिष्ठिरने पूछा—(दादाजी!) उग्रायुध किसका पुत्र था, किस वंशमें उत्पन्न हुआ था और आपने उसे क्यों मार डाला? यह मुझे बताइये॥ ३६॥

भीष्मजीने कहा—अजमीढके पुत्र विद्वान् राजा यवीनर थे। उनके पुत्र धृतिमान् हुए और धृतिमान्के पुत्र सत्यधृति थे॥ ३७॥ सत्यधृतिके प्रतापी पुत्र दृढनेमि हुए। दृढनेमिके पुत्र राजा सुधर्मा थे॥ ३८॥ सुधर्माके पुत्र प्रजापालक सार्वभौम हुए, जो समस्त पृथ्वीके एकच्छत्र सम्राट् थे। इसीलिये सार्वभौम नामसे प्रसिद्ध हुए थे॥ ३९॥

तस्यान्ववाये महति महान् पौरवनन्दनः।
महतश्चापि पुत्रस्तु राजा रुक्मरथः स्मृतः॥ ४०
पुत्रो रुक्मरथस्यापि सुपार्श्वो नाम पार्थिवः।
सुपार्श्वतनयश्चापि सुमतिर्नाम धार्मिकः॥ ४१
सुमतेरपि धर्मात्मा संनतिर्नाम वीर्यवान्।
तस्य वै संनतेः पुत्रः कृतो नाम महाबलः॥ ४२
शिष्यो हिरण्यनाभस्य कौशलस्य महात्मनः।
चतुर्विंशतिधा तेन सप्राच्याः सामसंहिताः॥ ४३
स्मृतास्ते प्राच्यसामानः कार्तयो नाम सामगाः।
कार्तिरुग्रायुधः सोऽथ वीरः पौरवनन्दनः॥ ४४
बभूव येन विक्रम्य पृषतस्य पितामहः।
नीपो नाम महातेजाः पञ्चालाधिपतिर्हतः॥ ४५
उग्रायुधस्य दायादः क्षेम्यो नाम महायशाः।
क्षेम्यात् सुवीरो नृपतिः सुवीरात् तु नृपञ्जयः॥ ४६
नृपञ्जयाद् बहुरथ इत्येते पौरवाः स्मृताः।
स चाप्युग्रायुधस्तात दुर्बुद्धिरभवत् तदा॥ ४७
प्रवृद्धचक्रो बलवान् नीपान्तकरणो महान्।
स दर्पपूर्णो हत्वाऽऽजौ नीपानन्यांश्च पार्थिवान्॥ ४८
पितर्युपरते मह्यं श्रावयामास किल्बिषम्।
माममात्यैः परिवृतं शयानं धरणीतले॥ ४९
उग्रायुधस्य राजेन्द्र दूतोऽभ्येत्य वचोऽब्रवीत्।
अद्य त्वं जननीं भीष्म गन्धकालीं यशस्विनीम्।
स्त्रीरत्नं मम भार्यार्थे प्रयच्छ कुरुपुङ्गव॥ ५०
एवं राज्यं च ते स्फीतं धनानि च न संशयः।
प्रदास्यामि यथाकाममहं वै रत्नभाग् भुवि॥ ५१
मम प्रज्वलितं चक्रं निशम्येदं सुदुर्जयम्।
शत्रवो विद्रवन्त्याजौ दर्शनादेव भारत॥ ५२
राष्ट्रस्येच्छसि चेत् स्वस्ति प्राणानां वा कुलस्य वा।
शासने मम तिष्ठस्व न हि ते शान्तिरन्यथा॥ ५३
अधः प्रस्तारशयने शयानस्तेन चोदितः।
दूतान्तर्हितमेतद् वै वाक्यमग्निशिखोपमम्॥ ५४

उनके महनीय वंशमें पौरवोंको प्रसन्न करनेवाले महान् नामक राजा हुए। महान्के पुत्र राजा रुक्मरथ हुए॥ ४०॥ रुक्मरथके पुत्र राजा सुपार्श्व हुए। सुपार्श्वके पुत्र सुमति हुए, जो बड़े धार्मिक थे॥ ४१॥ सुमतिके पुत्र संनति हुए, जो वीर्यवान् और धर्मात्मा थे। उन संनतिके पुत्र महाबली कृत हुए॥ ४२॥ वे कोशलदेशीय महात्मा हिरण्यनाभके शिष्य थे। उन्होंने प्राचीन साम-संहिताके चौबीस विभाग किये थे, जो प्राच्यसाम कहलाते हैं और उन सामोंका गान करनेवाले कीर्ति-सामग कहे जाते हैं। इन्हीं कृतके पुत्र पौरवनन्दन वीर उग्रायुध थे, जिन्होंने अपने पराक्रमसे पाञ्चालोंके स्वामी पृषतके पितामह महातेजस्वी नीपको मार डाला था॥ ४३—४५॥ उग्रायुधके पुत्र महायशस्वी क्षेम्य हुए। क्षेम्यके पुत्र राजा सुवीर हुए और सुवीरके पुत्र नृपञ्जय हुए। नृपञ्जयके पुत्र बहुरथ हुए वे ही पौरव कहलाते हैं। तात! वे उग्रायुध बड़े दुष्ट स्वभाववाले और बलवान् थे। उनका महान् चक्र चलता था। उन्होंने नीपोंका घोर संहार करा डाला। वे नीपों तथा दूसरे राजाओंका युद्धमें वध करके घमंडसे भर गये॥ ४६—४८॥ जिस समय मेरे पिता मर गये थे और मैं मन्त्रियोंसे घिरा हुआ पृथ्वीपर शयन करता था, उसी समय उन्होंने मुझसे बड़ी कुत्सित (पापपूर्ण) बात कहलायी॥ ४९॥ राजेन्द्र! उग्रायुधका दूत मेरे पास आकर कहने लगा— कुरुपुङ्गव भीष्म! आज तुम स्त्रियोंमें रत्नस्वरूप अपनी माता यशस्विनी गन्धकालीको मेरी भार्या बननेके लिये दे दो॥ ५०॥ यदि तुम ऐसा करोगे तो निःसंदेह मैं तुम्हें इच्छानुसार विशाल राज्य तथा धन दूँगा और मैं (गन्धकालीको पाकर) इस भूतलपर रत्नका भागी हो जाऊँगा॥ ५१॥ भारत! मेरे इस परम दुर्जय एवं जाज्वल्यमान चक्रका दर्शन करके शत्रुगण युद्धमें मुझे देखते ही भाग खड़े होते हैं॥ ५२॥ तुम यदि राज्य, कुल एवं अपने प्राणोंका कल्याण चाहते हो तो मेरी आज्ञा मान लो, नहीं तो चैनसे न रह सकोगे॥ ५३॥ जब मैं भूमिपर कुशाओंकी शय्यापर सो रहा था, उस समय उसने दूतके द्वारा यह अग्निकी ज्वालाके समान (जलानेवाली) बात कहलायी थी॥ ५४॥

ततोऽहं तस्य दुर्बुद्धेर्विज्ञाय मतमच्युत।
आज्ञापयं वै संग्रामे सेनाध्यक्षांश्च सर्वशः॥ ५५
विचित्रवीर्यं बालं च मदुपाश्रयमेव च।
दृष्ट्वा क्रोधपरीतात्मा युद्धायैव मनो दधे॥ ५६
निगृहीतस्तदाहं तैः सचिवैर्मन्त्रकोविदैः।
ऋत्विग्भिर्वेदकल्पैश्च सुहृद्भिश्चार्थदर्शिभिः॥ ५७
स्निग्धैश्च शास्त्रविद्भिश्च संयुगस्य निवर्तने।
कारणं श्रावितश्चास्मि युक्तरूपं तदानघ॥ ५८

मन्त्रिण ऊचुः

प्रवृत्तचक्रः पापोऽसौ त्वं चाशौचगतः प्रभो।
न चैष प्रथमः कल्पो युद्धं नाम कदाचन॥ ५९
ते वयं सामपूर्वं वै दानं भेदं तथैव च।
प्रयोक्ष्यामस्ततः शुद्धो दैवतान्यभिवाद्य च॥ ६०
कृतस्वस्त्ययनो विप्रैर्वह्नीन् सम्पूज्य च द्विजान्।
ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः प्रयास्यसि जयाय वै॥ ६१
अस्त्राणि न प्रयोज्यानि न प्रवेश्यश्च संगरः।
अशौचे वर्तमाने तु वृद्धानामिति शासनम्॥ ६२
सामदानादिभिः पूर्वमपि भेदेन वा ततः।
तं हनिष्यसि विक्रम्य शम्बरं मघवानिव॥ ६३
प्राज्ञानां वचनं काले वृद्धानां च विशेषतः।
श्रोतव्यमिति तच्छ्रुत्वा निवृत्तोऽस्मि नराधिप॥ ६४
ततस्तैः संक्रमः सर्वैः प्रयुक्तः शास्त्रकोविदैः।
तस्मिन् काले कुरुश्रेष्ठ कर्म चारब्धमुत्तमम्॥ ६५
स सामादिभिरेवादावुपायैः प्राज्ञचिन्तितैः।
अनुनीयमानो दुर्बुद्धिरनुनेतुं न शक्यते॥ ६६
प्रवृत्तं तस्य तच्चक्रमधर्मनिरतस्य वै।
परदाराभिलाषेण सद्यस्तात निवर्तितम्॥ ६७
न त्वहं तस्य जाने तन्निवृत्तं चक्रमुत्तमम्।
हतं स्वकर्मणा तं तु पूर्वं सद्भिश्च निन्दितम्॥ ६८

अच्युत! तब मैंने उस दुर्बुद्धिके अभिप्रायको जानकर अपने सेनापतियोंको सब प्रकारसे संग्राम करनेकी आज्ञा दे दी॥ ५५॥ विचित्रवीर्य मेरे आश्रयमें रहता है तथा यह बालक होनेके कारण युद्ध भी नहीं कर सकता, इस बातको देखकर क्रोधमें भरकर मैंने स्वयं ही युद्ध करनेका विचार किया॥ ५६॥ निष्पाप! उस समय मन्त्रज्ञ मन्त्रियों, वेदज्ञ ऋत्विजों, तत्त्वदर्शी मित्रों और शास्त्रवेत्ता स्नेही पुरुषोंने मुझे युद्ध करनेसे रोक दिया और इसका उचित कारण भी बताया॥ ५७-५८॥

मन्त्रियोंने कहा—प्रभो! उस पापीका चक्र चल रहा है और आपको अशौच लगा हुआ है, अतः यह युद्ध प्रथम कल्प कभी नहीं माना जा सकता॥ ५९॥ हम पहले उसपर साम, दान और भेद-नीतियोंका प्रयोग करेंगे। तबतक आप शुद्ध भी हो जायँगे, फिर आप देवताओंको प्रणाम करके ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर अग्नि और ब्राह्मणोंकी पूजा करनेके बाद ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर विजयके लिये प्रस्थान कीजियेगा॥ ६०-६१॥ वृद्धोंका कथन है कि जब अशौच चल रहा हो, उस समय अस्त्रोंका प्रयोग और युद्धमें प्रवेश नहीं करना चाहिये॥ ६२॥ अतः पहले साम, दान, भेदसे इसको वशमें करनेका यत्न किया जाय (तब भी न माने तो) फिर जैसे इन्द्रने शम्बरासुरको मार डाला था, उसी प्रकार पराक्रम करके आप इसको मार डालियेगा॥ ६३॥ समय पड़नेपर बुद्धिमानों और वृद्धोंकी बात विशेषरूपसे सुननी चाहिये। राजन्! यह सुनकर मैं युद्धसे रुक गया॥ ६४॥ कुरुश्रेष्ठ! तब उन शास्त्रज्ञानमें चतुर सम्पूर्ण मन्त्रियोंने साम, दान, भेद आदि दूसरे उपायोंद्वारा शान्ति-स्थापनका प्रयोग किया और इसके लिये उत्तम कार्य आरम्भ कर दिया॥ ६५॥ परंतु वे बुद्धिमानोंके विचारे हुए साम, दान आदि उपायोंका प्रयोग करके भी उस दुर्बुद्धिको न समझा सके॥ ६६॥ तात! इतने समयमें अधर्ममें मग्न रहनेवाले उग्रायुधका प्रताप-चक्र भी पर-स्त्रीकी कामना करनेसे तत्क्षण ही रुक गया॥ ६७॥ उसका उत्तम चक्र निवृत्त हो गया है और पहले सत्पुरुषोंसे निन्दित होकर वह अपने कर्मोंद्वारा ही मर गया है; इस बातको मैं नहीं जानता था॥ ६८॥

कृतशौचः शरी चापी रथी निष्क्रम्य वै पुरात्।
कृतस्वस्त्ययनो विप्रैः प्रायोधयमहं रिपुम्॥ ६९

ततः संसर्गमागम्य बलेनास्त्रबलेन च।
त्र्यहमुन्मत्तवद् युद्धं देवासुरमिवाभवत्॥ ७०

स मयास्त्रप्रतापेन निर्दग्धो रणमूर्धनि।
पपाताभिमुखः शूरस्त्यक्त्वा प्राणानरिंदम॥ ७१

एतस्मिन्नन्तरे तात काम्पिल्ये पृषतोऽभ्ययात्।
हते नीपेश्वरे चैव हते चोग्रायुधे नृपे॥ ७२

आहिच्छत्रं स्वकं राज्यं पित्र्यं प्राप महाद्युतिः।
द्रुपदस्य पिता राजन् ममैवानुमते तदा॥ ७३

ततोऽर्जुनेन तरसा निर्जित्य द्रुपदं रणे।
आहिच्छत्रं सकाम्पिल्यं द्रोणायाथापवर्जितम्॥ ७४

प्रतिगृह्य ततो द्रोण उभयं जयतां वरः।
काम्पिल्यं द्रुपदायैव प्रायच्छद् विदितं तव॥ ७५

एष ते द्रुपदस्यादौ ब्रह्मदत्तस्य चैव ह।
वंशः कार्त्स्न्येन वै प्रोक्तो नीपस्योग्रायुधस्य च॥ ७६

युधिष्ठिर उवाच

किमर्थं ब्रह्मदत्तस्य पूजनीया शकुन्तिका।
अन्धं चकार गाङ्गेय ज्येष्ठं पुत्रं पुरा विभो॥ ७७

चिरोषिता गृहे चापि किमर्थं चैव यस्य सा।
चकार विप्रियमिदं तस्य राज्ञो महात्मनः॥ ७८

पूजनीया चकारासौ किं सख्यं तेन चैव ह।
एतन्मे संशयं छिन्धि सर्वमुक्त्वा यथातथम्॥ ७९

भीष्म उवाच

शृणु सर्वं महाराज यथावृत्तमभूत् पुरा।
ब्रह्मदत्तस्य भवने तन्निबोध युधिष्ठिर॥ ८०

काचिच्छकुन्तिका राजन् ब्रह्मदत्तस्य वै सखी।
शितिपक्षा शोणशिराः शितिपृष्ठा शितोदरी॥ ८१

सखी सा ब्रह्मदत्तस्य सुदृढं बद्धसौहृदा।
तस्याः कुलायमभवद् गेहे तस्य नरोत्तम॥ ८२

जब मैं अशौच-निवृत्तिके पश्चात् शुद्ध हुआ, तब ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर धनुष-बाण ले रथमें बैठ नगरसे बाहर निकला और शत्रुसे युद्ध करने लगा॥ ६९॥ तदनन्तर उसके निकट पहुँचकर शरीर-बल और अस्त्र-बलके द्वारा देवासुर-संग्रामकी तरह तीन दिनोंतक हम दोनोंका उन्मत्त-सा युद्ध चलता रहा॥ ७०॥ शत्रुदमन! तत्पश्चात् मेरे अस्त्रके प्रतापसे भस्म होकर वह वीर रणके मुहानेपर अपने प्राणोंको त्यागकर गिर पड़ा॥ ७१॥ तात! इसी बीचमें (उग्रायुधद्वारा) नीपेश्वर तथा (मेरे द्वारा) राजा उग्रायुधके मारे जानेपर पृषतने भी काम्पिल्य-नगरपर आक्रमण कर दिया। राजन्! तब मेरी अनुमतिसे महाकान्तिमान् द्रुपदके पिताने अपने पैतृक राज्य अहिच्छत्रपर (पुनः) अधिकार कर लिया॥ ७२-७३॥ तदनन्तर अर्जुनने युद्धमें द्रुपदको बलपूर्वक जीतकर काम्पिल्य और अहिच्छत्रको द्रोणाचार्यके (चरणोंमें) समर्पित कर दिया था॥ ७४॥ तब विजय पानेवालोंमें श्रेष्ठ द्रोणने दोनों देशोंको लेकर काम्पिल्यनगर तो द्रुपदको ही वापस कर दिया था, जिसे तुम जानते ही हो॥ ७५॥ इस प्रकार मैंने तुमसे द्रुपद, ब्रह्मदत्त, नीप और उग्रायुधके वंशका पूर्णरूपसे वर्णन कर दिया॥ ७६॥

युधिष्ठिरने पूछा—समर्थ गङ्गानन्दन! पहले पूजनीया चिड़ियाने ब्रह्मदत्तके ज्येष्ठ पुत्रको अंधा क्यों कर दिया था?॥ ७७॥ वह जिसके महलमें बहुत समयसे रहती थी, उसी महात्मा राजाका उसने ऐसा अनिष्ट क्यों किया?॥ ७८॥ उस पूजनीयाने उनके साथ मित्रता क्यों की थी? आप इन सब बातोंको यथार्थ रीतिसे बताकर मेरे सारे संदेहोंको दूर कर दें॥ ७९॥

भीष्मजीने कहा—महाराज युधिष्ठिर! प्राचीन कालमें ब्रह्मदत्तके महलमें जो घटना घटी थी, उसे तुम पूर्णरूपसे सुनो॥ ८०॥ राजन्! एक चिड़िया थी, जिसका राजा ब्रह्मदत्तसे स्नेह हो जानेके कारण वह उनकी सहचरी बन गयी थी। उसके दोनों पंख, पीठ और उदरका भाग तो काला था; परंतु मस्तकका रंग लाल था॥ ८१॥ नरोत्तम! राजा ब्रह्मदत्तकी यह सहचरी उनके सुदृढ़ स्नेहपाशमें बँध गयी थी; अतः उन्हींके महलमें उसका घोंसला था॥ ८२॥

सा सदाहनि निर्गत्य तस्य राज्ञो गृहोत्तमात्।
चचाराम्भोधितीरेषु पल्वलेषु सरस्सु च॥ ८३
नदीपर्वतकुञ्जेषु वनेषूपवनेषु च।
प्रफुल्लेषु तडागेषु कह्लारेषु सुगन्धिषु॥ ८४
कुमुदोत्पलकिञ्जल्कसुरभीकृतवायुषु।
हंससारसघुष्टेषु कारण्डवरुतेषु च॥ ८५
चरित्वा तेषु सा राजन् निशि काम्पिल्यमागमत्।
नृपतेर्भवनं प्राप्य ब्रह्मदत्तस्य धीमतः॥ ८६
राज्ञा तेन सदा राजन् कथायोगं चकार सा।
आश्चर्याणि च दृष्टानि यानि वृत्तानि कानिचित्॥ ८७
चरित्वा विविधान् देशान् कथयामास सा निशि।
कदाचित् तस्य नृपतेर्ब्रह्मदत्तस्य कौरव॥ ८८
पुत्रोऽभूद् राजशार्दूल सर्वसेनेति विश्रुतः।
पूजनीयाथ सा तस्मिन् प्रासूताण्डमथापि च॥ ८९
तस्मिन् नीडे पुरा ह्येकं तत्किल प्रास्फुटत् तदा।
स्फुटितो मांसपिण्डस्तु बाहुपादास्य संयुतः॥ ९०
बभ्रुवक्त्रश्चक्षुर्हीनो बभूव पृथिवीपते।
चक्षुष्मानप्यभूत् पश्चादीषत्पक्षोत्थितश्च ह॥ ९१
अथ सा पूजनीया वै राजपुत्रस्वपुत्रयोः।
तुल्यस्नेहात् प्रीतिमती दिवसे दिवसेऽभवत्॥ ९२
आजहार सदा सायं चञ्च्वामृतफलद्वयम्।
अमृतास्वादसदृशं सर्वसेनतनूजयोः॥ ९३
स बालो ब्रह्मदत्तस्य पूजनीयासुतश्च ह।
ते फले भक्षयित्वा च पृथुकौ प्रीतमानसौ॥ ९४
अभूतां नित्यमेवेह खादेतां तौ च ते फले।
तस्यां गतायामथ च पूजन्यां वै सदाहनि॥ ९५
शिशुना चटकेनाथ धात्री तं तु शिशुं नृप।
तेन प्रक्रीडयामास ब्रह्मदत्तात्मजं सदा॥ ९६
नीडात् तमाकृष्य तदा पूजनीयाकृतात् ततः।
क्रीडता राजपुत्रेण कदाचिच्चटकः स तु॥ ९७
निगृहीतः कन्धरायां शिशुना दृढमुष्टिना।
दुर्भङ्गमुष्टिना राजन्नसून् सद्यस्त्वजीजहत्॥ ९८

वह दिनमें निरन्तर उस राजाके उत्तम महलसे निकलकर समुद्रके किनारे तथा तालाबों और तलैयोंपर विचरती थी॥ ८३॥ राजन्! वह नदी, पर्वत, कुञ्ज, वन और उपवनोंमें तथा जिनमें सुगन्धित कमल खिले हुए थे, जहाँकी वायु कुमुद, उत्पल और किञ्जल्ककी सुगन्धसे वासित थी एवं जो हंस, सारस और कारण्डवके कलरवोंसे गुंजायमान थे—ऐसे तड़ागोंपर घूम-घामकर वह रात्रिके समय काम्पिल्यनगरमें लौट आती थी। राजन्! वह बुद्धिमान् राजा ब्रह्मदत्तके महलमें पहुँचकर उस राजासे प्रतिदिन बातें किया करती थी। वह बहुत-से देशोंमें घूमकर जो कुछ आश्चर्यजनक घटनाएँ देखती थी, रात्रिके समय उन्हें (राजासे) कहा करती थी। कुरुवंशी राजशार्दूल! एक समय राजा ब्रह्मदत्तके पुत्र हुआ, जिसका नाम सर्वसेन रखा गया। उसी समय उस पूजनीयाने भी वहाँ एक अण्डा दिया॥ ८४—८९॥ पृथ्वीपते! एक दिन उस घोंसलेमें उसका वह एक अण्डा फूटा और उसमेंसे एक मांस-पिण्ड निकला, जो हाथ-पैर और मुखसे युक्त था। उसका मुँह भूरे रंगका था; परंतु नेत्र नहीं प्रकट हुए थे। कुछ समय बाद उसके नेत्र खुल गये और उसमें छोटे-छोटे पंख भी निकल आये॥ ९०-९१॥ तदनन्तर वह पूजनीया अपने बच्चे और राजकुमारपर समान स्नेह होनेके कारण प्रतिदिन एक-सी प्रीति रखने लगी॥ ९२॥ वह सदा सायंकालमें अमृतके समान स्वादिष्ठ रससे भरे हुए दो फल सर्वसेन और अपने बच्चेके लिये अपनी चोंचमें लाया करती थी॥ ९३॥ ब्रह्मदत्तका बालक और पूजनीयाका बच्चा—ये दोनों उन फलोंको खाकर बड़े प्रसन्न होते थे। इस प्रकार वे दोनों नित्य ऐसे फलोंको खाया करते थे। राजन्! प्रतिदिन उस पूजनीके चले जानेपर राजकुमारकी धाय उस चिड़ियाके बनाये हुए घोंसलेसे उसके बच्चेको खींचकर उसके द्वारा ब्रह्मदत्तके शिशु पुत्रको खेलाया करती थी॥ ९४—९६½॥ एक समय उस शिशु राजकुमारने खेलते-खेलते अपनी सुदृढ़ मुट्ठीमें उस बच्चेका गला पकड़ लिया। राजन्! राजकुमारकी मुट्ठी बड़ी कठिनतासे खुल सकती थी। (अतएव दबाव पड़नेके कारण) उस चिड़ियाके बच्चेने तत्काल ही अपने प्राण त्याग दिये॥ ९७-९८॥

तं तु पञ्चत्वमापन्नं व्यात्तास्यं बालघातितम्।
कथंचिन्मोचितं दृष्ट्वा नृपतिर्दुःखितोऽभवत्॥ ९९

धात्रीं तस्य जगर्हे तां तदाश्रुपरमो नृपः।
तस्थौ शोकान्वितो राजञ्छोचंस्तं चटकं तदा॥ १००

पूजनीयापि तत्काले गृहीत्वा तु फलद्वयम्।
ब्रह्मदत्तस्य भवनमाजगाम वनेचरी॥ १०१

अथापश्यत् तमागम्य गृहे तस्मिन् नराधिप।
पञ्चभूतपरित्यक्तं शावं तं स्वतनूद्भवम्॥ १०२

मुमोह दृष्ट्वा तं पुत्रं पुनः संज्ञामथालभत्।
लब्धसंज्ञा च सा राजन् विललाप तपस्विनी॥ १०३

पूजनीयोवाच

न तु त्वमागतां पुत्र वाशन्तीं परिसर्पसि।
कुर्वंश्चाटुसहस्राणि अव्यक्तकलया गिरा॥ १०४

व्यादितास्यः क्षुधार्तश्च पीतेनास्येन पुत्रक।
शोणेन तालुना पुत्र कथमद्य न सर्पसि॥ १०५

पक्षाभ्यां त्वां परिष्वज्य ननु वाशामि चाप्यहम्।
चीचीकूचीति वाशन्तं त्वामद्य न शृणोमि किम्॥ १०६

मनोरथो यस्तु मम पश्येयं पुत्रकं कदा।
व्यात्तास्यं वारि याचन्तं स्फुरत्पक्षं ममाग्रतः॥ १०७

स मे मनोरथो भग्नस्त्वयि पञ्चत्वमागते।
विलप्यैवं बहुविधं राजानमथ साब्रवीत्॥ १०८

ननु मूर्धाभिषिक्तस्त्वं धर्मं वेत्सि सनातनम्।
अथ कस्मान्मम सुतं धात्र्या घातितवानसि॥ १०९
तव पुत्रेण चाकृष्य क्षत्रियाधम शंस मे।

न च नूनं श्रुता तेऽभूदियमाङ्गिरसी श्रुतिः॥ ११०
शरणागतः क्षुधार्तश्च शत्रुभिश्चाप्युपद्रुतः।
चिरोषितश्च स्वगृहे पातव्यः सर्वदा भवेत्॥ १११

अपालयन्नरो याति कुम्भीपाकमसंशयम्।
कथमस्य हविर्देवा गृह्णन्ति पितरः स्वधाम्॥ ११२

राजा ब्रह्मदत्तने उसको किसी प्रकार अपने पुत्रके हाथसे छुड़ाया; परंतु उसे मरा, मुख फैलाकर पड़ा हुआ तथा अपने बालकके द्वारा मारा गया देखकर वे दुःखी हो गये॥ ९९॥ राजन्! तब ब्रह्मदत्तने शोकाकुल हो नेत्रोंमें आँसू भरकर उस धायकी निन्दा की। फिर वे खड़े-खड़े उस बच्चेके लिये शोक करने लगे॥ १००॥ उसी समय वनमें विचरण करनेवाली पूजनीया भी दो फलोंको लेकर ब्रह्मदत्तके भवनमें आ पहुँची॥ १०१॥ राजन्! उस भवनमें आकर उसने अपने शरीरसे उत्पन्न हुए बच्चेको पञ्चभूतोंसे रहित मुर्देके रूपमें देखा॥ १०२॥ राजन्! पुत्रकी ऐसी दशा देखकर वह मूर्च्छित हो गयी। कुछ देर बाद उसे फिर चेतना आयी, तब वह तपस्विनी विलाप करने लगी॥ १०३॥

पूजनीया बोली—पुत्र! मैं आकर कूँ-कूँ शब्द कर रही हूँ, तब भी तू अस्फुट (तोतली) होनेसे मनोहर लगनेवाली वाणीमें हजारों बातें करता हुआ मेरे सामने क्यों नहीं आता?॥ १०४॥ पुत्र! क्षुधासे पीड़ित होकर अपने लाल-लाल तालु तथा पीली चोंचवाले मुखको खोलकर तू मेरे पास आज क्यों नहीं आता?॥ १०५॥ मैं तुझे अपने पंखोंसे लपेटकर रो रही हूँ, तब भी मैं तुझे चीं-चीं, कूँ-कूँ शब्द करता हुआ आज क्यों नहीं सुनती?॥ १०६॥ मेरे मनमें जो यह अभिलाषा थी कि मैं अपने सामने अपने पुत्रको परोंको फटफटाकर, चोंच फैलाकर जल माँगता हुआ कब देखूँगी, सो मेरा वह मनोरथ तेरे मरनेसे नष्ट हो गया—यों अनेक तरहसे विलाप करके वह राजासे बोली॥ १०७-१०८॥ रे क्षत्रियाधम! तू तो मूर्धाभिषिक्त (सम्राट्) राजा है और सनातनधर्मको जाननेवाला है तो भी तूने मेरे बच्चेको धायसे और अपने पुत्रसे खिंचवाकर क्यों मरवा डाला? इस बातका तू उत्तर दे। क्या तूने यह आङ्गिरसी श्रुति नहीं सुनी है कि 'शरणमें आये हुए, भूखसे व्याकुल, शत्रुओंद्वारा पीछा किये जाते हुए और चिरकालसे अपने घरमें रहनेवालेकी रक्षा सदा करनी चाहिये॥ १०९—१११॥ यदि मनुष्य इनकी रक्षा नहीं करता है तो वह निःसंदेह कुम्भीपाक नरकमें पड़ता है। देवता ऐसे पुरुषकी हविको और पितर स्वधाको भला कैसे ग्रहण कर सकते हैं'॥ ११२॥

एवमुक्त्वा महाराज दशधर्मगता सती।
शोकार्ता तस्य बालस्य चक्षुषी निर्बिभेद सा॥ ११३

कराभ्यां राजपुत्रस्य ततस्तच्चक्षुरस्फुटत्।
कृत्वा चान्धं नृपसुतमुत्पपात ततोऽम्बरम्॥ ११४

अथ राजा सुतं दृष्ट्वा पूजनीयामुवाच ह।
विशोका भव कल्याणि कृतं ते भीरु शोभनम्॥ ११५

गतशोका निवर्तस्व अजर्यं सख्यमस्तु ते।
पुरेव वस भद्रं ते निवर्तस्व रमस्व च॥ ११६

पुत्रपीडोद्भवश्चापि न कोपः परमस्त्वयि।
ममास्ति सखि भद्रं ते कर्तव्यं च कृतं त्वया॥ ११७

पूजनीयोवाच

आत्मौपम्येन जानामि पुत्रस्नेहं तवाप्यहम्।
न चाहं वस्तुमिच्छामि तव पुत्रमचक्षुषम्।
कृत्वा वै राजशार्दूल त्वद् गृहे कृतकिल्बिषा॥ ११८

गाथाश्चाप्युशनोगीता इमाः शृणु मयेरिताः।
कुमित्रं च कुदेशं च कुराजानं कुसौहृदम्।
कुपुत्रं च कुभार्यां च दूरतः परिवर्जयेत्॥ ११९

कुमित्रे सौहृदं नास्ति कुभार्यायां कुतो रतिः।
कुतः पिण्डः कुपुत्रे वै नास्ति सत्यं कुराजनि॥ १२०

कुसौहृदे क्व विश्वासः कुदेशे न तु जीव्यते।
कुराजनि भयं नित्यं कुपुत्रे सर्वतोऽसुखम्॥ १२१

अपकारिणि विस्रम्भं यः करोति नराधमः।
अनाथो दुर्बलो यद्वन्न चिरं स तु जीवति॥ १२२

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्।
विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति॥ १२३

राजसेविषु विश्वासं गर्भसंकरितेषु च।
यः करोति नरो मूढो न चिरं स तु जीवति॥ १२४

महाराज! राजासे यों कहकर शोकसे आतुर होनेके कारण दसधर्म* को प्राप्त हुई उस पूजनीयाने अपने दोनों पञ्जोंसे उस राजकुमारके दोनों नेत्रोंको विदीर्ण कर दिया, जिससे उसकी आँखें फूट गयीं। इस प्रकार राजकुमारको अन्धा कर देनेके पश्चात् पूजनीया आकाशमें उड़ गयी॥ ११३-११४॥ तब राजाने पुत्रकी ओर देखकर पूजनीयासे कहा—'कल्याणि! अब तू शोकरहित हो जा। भीरु! तूने बहुत अच्छा किया॥ ११५॥ अब तू शोकरहित होकर लौट आ। तेरी मैत्री सुदृढ़ बनी रहे। तेरा कल्याण हो, तू लौट आ और आनन्दपूर्वक पहलेकी भाँति यहीं रह॥ ११६॥ सखि! तेरा कल्याण हो। पुत्रको पीड़ा देनेपर भी मैं तेरे ऊपर कुपित नहीं हुआ हूँ। तूने वही किया, जो करना चाहिये था'॥ ११७॥

पूजनीया बोली—नृपश्रेष्ठ! मैं अपने ही समान तुम्हारे पुत्र-प्रेमको भी जानती हूँ, अतः तुम्हारे पुत्रको नेत्रहीन करनेके कारण अपराधिनी होकर तुम्हारे घरमें रहना नहीं चाहती॥ ११८॥ आप मुझसे शुक्राचार्यकी गायी हुई इन गाथाओंको सुनें, 'खोटे मित्र, खोटे देश, खोटे राजा, खोटे सुहृद्-बन्धु, खोटे पुत्र तथा खोटी भार्याको दूरसे ही त्याग देना चाहिये'॥ ११९॥ खोटे मित्रमें प्रेम नहीं होता, कुभार्यासे सुख नहीं मिल सकता, कुपुत्रसे पिण्ड मिलना कठिन है और कुराजासे सत्य (न्याय)-की आशा नहीं की जा सकती है॥ १२०॥ कुमित्रपर भला विश्वास कैसे हो सकता है और कुदेशमें जीना भी सम्भव नहीं है। खोटे राजासे सर्वदा भय बना रहता है और कुपुत्रसे तो सब प्रकारसे दुःख ही मिलता है॥ १२१॥ जो अधम मनुष्य अपराधीपर विश्वास करता है, वह अनाथ और दुर्बल मनुष्यकी भाँति चिरकालतक जीवित नहीं रह सकता॥ १२२॥ अविश्वासीका विश्वास न करे और विश्वासीपर भी अधिक विश्वास न करे; क्योंकि ऐसे लोगोंपर विश्वास करनेसे जो भय उत्पन्न होता है, वह जड़को भी काट डालता है॥ १२३॥ जो मनुष्य राजसेवकों तथा संकर जातियोंपर विश्वास करता है, वह मूढ चिरकालतक जीवित नहीं रह सकता॥ १२४॥

* मनुष्यको व्याकुल और विवेकहीन बना देनेवाली जो क्रोध आदिकी दस दशाएँ हैं, उनको दसधर्म कहते हैं। देखिये पृ० ७६ की टिप्पणी।

अप्युन्नतिं प्राप्य नरः प्रावारः कीटको यथा।
स विनश्यत्यसंदेहमाहैवमुशना नृप॥ १२५

अपि मार्दवभावेन गात्रं संलीय बुद्धिमान्।
अरिं नाशयते नित्यं यथा वल्लिर्महाद्रुमम्॥ १२६

मृदुरार्द्रः कृशो भूत्वा शनैः संलीयते रिपुः।
वल्मीक इव वृक्षस्य पश्चान्मूलानि कृन्तति॥ १२७

अद्रोहसमयं कृत्वा मुनीनामग्रतो हरिः।
जघान नमुचिं पश्चादपां फेनेन पार्थिव॥ १२८

सुप्तं मत्तं प्रमत्तं वा घातयन्ति रिपुं नराः।
विषेण वह्निना वापि शस्त्रेणाप्यथ मायया॥ १२९

न च शेषं प्रकुर्वन्ति पुनर्वैरभयान्नराः।
घातयन्ति समूलं हि श्रुत्वेमामुपमां नृप॥ १३०

शत्रुशेषमृणाच्छेषं शेषमग्नेश्च भूमिप।
पुनर्वर्धेत सम्भूय तस्माच्छेषं न शेषयेत्॥ १३१

हसते जल्पते वैरी एकपात्रे भुनक्ति च।
एकासनं चारोहति स्मरते तच्च किल्बिषम्॥ १३२

कृत्वा सम्बन्धकं चापि विश्वसेच्छत्रुणा न हि।
पुलोमानं जघानाजौ जामाता सन् शतक्रतुः॥ १३३

निधाय मनसा वैरं प्रियं वक्तीह यो नरः।
उपसर्पेन्न तं प्राज्ञः कुरङ्ग इव लुब्धकम्॥ १३४

न चासन्ने निवस्तव्यं सवैरे वर्धिते रिपौ।
पातयेत् तं समूलं हि नदीरय इव द्रुमम्॥ १३५

अमित्रादुन्नतिं प्राप्य नोन्नतोऽस्मीति विश्वसेत्।
तस्मात् प्राप्योन्नतिं नश्येत् प्रावार इव कीटकः॥ १३६

राजन्! जैसे पंख निकलनेपर ऊपरको उड़ा हुआ चींटा मौतके मुखमें चला जाता है, उसी प्रकार ऐसे पुरुषोंपर विश्वास रखनेवाला पुरुष भी मारा जाता है, इसमें कुछ संदेह नहीं है—ऐसा शुक्राचार्यका कथन है॥ १२५॥ जैसे लता अपने शरीरको बचाये रखकर कोमलतासे महावृक्षका आलिङ्गन करके उसे सुखा देती है, उसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष भी अपने शरीरकी सदा रक्षा करते हुए नम्रतापूर्वक शत्रुका नाश कर देते हैं॥ १२६॥ जैसे दीमक कृश होनेपर भी आर्द्र (स्निग्ध) हो वृक्षमें लगकर शनैः-शनैः उसकी जड़को काट डालता है, इसी प्रकार शत्रु दुर्बल होनेपर भी स्निग्ध बनकर (स्नेह दिखाकर) शरीरमें घुस आता (और अवसर पानेपर) जड़से उखाड़ फेंकता है॥ १२७॥ राजन्! इन्द्रने मुनियोंके सामने द्रोह न करनेकी प्रतिज्ञा करके भी पीछे जलके फेनसे नमुचिको मार डाला था॥ १२८॥ मनुष्य सोये हुए, मतवाले तथा उन्मत्त शत्रुको विष, अग्नि, शस्त्र अथवा छल-कपटसे भी मार डालते हैं॥ १२९॥ राजन्! मनुष्य बार-बारके वैर होनेके भयसे शत्रुको शेष नहीं रखते, वे तो इस निम्नाङ्कित उपमाको सुनकर शत्रुको जड़से ही नष्ट कर डालते हैं॥ १३०॥ भूपाल! यदि शत्रुको, ऋणको अथवा अग्निको (थोड़ा-सा भी) बाकी रहने दिया जाय तो ये फिर इकट्ठा होकर बढ़ने लगते हैं, अतः इनके शेषको भी शेष न रहने दे॥ १३१॥ शत्रु यद्यपि एक साथ हँसता है, बोलता है, एक ही पात्रमें साथ-साथ भोजन भी करता है और एक ही आसनपर साथ-साथ बैठता है, तथापि पूर्व वैरका स्मरण तो करता ही रहता है॥ १३२॥ शत्रुसे सम्बन्ध करके भी उसके ऊपर विश्वास न करे; क्योंकि इन्द्रने जामाता (दामाद) होकर भी पुलोमाको युद्धमें मार डाला था॥ १३३॥ जो मनुष्य मनमें वैरको छिपाये हुए प्रिय बातें करता है, बुद्धिमान् पुरुष (उसपर विश्वास करके) उसके पास न जाय; ठीक उसी तरह, जैसे मृग बहेलियेके निकट नहीं जाता॥ १३४॥ यदि वैर रखनेवाला शत्रु बढ़ रहा हो तो उसके पास निवास नहीं करना चाहिये; क्योंकि जैसे बढ़ती हुई नदीका वेग वृक्षको गिरा देता है, इसी प्रकार वह उसको जड़से उखाड़ डालता है॥ १३५॥ शत्रुसे उन्नति पानेपर 'मैं भी उन्नत हो गया हूँ' ऐसा विश्वास न करे। उससे उन्नति पानेपर भी मनुष्य प्रावार-कीट (पाँखवाले चींटे)-की तरह नष्ट हो जाता है॥ १३६॥

इत्येता ह्युशनोगीता गाथा धार्या विपश्चिता।
कुर्वता चात्मरक्षां वै नरेण पृथिवीपते॥ १३७
मया सकिल्बिषं तुभ्यं प्रयुक्तमतिदारुणम्।
पुत्रमन्धं प्रकुर्वन्त्या तस्मान्नो विश्वसे त्वयि॥ १३८
एवमुक्त्वा प्रदुद्राव तदाऽऽकाशं पतङ्गिनी।
इत्येतत् ते मयाख्यातं पुराभूतमिदं नृप॥ १३९
ब्रह्मदत्तस्य राजेन्द्र यद् वृत्तं पूजनीयया।
श्राद्धं च पृच्छसे यन्मां युधिष्ठिर महामते॥ १४०
अतस्ते वर्तयिष्येऽहमितिहासं पुरातनम्।
गीतं सनत्कुमारेण मार्कण्डेयाय पृच्छते॥ १४१
श्राद्धस्य फलमुद्दिश्य नियतं सुकृतस्य च।
तन्निबोध महाराज सप्तजातिषु भारत॥ १४२
सगालवस्य चरितं कण्डरीकस्य चैव हि।
ब्रह्मदत्ततृतीयानां योगिनां ब्रह्मचारिणाम्॥ १४३

पृथ्वीनाथ! विद्वान् पुरुष आत्मरक्षा करता हुआ शुक्राचार्यकी गायी हुई इन गाथाओंको अपने मनमें स्मरण रखे॥ १३७॥ मैंने आपके पुत्रको अन्धा बनाकर अति दारुण अपराध किया है, अतः अब मैं आपका विश्वास नहीं करूँगी॥ १३८॥ राजन्! इस प्रकार कहकर वह चिड़िया आकाशमें उड़ गयी। राजेन्द्र! प्राचीन कालमें ब्रह्मदत्तका पूजनीयाके साथ जो संवाद हुआ था, वह मैंने तुमसे कह दिया। महामति युधिष्ठिर! अब तुम जिस श्राद्ध-विषयको मुझसे पूछ रहे थे, उसे सुनाता हूँ। मार्कण्डेयजीके पूछनेपर सनत्कुमारजीने जो कुछ कहा था, उसी प्राचीन इतिहास (-के शेष भाग)-को मैं तुमसे कहूँगा॥ १३९—१४१॥ महाराज! भरतनन्दन! भलीभाँति किये गये श्राद्धके नियत पुण्यफलको लक्ष्यमें रखकर कहे गये गालव, कण्डरीक और तीसरे ब्रह्मदत्त—इन ब्रह्मचारी योगियोंके सातों जन्मोंके चरित्रको तुम सावधान होकर सुनो॥ १४२-१४३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पूजनीयोपाख्याने चटकाख्यानं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पूजनीयोपाख्यानमें चटक (चिड़िये)-की कथा नामक बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २०॥

एकविंशोऽध्यायः

पितृकल्प—मार्कण्डेयजीद्वारा श्राद्धकी महिमाका वर्णन, श्राद्धके फलसे कौशिक-पुत्रोंको उत्तम जन्मकी प्राप्ति

मार्कण्डेय उवाच

श्राद्धे प्रतिष्ठितो लोकः श्राद्धे योगः प्रवर्तते।
हन्त ते वर्तयिष्यामि श्राद्धस्य फलमुत्तमम्॥ १
ब्रह्मदत्तेन यत् प्राप्तं सप्तजातिषु भारत।
तत एव हि धर्मस्य बुद्धिर्निर्वर्तते शनैः॥ २
पीडयाप्यथ धर्मस्य कृते श्राद्धे परानघ।
यत् प्राप्तं ब्राह्मणैः पूर्वं तन्निबोध महामते॥ ३
ततोऽहं तानधर्मिष्ठान् कुरुक्षेत्रे पितृव्रतान्।
सनत्कुमारनिर्दिष्टानपश्यं सप्त वै द्विजान्॥ ४

मार्कण्डेयजी बोले—यह सारा संसार श्राद्धमें ही प्रतिष्ठित है और श्राद्धसे ही योग सम्पन्न होता है। अतः मैं तुमसे श्राद्धके उत्तम फलका वर्णन करता हूँ॥ १॥ भारत! ब्रह्मदत्तने (भारद्वाज, कौशिक, व्याध, मृग, चक्रवाक, हंस और श्रोत्रिय—इन) सात जन्मोंमें जो (श्राद्ध) धर्मका फल पाया था, उसको सुननेसे शनैः-शनैः धर्म-बुद्धि प्राप्त हो जाती है॥ २॥ निष्पाप महामते! प्राचीन कालमें कुछ ब्राह्मणोंने (हिंसारूपी अधर्मके द्वारा) धर्मको पीड़ित करनेपर भी श्राद्ध करके जो फल पाया था, उसे तुम सुनो॥ ३॥ विभु सनत्कुमारजीने जिनका वर्णन किया था, मैंने अपने दिव्य नेत्रसे सनत्कुमारजीके बताये हुए उन सात ब्राह्मणोंको अधर्ममें परायण होनेपर भी कुरुक्षेत्रमें

दिव्येन चक्षुषा तेन यानुवाच पुरा विभुः।
वाग्दुष्टः क्रोधनो हिंस्रः पिशुनः कविरेव च।
खसृमः पितृवर्ती च नामभिः कर्मभिस्तथा॥ ५

कौशिकस्य सुतास्तात शिष्या गार्ग्यस्य भारत।
पितर्युपरते सर्वे व्रतवन्तस्तदाभवन्॥ ६

विनियोगाद् गुरोस्तस्य गां दोग्ध्रीं समकालयन्।
समानवत्सां कपिलां सर्वे न्यायागतां तदा॥ ७

तेषां पथि क्षुधार्तानां बाल्यान्मोहाच्च भारत।
क्रूरा बुद्धिः समभवत् तां गां वै हिंसितुं तदा॥ ८

तान् कविः खसृमश्चैव याचेते नेति वै तदा।
न चाशक्यन्त ते ताभ्यां तदा वारयितुं द्विजाः॥ ९

पितृवर्ती तु यस्तेषां नित्यं श्राद्धाह्निको द्विजः।
स सर्वानब्रवीद् भ्रातॄन् कोपाद्धर्मे समाहितः॥ १०

यद्यवश्यं प्रहन्तव्या पितॄनुद्दिश्य साध्विमाम्।
प्रकुर्वीमहि गां सम्यक् सर्व एव समाहिताः॥ ११

एवमेषापि गौर्धर्मं प्राप्स्यते नात्र संशयः।
पितॄनभ्यर्च्य धर्मेण नाधर्मोऽस्मान् भविष्यति॥ १२

तथेत्युक्त्वा च ते सर्वे प्रोक्षयित्वा च गां ततः।
पितृभ्यः कल्पयित्वैनामुपायुञ्जन्त भारत॥ १३

उपयुज्य च गां सर्वे गुरोस्तस्य न्यवेदयन्।
शार्दूलेन हता धेनुर्वत्सोऽयं गृह्यतामिति॥ १४

आर्जवात् स तु तं वत्सं प्रतिजग्राह वै द्विजः।
मिथ्योपचर्य ते तं तु गुरुमन्यायतो द्विजाः।

कालेन समयुज्यन्त सर्व एवायुषः क्षये॥ १५

ते वै क्रूरतया हिंस्रा अनार्यत्वाद् गुरौ तथा।
उग्रा हिंसाविहाराश्च समाजायन्त सोदराः॥ १६

श्राद्ध करते देखा। उनके नाम इस प्रकार थे—वाग्दुष्ट, क्रोधन, हिंस्र, पिशुन, कवि, खसृम (ख अर्थात् आकाशमें सरण करने—विचरनेके स्वभाववाला परलोकार्थी) और पितृवर्ती। जैसे उनके नाम थे, वैसे ही उनके कर्म थे॥ ४-५॥ तात! भारत! वे कौशिक (विश्वामित्र)-के पुत्र थे और जब इनके पिता विश्वामित्र* शाप देकर दिवंगत हो गये, तब वे सभी गार्ग्यके शिष्य बनकर (ब्रह्मचर्य-) व्रतका पालन करनेके लिये उनके यहाँ रहने लगे॥ ६॥ भारत! एक समय वे सब गुरुके आज्ञा देनेपर उनकी दुधार कपिला गौ और उसके कपिल वर्णके बछड़ेको वनमें चरानेके लिये ले गये। वह गौ गुरु गार्ग्यको न्यायतः प्राप्त हुई थी। मार्गमें क्षुधासे पीड़ित होनेके कारण उन्होंने मोह और मूर्खताके कारण गौको मारनेका क्रूर विचार किया॥ ७-८॥ उस समय कवि और खसृमने उनसे ऐसा न करनेकी प्रार्थना की; परंतु वे ब्राह्मण इनके द्वारा किसी प्रकार भी रोके न जा सके॥ ९॥ तब उनमें जो प्रतिदिन श्राद्ध करनेवाला धर्मात्मा पितृवर्ती नामक द्विज था, वह उन सब भाइयोंसे बिगड़कर बोला॥ १०॥ यदि इसे अवश्य ही मारना है तो हमें चित्तको सावधानकर इसे पितरोंके निमित्त ही मारना चाहिये॥ ११॥ ऐसा करनेसे इस गौको भी निःसंदेह धर्मकी प्राप्ति होगी और धर्मपूर्वक पितरोंका पूजन कर देनेसे हमें भी अधर्म न लगेगा॥ १२॥ भारत! तब उन सबने 'तथास्तु' कहकर गौका प्रोक्षण किया और उसको पितरोंके निमित्त अर्पित करके उसका मनमाना उपयोग किया॥ १३॥ गौको उपयोगमें लाकर उन सबोंने गुरुजीसे निवेदन किया कि 'गायको तो सिंहने मार डाला, यह उसका बछड़ा है, इसे आप ग्रहण कीजिये'॥ १४॥ सरलस्वभाव होनेके कारण उन ब्राह्मणने भी उस बछड़ेको ग्रहण कर लिया। इस प्रकार वे ब्राह्मण अन्यायद्वारा अपने गुरुको धोखा देकर आयु समाप्त होनेपर मृत्युको प्राप्त हुए॥ १५॥ तत्पश्चात् अपनी क्रूरता और गुरुसे अनार्यताका व्यवहार करनेके कारण वे सात भाई उग्र स्वभाववाले, हिंसाविहारी व्याध बनकर उत्पन्न हुए॥ १६॥

* विश्वामित्रने अपने पचास पुत्रोंको शाप देते हुए कहा था—तुम्हारे वंशका अन्त हो जाय, तुम अपनी प्रजाका भक्षण करो अर्थात् अब तुम्हारे पुत्र आदि ब्राह्मण नहीं कहलायेंगे। इस प्रकार तुम अपनी प्रजा (-के ब्राह्मणत्व)-का भक्षण करोगे। उन पचास पुत्रोंमेंसे ये वाग्दुष्ट आदि भी हैं। सुना जाता है कि अन्ध्र, पुण्ड्र आदि भी इनकी ही संतानें हैं। (नीलकण्ठी)

लुब्धकस्यात्मजास्तात बलवन्तो मनस्विनः।
पितॄनभ्यर्च्य धर्मेण प्रोक्षयित्वा च गां तदा॥ १७

स्मृतिः प्रत्यवमर्शश्च तेषां जात्यन्तरेऽभवत्।
जाता व्याधा दशार्णेषु सप्त धर्मविचक्षणाः॥ १८

स्वकर्मनिरताः सर्वे लोभानृतविवर्जिताः।
तावन्मात्रं प्रकुर्वन्ति यावता प्राणधारणम्॥ १९

शेषं ध्यानपराः कालमनुध्यायन्ति कर्म तत्।
नामधेयानि चाप्येषामिमान्यासन्नराधिप॥ २०

निर्वैरो निर्वृतिः शान्तो निर्मन्युः कृतिरेव च।
वैधसो मातृवर्ती च व्याधाः परमधार्मिकाः॥ २१

तैरेवमुषितैस्तात हिंसाधर्मरतैः सदा।
माता च पूजिता वृद्धा पिता च परितोषितः॥ २२

यदा माता पिता चैव संयुक्तौ कालधर्मणा।
तदा धनूंषि ते त्यक्त्वा वने प्राणानवासृजन्॥ २३

शुभेन कर्मणा तेन जाता जातिस्मरा मृगाः।
त्रासानुत्पाद्य संविग्ना रम्ये कालञ्जरे गिरौ॥ २४

उन्मुखो नित्यवित्रस्तः स्तब्धकर्णो विलोचनः।
पण्डितो घस्मरो नादी नामतस्तेऽभवन् मृगाः॥ २५

तमेवार्थमनुध्यान्तो जातिस्मरणसम्भवम्।
आसन् वनचराः क्षान्ता निर्द्वन्द्वा निष्परिग्रहाः॥ २६

ते सर्वे शुभकर्माणः सधर्माणो वनेचराः।
योगधर्ममनुप्राप्ता विहरन्ति स्म तत्र ह॥ २७

जहुः प्राणान्मरुं साध्य लघ्वाहारास्तपस्विनः।
तेषां मरुं साधयतां पदस्थानानि भारत।
तथैवाद्यापि दृश्यन्ते गिरौ कालञ्जरे नृप॥ २८

कर्मणा तेन ते तात शुभेनाशुभवर्जिताः।
शुभाच्छुभतरां योनिं चक्रवाकत्वमागताः॥ २९

तात! उस समय वे एक बहेलियेके बलवान् एवं मनस्वी पुत्र हुए। उन्होंने धर्मतः पितरोंका पूजनकर गौका प्रोक्षण किया था; इसलिये दूसरा जन्म पानेपर भी उनको अपने पूर्वजन्म और पूर्वजन्ममें किये हुए कर्मोंका स्मरण बना रहा। वे सातों दशार्ण देशमें धर्मकुशल व्याध बनकर उत्पन्न हुए थे॥ १७-१८॥ वे सब लोभ और असत्यसे दूर रहते हुए अपने कर्ममें तत्पर रहते थे और उतना ही भोजन करते थे, जिससे प्राण टिके रहें॥ १९॥ राजन्! उनके पास जो समय बचता था, उसमें ध्यानमग्न हो वे अपने (पूर्वजन्मके) कर्मका चिन्तन करते रहते थे। इस जन्ममें उनके नाम इस प्रकार थे—॥ २०॥ निर्वैर, निर्वृति, शान्त, निर्मन्यु, कृति, वैधस और मातृवर्ती। ये सभी व्याध परम धार्मिक थे॥ २१॥ तात! इस प्रकार वे दशार्ण देशमें रहकर हिंसामें भी धर्मका पालन करते रहते थे। वे अपनी वृद्धा माताका सत्कार करते थे और पिताको भी संतुष्ट रखते थे॥ २२॥ जब उनके माता-पिता मर गये, तब उन्होंने अपने-अपने धनुषका परित्याग कर वनमें (अनशन आदिके द्वारा) अपने प्राण त्याग दिये॥ २३॥ (माता-पिताके सेवारूप) शुभ कर्मके कारण वे पूर्वजन्मका स्मरण रखनेवाले मृग बनकर उत्पन्न हुए। (पहले हिंसाके द्वारा दूसरोंको) त्रास देनेके कारण वे रमणीय कालञ्जर पर्वतपर सदा उद्विग्न रहते थे॥ २४॥ उन मृगोंके नाम उन्मुख, नित्यवित्रस्त, स्तब्धकर्ण, विलोचन, पण्डित, घस्मर और नादी थे॥ २५॥ (उस जन्ममें भी) पूर्वजन्मकी स्मृति होनेसे याद आये हुए उन्हीं कर्मों और उनके फलोंका स्मरण करते हुए वे मृग धैर्यपूर्वक कष्ट सहन करते, शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंकी परवा नहीं करते और परिग्रह (हिरनियोंके संग)-से दूर रहकर वनमें घूमते रहते थे॥ २६॥ वे सब समानरूपसे धर्मका पालन करते और शुभकर्मोंमें तत्पर रहते थे एवं योगधर्मका आश्रय लेकर (आत्मविचार करते हुए) वनमें इधर-उधर घूमते रहते थे॥ २७॥ भारत! उन मृगोंने हल्का आहार तथा मरु (निर्जल रहने)-की साधना करके तपस्यामें तत्पर हो वहाँ अपने प्राण त्याग दिये। राजन्! जल न पीनेकी साधना करनेवाले उन मृगोंके पैरोंके चिह्न कालञ्जर पर्वतपर अब भी पूर्ववत् दिखायी देते हैं॥ २८॥ तात! इस शुभ कर्मके कारण वे अशुभ योनिसे छूटकर अति शुभ चक्रवाककी योनिमें उत्पन्न हुए॥ २९॥

शुभे देशे शरद्वीपे सप्तैवासञ्जलौकसः।
त्यक्त्वा सहचरीधर्मं मुनयो ब्रह्मचारिणः॥ ३०

निःस्पृहो निर्ममः क्षान्तो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः।
निर्वृत्तिर्निभृतश्चैव शकुना नामतः स्मृताः॥ ३१

ते तत्र पक्षिणः सर्वे शकुना धर्मचारिणः।
निराहारा जहुः प्राणांस्तपोयुक्ताः सरित्तटे॥ ३२

अथ ते सोदरा जाता हंसा मानसचारिणः।
जातिस्मराः सुसंयुक्ताः सप्तैव ब्रह्मचारिणः॥ ३३

विप्रयोनौ यतो मोहान्मिथ्योपचरितो गुरुः।
तिर्यग्योनौ ततो जाताः संसारे परिबभ्रमुः॥ ३४

यतश्च पितृवाक्यार्थः कृतः स्वार्थे व्यवस्थितैः।
ततो ज्ञानं च जातिं च ते हि प्रापुर्गुणोत्तराम्॥ ३५

सुमनाः शुचिवाक्छुद्धः पञ्चमश्छिद्रदर्शनः।
सुनेत्रश्च स्वतन्त्रश्च शकुना नामतः स्मृताः॥ ३६

पञ्चमः पाञ्चिकस्तत्र सप्तजातिष्वजायत।
षष्ठस्तु कण्डरीकोऽभूद् ब्रह्मदत्तस्तु सप्तमः॥ ३७

तेषां तु तपसा तेन सप्तजातिकृतेन वै।
योगस्य चापि निर्वृत्त्या प्रतिभानाच्च शोभनात्॥ ३८

पूर्वजातिषु यद् ब्रह्म श्रुतं गुरुकुलेषु वै।
तथैवावस्थिता बुद्धिः संसारेष्वपि वर्तताम्॥ ३९

ते ब्रह्मचारिणः सर्वे विहङ्गा ब्रह्मवादिनः।
योगधर्ममनुध्यान्तो विहरन्ति स्म तत्र ह॥ ४०

तेषां तत्र विहङ्गानां चरतां सहचारिणाम्।
नीपानामीश्वरो राजा विभ्राजः पौरवान्वयः॥ ४१

विभ्राजमानो वपुषा प्रभावेन समन्वितः।
श्रीमानन्तःपुरवृतो वनं तत्प्रविवेश ह॥ ४२

वे सातों कल्याणमय शरद्वीप (जलद्वीप)-में जलचर पक्षी बनकर उत्पन्न हुए। वहाँ भी वे सहचरीधर्म अर्थात् सहवासका त्यागकर ब्रह्मचारी मुनि बनकर रहने लगे॥ ३०॥ (इस चक्रवाक-जन्ममें) उनके नाम निःस्पृह, निर्मम, क्षान्त, निर्द्वन्द्व, निष्परिग्रह, निर्वृत्ति और निभृत थे॥ ३१॥ उन सब धर्माचारी पक्षियोंने नदीके किनारेपर निराहार रहकर तप करते-करते अपने प्राणोंको त्याग दिया॥ ३२॥ तदनन्तर वे सातों सहोदर भाई मानसरोवरपर विचरनेवाले हंसके रूपमें उत्पन्न हुए। इस जन्ममें भी उनको अपने (पूर्व) जन्मोंका स्मरण बना रहता था। अतः वे सातों ही सदा साथ रहकर पूर्णरूपसे ब्रह्मचर्यका पालन करते थे॥ ३३॥ उन्होंने ब्राह्मणयोनिमें मोहवश अपने गुरुसे मिथ्या-भाषण किया था, इसलिये वे तिर्यक्-योनिमें उत्पन्न होकर संसारमें भटक रहे थे॥ ३४॥ स्वार्थमें तत्पर रहनेपर भी उन्होंने पितरोंके श्राद्धनिमित्त संकल्प बोलकर कार्य किया था, इसलिये उन्हें उत्तरोत्तर उत्कृष्ट गुणसे युक्त ज्ञान और जन्म मिलता गया॥ ३५॥ (इस जन्ममें) उन हंसोंके नाम थे—सुमना, शुचिवाक्, शुद्ध, पञ्चम, छिद्रदर्शन, सुनेत्र और स्वतन्त्र॥ ३६॥ उन (वाग्दुष्ट आदि कौशिक-पुत्रों)-में जो पाँचवाँ (कवि) था, वह भावी सातवें जन्ममें पाञ्चिक (नामक राजमन्त्री) हुआ। छठा (खसृम भावी मनुष्य-जन्ममें) कण्डरीक हुआ और सातवाँ (पितृवर्ती भावी सातवें जन्ममें) ब्रह्मदत्त हुआ॥ ३७॥ उन्होंने सातों जन्मोंमें जो तप किया उससे, योगसिद्धिसे, पूर्वजन्मके कर्मोंकी स्मृति होनेसे तथा पूर्वजन्ममें गुरुकुलमें रहकर जो वेदाध्ययन किया गया था, उसके प्रभावसे संसारमें भ्रमण करनेपर भी उनकी बुद्धि वैसी ही बनी रही, बदली नहीं॥ ३८-३९॥ वे सभी आकाशचारी हंस ब्रह्मचारी तथा ब्रह्मवादी होकर योगधर्मका पालन करते हुए विचरते रहे॥ ४०॥ इस प्रकार वे सब पक्षी वहाँ साथ-साथ विचर रहे थे, इतनेहीमें नीपोंका स्वामी पौरववंशी श्रीमान् विभ्राज अपने शरीरकी कान्तिसे प्रकाशित होता और अपना प्रभाव दिखाता हुआ अपने अन्तःपुरको लेकर उस वनमें आया॥ ४१-४२॥

स्वतन्त्रश्च विहङ्गोऽसौ स्पृहयामास तं नृपम्।
दृष्ट्वाऽऽयान्तं श्रियोपेतं भवेयमहमीदृशः॥ ४३

यद्यस्ति सुकृतं किञ्चित्तपो वा नियमोऽपि वा।
खिन्नोऽस्मि ह्युपवासेन तपसा निष्फलेन च॥ ४४

तब स्वतन्त्र नामवाले हंसने वहाँ आये हुए उस लक्ष्मीवान् राजाको देखकर उसके समान बननेकी कामना की। (वह विचारने लगा कि) यदि मेरे पास कुछ भी पुण्य, तप या नियम हो तो मैं इस राजाके समान हो जाऊँ। अब मैं इस उपवास और निष्फल तपसे खिन्न हो रहा हूँ॥ ४३-४४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पितृकल्पे एकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पितृकल्पविषयक इक्कीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २१॥

द्वाविंशोऽध्यायः

पितृकल्प—शुचिवाक् पक्षीका स्वतन्त्र आदि तीन पक्षियोंको शाप देना, सुमना पक्षीका अनुग्रहपूर्वक उन्हें शापसे मुक्त करना

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तं चक्रवाकौ द्वावूचतुः सहचारिणौ।
आवां ते सचिवौ स्यावस्तव प्रियहितैषिणौ॥ १

तथेत्युक्त्वा च तस्यासीत् तदा योगात्मिका मतिः।
एवं ते समयं चक्रुः शुचिवाक् तमुवाच ह॥ २

यस्मात् कामप्रधानस्त्वं योगधर्ममपास्य वै।
एवं वरं प्रार्थयसे तस्माद् वाक्यं निबोध मे॥ ३

राजा त्वं भविता तात काम्पिल्ये नात्र संशयः।
भविष्यतः सखायौ च द्वाविमौ सचिवौ तव॥ ४

शप्त्वा चानभिभाष्यांस्तांश्चत्वारश्चक्रुरण्डजाः।
तांस्त्रीनभीप्सतो राज्यं व्यभिचारप्रदर्शितान्॥ ५

शप्ताः खगास्त्रयस्ते तु योगभ्रष्टा विचेतसः।
तानयाचन्त चतुरस्त्रयस्ते सहचारिणः॥ ६

तेषां प्रसादं ते चक्रुरथैतान् सुमनाऽब्रवीत्।
सर्वेषामेव वचनात्प्रसादानुगतं वचः॥ ७

अन्तवान् भविता शापो युष्माकं नात्र संशयः।
इतश्च्युताश्च मानुष्यं प्राप्य योगमवाप्स्यथ॥ ८

मार्कण्डेयजी बोले—उस समय उस स्वतन्त्र पक्षीके साथमें रहनेवाले दो चक्रवाकोंने उससे कहा—हम आपका प्रिय एवं हित चाहनेवाले आपके मन्त्री बनेंगे॥ १॥ तब स्वतन्त्रने कहा—'बहुत अच्छा'। यों कहकर वह पुनः अपने योगधर्मका विचार करने लगा। जब इस प्रकार उन तीनोंने प्रतिज्ञा कर ली, तब शुचिवाक्ने उस (स्वतन्त्र)-से कहा॥ २॥ तू योगधर्मको छोड़कर कामप्रधान धर्मकी कामनासे ऐसा वर माँग रहा है, इसलिये तू मेरा यह शाप सुन ले॥ ३॥ तात! तू काम्पिल्य नगरका राजा बनकर उत्पन्न होगा, इसमें संदेह नहीं। तेरे ये दोनों मित्र भी तेरे मन्त्री बनकर उत्पन्न होंगे॥ ४॥ (इस प्रकार) शेष चार पक्षियोंने राज्यकी इच्छा करके योगधर्मसे भ्रष्ट होनेवाले उन तीन पक्षियोंको शाप देकर उनसे बोलना भी छोड़ दिया॥ ५॥ इस प्रकार योगभ्रष्ट होनेके कारण शापसे ग्रस्त हुए वे तीनों पक्षी डरके मारे अचेत हो गये। उन तीनों साथियोंने चारों पक्षियोंसे (शापका अनुग्रह करनेकी) प्रार्थना की॥ ६॥ तब उन्होंने उनके ऊपर कृपा की और सबकी सम्मतिसे सुमनाने अनुग्रहपूर्वक यह बात कही—॥ ७॥ इसमें संदेह नहीं कि तुम्हारे इस शापका शीघ्र ही अन्त होगा। यहाँ योगसे भ्रष्ट होकर तुम मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होगे और अन्तमें फिर तुम्हें योगज्ञान प्राप्त होगा॥ ८॥

सर्वसत्त्वरुतज्ञश्च स्वतन्त्रोऽयं भविष्यति।
पितृप्रसादो ह्यस्माभिरस्य प्राप्तः कृतेन वै॥ ९

गां प्रोक्षयित्वा धर्मेण पितृभ्य उपकल्प्यताम्।
अस्माकं ज्ञानसंयोगः सर्वेषां योगसाधकः॥ १०

इमं च वाक्यसंदर्भश्लोकमेकमुदाहृतम्।
पुरुषान्तरितं श्रुत्वा ततो योगमवाप्स्यथ॥ ११

यह स्वतन्त्र नामक हंस सब जीवोंकी बोली समझनेवाला होगा। पूर्वजन्ममें इसीके कथनानुसार कार्य करनेसे हमें पितरोंकी कृपा प्राप्त हुई। इसने कहा था कि 'गौका प्रोक्षण करके इसे पितरोंको अर्पित किया जाय।' इसीके पालनसे हम सबको योगसाधक ज्ञानकी प्राप्ति हुई है॥ ९-१०॥ उस मनुष्य-जन्ममें जब कोई पुरुष तुम्हें यह आगे बताया जानेवाला वाक्य संदर्भरूप (**'सप्त व्याधा दशार्णेषु'** आदि) * श्लोक सुनायेगा, तब तुम्हें यह मोक्ष देनेवाला ज्ञानमय योगधर्म फिर प्राप्त हो जायगा॥ ११॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पितृकल्पे द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पितृकल्पविषयक बाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

हंसोंका काम्पिल्य नगरमें ब्रह्मदत्त आदिके रूपमें उत्पन्न होना और चार हंसोंका अपने पितासे आज्ञा लेकर मुक्त हो जाना

मार्कण्डेय उवाच

ते योगधर्मनिरताः सप्त मानसचारिणः।
पद्मगर्भोऽरविन्दाक्षः क्षीरगर्भः सुलोचनः॥ १

उरुबिन्दुः सुबिन्दुश्च हैमगर्भस्तु सप्तमः।
वाय्वम्बुभक्षाः सततं शरीराण्युपशोषयन्॥ २

राजा विभ्राजमानस्तु वपुषा तद् वनं तदा।
चचारान्तःपुरवृतो नन्दनं मघवानिव॥ ३

स तानपश्यत्खचरान् योगधर्मात्मकान् नृप।
निर्वेदाच्च तमेवार्थमनुध्यायन् पुरं ययौ॥ ४

अणुहो नाम तस्याऽऽसीत्पुत्रः परमधार्मिकः।
अणुधर्मरतिर्नित्यमणुं सोऽध्यगमत्पदम्॥ ५

मार्कण्डेयजीने कहा—तदनन्तर योगधर्ममें निरत रहनेवाले उन सात मानसचारी हंसोंने, जो पद्मगर्भ, अरविन्दाक्ष, क्षीरगर्भ, सुलोचन, उरुबिन्दु, सुबिन्दु और हैमगर्भ नाम धारण करते थे, केवल जल और वायुका ही भक्षण करके अपने शरीरको सुखाना आरम्भ कर दिया॥ १-२॥ इधर वह राजा अपने शरीरसे प्रकाश फैलाता हुआ अपनी स्त्रियोंको साथ ले उस वनमें इस प्रकार घूमने लगा, जैसे नन्दनवनमें इन्द्र घूमते हों॥ ३॥ राजन्! उस राजाने उन पक्षियोंको (एकाग्रता आदि बाह्य लक्षणोंसे) योगधर्ममें परायण देखा। इससे वह (पक्षी भी योगसाधन करते हैं। हाय! मैं मनुष्य होकर भी योगसाधन न कर सका। इस प्रकार) कुछ निर्विण्ण होकर, उसी बातको सोचता हुआ अपने नगरको चला गया॥ ४॥ उसके अणुह† नामक परम धार्मिक पुत्र था। वह अणुह धर्मके सूक्ष्म तत्त्वके चिन्तनमें अनुरक्त था। इसलिये उसे अणुपद (ब्रह्मके सूक्ष्म स्वरूपका बोध) प्राप्त हुआ था॥ ५॥

* 'सप्त व्याधा दशार्णेषु' आदि वाक्य चौबीसवें अध्यायका बीसवाँ और इक्कीसवाँ श्लोक है।

† अणुह शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—(अणून्—सूक्ष्मान् अर्थात् हन्ति प्राप्नोतीति अणुहः—सूक्ष्म तत्त्वोंको समझनेकी शक्तिवाला)।

प्रादात्कन्यां शुकस्तस्मै कृत्वीं पूजितलक्षणाम्।
सत्यशीलगुणोपेतां योगधर्मरतां सदा॥ ६

सा ह्युद्दिष्टा पुरा भीष्म पितृकन्या मनीषिणी।
सनत्कुमारेण तदा संनिधौ मम शोभना॥ ७

सत्यधर्मभृतां श्रेष्ठा दुर्विज्ञेया कृतात्मभिः।
योगा च योगपत्नी च योगमाता तथैव च॥ ८

यथा ते कथितं पूर्वं पितृकल्पेषु वै मया।
विभ्राजस्त्वणुहं राज्ये स्थापयित्वा नरेश्वरः॥ ९॥

आमन्त्र्य पौरान् प्रीतात्मा ब्राह्मणान् स्वस्ति वाच्य च।
प्रायात् सरस्तपश्चर्तुं यत्र ते सहचारिणः॥ १०

स वै तत्र निराहारो वायुभक्षो महातपाः।
त्यक्त्वा कामांस्तपस्तेपे सरसस्तस्य पार्श्वतः॥ ११

तस्य संकल्प आसीच्च तेषामेकतरस्य वै।
पुत्रत्वं प्राप्य योगेन युज्येयमिति भारत॥ १२

कृत्वाभिसन्धिं तपसा महता स समन्वितः।
महातपाः स विभ्राजो विरराजांशुमानिव॥ १३

ततो विभ्राजितं तेन वैभ्राजं नाम तद्वनम्।
सरस्तच्च कुरुश्रेष्ठ वैभ्राजमिति संज्ञितम्॥ १४

तत्र ते शकुना राजंश्चत्वारो योगधर्मिणः।
योगभ्रष्टास्त्रयश्चैव देहन्यासकृतोऽभवन्॥ १५

काम्पिल्ये नगरे ते तु ब्रह्मदत्तपुरोगमाः।
जाताः सप्त महात्मानः सर्वे विगतकल्मषाः॥ १६

ज्ञानध्यानतपःपूजावेदवेदाङ्गपारगाः ।
स्मृतिमन्तोऽत्र चत्वारस्त्रयस्तु परिमोहिताः॥ १७

स्वतन्त्रस्त्वणुहाज्जज्ञे ब्रह्मदत्तो महायशाः।
यथा ह्यासीत्पक्षिभावे संकल्पः पूर्वचिन्तितः।
ज्ञानध्यानतपःपूतो वेदवेदाङ्गपारगः॥ १८

उसको शुकने श्रेष्ठ लक्षणोंवाली सत्यशील एवं अन्यान्य गुणोंसे सम्पन्न और सदा योगधर्मका पालन करनेवाली अपनी कन्या कृत्वी अर्पित की थी॥ ६॥ भीष्म! जैसा कि सनत्कुमारजीने पहले मुझे बताया था, वह सुन्दरी कन्या कृत्वी पितरोंकी ही बुद्धिमती कन्या (पीवरी) थी॥ ७॥ वह सत्यधर्मका पालन करनेवाली नारियोंमें श्रेष्ठ थी। पुण्यात्मा पुरुष भी उसके स्वरूपको बड़ी कठिनतासे समझ सकते थे। वह स्वयं तो योगिनी थी ही, योगीकी ही पत्नी और योगीकी ही माता भी थी॥ ८॥ मैंने पहले पितृकल्पके समय ये सब बातें तुम्हें बतायी थीं। राजा विभ्राज अणुहको राज्यसिंहासनपर बैठाकर प्रसन्नचित्त हो पुरवासियोंसे विदा ले ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर जहाँ वे सहचारी हंस रहते थे, उस सरोवरपर तप करनेके लिये चले गये॥ ९-१०॥ वे उस सरोवरके तटपर सब कामनाओंको त्याग निराहार रह वायुको ही पीकर तपस्या करने लगे॥ ११॥ भारत! उनका यह संकल्प था कि मैं उन (योगी हंसोंमेंसे) किसी एकका पुत्र बनकर उत्पन्न होऊँ तो मैं भी योगधर्मका पालन कर सकूँगा॥ १२॥ इस प्रकार विचार करके वे महातपस्वी विभ्राज बड़ा भारी तप करके सूर्यके समान सुशोभित होने लगे॥ १३॥ कुरुश्रेष्ठ! उन्होंने (अपने तपसे) उस वनको विभ्राजित (प्रकाशित) कर दिया। इसलिये वह सरोवर और वह वन भी वैभ्राज सरोवर और वैभ्राज वनके नामसे प्रसिद्ध हो गये॥ १४॥ राजन्! (इसी समय) उस सरोवरपर उन योगधर्मका पालन करनेवाले चार हंसोंने तथा योगभ्रष्ट तीन हंसोंने भी अपने शरीरको त्याग दिया॥ १५॥ वे सातों निष्पाप महात्मा काम्पिल्य नगरमें ब्रह्मदत्त आदि (नामोंसे) उत्पन्न हुए॥ १६॥ ये सब ज्ञान, ध्यान, तप और पूजामें लगे रहते थे तथा वेद-वेदाङ्गके पारगामी विद्वान् थे। इनमें चारको तो अपने पूर्वजन्मोंका स्मरण था और तीन शापसे मोहित होनेके कारण अपने पूर्वजन्मकी स्मृतिसे वञ्चित थे॥ १७॥ स्वतन्त्रने अपने पक्षी-शरीरमें जैसा संकल्प किया था, उसीके अनुसार वह अणुहके महायशस्वी पुत्र ब्रह्मदत्तके रूपमें उत्पन्न हुआ। वह ज्ञान, ध्यान और तप करके पवित्र हो गया था तथा वेद और वेदाङ्गका पारगामी विद्वान् था॥ १८॥

छिद्रदर्शी सुनेत्रश्च तथा बाभ्रव्यवत्सयोः।
जातौ श्रोत्रियदायादौ वेदवेदाङ्गपारगौ॥ १९

सहायौ ब्रह्मदत्तस्य पूर्वजातिसहोषितौ।
पाञ्चालः पाञ्चिकश्चैव कण्डरीकस्तथापरः॥ २०

पाञ्चालो बह्वृचस्त्वासीदाचार्यत्वं चकार ह।
द्विवेदः कण्डरीकस्तु छन्दोगोऽध्वर्युरेव च॥ २१

सर्वसत्त्वरुतज्ञस्तु राजाऽऽसीदणुहात्मजः।
पाञ्चालकण्डरीकाभ्यां तस्य सख्यमभूत् तदा॥ २२

ते ग्राम्यधर्माभिरताः कामस्य वशवर्तिनः।
पूर्वजातिकृतेनासन् धर्मकामार्थकोविदाः॥ २३

अणुहस्तु नृपश्रेष्ठो ब्रह्मदत्तमकल्मषम्।
राज्येऽभिषिच्य योगात्मा परां गतिमवाप्तवान्॥ २४

ब्रह्मदत्तस्य भार्या तु देवलस्यात्मजाभवत्।
असितस्य हि दुर्धर्षा संनतिर्नाम नामतः॥ २५

तामेकभावसम्पन्नां लेभे कन्यामनुत्तमाम्।
संनतिं संनतिमतीं देवलाद् योगधर्मिणीम्॥ २६

पञ्चमः पाञ्चिकस्तत्र सप्तजातिषु भारत।
षष्ठस्तु कण्डरीकोऽभूद् ब्रह्मदत्तस्तु सप्तमः॥ २७

शेषा विहङ्गमा ये वै काम्पिल्ये सहचारिणः।
ते जाताः श्रोत्रियकुले सुदरिद्रे सहोदराः॥ २८

धृतिमान् सुमना विद्वांस्तत्त्वदर्शी च नामतः।
वेदाध्ययनसम्पन्नाश्चत्वारश्छिद्रदर्शिनः॥ २९

बाभ्रव्य और वत्स—(ये दोनों वहाँ राजा अणुहके मन्त्री तथा श्रोत्रिय ब्राह्मण थे।) छिद्रदर्शन और सुनेत्र नामक हंस उन्हीं श्रोत्रिय राजमन्त्रियोंके कुलमें वेद-वेदाङ्गके पारगामी श्रोत्रिय पुत्र बनकर उत्पन्न हुए॥ १९॥ ये दोनों पहले जन्ममें ब्रह्मदत्तके साथ रहे थे और उनकी सहायता करनेके लिये उत्पन्न हुए थे। (इनमें जो पूर्ववर्ती छः जन्मोंमें अपने सात भाइयोंमेंसे) पाँचवाँ (होकर उत्पन्न हुआ था, वह कवि सातवें जन्ममें) पाञ्चाल नामक श्रोत्रिय हुआ और छठा (खसृम) कण्डरीक नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ २०॥ इनमें पाञ्चाल बह्वृच अर्थात् ऋग्वेदी था। वह आचार्य (पुरोहित)-का काम करने लगा और कण्डरीक छन्दोंका गान करनेवाला सामवेदी तथा अध्वर्यु (यजुर्वेदी) हुआ, इस प्रकार वह दो वेदोंका ज्ञाता था॥ २१॥ अणुहका पुत्र राजा ब्रह्मदत्त सब प्राणियोंकी बोलीको समझ लेता था। उसकी पाञ्चाल और कण्डरीकसे मित्रता हो गयी॥ २२॥ वे तीनों ग्राम्यधर्म (संसारी पुरुषोंके धर्म)-में मग्न रहते थे और काम (इच्छा)-के वशमें होकर चलते थे। उन्होंने पूर्वजन्ममें जो सत्कर्म किया था, उसके फलसे वे धर्म, अर्थ और कामके तत्त्वज्ञ हुए॥ २३॥ राजाओंमें श्रेष्ठ अणुह निष्पाप ब्रह्मदत्तका राज्यपर अभिषेक करके स्वयं योग-साधन कर परम गतिको प्राप्त हो गये॥ २४॥ असित देवलकी पुत्री, जिसका नाम संनति था तथा जिसका तिरस्कार करना किसीके लिये भी बहुत कठिन था, राजा ब्रह्मदत्तकी धर्मपत्नी हुई॥ २५॥ उस एक-भाव (ब्रह्मभाव)-से सम्पन्न, नम्रताकी मूर्ति, योग-धर्मका पालन करनेवाली संनति नामकी श्रेष्ठ कन्याको ब्रह्मदत्तने देवल ऋषिसे पत्नीके रूपमें प्राप्त किया था॥ २६॥ भारत! जन्मोंमें पाँचवाँ होकर उत्पन्न होनेवाला पाञ्चिक (कवि) पाञ्चाल हुआ, छठा कण्डरीक हुआ और सातवाँ ब्रह्मदत्त हुआ॥ २७॥ जो शेष सहचारी पक्षी थे, वे काम्पिल्य नगरमें अत्यन्त दरिद्र श्रोत्रियकुलमें सगे भाई बनकर उत्पन्न हुए॥ २८॥ वे चारों धृतिमान्, सुमना, विद्वान् और तत्त्वदर्शीके नामसे प्रसिद्ध थे और वेदोंके अध्ययन करनेमें लगे रहते थे। साथ ही योगसाधनके लिये गृह-त्यागका अवसर ढूँढ़ते थे अथवा अपने सहचारियोंके भोगासक्तिरूप दूषणपर भी दृष्टि रखते थे॥ २९॥

तेषां संवित्तथोत्पन्ना पूर्वजातिकृता तदा।
ये योगनिरताः सिद्धाः प्रस्थिताः सर्व एव हि ॥ ३०

आमन्त्र्य पितरं तात पिता तानब्रवीत् तदा।
अधर्म एष युष्माकं यन्मां त्यक्त्वा गमिष्यथ ॥ ३१

दारिद्र्यमनपाकृत्य पुत्रार्थांश्चैव पुष्कलान्।
शुश्रूषामप्रयुज्यैव कथं वै गन्तुमर्हथ ॥ ३२

ते तमूचुर्द्विजाः सर्वे पितरं पुनरेव च।
करिष्यामो विधानं ते येन त्वं वर्तयिष्यसि ॥ ३३

इमं श्लोकं महार्थं त्वं राजानं सहमन्त्रिणम्।
श्रावयेथाः समागम्य ब्रह्मदत्तमकल्मषम् ॥ ३४

प्रीतात्मा दास्यति स ते ग्रामान् भोगांश्च पुष्कलान्।
यथेप्सितांश्च सर्वार्थान् गच्छ तात यथेप्सितम् ॥ ३५

एतावदुक्त्वा ते सर्वे पूजयित्वा च तं गुरुम्।
योगधर्ममनुप्राप्य परां निर्वृतिमाययुः ॥ ३६

उनकी पूर्वजन्मोंमें जैसी वैराग्यपूर्ण बुद्धि थी, वैसी ही इस जन्ममें प्रकट हुई। अतः ये सब सिद्ध पुरुष योगपरायण हो घरसे चलनेके लिये उद्यत हुए॥ ३० ॥ तात! जब उन्होंने अपने पितासे पूछकर जानेका विचार किया, तब पिताने उनसे यह बात कही—'तुमलोग यदि मुझको छोड़कर वनमें जाओगे तो यह तुम्हारे लिये अधर्म ही होगा'॥ ३१ ॥ तुमलोग मेरी दरिद्रता दूर न करके तथा पुत्रद्वारा सिद्ध होनेवाले प्रचुर प्रयोजनोंकी भी सिद्धि एवं मेरी सेवा भी न करके कैसे चले जाना चाहते हो? क्या यही उचित है?॥ ३२ ॥ तब उन सब द्विजोंने अपने पितासे कहा—'हमलोग ऐसा उपाय करेंगे जिससे आप जीवन-निर्वाह कर सकेंगे' (तथा हम-जैसे पुत्रोंको पाकर आपको अपने उद्धारके लिये भी चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है) ॥ ३३ ॥ आप निष्पाप राजा ब्रह्मदत्तसे मिलकर यह महत्त्वपूर्ण (**'सप्त व्याधा दशार्णेषु'** इत्यादि) श्लोक उनको और उनके मन्त्रियोंको सुनाइयेगा॥ ३४ ॥ तात! इससे प्रसन्न होकर वे आपको बहुतसे ग्राम, प्रचुर भोग और आपके इच्छानुसार सब पदार्थ देंगे। आपकी जब इच्छा हो तब (ब्रह्मदत्तके पास) चले जायँ॥ ३५ ॥ इतनी बातें कहकर उन सबोंने अपने पिताकी पूजा की और योगधर्मका साधन कर वे परमानन्दमय मोक्षको प्राप्त हो गये॥ ३६ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पितृकल्पे त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पितृकल्पविषयक तेईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २३॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

विभ्राजका ब्रह्मदत्तका पुत्र बनकर उत्पन्न होना, रानी संनतिका ब्रह्मदत्तसे रूठना, एक ब्राह्मणके कहे हुए श्लोकोंसे ब्रह्मदत्त, पाञ्चाल्य और कण्डरीकको अपने पूर्वजन्मका ज्ञान होना तथा ब्रह्मदत्त आदिका तप करके मुक्त हो जाना

मार्कण्डेय उवाच

ब्रह्मदत्तस्य तनयः स विभ्राजस्त्वजायत।
योगात्मा तपसा युक्तो विष्वक्सेन इति श्रुतः ॥ १

कदाचिद् ब्रह्मदत्तस्तु भार्यया सहितो वने।
विजहार प्रहृष्टात्मा यथा शच्या शचीपतिः ॥ २

मार्कण्डेयजीने कहा—जिसके मनमें योग-साधन-विषयक संकल्प हुआ था, वह तपस्वी राजा विभ्राज ब्रह्मदत्तका पुत्र होकर उत्पन्न हुआ और (उस जन्ममें) वह विष्वक्सेन नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ १ ॥ एक समयकी बात है, राजा ब्रह्मदत्त प्रसन्नचित्तसे अपनी भार्याको साथमें लिये उपवनमें इस प्रकार विहार कर रहे थे, जैसे इन्द्र इन्द्राणीके साथ विहार कर रहे हों॥ २॥

ततः पिपीलिकरुतं स शुश्राव नराधिपः।
कामिनीं कामिनस्तस्य याचतः क्रोशतो भृशम्॥ ३

श्रुत्वा तु याच्यमानां तां क्रुद्धां सूक्ष्मां पिपीलिकाम्।
ब्रह्मदत्तो महाहासमकस्मादेव चाहसत्॥ ४

ततः सा संनतिर्दीना व्रीडितेवाभवत् तदा।
निराहारा बहुतिथं बभूव वरवर्णिनी॥ ५

प्रसाद्यमाना भर्त्रा सा तमुवाच शुचिस्मिता।
त्वया च हसिता राजन् नाहं जीवितुमुत्सहे॥ ६

स तत्कारणमाचख्यौ न च सा श्रद्दधाति तत्।
उवाच चैनं कुपिता नैष भावोऽस्ति मानुषे॥ ७

को वै पिपीलिकरुतं मानुषो वेत्तुमर्हति।
ऋते देवप्रसादाद् वा पूर्वजातिकृतेन वा॥ ८

तपोबलेन वा राजन् विद्यया वा नराधिप।
यद्येष वै प्रभावस्ते सर्वसत्त्वरुतज्ञता॥ ९

यथाहमेतज्जानीयां तथा प्रत्याययस्व माम्।
प्राणान् वापि परित्यक्ष्ये राजन् सत्येन ते शपे॥ १०

तत् तस्या वचनं श्रुत्वा महिष्याः परुषाक्षरम्।
स राजा परमापन्नो देवश्रेष्ठमगात् ततः॥ ११

शरण्यं सर्वभूतेशं भक्त्या नारायणं हरिम्।
समाहितो निराहारः षड्रात्रेण महायशाः॥ १२

ददर्श दर्शने राजा देवं नारायणं प्रभुम्।
उवाच चैनं भगवान् सर्वभूतानुकम्पकः॥ १३

ब्रह्मदत्त प्रभाते त्वं कल्याणं समवाप्स्यसि।
इत्युक्त्वा भगवान् देवस्तत्रैवान्तरधीयत॥ १४

चतुर्णां तु पिता योऽसौ ब्राह्मणानां महात्मनाम्।
श्लोकं सोऽधीत्य पुत्रेभ्यः कृतकृत्य इवाभवत्॥ १५

स राजानमथान्विच्छन्सहमन्त्रिणमच्युतम्।
न ददर्शान्तरं किंचित् श्लोकं श्रावयितुं तदा॥ १६

उसी समय राजाने एक चींटेका स्वर सुना, जो कामके वशमें होकर अपनी कामिनी चींटीसे बहुत गिड़गिड़ाकर प्रार्थना कर रहा था॥ ३॥ छोटी-सी चींटी कुपित हो मान किये बैठी है और चींटा उससे याचना कर रहा है, यह देख-सुनकर ब्रह्मदत्त अचानक ही बड़े जोरसे हँस पड़े॥ ४॥ उस समय सुन्दरी रानी संनति लज्जित-सी हो गयी और दीन होकर बहुत दिनोंतक उसने खाना-पीनातक छोड़ दिया॥ ५॥ जब पतिदेव उसे मनाने लगे, तब पवित्र मुसकानवाली संनतिने उनसे कहा—'राजन्! आपने मेरी हँसी उड़ायी है, अतः मैं जीवित रहना नहीं चाहती'॥ ६॥ तब राजाने हँसनेका कारण बताया, परंतु संनतिने उस बातपर विश्वास नहीं किया और कोपमें भरकर कहा—'मनुष्यमें ऐसी शक्ति (सब प्राणियोंकी बोलीको समझनेकी शक्ति) नहीं हो सकती'॥ ७॥ राजन्! देवताओंकी कृपा, पूर्वजन्ममें किये हुए तप अथवा विद्या (योगशक्ति)-के बिना ऐसा कौन मनुष्य है, जो चींटेकी बोलीको समझ सके। यदि आपमें सब प्राणियोंकी भाषाको समझनेकी शक्ति है तो मैं जिस प्रकार इस बातको समझ सकूँ, उस प्रकार मुझे विश्वास दिलाइये। राजन्! यदि आप ऐसा न करेंगे तो मैं आपसे सत्यकी शपथ खाकर कहती हूँ, अपने प्राण त्याग दूँगी॥ ८—१०॥ रानीके इन कठोर शब्दोंको सुनकर राजा बड़ी विपत्तिमें पड़ गये। तब उन्होंने शरणागतरक्षक, समस्त प्राणियोंके स्वामी, देवश्रेष्ठ भगवान् नारायण हरिकी शरण ली। उन महायशस्वी महात्मा राजाको निराहार रह भक्तिपूर्वक समाहितचित्तसे उपासना करते हुए छः रातें बीत गयीं॥ ११-१२॥ छठी रातमें राजाने प्रभु नारायणदेवका दर्शन किया। समस्त प्राणियोंपर अकारण दया करनेवाले भगवान्ने राजासे कहा—॥ १३॥ 'ब्रह्मदत्त! प्रातःकाल होनेपर तुझे कल्याणकी प्राप्ति होगी।' इतनी बात कहकर भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये॥ १४॥ इधर जो चारों महात्मा ब्राह्मणोंके पिता थे, वे पुत्रोंसे श्लोक सीखकर कृतकृत्य-से हो गये॥ १५॥ वे धर्मसे कभी च्युत न होनेवाले राजा ब्रह्मदत्त तथा उसके मन्त्रियोंको खोजने लगे, परंतु उन्हें श्लोक सुनानेका कोई अवसर न मिला॥ १६॥

अथ राजा सरःस्नातो लब्ध्वा नारायणाद् वरम्।
प्रविवेश पुरीं प्रीतो रथमारुह्य काञ्चनम्॥ १७

तस्य रश्मीन् प्रत्यगृह्णात् कण्डरीको द्विजर्षभः।
चामरं व्यजनं चापि बाभ्रव्यः समवाक्षिपत्॥ १८

इदमन्तरमित्येव ततः स ब्राह्मणस्तदा।
श्रावयामास राजानं श्लोकं तं सचिवौ च तौ॥ १९

सप्त व्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ।
चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे॥ २०

तेऽभिजाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः।
प्रस्थिता दीर्घमध्वानं यूयं किमवसीदथ॥ २१

तच्छ्रुत्वा मोहमगमद् ब्रह्मदत्तो नराधिपः।
सचिवश्चास्य पाञ्चाल्यः कण्डरीकश्च भारत॥ २२

स्रस्तरश्मिप्रतोदौ तौ पतितव्यजनावुभौ।
दृष्ट्वा बभूवुरस्वस्थाः पौराश्च सुहृदस्तथा॥ २३

मुहूर्तमेव राजा स सह ताभ्यां रथे स्थितः।
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां प्रत्यागच्छदरिंदमः॥ २४

ततस्ते तत्सरः स्मृत्वा योगं तमुपलभ्य च।
ब्राह्मणं विपुलैरर्थैर्भोगैश्च समयोजयन्॥ २५

अभिषिच्य स्वराज्ये तु विष्वक्सेनमरिंदमम्।
जगाम ब्रह्मदत्तोऽथ सदारो वनमेव ह॥ २६

अथैनं संनतिर्धीरा देवलस्य सुता तदा।
उवाच परमप्रीता योगाद् वनगतं नृपम्॥ २७

जानन्त्या ते महाराज पिपीलिकरुतज्ञताम्।
चोदितः क्रोधमुद्दिश्य सक्तः कामेषु वै मया॥ २८

इतनेमें भगवान् नारायणसे वर पाकर राजा सरोवरमें स्नान करके सुवर्णजटित रथमें बैठे और प्रसन्नतापूर्वक अपनी नगरीमें प्रवेश करने लगे॥ १७॥ उस समय ब्राह्मणश्रेष्ठ कण्डरीकने अपने हाथमें ब्रह्मदत्तके घोड़ोंकी बागडोर ले रखी थी और बाभ्रव्य-पुत्र पाञ्चाल उनके ऊपर चँवर और व्यजन (पंखा) डुला रहे थे॥ १८॥ 'यही अवसर है' यह समझकर वे ब्राह्मण राजाको और उनके दोनों मन्त्रियोंको उसी समय श्लोक सुनाने लगे॥ १९॥ जो दशार्ण देशमें व्याध, कालञ्जर पर्वतपर मृग, शरद्वीपमें चक्रवाक तथा मानस-सरोवरमें हंस हुए थे, उनमेंसे हम चार तो कुरुक्षेत्रमें वेद-पारगामी कुलीन ब्राह्मण होकर दीर्घमार्गपर चले आये हैं, (अर्थात् योगसाधना करके मुक्त हो गये। अब शेष बचे हुए) तुम (तीन व्यक्ति योगमार्गसे भ्रष्ट होकर) क्यों कष्ट पा रहे हो?॥ २०-२१॥ भारत! राजा ब्रह्मदत्त वह श्लोक सुनकर मूर्च्छित हो गये और उनके मन्त्री पाञ्चाल तथा कण्डरीककी भी वही दशा हुई॥ २२॥ कण्डरीकके हाथमेंसे चाबुक और बागडोर छूट गयीं तथा पाञ्चालके हाथमेंसे भी चँवर और पंखा छूटकर नीचे गिर पड़े। नगरनिवासी और मित्रवर्ग राजा तथा दोनों मन्त्रियोंकी इस दशाको देखकर खिन्न हो गये॥ २३॥ दोनों मन्त्रियोंसहित शत्रुदमन राजा ब्रह्मदत्त रथमें दो घड़ीतक मूर्च्छित पड़े रहे। तत्पश्चात् उन्हें होश आया और ये अपने नगरमें लौट आये॥ २४॥ तदनन्तर उन तीनोंको उस सरोवरका ध्यान आ गया और अपने पूर्वजन्मके योगका भी स्मरण होने लगा। तब उन्होंने उस ब्राह्मणको बहुत-सा धन और भोग-पदार्थ दिये॥ २५॥ फिर ब्रह्मदत्तने अपने राज्यपर शत्रुदमन विष्वक्सेनका अभिषेक किया और अपनी स्त्रीको साथमें लेकर वनको चल दिये॥ २६॥ तदनन्तर योगसाधन करनेके लिये वनमें आये हुए राजा ब्रह्मदत्तसे देवलकी पुत्री धीरस्वभावा संनतिने परम प्रसन्न होकर कहा—॥ २७॥ महाराज! मैं यह बात जानती थी कि आप चींटीकी बोलीको समझ सकते हैं, तब भी मैंने आपको संसारके भोगोंमें आसक्त देख यह क्रोधका नाटक रचकर आपको योगकी ओर प्रेरित किया है॥ २८॥

इतो वयं गमिष्यामो गतिमिष्टामनुत्तमाम्।
तव चान्तर्हितो योगस्ततः संस्मारितो मया॥ २९

स राजा परमप्रीतः पत्न्याः श्रुत्वा वचस्तदा।
प्राप्य योगं बलादेव गतिं प्राप सुदुर्लभाम्॥ ३०

कण्डरीकोऽपि धर्मात्मा सांख्ययोगमनुत्तमम्।
प्राप्य योगगतिः सिद्धो विशुद्धस्तेन कर्मणा॥ ३१

क्रमं प्रणीय पाञ्चाल्यः शिक्षां चोत्पाद्य केवलाम्।
योगाचार्यगतिं प्राप यशश्चाग्र्यं महातपाः॥ ३२

एवमेतत् पुरावृत्तं मम प्रत्यक्षमच्युत।
तद् धारयस्व गाङ्गेय श्रेयसा योक्ष्यसे ततः॥ ३३

ये चान्ये धारयिष्यन्ति तेषां चरितमुत्तमम्।
तिर्यग्योनिषु ते जातु न गमिष्यन्ति कर्हिचित्॥ ३४

श्रुत्वा चेदमुपाख्यानं महार्थं महतां गतिम्।
योगधर्मो हृदि सदा परिवर्तति भारत॥ ३५

स तेनैवानुबन्धेन कदाचिल्लभते शमम्।
ततो योगगतिं याति शुद्धां तां भुवि दुर्लभाम्॥ ३६

वैशम्पायन उवाच

एवमेतत् पुरा गीतं मार्कण्डेयेन धीमता।
श्राद्धस्य फलमुद्दिश्य सोमस्याप्यायनाय वै॥ ३७

सोमो हि भगवान् देवो लोकस्याप्यायनं परम्।
वृष्णिवंशप्रसङ्गेन तस्य वंशं निबोध मे॥ ३८

अब हम परम उत्तम अभीष्ट गतिको प्राप्त करेंगे, इसी उद्देश्यसे मैंने आपको भूले हुए योगका स्मरण दिलाया है॥ २९॥

तब अपनी पत्नीकी यह बात सुनकर राजा बड़े प्रसन्न हुए और योगसाधना करके उन्होंने उसके बलसे ही परम दुर्लभ गति पायी॥ ३०॥ धर्मात्मा कण्डरीक भी परमश्रेष्ठ सांख्ययोगका ज्ञान पाकर योगका आश्रय ले उसके साधनसे शुद्ध एवं सिद्ध (मुक्त) हो गये॥ ३१॥ महातपस्वी पाञ्चालने भी वैदिकोंमें प्रसिद्ध क्रमपाठकी विधि एवं विशुद्ध 'शिक्षा' (नामक वेदाङ्ग अथवा योगविषयक शिक्षा)-की रचना करके योगाचार्यकी गति (मोक्ष) तथा उत्तम यश प्राप्त किया॥ ३२॥ (मार्कण्डेयजी कहते हैं—) अच्युत भीष्म! प्राचीन कालमें घटित हुआ यह श्राद्ध-माहात्म्य-सूचक वृत्तान्त मैंने प्रत्यक्ष देखा है। तुम भी इसे धारण करो तो तुम्हारा कल्याण होगा॥ ३३॥ जो दूसरे सज्जन भी उन वागदुष्ट आदिके उत्तम चरित्रको सुनेंगे, वे भी कभी तिर्यक्-योनिमें उत्पन्न न होंगे॥ ३४॥ भारत! महात्माओंकी सद्गति देनेवाले इस महत्त्वमय उपाख्यानको सुननेसे हृदयमें योगधर्म पूर्णरूपसे प्रकाशित होने लगता है॥ ३५॥ हृदयमें उस योगधर्मको धारण करनेसे ही मनुष्य कभी शान्ति-लाभ करता है; फिर उसे पृथ्वीमें दुर्लभ योगियोंकी शुद्धगति प्राप्त होती है॥ ३६॥

वैशम्पायनजी कहते हैं— प्राचीन कालमें बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीने श्राद्धके फलको लक्ष्यमें रखकर सोम (चन्द्रमा)-का आप्यायन (पोषण) करनेके लिये यह ऐसी कथा कही थी॥ ३७॥ भगवान् सोम ही लोकोंको परम तृप्ति देनेवाले हैं। अब वृष्णिवंशके प्रसङ्गमें तुम चन्द्रवंशका वर्णन सुनो—॥ ३८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पितृकल्पसमाप्तिर्नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पितृकल्पका उपसंहार नामक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

चन्द्रमाकी उत्पत्ति और राजसूय यज्ञ, देवासुरसंग्राम तथा बुधकी उत्पत्ति

वैशम्पायन उवाच

पिता सोमस्य वै राजन् जज्ञेऽत्रिर्भगवानृषिः।
ब्रह्मणो मानसात् पूर्वं प्रजासर्गं विधित्सतः॥ १

तत्रात्रिः सर्वभूतानां तस्थौ स्वतनयैर्युतः।
कर्मणा मनसा वाचा शुभान्येव चचार सः॥ २

अहिंस्रः सर्वभूतेषु धर्मात्मा संशितव्रतः।
काष्ठकुड्यशिलाभूत ऊर्ध्वबाहुर्महाद्युतिः॥ ३

अनुत्तरं नाम तपो येन तप्तं महत् पुरा।
त्रीणि वर्षसहस्राणि दिव्यानीति हि नः श्रुतम्॥ ४

तत्रोर्ध्वरेतसस्तस्य स्थितस्यानिमिषस्य ह।
सोमत्वं तनुरापेदे महासत्त्वस्य भारत॥ ५

ऊर्ध्वमाचक्रमे तस्य सोमत्वं भावितात्मनः।
नेत्राभ्यां वारि सुस्राव दशधा द्योतयद् दिशः॥ ६

तं गर्भं विधिना हृष्टा दश देव्यो दधुस्तदा।
समेत्य धारयामासुर्न च ताः समशक्नुवन्॥ ७

स ताभ्यः सहसैवाथ दिग्भ्यो गर्भः प्रभान्वितः।
पपात भासयँल्लोकाञ्छीतांशुः सर्वभावनः॥ ८

यदा न धारणे शक्तास्तस्य गर्भस्य ता दिशः।
ततस्ताभिः सहैवाशु निपपात वसुंधराम्॥ ९

पतितं सोममालोक्य ब्रह्मा लोकपितामहः।
रथमारोपयामास लोकानां हितकाम्यया॥ १०

स हि वेदमयस्तात धर्मात्मा सत्यसंग्रहः।
युक्तो वाजिसहस्रेण सितेनेति हि नः श्रुतम्॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! प्राचीन कालमें ब्रह्माजीने प्रजाकी सृष्टि करनेका विचार किया। उस समय उनके मानसिक संकल्पसे सोम (चन्द्रमा)-के पिता भगवान् अत्रि ऋषि उत्पन्न हुए॥ १॥ अत्रि ऋषि भी प्रजाकी सृष्टिमें ही संलग्न हुए। वे तथा उनके पुत्र मन, वाणी और कर्मसे सब प्राणियोंका कल्याण करनेवाले कार्य ही करते थे॥ २॥ हमने सुना है कि प्राचीन कालमें प्रशंसनीय व्रतका पालन करनेवाले, महातेजस्वी, धर्मात्मा अत्रि ऋषिने तीन हजार दिव्य वर्षोंतक अपनी भुजाएँ ऊपर उठाकर काष्ठ, दीवार और पत्थरके समान निश्चल रहकर किसी प्राणीको तनिक भी कष्ट पहुँचाये बिना ही अनुत्तर* नामक महान् तप किया था॥ ३-४॥ भारत! अत्रि ऋषि महान् सत्त्वगुणसे सम्पन्न थे। वे एकटक देखते हुए ऊर्ध्वरेता (ब्रह्मचारी) रहकर सोमकी भावनासे खड़े-खड़े तपस्या करते थे, अतः उनका शरीर सोमरूपमें परिणत हो गया॥ ५॥ शुद्ध अन्तःकरणवाले मुनिके नेत्रोंसे वह सोमरूप तेज, जलरूपमें बह निकला और दसों दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ आकाशमें चढ़ने लगा॥ ६॥ तब प्रसन्नतामें भरी हुई दस दिशारूपी देवियोंने सम्मिलित हो उस तेजको अपने गर्भमें विधिपूर्वक धारण किया, परंतु वे उस तेजको धारण करनेमें समर्थ न हो सकीं॥ ७॥ तब (औषध आदिके द्वारा) सब लोकोंको पुष्ट करनेवाला शीतल किरणोंसे सुशोभित वह प्रकाशमान गर्भ लोकोंको प्रकाशित करता हुआ दिग्देवियोंके उदरसे सहसा गिर पड़ा॥ ८॥ जब दिशाएँ उस गर्भके तेजको न रोक सकीं तो वह गर्भ उनके साथ ही पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ९॥ सोमको गिरा हुआ देख लोकपितामह ब्रह्माजीने संसारका हित करनेकी भावनासे उसे रथपर रख लिया॥ १०॥ तात! हमने सुना है कि वह रथ वेदमय, धर्मस्वरूप तथा सत्यसे नियन्त्रित था। उसमें एक हजार श्वेत घोड़े जुते हुए थे॥ ११॥

* जिससे उत्कृष्ट दूसरा कोई तप नहीं है, उसे 'अनुत्तर' कहते हैं।

तस्मिन् निपतिते देवाः पुत्रेऽत्रेः परमात्मनि।
तुष्टुवुर्ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः सप्त ये श्रुताः॥ १२

तथैवाङ्गिरसस्तत्र भृगुरेवात्मजैः सह।
ऋग्भिर्यजुभिर्बहुलैरथर्वाङ्गिरसैरपि ॥ १३

तस्य संस्तूयमानस्य तेजः सोमस्य भास्वतः।
आप्यायमानं लोकांस्त्रीन् भासयामास सर्वशः॥ १४

स तेन रथमुख्येन सागरान्तां वसुंधराम्।
त्रिःसप्तकृत्वोऽतियशाश्चकाराभिप्रदक्षिणम्॥ १५

तस्य यच्च्यावितं तेजः पृथिवीमन्वपद्यत।
ओषध्यस्ताः समुद्भूतास्तेजसा प्रज्वलन्त्युत॥ १६

ताभिर्धार्यास्त्रयो लोकाः प्रजाश्चैव चतुर्विधाः।
पोष्टा हि भगवान् सोमो जगतो जगतीपते॥ १७

स लब्धतेजा भगवान् संस्तवैस्तैश्च कर्मभिः।
तपस्तेपे महाभाग पद्मानां दशतीर्दश॥ १८

हिरण्यवर्णा या देव्यो धारयन्त्यात्मना जगत्।
निधिस्तासामभूद्देवः प्रख्यातः स्वेन कर्मणा॥ १९

ततस्तस्मै ददौ राज्यं ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः।
बीजौषधीनां विप्राणामपां च जनमेजय॥ २०

सोऽभिषिक्तो महाराज राजराज्येन राजराट्।
लोकांस्त्रीन् भासयामास स्वभासा भास्वतां वरः॥ २१

सप्तविंशतिमिन्दोस्तु दाक्षायण्यो महाव्रताः।
ददौ प्राचेतसो दक्षो नक्षत्राणीति या विदुः॥ २२

स तत् प्राप्य महद्राज्यं सोमः सोमवतां वरः।
समाजह्रे राजसूयं सहस्रशतदक्षिणम्॥ २३

होतास्य भगवानत्रिरध्वर्युर्भगवान् भृगुः।
हिरण्यगर्भश्चोद्गाता ब्रह्मा ब्रह्मत्वमेयिवान्॥ २४

सदस्यस्तत्र भगवान् हरिर्नारायणः स्वयम्।
सनत्कुमारप्रमुखैराद्यैर्ब्रह्मर्षिभिर्वृतः ॥ २५

अत्रिपुत्र भगवान् सोमके गिरनेपर ब्रह्माजीके सुप्रसिद्ध सात मानस पुत्र उनकी स्तुति करने लगे॥ १२॥ अङ्गिरा-गोत्री भृगु ऋषि और उनके पुत्र ऋग्वेद, यजुर्वेद (सामवेद) और अथर्ववेदकी अनेक श्रुतियोंसे सोमकी स्तुति करने लगे॥ १३॥ (‘**अंशुरंशुष्टे देव सोमाप्यायताम्**[1]’ इत्यादि मन्त्रोंके द्वारा) स्तुति करनेपर पुष्ट हुआ प्रकाशमान सोमका तेज तीनों लोकोंको सर्वथा प्रकाशित करने लगा॥ १४॥ तब उन परम यशस्वी (ब्रह्माजी)-ने उस (सोमवान्) श्रेष्ठ रथमें बैठकर समुद्रतककी पृथ्वीकी इक्कीस बार प्रदक्षिणा की॥ १५॥ उस समय (रथके वेगसे छलककर) सोमका जो तेज पृथ्वीपर टपकने लगा, उस तेजसे प्रकाशपूर्ण ओषधियाँ उत्पन्न हुईं॥ १६॥ उन ओषधियोंसे भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोक— इन तीनों लोकोंका और जरायुज, अण्डज, स्वेदज तथा उद्भिज्ज—इन चार प्रकारकी प्रजाओंका पालन होता रहता है। राजन्! इस प्रकार भगवान् सोम सम्पूर्ण जगत्का पोषण करते हैं॥ १७॥ महाभाग! उन स्तुतिरूप कर्मोंसे तेजस्वी होकर भगवान् सोमने एक हजार पद्म वर्षोंतक तप किया॥ १८॥ चाँदीके समान शुक्ल वर्णवाली जो जलकी अधिष्ठात्री देवियाँ अपने स्वरूपभूत जलसे जगत्का पालन करती हैं, चन्द्रदेव उनकी निधि हुए। वे अपने कर्मोंसे विख्यात हैं॥ १९॥ जनमेजय! तदनन्तर ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीने चन्द्रमाको बीज, ओषधि, ब्राह्मण और जलका राजा बना दिया॥ २०॥ महाराज! जब प्रकाशवानोंमें श्रेष्ठ चन्द्रमाका इन चारोंके राज्यपर सम्राट्के रूपमें अभिषेक हो गया, तब (सम्राट्) चन्द्रमा अपनी कान्तिसे तीनों लोकोंको प्रकाशित करने लगे॥ २१॥ उस समय प्रचेताओंके पुत्र दक्षने अपनी महाव्रतधारिणी सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमाको ब्याह दीं, जिन्हें विद्वान् पुरुष सत्ताईस नक्षत्रोंके रूपमें जानते हैं॥ २२॥ इस बड़े भारी राज्यको पाकर पितृदेवताओंमें श्रेष्ठ सोमने राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया, जिसमें उन्होंने एक लाख गौएँ दक्षिणामें दी थीं॥ २३॥ सोमके (उस यज्ञमें) भगवान् अत्रि होता बने। भगवान् भृगु अध्वर्यु, हिरण्यगर्भ उद्गाता तथा वसिष्ठजी ब्रह्मा बने॥ २४॥ उस यज्ञमें सनत्कुमार आदि प्राचीन ब्रह्मर्षियोंने स्वयं भगवान् नारायण हरिको ही सदस्य बनाया था॥ २५॥

१. अर्थात् हे चन्द्रदेव! आपकी प्रत्येक किरण परिपुष्ट हो।

दक्षिणामददात् सोमस्त्रींल्लोकानिति नः श्रुतम्।
तेभ्यो ब्रह्मर्षिमुख्येभ्यः सदस्येभ्यश्च भारत॥ २६

तं सिनिश्च कुहूश्चैव द्युतिः पुष्टिः प्रभा वसुः।
कीर्तिर्धृतिश्च लक्ष्मीश्च नव देव्यः सिषेविरे॥ २७

प्राप्यावभृथमव्यग्रः सर्वदेवर्षिपूजितः।
विरराजाधिराजेन्द्रो दशधा भासयन् दिशः॥ २८

तस्य तत् प्राप्य दुष्प्राप्यमैश्वर्यं मुनिसत्कृतम्।
विबभ्राम मतिस्तात विनयादनयाऽऽहता॥ २९

बृहस्पतेः स वै भार्यां तारां नाम यशस्विनीम्।
जहार तरसा सर्वानवमत्याङ्गिरःसुतान्॥ ३०

स याच्यमानो देवैश्च तथा देवर्षिभिः सह।
नैव व्यसर्जयत् तारां तस्मा आङ्गिरसे तदा।
स संरब्धस्ततस्तस्मिन् देवाचार्यो बृहस्पतिः॥ ३१

उशना तस्य जग्राह पार्ष्णिमाङ्गिरसस्तदा।
स हि शिष्यो महातेजाः पितुः पूर्वो बृहस्पतेः॥ ३२

तेन स्नेहेन भगवान् रुद्रस्तस्य बृहस्पतेः।
पार्ष्णिग्राहोऽभवद् देवः प्रगृह्याजगवं धनुः॥ ३३

तेन ब्रह्मशिरो नाम परमास्त्रं महात्मना।
उद्दिश्य दैत्यानुत्सृष्टं येनैषां नाशितं यशः॥ ३४

तत्र तद् युद्धमभवत् प्रख्यातं तारकामयम्।
देवानां दानवानां च लोकक्षयकरं महत्॥ ३५

तत्र शिष्टास्तु ये देवास्तुषिताश्चैव भारत।
ब्रह्माणं शरणं जग्मुरादिदेवं सनातनम्॥ ३६

ततो निवार्योशनसं रुद्रं ज्येष्ठं च शङ्करम्।
ददावङ्गिरसे तारां स्वयमेव पितामहः॥ ३७

तामन्तःप्रसवां दृष्ट्वा तारां प्राह बृहस्पतिः।
मदीयायां न ते योनौ गर्भो धार्यः कथंचन॥ ३८

अयोनावुत्सृजत् तं सा कुमारं दस्युहन्तमम्।
इषीकास्तम्बमासाद्य ज्वलन्तमिव पावकम्॥ ३९

भारत! हमने सुना है कि उन ब्रह्मर्षियोंमें श्रेष्ठ सदस्योंको सोमने तीनों लोक दक्षिणामें दे दिये थे॥ २६॥ उस समय सिनीवाली, कुहू, द्युति, पुष्टि, प्रभा, वसु, कीर्ति, धृति और लक्ष्मी (शोभा)—ये नौ देवियाँ नित्यप्रति चन्द्रमाकी सेवामें लगी रहती थीं॥ २७॥ इस प्रकार सभी ऋषि और देवताओंसे सत्कार पाकर द्विजराज चन्द्रमाने अवभृथ स्नान किया, फिर वे दसों दिशाओंको प्रकाशित करने लगे॥ २८॥ तात! मुनियोंद्वारा सम्मानित उस दुर्लभ ऐश्वर्यको पाकर चन्द्रमाकी बुद्धि विनयसे भ्रष्ट हो गयी और उन्हें अनीतिने धर दबाया॥ २९॥ तब उन्होंने अङ्गिराके सब पुत्रोंका तिरस्कार करके बृहस्पतिकी यशस्विनी भार्या ताराका बलपूर्वक अपहरण कर लिया॥ ३०॥ देवताओं तथा देवर्षियोंके याचना करनेपर भी उन्होंने बृहस्पतिकी स्त्री उनको नहीं लौटायी। तब तो देवताओंके आचार्य बृहस्पतिजी उनके ऊपर अत्यन्त कुपित हो उठे॥ ३१॥ उस समय शुक्राचार्यने चन्द्रमाका पक्ष लिया और रुद्रने बृहस्पतिका; क्योंकि महातेजस्वी रुद्र बृहस्पतिके पिता अङ्गिराके शिष्य थे॥ ३२॥ उसी गुरुभाईके स्नेहसे भगवान् शिव अपना आजगव नामक धनुष लेकर बृहस्पतिजीके पार्ष्णिग्राह (सहायक) बने थे॥ ३३॥ महात्मा रुद्रने दैत्योंको लक्ष्य करके ब्रह्मशिर नामक श्रेष्ठ अस्त्र छोड़ा, जिसने उन (दैत्यों)-के सारे यशपर ही पानी फेर दिया॥ ३४॥ वहाँ ताराके लिये देवताओं और दानवोंमें बड़ा भारी युद्ध हुआ, जो तारकामय महासंग्रामके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें संसारका बड़ा भारी संहार हुआ॥ ३५॥ भारत! इस युद्धमें मरनेसे बचे हुए देवता और तुषितगण आदिदेव सनातन ब्रह्माजीकी शरणमें गये॥ ३६॥ तब ब्रह्माजीने शुक्राचार्य तथा रुद्रोंमें ज्येष्ठ शङ्करको भी समझा-बुझाकर युद्ध करनेसे रोका; फिर उन्होंने स्वयं ही ताराको लाकर बृहस्पतिजीको दिया॥ ३७॥ उस समय ताराको गर्भवती देख बृहस्पतिजीने कहा—'तुझे मेरे क्षेत्रमें किसी तरह पराया गर्भ नहीं धारण करना चाहिये'॥ ३८॥ तब ताराने अयोग्य स्थान—सींकोंके झुरमुटमें जाकर प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी उस भारी दस्युहन्ता कुमारको उत्पन्न किया॥ ३९॥

जातमात्रः स भगवान् देवानामक्षिपद् वपुः।
ततः संशयमापन्ना इमामकथयन् सुराः॥ ४०

सत्यं ब्रूहि सुतः कस्य सोमस्याथ बृहस्पतेः।
पृच्छ्यमाना यदा देवैर्नाह सा साध्वसाधु वा॥ ४१

तदा तां शप्तुमारब्धः कुमारो दस्युहन्तमः।
तं निवार्य ततो ब्रह्मा तारां पप्रच्छ संशयम्॥ ४२

यदत्र तथ्यं तद् ब्रूहि तारे कस्य सुतस्त्वयम्।
सा प्राञ्जलिरुवाचेदं ब्रह्माणं वरदं प्रभुम्॥ ४३

सोमस्येति महात्मानं कुमारं दस्युहन्तमम्।
ततस्तं मूर्ध्न्युपाघ्राय सोमो धाता प्रजापतिः॥ ४४

बुध इत्यकरोन्नाम तस्य पुत्रस्य धीमतः।
प्रतिकूलं च गगने समभ्युत्तिष्ठते बुधः॥ ४५

उत्पादयामास ततः पुत्रं वै राजपुत्रिका।
तस्यापत्यं महाराजो बभूवैलः पुरूरवाः॥ ४६

उर्वश्यां जज्ञिरे यस्य पुत्राः सप्त महात्मनः।
प्रसह्य धर्षितस्तत्र सोमो वै राजयक्ष्मणा॥ ४७

ततो यक्ष्माभिभूतस्तु सोमः प्रक्षीणमण्डलः।
जगाम शरणार्थाय पितरं सोऽत्रिमेव तु॥ ४८

तस्य तत्तापशमनं चकारात्रिर्महातपाः।
स राजयक्ष्मणा मुक्तः श्रिया जज्वाल सर्वतः॥ ४९

एवं सोमस्य वै जन्म कीर्तितं कीर्तिवर्धनम्।
वंशमस्य महाराज कीर्त्यमानं च मे शृणु॥ ५०

धन्यमारोग्यमायुष्यं पुण्यं संकल्पसाधनम्।
सोमस्य जन्म श्रुत्वैव पापेभ्यो विप्रमुच्यते॥ ५१

उस ऐश्वर्यवान् कुमारने उत्पन्न होते ही अपने शरीरकी कान्तिसे देवताओंका तेज फीका कर दिया। तब तो देवता संदेहमें पड़कर तारासे कहने लगे— ॥ ४० ॥

'अरी! सच बता, यह पुत्र चन्द्रमाका है अथवा बृहस्पतिका?' परंतु देवताओंके पूछनेपर भी जब उसने भला-बुरा कुछ उत्तर न दिया, तब वह दस्युहन्ता कुमार उसे शाप देनेके लिये तैयार हो गया। उस समय ब्रह्माजीने उसे रोककर तारासे इस संदेहको पूछा— ॥ ४१-४२ ॥ 'तारे! यह किसका पुत्र है— इस बातको तू ठीक-ठीक बता।' तब उसने दोनों हाथ जोड़कर वर देनेवाले प्रभु ब्रह्माजीसे कहा— ॥ ४३ ॥ 'प्रभो! यह सोमका ही पुत्र है।' तब उस गर्भको धारण करानेवाले प्रजापति चन्द्रमाने उस महामना दस्युहन्ता कुमारका मस्तक सूँघकर उस बुद्धिमान् पुत्रका नाम 'बुध' रखा। यह बुध जब आकाशमें उदय होता है, तब प्रतिकूल चेष्टा (उत्पात) किया करता है॥ ४४-४५ ॥ तदनन्तर वैराज मनुकी पुत्री इलाने बुधसे एक पुत्र उत्पन्न किया। उनके वे पुत्र महाराज पुरूरवा हुए॥ ४६ ॥ महात्मा पुरूरवाके उर्वशीके गर्भसे सात पुत्र उत्पन्न हुए। इधर सोमको हठात् राजयक्ष्माने धर दबाया॥ ४७ ॥ यक्ष्मासे ग्रस्त होनेपर चन्द्रमाका मण्डल क्षीण होने लगा, तब वे अपने पिता अत्रिकी शरणमें पहुँचे॥ ४८ ॥ महातपस्वी अत्रिने उनके तापको दूर कर दिया। वे (चन्द्रमा) राजयक्ष्मा-रोगसे मुक्त होकर सब ओरसे प्रकाशित हो उठे॥ ४९ ॥ महाराज! इस प्रकार मैंने तुमसे चन्द्रमाके जन्मका वर्णन किया, जो कीर्तिको बढ़ानेवाला है। अब मेरे द्वारा चन्द्रमाके वंशका वर्णन सुनो॥ ५० ॥ मनुष्य चन्द्रमाके जन्मको सुनते ही सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। यह चन्द्रमाके जन्मकी कथा धन, आयु, आरोग्य और पुण्य देनेवाली है। इसे सुननेसे मनुष्यके सारे संकल्प—मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं॥ ५१ ॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि सोमोत्पत्तिकथने पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें चन्द्रमाकी उत्पत्तिका वर्णनविषयक पचीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २५॥

षड्विंशोऽध्यायः

महाराज पुरूरवाके चरित्र और वंशका वर्णन, राजा पुरूरवाका त्रेताग्निकी रचना करना और गन्धर्वोंके लोकमें जाना

वैशम्पायन उवाच

बुधस्य तु महाराज विद्वान् पुत्रः पुरूरवाः।
तेजस्वी दानशीलश्च यज्वा विपुलदक्षिणः॥ १

ब्रह्मवादी पराक्रान्तः शत्रुभिर्युधि दुर्जयः।
आहर्ता चाग्निहोत्रस्य यज्ञानां च महीपतिः॥ २

सत्यवादी पुण्यमतिः काम्यः संवृतमैथुनः।
अतीव त्रिषु लोकेषु यशसाप्रतिमस्तदा॥ ३

तं ब्रह्मवादिनं क्षान्तं धर्मज्ञं सत्यवादिनम्।
उर्वशी वरयामास हित्वा मानं यशस्विनी॥ ४

तया सहावसद् राजा वर्षाणि दश पञ्च च।
पञ्च षट् सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ च भारत॥ ५

वने चैत्ररथे रम्ये तथा मन्दाकिनीतटे।
अलकायां विशालायां नन्दने च वनोत्तमे॥ ६

उत्तरान् स कुरून् प्राप्य मनोरथफलद्रुमान्।
गन्धमादनपादेषु मेरुपृष्ठे तथोत्तरे॥ ७

एतेषु वनमुख्येषु सुरैराचरितेषु च।
उर्वश्या सहितो राजा रेमे परमया मुदा॥ ८

देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरभिष्टुते।
राज्यं च कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः॥ ९

तस्य पुत्रा बभूवुस्ते सप्त देवसुतोपमाः।
दिवि जाता महात्मान आयुर्धीमानमावसुः॥ १०

विश्वायुश्चैव धर्मात्मा श्रुतायुश्च तथापरः।
दृढायुश्च वनायुश्च शतायुश्चोर्वशीसुताः॥ ११

जनमेजय उवाच

गान्धर्वी चोर्वशी देवी राजानं मानुषं कथम्।
देवानुत्सृज्य सम्प्राप्ता तन्नो ब्रूहि बहुश्रुत॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—महाराज! बुधके विद्वान् पुत्र पुरूरवा हुए, जो तेजस्वी, दानशील, यज्ञकर्ता, बहुत-सी दक्षिणा देनेवाले, ब्रह्मवादी, युद्धमें पराक्रम दिखानेवाले और शत्रुओंसे दुर्जय थे। वे राजा अग्निहोत्र और यज्ञोंके अनुष्ठान करनेवाले थे॥ १-२॥ राजा पुरूरवा सत्यभाषी और पवित्र विचारवाले थे। उनका रूप बड़ा सुन्दर था और वे गुप्तरूपसे सहवास करनेवाले थे। वे अपने समयमें तीनों लोकोंमें अनुपम यशस्वी थे॥ ३॥ उन ब्रह्मवादी, क्षमापरायण, धर्मज्ञ तथा सत्यभाषी राजाको यशस्विनी उर्वशी अप्सराने गर्वका परित्याग करके पतिरूपमें वरण कर लिया था॥ ४॥ भारत! राजा पुरूरवा उस अप्सराके साथ दस वर्षतक रमणीय चैत्ररथ वनमें, पाँच वर्षतक मन्दाकिनीके तटपर बसी हुई अलकापुरीमें, पाँच वर्षतक बदरीनारायणके वनोंमें, छः वर्षतक उत्तम उपवन नन्दनवनमें, सात वर्षतक मनोरथरूप फलको देनेवाले वृक्षोंसे परिपूर्ण उत्तरकुरुदेशोंमें, आठ वर्षतक गन्धमादन पर्वतके शिखरोंपर, दस वर्षतक मेरुपर्वतपर तथा आठ वर्षतक उत्तराचलपर विहार करते रहे॥ ५—७॥ राजा पुरूरवा उर्वशीको साथ लेकर देवताओंसे सेवित इन मुख्य-मुख्य वनोंमें बड़े आनन्दके साथ विहार किया करते थे॥ ८॥ पृथ्वीपति पुरूरवा (उर्वशीके साथ) महर्षियोंसे प्रशंसित परम पवित्र देश प्रयागमें राज्य करते थे॥ ९॥ राजाके द्वारा उर्वशीके गर्भसे स्वर्गमें देव-पुत्रोंके तुल्य आयु, बुद्धिमान् अमावसु, धर्मात्मा विश्वायु, श्रुतायु, दृढायु, वनायु और शतायु नामक सात पुत्र उत्पन्न हुए, जो सभी महान् आत्मबलसे सम्पन्न थे॥ १०-११॥

जनमेजयने पूछा—बहुश्रुत वैशम्पायनजी! उर्वशीदेवी तो अप्सरा थी, फिर देवताओंका परित्याग कर वह मनुष्य राजाके पास क्योंकर आयी? यह मुझे बताइये॥ १२॥

वैशम्पायन उवाच

ब्रह्मशापाभिभूता सा मानुषं समपद्यत।
ऐलं तु सा वरारोहा समयात् समुपस्थिता॥ १३
आत्मनः शापमोक्षार्थं समयं सा चकार ह।
अनग्नदर्शनं चैव सकामायां च मैथुनम्॥ १४
द्वौ मेषौ शयनाभ्याशे सदा बद्धौ च तिष्ठतः।
घृतमात्रो तथाऽऽहारः कालमेकं तु पार्थिव॥ १५
यद्येष समयो राजन् यावत्कालं च ते दृढः।
तावत्कालं तु वत्स्यामि त्वत्तः समय एष नः॥ १६
तस्यास्तं समयं सर्वं स राजा समपालयत्।
एवं सा वसते तत्र पुरूरवसि भामिनी॥ १७
वर्षाण्येकोनषष्टिस्तु तत्सक्ता शापमोहिता।
उर्वश्यां मानुषस्थायां गन्धर्वाश्चिन्तयान्विताः॥ १८

गन्धर्वा ऊचुः

चिन्तयध्वं महाभागा यथा सा तु वराङ्गना।
समागच्छेत् पुनर्देवानुर्वशी स्वर्गभूषणम्॥ १९
ततो विश्वावसुर्नाम तत्राह वदतां वरः।
मया तु समयस्ताभ्यां क्रियमाणः श्रुतः पुरा॥ २०
व्युत्क्रान्तसमयं सा वै राजानं त्यक्ष्यते यथा।
तदहं वेद्म्यशेषेण यथा भेत्स्यत्यसौ नृपः॥ २१
ससहायो गमिष्यामि युष्माकं कार्यसिद्धये।
एवमुक्त्वा गतस्तत्र प्रतिष्ठानं महायशाः॥ २२
निशायामथ चागम्य मेषमेकं जहार सः।
मातृवद् वर्तते सा तु मेषयोश्चारुहासिनी॥ २३
गन्धर्वागमनं श्रुत्वा शापान्तं च यशस्विनी।
राजानमब्रवीत् तत्र पुत्रो मेऽह्रियतेति सा॥ २४
एवमुक्तो विनिश्चित्य नग्नो नैवोदतिष्ठत।
नग्नं मां द्रक्ष्यते देवी समयो वितथो भवेत्॥ २५
ततो भूयस्तु गन्धर्वा द्वितीयं मेषमाददुः।
द्वितीये तु हृते मेषे ऐलं देव्यब्रवीदिदम्॥ २६

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! ब्रह्मशापके कारण उर्वशीको मनुष्यलोकमें आना पड़ा था। वह सुन्दर अङ्गोंवाली उर्वशी कुछ शर्तोंके साथ इला-नन्दन पुरूरवाके पास रही थी॥ १३॥ भूपाल! उसने अपने शापसे छूटनेके लिये यह शर्त करा ली थी कि 'मैं आपको नंगा न देखूँ, मेरे सकाम होनेपर ही आप सहवास करें, मेरे पलंगके पास सदा दो भेंड़ बँधे रहेंगे और मैं दिनमें एक बार थोड़ा-सा घृतमात्र भोजन करूँगी॥ १४-१५॥ राजन्! जबतक इन प्रतिज्ञाओंका आप दृढ़ताके साथ पालन करते रहेंगे, तबतक मैं आपके पास रहूँगी—यह मैं आपसे प्रतिज्ञा करती हूँ॥ १६॥ राजा उसकी सब शर्तोंका पालन करने लगे। इस प्रकार वह श्रेष्ठ अप्सरा पुरूरवाके यहाँ रहने लगी॥ १७॥ शापके कारण उर्वशीको जब राजामें आसक्त होकर रहते हुए उनसठ वर्ष बीत गये, तब गन्धर्वोंको मनुष्योंके बीच बसनेवाली उर्वशीकी चिन्ता हुई॥ १८॥

गन्धर्वोंने कहा—महाभागो! वराङ्गना उर्वशी देवताओंमें फिर किस प्रकार आये? इसका उपाय सोचो; क्योंकि वह स्वर्गका भूषण है॥ १९॥ तब वक्ताओंमें श्रेष्ठ विश्वावसु नामक गन्धर्वने कहा—'उन दोनोंने पहले जो प्रतिज्ञाएँ की थीं, उन्हें मैंने सुना है॥ २०॥ राजाके प्रतिज्ञा भङ्ग करनेपर वह उसे छोड़ देगी। उस राजाकी प्रतिज्ञा जिस प्रकार टूटेगी, मैं उसे भी भलीभाँति जानता हूँ॥ २१॥ तुम्हारे कामको सिद्ध करनेके लिये अपने सहायकोंको साथ लेकर मैं वहाँ जाऊँगा। यों कहकर वे महायशस्वी गन्धर्व प्रतिष्ठानपुर (झूँसी—प्रयाग)-में गये॥ २२॥ वहाँ आकर उन्होंने रातमें एक भेंड़ चुरा ली। मनोहर हासवाली वह उर्वशी उन भेड़ोंपर माताके समान स्नेह करती थी॥ २३॥ यशस्विनी उर्वशीने गन्धर्वोंके आगमनको सुनकर विचारा कि अब मेरे शापके अन्त होनेका समय आ गया, तब उसने राजासे कहा—'राजन्! मेरे एक बच्चेको चोर चुरा ले गये'॥ २४॥ यह कहनेपर भी वह यह विचारकर नंगा नहीं उठा कि यदि यह देवी मुझे नंगा देख लेगी तो मेरी प्रतिज्ञा झूठी हो जायगी॥ २५॥ इतनेहीमें गन्धर्व पुनः दूसरे भेंड़को भी उठा ले गये। दूसरे भेंड़के चुराये जानेपर देवी उर्वशीने पुरूरवासे यह कहा—॥ २६॥

पुत्रो मेऽपहृतो राजन्ननाथाया इव प्रभो।
एवमुक्तस्तथोत्थाय नग्नो राजा प्रधावितः॥ २७

मेषयोः पदमन्विच्छन् गन्धर्वैर्विद्युदप्यथ।
उत्पादिता सुमहती ययौ तद्भवनं महत्॥ २८

प्रकाशितं वै सहसा ततो नग्नमवैक्षत।
नग्नं दृष्ट्वा तिरोभूता साप्सरा कामरूपिणी॥ २९

उत्सृष्टावुरणौ दृष्ट्वा राजा गृह्यागतो गृहे।
अपश्यन्नुर्वशीं तत्र विललाप सुदुःखितः॥ ३०

चचार पृथिवीं सर्वां मार्गमाण इतस्ततः।
अथापश्यत् स तां राजा कुरुक्षेत्रे महाबलः॥ ३१

प्लक्षतीर्थे पुष्करिण्यां हैमवत्यां समाप्लुताम्।
क्रीडन्तीमप्सरोभिश्च पञ्चभिः सह शोभनाम्॥ ३२

तां क्रीडन्तीं ततो दृष्ट्वा विललाप सुदुःखितः।
सा चापि तत्र तं दृष्ट्वा राजानमविदूरतः॥ ३३

उर्वशी ताः सखीः प्राह स एष पुरुषोत्तमः।
यस्मिन्नहमवात्सं वै दर्शयामास तं नृपम्॥ ३४

समाविग्नास्तु ताः सर्वाः पुनरेव नराधिपः।
जाये ह तिष्ठ मनसा घोरे वचसि तिष्ठ ह॥ ३५

एवमादीनि सूक्तानि परस्परमभाषत।
उर्वशी चाब्रवीदैलं सगर्भाहं त्वया प्रभो॥ ३६

संवत्सरात् कुमारास्ते भविष्यन्ति न संशयः।
निशामेकां च नृपते निवत्स्यसि मया सह॥ ३७

हृष्टो जगाम राजाथ स्वपुरं तु महायशाः।
गते संवत्सरे भूय उर्वशी पुनरागमत्॥ ३८

उषितश्च तया सार्द्धमेकरात्रं महायशाः।
उर्वश्यथाब्रवीदैलं गन्धर्वा वरदास्तव॥ ३९

तान् वृणीष्व महाराज ब्रूहि चैनांस्त्वमेव हि।
वृणीष्व समतां राजन् गन्धर्वाणां महात्मनाम्॥ ४०

तथेत्युक्त्वा वरं वव्रे गन्धर्वांश्च तथास्त्विति।
पूरयित्वाग्निना स्थालीं गन्धर्वाश्च तमब्रुवन्॥ ४१

सामर्थ्यशाली राजन्! अनाथ स्त्रीके समान मेरे पुत्रोंको छीन लिया गया। यों उर्वशीके कहनेपर राजा नंगे ही उठकर भेड़ोंके पैरके चिह्नका अनुसरण करते हुए दौड़े। इसी समय गन्धर्वोंने बड़ी भारी बिजली चमकायी। उस समय वह विशाल भवन एक साथ प्रकाशित हो गया। तब तो उर्वशीने राजाको नंगा देख लिया। वह कामरूपिणी अप्सरा राजाको नंगा देखते ही अन्तर्धान हो गयी॥ २७—२९॥ उधर राजा भी (गन्धर्वोंके) छोड़े हुए भेड़ोंको देख उन्हें साथ लेकर घरमें घुसे, पर वहाँ उन्हें उर्वशी नहीं दिखायी दी। तब वे परम दुःखित हो विलाप करने लगे॥ ३०॥ फिर वे उर्वशीको खोजते हुए पृथ्वीपर सर्वत्र घूमने लगे। कुछ समयके अनन्तर उन महाबली नरेशने उस शोभामयी अप्सराको कुरुक्षेत्रके प्लक्षतीर्थकी हैमवती नामवाली पुष्करिणीमें स्नानकर अपनी पाँच सखियोंके साथ क्रीड़ा करते देखा॥ ३१-३२॥ क्रीड़ा करती हुई उर्वशीको देखकर राजा दुःखित होकर विलाप करने लगे। इधर उर्वशीने भी उस राजाको समीप ही देखकर अपनी सखियोंसे राजाको दिखाया और कहा—'ये वे ही पुरुषोत्तम हैं, जिनके पास मैं रही थी'॥ ३३-३४॥ उस समय वे सभी अप्सराएँ (उर्वशीके पुनर्गमनकी आशङ्कासे) घबरा गयीं। इधर राजा उससे फिर कहने लगे—'प्रिये! तू थोड़ा ठहर, ओ कठोर हृदयवाली! ठहर जा और अपने वचनोंपर दृढ़ रह!' इस प्रकार वैदिक सूक्तोंको वे दोनों एक-दूसरेके प्रति उत्तर-प्रत्युत्तरके रूपमें कहने लगे। उस समय उर्वशीने इला-पुत्र पुरूरवासे कहा—'प्रभो! मैं आपके द्वारा गर्भवती हूँ॥ ३५-३६॥ राजन्! निस्संदेह एक-एक वर्षपर मेरे गर्भसे आपके कुमार उत्पन्न होंगे तथा प्रतिवर्ष एक रात्रि आप मेरे साथ रह सकेंगे॥ ३७॥ तब वे महायशस्वी राजा प्रसन्न हो गये और अपने नगरमें आ गये। वर्ष समाप्त होनेपर उर्वशी उनके पास फिर आयी॥ ३८॥ महायशस्वी पुरूरवा उसके साथ एक रात्रि रहे। तदनन्तर उर्वशीने पुरूरवासे कहा—'गन्धर्व आपको वर देना चाहते हैं'॥ ३९॥ 'महाराज! अब आप वर माँग लीजिये। आप इनसे इन महात्मा गन्धर्वोंकी समता माँग लीजिये'॥ ४०॥ तब पुरूरवाने 'बहुत अच्छा' कहकर गन्धर्वोंसे वर माँग लिया। तब गन्धर्वोंने 'बहुत अच्छा', 'ऐसा ही होगा', कहकर एक थालीमें अग्नि भरकर पुरूरवासे कहा—॥ ४१॥

अनेनेष्ट्वा च लोकान्नः प्राप्स्यसि त्वं नराधिप।
तानादाय कुमारांस्तु नगरायोपचक्रमे॥ ४२

निक्षिप्याग्निमरण्ये तु सपुत्रस्तु गृहं ययौ।
स त्रेताग्निं तु नापश्यदश्वत्थं तत्र दृष्टवान्॥ ४३

शमीजातं तु तं दृष्ट्वा अश्वत्थं विस्मितस्तदा।
गन्धर्वेभ्यस्तदाशंसदग्निनाशं ततस्तु सः॥ ४४

श्रुत्वा तमर्थमखिलमरणीं तु समादिशन्।
अश्वत्थादरणीं कृत्वा मथित्वाग्निं यथाविधि॥ ४५

मथित्वाग्निं त्रिधा कृत्वा अयजत् स नराधिपः।
इष्ट्वा यज्ञैर्बहुविधैर्गतस्तेषां सलोकताम्॥ ४६

गन्धर्वेभ्यो वरं लब्ध्वा त्रेताग्निं समकारयत्।
एकोऽग्निः पूर्वमेवासीदैलस्त्रेतामकारयत्॥ ४७

एवंप्रभावो राजासीदैलस्तु नरसत्तम।
देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरभिष्टुते॥ ४८

राज्यं स कारयामास प्रयागे पृथिवीपतिः।
उत्तरे जाह्नवीतीरे प्रतिष्ठाने महायशाः॥ ४९

राजन्! इस अग्निसे यज्ञ करके तुम हमारे लोकोंमें आ जाओगे। तब वे राजा (अग्नि और) अपने पुत्रोंको लेकर नगरकी ओर चले॥ ४२॥ (मार्गमें) उन्होंने वनमें अग्निको रख दिया और अपने पुत्रोंको लेकर घरमें प्रवेश किया। फिर वनमें जानेपर वहाँ उन्होंने अग्निको नहीं देखा; किंतु उसकी जगह एक पीपलके वृक्षको खड़ा देखा॥ ४३॥ तब वे राजा (अग्निको अपने गर्भमें छिपानेवाले) शमी (जड़)-के वृक्षमेंसे उत्पन्न हुए पीपलको देखकर विस्मयमें पड़ गये और उन्होंने गन्धर्वोंसे अग्निके न दीखनेका वृत्तान्त कहा॥ ४४॥ गन्धर्वोंने सब बातको सुनकर कहा, 'तुम पीपलकी अरणी बना लो' तब उन्होंने पीपलकी अरणी बनाकर शास्त्रीय विधिके अनुसार उन अरणियोंको मथकर अग्निको उत्पन्न किया। फिर उस अग्निके तीन विभाग किये। तदनन्तर उस अग्निसे उन्होंने यजन किया था। वे उस त्रेताग्निसे अनेक प्रकारके यज्ञ कर गन्धर्वोंकी समानता पाकर गन्धर्वोंके लोकमें पहुँच गये॥ ४५-४६॥ राजा पुरूरवाने गन्धर्वोंसे वर पाकर त्रेताग्निकी रचना की थी। पहले अग्नि एक ही था, पुरूरवाने उसको तीन बनाया था॥ ४७॥ नरश्रेष्ठ! राजा पुरूरवा ऐसे प्रतापी थे। उन महायशस्वी पृथ्वीपतिने गङ्गाके उत्तर तटपर बसे हुए महर्षियोंसे प्रशंसित परम पवित्र प्रतिष्ठान (झूँसी—प्रयाग)-में राज्य किया था॥ ४८-४९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि ऐलोत्पत्तिर्नाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पुरूरवाकी उत्पत्तिविषयक छब्बीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २६॥

सप्तविंशोऽध्यायः

पुरूरवाके द्वितीय पुत्र अमावसुके वंशका वर्णन, विश्वामित्र और परशुरामकी उत्पत्ति

वैशम्पायन उवाच

ऐलपुत्रा बभूवुस्ते सर्वे देवसुतोपमाः।
दिवि जाता महात्मान आयुर्धीमानमावसुः॥ १
विश्वायुश्चैव धर्मात्मा श्रुतायुश्च तथापरः।
दृढायुश्च वनायुश्च शतायुश्चोर्वशीसुताः॥ २
अमावसोश्च दायादो भीमो राजाथ नग्नजित्।
श्रीमान् भीमस्य दायादो राजासीत् काञ्चनप्रभः।
विद्वांस्तु काञ्चनस्यापि सुहोत्रोऽभून्महाबलः॥ ३

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! पुरूरवाके सभी पुत्र देवकुमारोंके तुल्य थे। वे सब महात्मा उर्वशीके गर्भसे स्वर्गमें उत्पन्न हुए थे। (उनके नाम इस प्रकार हैं—) आयु, बुद्धिमान् अमावसु, धर्मात्मा विश्वायु, श्रुतायु, दृढायु, वनायु और शतायु॥ १-२॥ अमावसुके राजा भीम और नग्नजित् नामक पुत्र हुए थे। भीमके पुत्र श्रीमान् राजा काञ्चनप्रभ हुए। काञ्चनके महाबली पुत्र सुहोत्र हुए, जो बड़े विद्वान् थे॥ ३॥

सौहोत्रिरभवज्जह्नुः केशिन्या गर्भसम्भवः।
आजह्ने यो महत्सत्रं सर्वमेधमहामखम्॥ ४
पतिलोभेन यं गङ्गा पतित्वेऽभिससार ह।
नेच्छतः प्लावयामास तस्य गङ्गां च तत्सदः॥ ५
स तया प्लावितं दृष्ट्वा यज्ञवाटं समन्ततः।
सौहित्रिरब्रवीद् गङ्गां क्रुद्धो भरतसत्तम॥ ६
एष ते विफलं यत्नं पिबन्नम्भः करोम्यहम्।
अस्य गङ्गेऽवलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि॥ ७
राजर्षिणा ततः पीतां गङ्गां दृष्ट्वा महर्षयः।
उपनिन्युर्महाभागां दुहितृत्वेन जाह्नवीम्॥ ८
युवनाश्वस्य पुत्रीं तु कावेरीं जह्नुरावहत्।
युवनाश्वस्य शापेन गङ्गार्धेन विनिर्ममे।
कावेरीं सरितां श्रेष्ठां जह्नोर्भार्यामनिन्दिताम्॥ ९
जह्नुस्तु दयितं पुत्रं सुनहं नाम धार्मिकम्।
कावेर्यां जनयामास अजकस्तस्य चात्मजः॥ १०
अजकस्य तु दायादो बलाकाश्वो महीपतिः।
बभूव मृगयाशीलः कुशस्तस्यात्मजोऽभवत्॥ ११
कुशपुत्रा बभूवुर्हि चत्वारो देववर्चसः।
कुशिकः कुशनाभश्च कुशाम्बो मूर्तिमांस्तथा॥ १२
पह्लवैः सह संवृद्धिं राजा वनचरैस्तदा।
कुशिकस्तु तपस्तेपे पुत्रमिन्द्रसमप्रभम्।
लभेयमिति तं शक्रस्त्रासादभ्येत्य जज्ञिवान्॥ १३
पूर्णे वर्षसहस्त्रे वै तं तु शक्रो ह्यपश्यत।
अत्युग्रतपसं दृष्ट्वा सहस्त्राक्षः पुरंदरः॥ १४
समर्थः पुत्रजनने स्वमेवांशमवासयत्।
पुत्रत्वे कल्पयामास स देवेन्द्रः सुरोत्तमः॥ १५
स गाधिरभवद् राजा मघवान् कौशिकः स्वयम्।
पौरुकुत्स्यभवद् भार्या गाधिस्तस्यामजायत॥ १६
गाधेः कन्या महाभागा नाम्ना सत्यवती शुभा।
तां गाधिर्भृगुपुत्राय ऋचीकाय ददौ प्रभुः॥ १७
तस्याः प्रीतोऽभवद् भर्ता भार्गवो भृगुनन्दनः।
पुत्रार्थं कारयामास चरुं गाधेस्तथैव च॥ १८

सुहोत्रके केशिनीके गर्भसे जह्नु नामक पुत्र हुए। उन्होंने सर्वमेध नामक महायज्ञका अनुष्ठान किया था (जिसमें बहुत बड़ा 'अन्नसत्र' होता है)॥ ४॥ गङ्गाजी उनको पति बनानेके लोभसे उनके समीप गयी थीं; परंतु जब उन्होंने इस बातकी इच्छा न की, तब गङ्गाजीने उनकी सभाको जलसे भर दिया था। भरतसत्तम! सुहोत्र-पुत्र जह्नुने अपने यज्ञवाटको गङ्गाजीके द्वारा डूबता हुआ देख क्रोधमें भरकर गङ्गाजीसे कहा—॥ ५-६॥ गङ्गे! मैं तेरे इस जलको पीकर तेरे यत्नको व्यर्थ किये देता हूँ। तू अपने अभिमानका फल शीघ्र ही पा ले॥ ७॥ तदनन्तर उन राजर्षिने गङ्गाजीको पी लिया। यह देखकर महर्षियोंने महाभागा गङ्गाजीको उनकी पुत्री मानकर (उनका नाम) जाह्नवी रख दिया॥ ८॥ जह्नुने युवनाश्वकी पुत्री कावेरीसे विवाह किया था, जिसे युवनाश्वके शापसे गङ्गाने अपने ही आधे भागद्वारा प्रकट किया था; इस प्रकार सरिताओंमें श्रेष्ठ साध्वी कावेरी जह्नुकी भार्या हुई॥ ९॥ जह्नुने कावेरीके गर्भसे सुनह नामक धार्मिक पुत्रको उत्पन्न किया। सुनहके पुत्र अजक हुए॥ १०॥ अजकके पुत्र राजा बलाकाश्व हुए। उनको मृगयाका व्यसन था। उनके पुत्र कुश हुए॥ ११॥ कुशके देवताओंके समान कान्तिमान् कुशिक, कुशनाभ, कुशाम्ब और मूर्तिमान् नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए॥ १२॥ राजा कुशिक वनवासी पह्लवोंके साथ पलकर बड़े हुए थे। उन्होंने इन्द्रके समान प्रभाववाले पुत्रको पानेकी इच्छासे तप करना आरम्भ कर दिया। तब इन्द्र उनके भयसे स्वयं ही उनके यहाँ पुत्र बनकर उत्पन्न हो गये॥ १३॥ राजा कुशिकको जब (तप करते) एक हजार वर्ष पूरे हो गये, तब इन्द्रका ध्यान कुशिककी ओर गया, हजार नेत्रोंवाले पुरन्दर इन्द्रने राजाको अति उग्र तप करके पुत्र उत्पन्न करनेमें समर्थ देख उन (-के वीर्य)-में अपने अंशको स्थापित कर दिया। इस प्रकार देवेन्द्र सुरोत्तम कुशिकके पुत्र बने थे॥ १४-१५॥ इस प्रकार इन्द्र स्वयं (कुशिकके पुत्र) कौशिक गाधि बनकर उत्पन्न हुए थे। राजा कुशिककी पत्नी पुरुकुत्सकी पुत्री थी, उसके गर्भसे ही गाधि उत्पन्न हुए थे॥ १६॥ गाधिकी महाभाग्यवती शुभ कन्याका नाम सत्यवती था, राजा गाधिने सत्यवतीका विवाह भृगुपुत्र ऋचीकके साथ कर दिया था॥ १७॥ सत्यवतीके स्वामी भृगुवंशी ऋचीकने अपनी पत्नीके ऊपर प्रसन्न होकर उसके और गाधिके लिये पुत्र देनेवाला चरु बनाया॥ १८॥

उवाचाहूय तां भर्ता ऋचीको भार्गवस्तदा।
उपयोज्यश्चरुरयं त्वया मात्रा त्वयं तव॥ १९
तस्यां जनिष्यते पुत्रो दीप्तिमान् क्षत्रियर्षभः।
अजेयः क्षत्रियैर्लोके क्षत्रियर्षभसूदनः॥ २०
तवापि पुत्रं कल्याणि धृतिमन्तं तपोनिधिम्।
शमात्मकं द्विजश्रेष्ठं चरुरेष विधास्यति॥ २१
एवमुक्त्वा तु तां भार्यामृचीको भृगुनन्दनः।
तपस्यभिरतो नित्यमरण्यं प्रविवेश ह॥ २२
गाधिः सदारस्तु तदा ऋचीकावासमभ्यगात्।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन सुतां द्रष्टुं जनेश्वरः॥ २३
चरुद्वयं गृहीत्वा तदृषेः सत्यवती तदा।
चरुमादाय यत्नेन सा तु मात्रे न्यवेदयत्॥ २४
माता व्यत्यस्य दैवेन दुहित्रे स्वं चरुं ददौ।
तस्याश्चरुमथाज्ञानादात्मसंस्थं चकार ह॥ २५
अथ सत्यवती गर्भं क्षत्रियान्तकरं तदा।
धारयामास दीप्तेन वपुषा घोरदर्शनम्॥ २६
तामृचीकस्ततो दृष्ट्वा योगेनाभ्यनुसृत्य च।
तामब्रवीद् द्विजश्रेष्ठः स्वां भार्यां वरवर्णिनीम्॥ २७
मात्रासि वञ्चिता भद्रे चरुव्यत्यासहेतुना।
जनिष्यति हि पुत्रस्ते क्रूरकर्मातिदारुणः॥ २८
भ्राता जनिष्यते चापि ब्रह्मभूतस्तपोधनः।
विश्वं हि ब्रह्म तपसा मया तस्मिन् समर्पितम्॥ २९
एवमुक्ता महाभागा भर्त्रा सत्यवती तदा।
प्रसादयामास पतिं पुत्रो मे नेदृशो भवेत्।
ब्राह्मणापसदस्तत्र इत्युक्तो मुनिरब्रवीत्॥ ३०
नैष संकल्पितः कामो मया भद्रे तथास्त्विति।
उग्रकर्मा भवेत् पुत्रः पितुर्मातुश्च कारणात्।
पुनः सत्यवती वाक्यमेवमुक्ताब्रवीदिदम्॥ ३१
इच्छँल्लोकानपि मुने सृजेथाः किं पुनः सुतम्।
शमात्मकमृजुं त्वं मे पुत्रं दातुमिहार्हसि॥ ३२
काममेवंविधः पौत्रो मम स्यात्तव च प्रभो।
यद्यन्यथा न शक्यं वै कर्तुमेतद् द्विजोत्तम॥ ३३

तदनन्तर सत्यवतीके स्वामी भृगुवंशी ऋचीकने सत्यवतीको बुलाकर कहा—'तू इस चरुका उपयोग करना और इस (दूसरे) चरुका उपयोग करनेके लिये अपनी मातासे कहना'॥ १९॥ तुम्हारी माताके जो पुत्र होगा, वह क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ, दीप्तिमान्, संसारमें क्षत्रियोंसे अजेय और बड़े-बड़े क्षत्रियोंको दबानेवाला होगा॥ २०॥ कल्याणि! यह चरु तुम्हें भी धैर्यधारी तपोनिधि शान्त-स्वरूप द्विजश्रेष्ठ पुत्र देगा॥ २१॥ सदा तपस्यामें ही तत्पर रहनेवाले भृगुनन्दन ऋचीक अपनी पत्नीसे इस प्रकार कहकर (तप करनेके लिये) वनमें चले गये॥ २२॥ उसी समय राजा गाधि अपनी भार्याके साथ तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे अपनी पुत्रीको देखनेके लिये ऋचीक ऋषिके आश्रमपर आये॥ २३॥ तब सत्यवतीने ऋषिके दिये हुए दोनों चरुओंको ग्रहण करके उन्हें यत्नपूर्वक अपनी माताके सामने लाकर रख दिये॥ २४॥ तब दैववश माताने चरु बदलकर पुत्रीको अपना चरु दे दिया और उसने अज्ञानवश पुत्रीके चरुको स्वयं खा लिया॥ २५॥ तदनन्तर सत्यवतीने क्षत्रियोंका संहार करनेवाले गर्भको धारण कर लिया, जो अपने शरीरकी कान्तिके कारण घोर (क्रूर) दीखने लगा॥ २६॥ उसको देखकर ऋषिने ध्यानके द्वारा सारी बातोंको जान लिया। फिर द्विजश्रेष्ठ ऋचीक ऋषि अपनी श्रेष्ठ अङ्गोंवाली भार्यासे कहने लगे— ॥ २७॥ 'भद्रे! माताने तुझे ठग लिया है, चरुमें उलट-फेर होनेसे तेरा पुत्र अत्यन्त दारुण क्रूर कार्य करनेवाला होगा और तेरा भाई तपस्याका धनी एवं ब्रह्मस्वरूप होगा, मैंने तपके द्वारा उस (चरु)-में सारा वेद भर दिया था'॥ २८-२९॥ पतिके इस प्रकार कहनेपर महाभाग्यवती सत्यवती स्वामीको प्रसन्न करके बोली—'मेरा पुत्र ऐसा ब्राह्मणाधम न हो।' तब मुनिने उससे कहा— ॥ ३०॥ भद्रे! पिता अथवा माताके कारण ही पुत्र क्रूर कर्म करनेवाला हो जाता है, मैंने तो उग्र कर्म करनेवाले पुत्रकी कामना नहीं की थी (परंतु तेरी ही असावधानीसे चरुका उलट-फेर हो गया है अतएव ऐसा ही पुत्र होगा)। इस प्रकार कहनेपर सत्यवतीने फिर कहा— ॥ ३१॥ मुने! आप चाहें तो तीनों लोकोंका निर्माण कर सकते हैं, फिर पुत्रकी तो बात ही क्या? आप तो मुझे शमपरायण सरल पुत्र ही प्रदान करें॥ ३२॥ 'प्रभो! द्विजश्रेष्ठ! यदि इस बातको पलटा न जा सके तो भले ही आपका और मेरा पौत्र ऐसा हो जाय'॥ ३३॥

ततः प्रसादमकरोत्स तस्यास्तपसो बलात्।
भद्रे नास्ति विशेषो मे पौत्रे च वरवर्णिनि।
त्वया यथोक्तं वचनं तथा भद्रं भविष्यति॥ ३४

ततः सत्यवती पुत्रं जनयामास भार्गवम्।
तपस्यभिरतं दान्तं जमदग्निं शमात्मकम्॥ ३५

भृगोश्चरुविपर्यासे रौद्रवैष्णवयोः पुरा।
यजनाद् वैष्णवेऽथांशे जमदग्निरजायत॥ ३६

सा हि सत्यवती पुण्या सत्यधर्मपरायणा।
कौशिकीति समाख्याता प्रवृत्तेयं महानदी॥ ३७

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रेणुर्नाम नराधिपः।
तस्य कन्या महाभागा कामली नाम रेणुका॥ ३८

रेणुकायां तु कामल्यां तपोविद्यासमन्वितः।
आर्चीको जनयामास जामदग्न्यं सुदारुणम्॥ ३९

सर्वविद्यानुगं श्रेष्ठं धनुर्वेदस्य पारगम्।
रामं क्षत्रियहन्तारं प्रदीप्तमिव पावकम्॥ ४०

और्वस्यैवमृचीकस्य सत्यवत्यां महायशाः।
जमदग्निस्तपोवीर्याज्जज्ञे ब्रह्मविदां वरः॥ ४१

मध्यमश्च शुनःशेपः शुनःपुच्छः कनिष्ठकः।
विश्वामित्रं तु दायादं गाधिः कुशिकनन्दनः॥ ४२

जनयामास पुत्रं तु तपोविद्याशमात्मकम्।
प्राप्य ब्रह्मर्षिसमतां योऽयं सप्तर्षितां गतः॥ ४३

विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथः स्मृतः।
जज्ञे भृगुप्रसादेन कौशिकाद् वंशवर्धनः॥ ४४

विश्वामित्रस्य च सुता देवरातादयः स्मृताः।
प्रख्यातास्त्रिषु लोकेषु तेषां नामानि मे शृणु॥ ४५

देवश्रवाः कतिश्चैव यस्मात्कात्यायनाः स्मृताः।
शालावत्यां हिरण्याक्षो रेणोर्जज्ञेऽथ रेणुमान्॥ ४६

सांकृतिर्गालवश्चैव मुद्गलश्चेति विश्रुताः।
मधुच्छन्दो जयश्चैव देवलश्च तथाष्टकः॥ ४७

कच्छपो हारितश्चैव विश्वामित्रस्य वै सुताः।
तेषां ख्यातानि गोत्राणि कौशिकानां महात्मनाम्॥ ४८

तब उन्होंने अपने तपोबलसे उसके ऊपर अनुग्रह किया और कहा—'भद्रे! वरवर्णिनि! मैं (पुत्रमें और) पौत्रमें कुछ भेद नहीं समझता, अतः तूने जो कहा है, वह वैसा ही होगा'॥ ३४॥ तदनन्तर सत्यवतीने भृगुवंशी जमदग्निको जन्म दिया, जो तपस्यापरायण, जितेन्द्रिय तथा शम (मनोनिग्रह)-से सम्पन्न थे॥ ३५॥ भृगुवंशी ऋचीक मुनिने पूर्वकालमें जो देवताओंकी आराधना की थी, उसीके प्रभावसे रुद्र और विष्णुके अंशभूत उन दोनों चरुओंमें उलट-फेर हो जानेपर भी वैष्णव चरुके अंशसे शान्तस्वभाव जमदग्नि मुनिका जन्म हुआ॥ ३६॥ सत्यवती सत्यधर्ममें तत्पर रहनेवाली पुण्यात्मा स्त्री थी। यही कौशिकी नामसे विख्यात महानदी हुई॥ ३७॥ इक्ष्वाकुवंशमें रेणु नामवाले एक नरेश थे। उनकी कन्या महाभागा रेणुका थी, जिसका दूसरा नाम कामली भी था॥ ३८॥ उस रेणुका या कामलीके गर्भसे तपस्वी एवं विद्वान् ऋचीकपुत्र जमदग्निने अत्यन्त कठोर स्वभाववाले परशुरामजीको प्रकट किया, जो समस्त विद्याओंमें पारङ्गत, धनुर्वेदमें प्रवीण, क्षत्रियकुलका संहार करनेवाले तथा प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी थे॥ ३९-४०॥ इस प्रकार और्व नामसे प्रसिद्ध ऋचीक मुनिके तपोबलसे उनकी पत्नी सत्यवतीके गर्भसे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महायशस्वी जमदग्निका प्रादुर्भाव हुआ॥ ४१॥ ऋचीकके मझले पुत्र शुनःशेप और छोटे पुत्र शुनःपुच्छ थे। इधर कुशिकनन्दन महाराज गाधिने विश्वामित्रको पुत्ररूपमें प्रकट किया, जो तपस्वी, विद्वान् और शान्त थे। वे ब्रह्मर्षिकी समता पाकर सप्तर्षियोंमें प्रतिष्ठित हुए हैं॥ ४२-४३॥ धर्मात्मा विश्वामित्रका दूसरा नाम विश्वरथ था। वे कुशिकवंशी राजा गाधिके यहाँ भृगुवंशी ऋचीक मुनिकी कृपासे उत्पन्न हुए थे और अपने वंशका विस्तार करनेवाले थे॥ ४४॥ विश्वामित्रके देवरात आदि बहुत-से पुत्र कहे गये हैं, जो तीनों लोकोंमें विख्यात थे। उनके नाम मुझसे सुनो॥ ४५॥ देवश्रवा, कात्यायन गोत्रके प्रवर्तक कति और हिरण्याक्ष—ये तीनों शालावतीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। उनकी दूसरी स्त्रीका नाम रेणु था, जिससे रेणुमान्, सांकृति, गालव, मुद्गल, मधुच्छन्द, जय तथा देवल उत्पन्न हुए थे। अष्टक (दृषद्वती या माधवीका पुत्र था), कच्छप और हारित भी विश्वामित्रके ही पुत्र थे। इन कौशिकवंशी महात्माओंके प्रसिद्ध गोत्र इस प्रकार हैं॥ ४६—४८॥

पाणिनो बभ्रुवश्चैव ध्यानजप्यास्तथैव च।
पार्थिवा देवराताश्च शालङ्कायनबाष्कलाः॥ ४९
लोहिता यामदूताश्च तथा कारीषवः स्मृताः।
सौश्रुताः कौशिका राजंस्तथान्ये सैन्धवायनाः॥ ५०
देवला रेणवश्चैव याज्ञवल्क्याघमर्षणाः।
औदुम्बरा ह्यभिष्णातास्तारकायनचुञ्चुलाः॥ ५१
शालावत्या हिरण्याक्षाः सांकृत्या गालवास्तथा।
बादरायणिनश्चान्ये विश्वामित्रस्य धीमतः॥ ५२
ऋष्यन्तरविवाह्याश्च कौशिका बहवः स्मृताः।
पौरवस्य महाराज ब्रह्मर्षेः कौशिकस्य च।
सम्बन्धोऽप्यस्य वंशेऽस्मिन्ब्रह्मक्षत्रस्य विश्रुतः॥ ५३
विश्वामित्रात्मजानां तु शुनःशेपोऽग्रजः स्मृतः।
भार्गवः कौशिकत्वं हि प्राप्तः स मुनिसत्तमः॥ ५४
विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शुनःशेपोऽभवत् किल।
हरिदश्वस्य यज्ञे तु पशुत्वे विनियोजितः॥ ५५
देवैर्दत्तः शुनःशेपो विश्वामित्राय वै पुनः।
देवैर्दत्तः स वै यस्माद् देवरातस्ततोऽभवत्॥ ५६
देवरातादयः सप्त विश्वामित्रस्य वै सुताः।
दृषद्वतीसुतश्चापि विश्वामित्रात् तथाष्टकः॥ ५७
अष्टकस्य सुतो लौहिः प्रोक्तो जह्नुगणो मया।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि वंशमायोर्महात्मनः॥ ५८

राजन्! पाणिन, बभ्रु, ध्यानजप्य, पार्थिव, देवरात, शालङ्कायन, बाष्कल, लोहित, यामदूत, कारीषु, सौश्रुत, कौशिक, सैन्धवायन, देवल, रेणु, याज्ञवल्क्य, अघमर्षण, औदुम्बर, अभिष्णात, तारकायन, चुञ्चुल, शालावत्य, हिरण्याक्ष, सांकृत्य, गालव तथा बादरायणि—ये तथा और भी बहुत-से बुद्धिमान् विश्वामित्रके पुत्र थे॥ ४९—५२॥ कौशिकगोत्री ब्राह्मणोंकी संख्या बहुत है। वे अन्य ऋषियोंके कुलमें विवाह-सम्बन्ध स्थापित करनेके योग्य हैं। महाराज! राजर्षि पौरव तथा ब्रह्मर्षि कौशिकके कुलमें सम्बन्ध हुआ है। इस प्रकार इस वंशमें ब्राह्मणों तथा क्षत्रियोंका परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध विख्यात है॥ ५३॥ विश्वामित्रके पुत्रोंमें शुनःशेप सबसे बड़े माने गये हैं। मुनिश्रेष्ठ शुनःशेपका जन्म यद्यपि भृगुकुलमें हुआ था तथापि वे कौशिकगोत्री हो गये॥ ५४॥ कहते हैं, राजा हरिदश्व (हरिश्चन्द्र)-के यज्ञमें शुनःशेप पशु बनाकर लाये गये थे। उसी समय वे विश्वामित्रके पुत्र हुए। देवताओंने विश्वामित्रके हाथमें पुनः शुनःशेपको दे दिया था। देवताओंद्वारा प्रदत्त होनेके कारण वे (**'देवैः रातः'** इस व्युत्पत्तिके अनुसार) देवरात नामसे विख्यात हुए॥ ५५-५६॥ विश्वामित्रके देवरात आदि सात प्रमुख पुत्र थे। उन्हींसे अष्टकका भी जन्म हुआ था, जो दृषद्वतीका पुत्र था॥ ५७॥ अष्टकका पुत्र लौहि बताया गया है। इस प्रकार मैंने जह्नुकुलका वर्णन किया। इसके बाद महात्मा आयुके वंशका वर्णन करूँगा॥ ५८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वण्यमावसुवंशकीर्तनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें अमावसुके वंशका वर्णनविषयक सत्ताईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

राजा रजि और उनके पुत्रोंका चरित्र, इन्द्रका अपने स्थानसे भ्रष्ट होकर पुनः उसपर प्रतिष्ठित होना

वैशम्पायन उवाच

आयोः पुत्रास्तथा पञ्च सर्वे वीरा महारथाः।
स्वर्भानुतनयायां च प्रभायां जज्ञिरे नृप॥ १
नहुषः प्रथमं जज्ञे वृद्धशर्मा ततः परम्।
रम्भो रजिरनेनाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः॥ २

वैशम्पायनजी कहते हैं—नरेश्वर! स्वर्भानुकुमारी प्रभा आयुकी पत्नी थी। उसके गर्भसे आयुके पाँच पुत्र उत्पन्न हुए, जो सब-के-सब वीर और महारथी थे॥ १॥ उनमें सबसे पहले नहुषका जन्म हुआ। तत्पश्चात् वृद्धशर्मा उत्पन्न हुए। तदनन्तर क्रमशः रम्भ, रजि और अनेना प्रकट हुए। ये तीनों लोकोंमें विख्यात थे॥ २॥

रजिः पुत्रशतानीह जनयामास पञ्च वै।
राजेयमिति विख्यातं क्षत्रमिन्द्रभयावहम्॥ ३

यत्र देवासुरे युद्धे समुत्पन्ने सुदारुणे।
देवाश्चैवासुराश्चैव पितामहमथाब्रुवन्॥ ४

आवयोर्भगवन् युद्धे को विजेता भविष्यति।
ब्रूहि नः सर्वभूतेश श्रोतुमिच्छामि ते वचः॥ ५

ब्रह्मोवाच

येषामर्थाय संग्रामे रजिरात्तायुधः प्रभुः।
योत्स्यते ते जयिष्यन्ति त्रींल्लोकान्नात्र संशयः॥ ६

यतो रजिर्धृतिस्तत्र श्रीश्च तत्र यतो धृतिः।
यतो धृतिश्च श्रीश्चैव धर्मस्तत्र जयस्तथा॥ ७

ते देवदानवाः प्रीता देवेनोक्ता रजेर्जये।
अभ्ययुर्जयमिच्छन्तो वृण्वाना भरतर्षभ॥ ८

स हि स्वर्भानुदौहित्रः प्रभायां समपद्यत।
राजा परमतेजस्वी सोमवंशप्रवर्धनः॥ ९

ते हृष्टमनसः सर्वे रजिं देवाश्च दानवाः।
ऊचुरस्मज्जयाय त्वं गृहाण वरकार्मुकम्॥ १०

अथोवाच रजिस्तत्र तयोर्वै देवदैत्ययोः।
स्वार्थज्ञः स्वार्थमुद्दिश्य यशः स्वं च प्रकाशयन्॥ ११

रजिरुवाच

यदि दैत्यगणान् सर्वाञ्जित्वा शक्रपुरोगमाः।
इन्द्रो भवामि धर्मेण ततो योत्स्यामि संयुगे॥ १२

देवाः प्रथमतो भूयः प्रत्यूचुर्हृष्टमानसाः।
एवं यथेष्टं नृपते कामः सम्पद्यतां तव॥ १३

श्रुत्वा सुरगणानां तु वाक्यं राजा रजिस्तदा।
पप्रच्छासुरमुख्यांस्तु यथा देवानपृच्छत॥ १४

दानवा दर्पपूर्णास्तु स्वार्थमेवानुगम्य ह।
प्रत्यूचुस्ते नृपवरं साभिमानमिदं वचः॥ १५

अस्माकमिन्द्रः प्रह्लादो यस्यार्थे विजयामहे।
अस्मिंस्तु समये राजंस्तिष्ठेथा राजसत्तम॥ १६

रजिने पाँच सौ पुत्रोंको जन्म दिया। वे सभी क्षत्रिय राजेय नामसे विख्यात हुए। उनसे इन्द्र भी डरते थे॥ ३॥ पूर्वकालमें देवताओं तथा असुरोंमें अत्यन्त भयंकर युद्ध आरम्भ होनेपर उन दोनों पक्षोंके लोगोंने पितामह ब्रह्माजीसे पूछा—'भगवन्! सर्वभूतेश्वर! बताइये, हम दोनोंके युद्धमें कौन विजयी होगा? हम इस विषयमें आपकी यथार्थ बात सुनना चाहते हैं'॥ ४-५॥

ब्रह्माजीने कहा—शक्तिशाली राजा रजि हाथमें हथियार लेकर जिनके लिये संग्रामभूमिमें खड़े हो युद्ध करेंगे, वे तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त कर लेंगे। इसमें संशय नहीं है॥ ६॥ जिस पक्षमें रजि हैं, उधर ही धृति है जहाँ धृति है वहीं लक्ष्मी है तथा जहाँ धृति और लक्ष्मी हैं वहीं धर्म एवं विजय है॥ ७॥ भरतकुलभूषण जनमेजय! रजिकी विजयके विषयमें ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर देवता और दानव प्रसन्न हो अपनी-अपनी विजय चाहते हुए रजिका वरण करनेके लिये उनके पास गये॥ ८॥ वे राहुके दौहित्र थे। राहुकी पुत्री प्रभाके गर्भसे उनका जन्म हुआ था। सोमवंशकी वृद्धि करनेवाले वे राजा रजि बड़े तेजस्वी थे॥ ९॥ समस्त देवता और दानव दोनों प्रसन्नचित्त हो रजिके पास जाकर बोले—'राजन्! आप हमारी विजयके लिये अपना श्रेष्ठ धनुष धारण कीजिये'॥ १०॥ तब स्वार्थको समझनेवाले रजिने वहाँ स्वार्थको सामने रखकर अपने यशको प्रकाशमें लाते हुए देवता और दानव दोनों पक्षके लोगोंसे कहा॥ ११॥

रजि बोले—इन्द्रादि देवताओ! यदि मैं समस्त दैत्योंको जीतकर धर्मतः इन्द्र हो सकूँ तो तुम्हारी ओरसे रणभूमिमें युद्ध करूँगा॥ १२॥ यह सुनकर देवताओंने फिर प्रसन्नचित्त हो पहले ही उत्तर दिया—'नरेश्वर! ऐसा ही होगा। तुम्हारी अभीष्ट कामना पूर्ण हो'॥ १३॥ देवताओंकी यह बात सुनकर उस समय राजा रजिने मुख्य-मुख्य असुरोंसे भी वैसी ही बात पूछी जैसी देवताओंसे पूछी थी॥ १४॥ तब अहंकारी दानवोंने स्वार्थको ही सामने रखकर अनुसरण करते हुए उन नृपश्रेष्ठको अभिमानपूर्वक यों उत्तर दिया—॥ १५॥ राजशिरोमणे! हमारे इन्द्र तो प्रह्लाद ही हैं, जिनके लिये हम विजय प्राप्त करना चाहते हैं। राजन्! आपको इसी शर्तपर हमारे पक्षमें खड़ा होना चाहिये॥ १६॥

स तथेति ब्रुवन्नेव देवैरप्यभिचोदितः।
भविष्यसीन्द्रो जित्वैवं देवैरुक्तस्तु पार्थिवः।
जघान दानवान् सर्वान् ये वध्या वज्रपाणिनः॥ १७

स विप्रणष्टां देवानां परमश्रीः श्रियं वशी।
निहत्य दानवान् सर्वानाजहार रजिः प्रभुः॥ १८

ततो रजिं महावीर्यं देवैः सह शतक्रतुः।
रजेः पुत्रोऽहमित्युक्त्वा पुनरेवाब्रवीद् वचः॥ १९

इन्द्रोऽसि तात देवानां सर्वेषां नात्र संशयः।
यस्याहमिन्द्रः पुत्रस्ते ख्यातिं यास्यामि कर्मभिः॥ २०

स तु शक्रवचः श्रुत्वा वञ्चितस्तेन मायया।
तथेत्येवाब्रवीद् राजा प्रीयमाणः शतक्रतुम्॥ २१

तस्मिंस्तु देवसदृशे दिवं प्राप्ते महीपतौ।
दायाद्यमिन्द्रादाजह्रुराचारात् तनया रजेः॥ २२

पञ्चपुत्रशतान्यस्य तद्वै स्थानं शतक्रतोः।
समाक्रमन्त बहुधा स्वर्गलोकं त्रिविष्टपम्॥ २३

ततो बहुतिथे काले समतीते महाबलः।
हृतराज्योऽब्रवीच्छक्रो हृतभागो बृहस्पतिम्॥ २४

इन्द्र उवाच

बदरीफलमात्रं वै पुरोडाशं विधत्स्व मे।
ब्रह्मर्षे येन तिष्ठेयं तेजसाऽऽप्यायितः सदा॥ २५

ब्रह्मन् कृशोऽहं विमना हृतराज्यो हृताशनः।
हतौजा दुर्बलो मूढो रजिपुत्रैः कृतः प्रभो॥ २६

बृहस्पतिरुवाच

यद्येवं चोदितः शक्र त्वयास्यां पूर्वमेव हि।
नाभविष्यत्त्वत्प्रियार्थमकर्तव्यं ममानघ॥ २७

वे 'बहुत अच्छा' कहकर असुरोंकी बात मानना ही चाहते थे कि देवताओंने फिर उन्हें अपने पक्षमें आनेके लिये प्रेरणा देते हुए कहा—'राजन्! तुम इस प्रकार विजय पाकर हमारे इन्द्र हो जाओगे।' देवताओंके ऐसा कहनेपर राजा रजिने उन समस्त दानवोंका संहार कर डाला, जो वज्रपाणि इन्द्रके द्वारा मारे जाने योग्य थे॥ १७॥ मनको वशमें रखनेवाले परमकान्तिमान् एवं शक्तिशाली राजा रजिने समस्त दानवोंका संहार करके देवताओंकी खोयी हुई सम्पत्तिको फिर वापस ला दिया॥ १८॥ तब देवताओंसहित इन्द्रने अपनेको रजिका पुत्र बताकर उन महापराक्रमी रजिसे पुनः इस प्रकार कहा— ॥ १९॥ तात! आप हम सब देवताओंके इन्द्र हैं, इसमें संशय नहीं है; क्योंकि मैं इन्द्र आजसे आपके इन वीरोचित कर्मोंद्वारा अनुगृहीत हो आपका पुत्र कहलाऊँगा। आपके पुत्ररूपमें ही मेरी ख्याति होगी॥ २०॥ इन्द्रकी यह बात सुनकर उनकी मायासे वञ्चित हो महाराज रजिने 'तथास्तु' कह दिया। वे इन्द्रपर बहुत प्रसन्न थे॥ २१॥ उन देवोपम भूपाल रजिके ब्रह्मलोकवासी हो जानेपर उनके पुत्रोंने लोकव्यवहारके अनुसार इन्द्रसे अपना दायभाग माँगा और बलपूर्वक ले लिया॥ २२॥ रजिके पाँच सौ पुत्र थे। उन्होंने इन्द्रके त्रिविष्टप नामसे प्रसिद्ध स्वर्गलोकपर बारम्बार आक्रमण करके उसे ले लिया॥ २३॥ तदनन्तर बहुत समय बीत जानेपर राज्य और यज्ञभागसे वञ्चित हो अत्यन्त दुर्बल हुए इन्द्रने एक दिन एकान्तमें बृहस्पतिजीसे कहा॥ २४॥

इन्द्र बोले—ब्रह्मर्षे! आप एक बेरके बराबर भी पुरोडाशखण्डकी व्यवस्था मेरे लिये कर दें, जिससे मैं भी सदा तेजसे परिपुष्ट होता रहूँ॥ २५॥ ब्रह्मन्! प्रभो! रजिके पुत्रोंने मेरा राज्य और भोजन छीनकर मुझे अत्यन्त कृश, खिन्नचित्त, हतोत्साह, दुर्बल एवं मूढ़ बना दिया है॥ २६॥

बृहस्पतिजीने कहा—निष्पाप इन्द्र! यदि ऐसी बात है तो तुम्हें मुझसे पहले ही यह कहना चाहिये था। तुम्हारा प्रिय करनेके लिये ऐसा कोई कार्य नहीं है, जो मैं न कर सकूँ॥ २७॥

प्रयतिष्यामि देवेन्द्र त्वत्प्रियार्थं न संशयः।
यथा भागं च राज्यं च नचिरात् प्रतिलप्स्यसे॥ २८

तथा तात करिष्यामि मा भूत् ते विक्लवं मनः।
ततः कर्म चकारास्य तेजसो वर्धनं तदा॥ २९

तेषां च बुद्धिसम्मोहमकरोद् द्विजसत्तमः।
नास्तिवादार्थशास्त्रं हि धर्मविद्वेषणं परम्॥ ३०

परमं तर्कशास्त्राणामसतां तन्मनोऽनुगम्।
न हि धर्मप्रधानानां रोचते तत्कथान्तरे॥ ३१

ते तद् बृहस्पतिकृतं शास्त्रं श्रुत्वाल्पचेतसः।
पूर्वोक्तधर्मशास्त्राणामभवन् द्वेषिणः सदा॥ ३२

प्रवक्तुर्न्यायरहितं तन्मतं बहु मेनिरे।
तेनाधर्मेण ते पापाः सर्व एव क्षयं गताः॥ ३३

त्रैलोक्यराज्यं शक्रस्तु प्राप्य दुष्प्रापमेव च।
बृहस्पतिप्रसादाद्धि परां निर्वृतिमभ्ययात्॥ ३४

ते यदा तु सुसम्मूढा रागोन्मत्ता विधर्मिणः।
ब्रह्मद्विषश्च संवृत्ता हतवीर्यपराक्रमाः॥ ३५

ततो लेभे सुरैश्वर्यमिन्द्रः स्थानं तथोत्तमम्।
हत्वा रजिसुतान् सर्वान् कामक्रोधपरायणान्॥ ३६

य इदं च्यावनं स्थानात् प्रतिष्ठां च शतक्रतोः।
शृणुयाद् धारयेद्वापि न स दौरात्म्यमाप्नुयात्॥ ३७

देवेन्द्र! मैं तुम्हारे प्रिय मनोरथकी सिद्धिके लिये निःसंदेह ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे तुम अपना राज्य और यज्ञभाग शीघ्र प्राप्त कर लोगे॥ २८॥

तात! तुम जैसा चाहते हो वैसा ही करूँगा। तुम्हारा मन व्याकुल न हो। ऐसा कहकर बृहस्पतिजीने उस समय इन्द्रके तेजको बढ़ानेवाले कर्मका अनुष्ठान किया॥ २९॥ द्विजश्रेष्ठ बृहस्पतिने रजिके पुत्रोंकी बुद्धिमें मोह उत्पन्न करनेके लिये ऐसे शास्त्रका निर्माण किया, जो नास्तिकवादसे परिपूर्ण तथा धर्मके प्रति अत्यन्त द्वेष उत्पन्न करनेवाला था॥ ३०॥ केवल तर्कके आधारपर अपने सिद्धान्तका प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रोंमें वह उत्कृष्ट माना गया है। बृहस्पतिका वह नास्तिक दर्शन दुष्ट पुरुषोंके ही मनको अधिक भाता है। धर्मप्रधान पुरुषोंको बातचीतके प्रसंगमें भी उसकी चर्चा नहीं सुहाती है॥ ३१॥ बृहस्पतिके उस शास्त्रको सुनकर वे मन्दबुद्धि रजिपुत्र पहलेके धर्मशास्त्रोंसे सदा द्वेष रखने लगे॥ ३२॥ वक्ताका वह न्यायरहित मत उन्हें बहुत उत्तम जान पड़ने लगा। उसी अधर्मसे वे सब पापी नष्ट हो गये॥ ३३॥ इस तरह बृहस्पतिकी कृपासे त्रिलोकीका वह दुर्लभ राज्य पाकर इन्द्र बड़े प्रसन्न हुए॥ ३४॥ वे रजिके पुत्र जब नास्तिकवादका आश्रय ले विवेकशून्य, रागोन्मत्त, धर्मके विपरीत चलनेवाले, ब्रह्मद्रोही, शक्तिहीन और पराक्रमशून्य हो गये, तब काम-क्रोधमें तत्पर रहनेवाले उन समस्त रजिपुत्रोंको मारकर इन्द्रने देवताओंका ऐश्वर्य और उत्तम स्थान प्राप्त कर लिया॥ ३५-३६॥ जो इन्द्रके अपने स्थानसे भ्रष्ट होने और पुनः उसपर प्रतिष्ठित होनेके इस प्रसङ्गको सुनता और अपने हृदयमें धारण करता है, उसके मनमें कभी दुर्भावना नहीं आती॥ ३७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि आयोर्वंशकीर्तनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें आयुके वंशका वर्णनविषयक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २८॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

अनेनाके वंशका वर्णन, धन्वन्तरिका काशिराज धन्वके यहाँ पुत्ररूपमें अवतार, दिवोदासके राज्यकालमें भगवान् शिवकी आज्ञासे गणेश्वर निकुम्भके द्वारा वाराणसीको जनशून्य बनानेका प्रयत्न, वहाँ शिव और पार्वतीका निवास, दिवोदासका वाराणसीपर अधिकार और अलर्ककी प्रशंसा

वैशम्पायन उवाच

रम्भोऽनपत्यस्तत्रासीद् वंशं वक्ष्याम्यनेनसः।
अनेनसः सुतो राजा प्रतिक्षत्रो महायशाः॥ १

प्रतिक्षत्रसुतश्चापि सृञ्जयो नाम विश्रुतः।
सृञ्जयस्य जयः पुत्रो विजयस्तस्य चात्मजः॥ २

विजयस्य कृतिः पुत्रस्तस्य हर्यश्वतः सुतः।
हर्यश्वतसुतो राजा सहदेवः प्रतापवान्॥ ३

सहदेवस्य धर्मात्मा नदीन इति विश्रुतः।
नदीनस्य जयत्सेनो जयत्सेनस्य संकृतिः॥ ४

संकृतेरपि धर्मात्मा क्षत्रधर्मा महायशाः।
अनेनसः समाख्याताः क्षत्रवृद्धस्य मे शृणु॥ ५

क्षत्रवृद्धात्मजस्तत्र सुनहोत्रो महायशाः।
सुनहोत्रस्य दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः॥ ६

काशः शलश्च द्वावेतौ तथा गृत्समदः प्रभुः।
पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकाः॥ ७

ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च।
शलात्मजश्चार्ष्टिषेणस्तनयस्तस्य काशकः॥ ८

काशस्य काशयो राजन् पुत्रो दीर्घतपास्तथा।
धन्वस्तु दीर्घतपसो विद्वान् धन्वन्तरिस्ततः॥ ९

तपसोऽन्ते सुमहतो जातो वृद्धस्य धीमतः।
पुनर्धन्वन्तरिर्देवो मानुषेष्विह जज्ञिवान्॥ १०

जनमेजय उवाच

कथं धन्वन्तरिर्देवो मानुषेष्विह जज्ञिवान्।
एतद् वेदितुमिच्छामि तन्मे ब्रूहि यथातथम्॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! आयुपुत्र रम्भके कोई संतान नहीं हुई। अब मैं अनेनाके वंशका वर्णन करूँगा। अनेनाके पुत्र महायशस्वी राजा प्रतिक्षत्र हुए॥ १॥ प्रतिक्षत्रके पुत्र सृञ्जय नामसे विख्यात हुए। सृञ्जयके पुत्र जय और जयके पुत्र विजय हुए॥ २॥ विजयके पुत्र कृति, कृतिके हर्यश्व और हर्यश्वके पुत्र प्रतापी राजा सहदेव हुए॥ ३॥ सहदेवका धर्मात्मा पुत्र नदीन नामसे विख्यात हुआ। नदीनका पुत्र जयत्सेन और जयत्सेनका संकृति था॥ ४॥ संकृतिके पुत्र महायशस्वी धर्मात्मा क्षत्रधर्मा हुए। यहाँतक अनेनाके पुत्रोंका वर्णन हुआ। अब मुझसे क्षत्रवृद्धकी संततिका वर्णन सुनो॥ ५॥ क्षत्रवृद्धके पुत्र महायशस्वी सुनहोत्र हुए। सुनहोत्रके परम धार्मिक तीन पुत्र थे—काश, शल और प्रभावशाली गृत्समद। गृत्समदके पुत्र शुनक हुए, जिससे शौनक-वंशका विस्तार हुआ॥ ६-७॥ शौनक-वंशमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी वर्णोंके लोग हुए। शलके पुत्रका नाम आर्ष्टिषेण था। उनके पुत्र काशक हुए॥ ८॥ राजन्! काशके वंशज (पुत्र) काशि कहलाये। इनमें दीर्घतपा सबसे प्रथम पुत्र थे। दीर्घतपाके धन्व और धन्वसे विद्वान् धन्वन्तरिका प्रादुर्भाव हुआ॥ ९॥ अपनी महान् तपस्या पूरी करके अन्तमें धन्वन्तरिदेवने बुद्धिमान् एवं वृद्ध राजा धन्वके यहाँ इस मनुष्यरूपमें पुनः जन्म ग्रहण किया॥ १०॥

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! धन्वन्तरिदेव इस मनुष्यलोकमें किस प्रकार उत्पन्न हुए? यह मैं जानना चाहता हूँ। अतः यह प्रसङ्ग मुझे ठीक-ठीक बताइये॥ ११॥

वैशम्पायन उवाच

धन्वन्तरेः सम्भवोऽयं श्रूयतां भरतर्षभ।
जातः स हि समुद्रात्तु मथ्यमाने पुरामृते॥ १२

उत्पन्नः कलशात् पूर्वं सर्वतश्च श्रिया वृतः।
अभ्यसन् सिद्धिकार्यं हि विष्णुं दृष्ट्वा हि तस्थिवान्॥ १३

अब्जस्त्वमिति होवाच तस्मादब्जस्तु स स्मृतः।
अब्जः प्रोवाच विष्णुं वै तव पुत्रोऽस्मि वै प्रभो॥ १४

विधत्स्व भागं स्थानं च मम लोके सुरेश्वर।
एवमुक्तः स दृष्ट्वा वै तथ्यं प्रोवाच तं प्रभुः॥ १५

कृतो यज्ञविभागो हि यज्ञियैर्हि सुरैः पुरा।
देवेषु विनियुक्तं हि विद्धि होत्रं महर्षिभिः॥ १६

न शक्यमुपहोमा वै तुभ्यं कर्तुं कदाचन।
अर्वाग्भूतोऽसि देवानां पुत्र त्वं तु नहीश्वरः॥ १७

द्वितीयायां तु सम्भूत्यां लोके ख्यातिं गमिष्यसि।
अणिमादिश्च ते सिद्धिर्गर्भस्थस्य भविष्यति॥ १८

तेनैव त्वं शरीरेण देवत्वं प्राप्स्यसे प्रभो।
चरुमन्त्रैर्व्रतैर्जाप्यैर्यक्ष्यन्ति त्वां द्विजातयः॥ १९

अष्टधा त्वं पुनश्चैवमायुर्वेदं विधास्यसि।
अवश्यभावी ह्यर्थोऽयं प्राग्दृष्टस्त्वब्जयोनिना॥ २०

वैशम्पायनजी कहते हैं—भरतश्रेष्ठ! धन्वन्तरिके जन्मका यह प्रसङ्ग सुनो। वे पूर्वकालमें अमृतमन्थनके समय समुद्रसे प्रकट हुए थे॥ १२॥ पहले जब वे समुद्रसे प्रकट हुए, उस समय भगवान् विष्णुके नामोंका जप और आरोग्य-साधक कार्यका चिन्तन करते हुए सब ओरसे दिव्य कान्तिसे प्रकाशित हो रहे थे। वे अपने सामने भगवान् विष्णुको देखकर खड़े हो गये॥ १३॥ भगवान् विष्णुने उनसे कहा—'तुम अप् अर्थात् जलसे प्रकट हुए हो, इसलिये अब्ज हो।' उनके ऐसा कहनेसे वे अब्ज कहलाने लगे। उस समय अब्जने भगवान् विष्णुसे कहा—'प्रभो! मैं आपका पुत्र हूँ। सुरेश्वर! मेरे लिये यज्ञभागकी व्यवस्था कीजिये और लोकमें मेरे लिये कोई स्थान दीजिये।' उनके ऐसा कहनेपर भगवान् विष्णुने उनकी ओर देखकर यह यथार्थ बात कही—॥ १४-१५॥ 'पूर्वकालमें यज्ञसम्बन्धी देवताओंने यज्ञका विभाग कर लिया है। महर्षियोंने हवनीय पदार्थोंका देवताओंके लिये ही विनियोग किया है। इस बातको तुम अच्छी तरह समझ लो॥ १६॥ बेटा! तुम्हें छोटे-मोटे उपहोम कभी नहीं अर्पित किये जा सकते (क्योंकि वे तुम्हारे योग्य नहीं हैं)। तुम देवताओंसे पीछे उत्पन्न हुए हो। अतः तुम्हारे लिये वेद-विरुद्ध यज्ञभागकी कल्पना नहीं की जा सकती और वैदिक यज्ञभाग पानेके तुम अधिकारी नहीं हो॥ १७॥ दूसरे जन्ममें तुम संसारमें विख्यात होओगे। वहाँ गर्भावस्थामें ही तुम्हें अणिमा आदि सिद्धि प्राप्त हो जायगी॥ १८॥ प्रभो! तुम उसी शरीरसे देवत्व प्राप्त कर लोगे और ब्राह्मणलोग चरु, मन्त्र, व्रत एवं जपनीय मन्त्रोंद्वारा तुम्हारा यजन करेंगे॥ १९॥ फिर तुम उस जन्ममें आयुर्वेदको आठ भागोंमें विभक्त करके उसे आठ अङ्गोंसे युक्त* बना दोगे, यह बात अवश्य होनेवाली है। कमलयोनि ब्रह्माजीने इसे पहलेसे ही देख लिया है'॥ २०॥

---

* वैद्यकमें आयुर्वेदके आठ अङ्ग इस प्रकार बताये गये हैं—

कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजरावृषान्। अष्टावङ्गानि तस्याहुश्चिकित्सा येषु संश्रिता॥

१-कायचिकित्सा, २-बालचिकित्सा, ३-ग्रहचिकित्सा, ४-ऊर्ध्वाङ्गचिकित्सा, ५-शल्यचिकित्सा, ६-दंष्ट्राचिकित्सा, ७-जराचिकित्सा और ८-वृषचिकित्सा—ये आठ प्रकारकी चिकित्साएँ हैं। पूर्वोक्त काय, बाल आदि जो आठ अङ्ग हैं, उनपर ही चिकित्सा अवलम्बित होती है। शारीरिक रोगोंके निदान और उपचारको कायचिकित्सा कहते हैं। बालकोंके रोगोंका विचार और उन्हें दूर करनेके उपाय आदि बालचिकित्साके अन्तर्गत हैं। भूत, प्रेत, पिशाच आदिके आवेशसे होनेवाली पीड़ाको समझना और विभिन्न प्रकारके उपचारोंद्वारा उसे दूर करना ग्रहचिकित्सा है। सिर, नेत्र आदि ऊपरके अङ्गोंकी बीमारीको दूर करनेकी चेष्टा एवं विधि ऊर्ध्वाङ्गचिकित्सा कहलाती है। अस्त्र-शस्त्रोंके आघात आदिसे होनेवाले घावको चीर-फाड़कर ठीक करनेकी जो क्रिया है, उसे शल्यचिकित्सा कहते हैं। सर्पदंशन आदि

द्वितीयं द्वापरं प्राप्य भविता त्वं न संशयः।
इमं तस्मै वरं दत्त्वा विष्णुरन्तर्दधे पुनः॥ २१

द्वितीये द्वापरं प्राप्ते सौनहोत्रिः स काशिराट्।
पुत्रकामस्तपस्तेपे धन्वो दीर्घं तपस्तदा॥ २२

प्रपद्ये देवतां तां तु या मे पुत्रं प्रदास्यति।
अब्जं देवं सुतार्थाय तदाऽऽराधितवान् नृपः॥ २३

ततस्तुष्टः स भगवानब्जः प्रोवाच तं नृपम्।
यदिच्छसि वरं ब्रूहि तत् ते दास्यामि सुव्रत॥ २४

नृप उवाच

भगवन् यदि तुष्टस्त्वं पुत्रो मे ख्यातिमान् भव।
तथेति समनुज्ञाय तत्रैवान्तरधीयत॥ २५

तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा।
काशिराजो महाराज सर्वरोगप्रणाशनः॥ २६

आयुर्वेदं भरद्वाजात् प्राप्येह भिषजां क्रियाम्।
तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत्॥ २७

धन्वन्तरेस्तु तनयः केतुमानिति विश्रुतः।
अथ केतुमतः पुत्रो वीरो भीमरथः स्मृतः॥ २८

सुतो भीमरथस्यापि दिवोदासः प्रजेश्वरः।
दिवोदासस्तु धर्मात्मा वाराणस्यधिपोऽभवत्॥ २९

एतस्मिन्नेव काले तु पुरीं वाराणसीं नृप।
शून्यां निवासयामास क्षेमको नाम राक्षसः॥ ३०

शप्ता हि सा मतिमता निकुम्भेन महात्मना।
शून्या वर्षसहस्रं वै भवित्री नात्र संशयः॥ ३१

तस्यां तु शप्तमात्रायां दिवोदासः प्रजेश्वरः।
विषयान्ते पुरीं रम्यां गोमत्यां संन्यवेशयत्॥ ३२

'दूसरा द्वापर आनेपर तुम संसारमें प्रकट होओगे, इसमें संशय नहीं है।' धन्वन्तरिको यह वर देकर भगवान् विष्णु फिर अन्तर्धान हो गये॥ २१॥ जब दूसरा द्वापर आया, तब सुनहोत्रके पुत्र काशिराज धन्व पुत्रकी कामनासे दीर्घकालीन तपस्या करने लगे॥ २२॥ उन्होंने मन-ही-मन सोचा कि 'मैं उस देवताकी शरण लूँ, जो मुझे पुत्र प्रदान करेगा।' ऐसा विचारकर राजाने पुत्रके लिये अब्जदेव (भगवान् धन्वन्तरि)-की आराधना की॥ २३॥ उस आराधनासे संतुष्ट होकर भगवान् अब्ज राजा धन्वसे बोले—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले नरेश! तुम जो वर प्राप्त करना चाहते हो, उसे बताओ। वह मैं तुम्हें दूँगा'॥ २४॥

राजा बोले—भगवन्! यदि आप मुझसे संतुष्ट हैं तो मेरे पुत्र हो जायँ और इसी रूपमें आपकी ख्याति हो। तब 'तथास्तु' कहकर भगवान् धन्वन्तरि वहीं अन्तर्धान हो गये॥ २५॥ महाराज! तदनन्तर धन्वन्तरिदेव धन्वके घरमें अवतीर्ण हुए। काशिराज धन्वन्तरि समस्त रोगोंका नाश करनेमें समर्थ थे॥ २६॥ उन्होंने मुनिवर भरद्वाजसे आयुर्वेद तथा चिकित्साकर्मका ज्ञान प्राप्त करके उसे आठ भागोंमें विभक्त किया और उन सबकी विस्तृत विवेचना की। फिर बहुतसे शिष्योंको उस अष्टाङ्गयुक्त आयुर्वेदकी शिक्षा दी॥ २७॥ धन्वन्तरिके पुत्र केतुमान् नामसे विख्यात हुए। केतुमान्के वीर पुत्रका नाम भीमरथ था॥ २८॥ भीमरथके पुत्र धर्मात्मा राजा दिवोदास हुए, जो वाराणसीपुरीके स्वामी थे॥ २९॥ नरेश्वर! राजा दिवोदासके राज्यकालमें ही शापवश वाराणसीपुरी जनशून्य हो गयी थी, जिसे पीछे भगवान् रुद्रका अनुचर क्षेमक नामक राक्षसने बसाया था॥ ३०॥ भगवान् रुद्रके पार्षद बुद्धिमान् महात्मा निकुम्भने यह शाप दे दिया था कि 'वाराणसीपुरी एक हजार वर्षोंतक जनशून्य बनी रहेगी। इसमें संशय नहीं है'॥ ३१॥ उस पुरीके शापग्रस्त हो जानेपर राजा दिवोदासने अपने राज्यकी सीमापर गोमती नदीके किनारे एक रमणीय नगरी बसायी॥ ३२॥

जङ्गम तथा अफीम आदि स्थावर विषको दूर करनेका उपचार दंष्ट्राचिकित्सा है। रसायन आदिके द्वारा बुढ़ापाको रोकना या उसे दूर करना जराचिकित्सा है। वाजीकरण तन्त्रको ही वृषचिकित्सा कहते हैं।

भद्रश्रेण्यस्य पूर्वं तु पुरी वाराणसीत्यभूत्।
भद्रश्रेण्यस्य पुत्राणां शतमुत्तमधन्विनाम्॥ ३३

हत्वा निवेशयामास दिवोदासो नरर्षभः।
भद्रश्रेण्यस्य तद् राज्यं हृतं तेन बलीयसा॥ ३४

जनमेजय उवाच

वाराणसीं निकुम्भस्तु किमर्थं शप्तवान् प्रभुः।
निकुम्भकश्च धर्मात्मा सिद्धिक्षेत्रं शशाप यः॥ ३५

वैशम्पायन उवाच

दिवोदासस्तु राजर्षिर्नगरीं प्राप्य पार्थिवः।
वसति स्म महातेजाः स्फीतायां तु नराधिपः॥ ३६

एतस्मिन्नेव काले तु कृतदारो महेश्वरः।
देव्याः स प्रियकामस्तु न्यवसच्छ्वशुरान्तिके॥ ३७

देवाज्ञया पार्षदा ये त्वधिरूपास्तपोधनाः।
पूर्वोक्तैरुपदेशैश्च तोषयन्ति स्म पार्वतीम्॥ ३८

हृष्यते वै महादेवी मेना नैव प्रहृष्यति।
जुगुप्सत्यसकृत् तां वै देवीं देवं तथैव सा॥ ३९

सपार्षदस्त्वनाचारस्तव भर्ता महेश्वरः।
दरिद्रः सर्वदैवासौ शीलं तस्य न वर्तते॥ ४०

मात्रा तथोक्ता वरदा स्त्रीस्वभावाच्च चुक्रुधे।
स्मितं कृत्वा च वरदा भवपार्श्वमथागमत्॥ ४१

विवर्णवदना देवी महादेवमभाषत।
नेह वत्स्याम्यहं देव नय मां स्वं निकेतनम्॥ ४२

तथा कर्तुं महादेवः सर्वलोकानवैक्षत।
वासार्थं रोचयामास पृथिव्यां कुरुनन्दन॥ ४३

वाराणसीं महातेजाः सिद्धिक्षेत्रं महेश्वरः।
दिवोदासेन तां ज्ञात्वा निविष्टां नगरीं भवः॥ ४४

पहले वाराणसीपुरी (यदुवंशी महिष्मान्‌के पुत्र) भद्रश्रेण्यके अधिकारमें थी। भद्रश्रेण्यके सौ पुत्र थे, जो श्रेष्ठ धनुर्धर माने जाते थे, नरश्रेष्ठ दिवोदासने उन सबको मारकर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। उन महाबली नरेशने भद्रश्रेण्यके उस राज्यका बलपूर्वक अपहरण कर लिया॥ ३३-३४॥

जनमेजयने पूछा—मुने! वाराणसी तो सिद्धिक्षेत्र (मोक्षधाम) है और प्रभावशाली निकुम्भ बड़े धर्मात्मा हैं। फिर उन्होंने उस पुरीको शाप किसलिये दिया?॥ ३५॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजन्! महातेजस्वी नरेश्वर राजर्षि दिवोदास वाराणसी नगरीको पाकर वहाँके राजा हो गये। वे उस समृद्धिशालिनी नगरीमें सदा ही निवास करते थे॥ ३६॥ इन्हीं दिनों भगवान् शङ्कर विवाह करके देवी पार्वतीका प्रिय करनेकी इच्छासे अपने श्वशुरके पास ही निवास करते थे॥ ३७॥ उस समय महादेवजीकी आज्ञासे उनके सुयोग्य पार्षद, जो तपस्याके धनी थे, उनके पहले दिये हुए उपदेशके अनुसार पार्वतीदेवीको संतुष्ट करते रहते थे॥ ३८॥ इससे महादेवी पार्वती तो प्रसन्न रहती थीं, परंतु उनकी माता मेनाको संतोष नहीं होता था। वे महादेवी पार्वती तथा भगवान् शङ्करकी बारम्बार निन्दा ही करती थीं॥ ३९॥ उन्होंने एक दिन कहा—'उमे! तेरे पति महादेव और उनके पार्षद सभी अनाचारी हैं। साथ ही वे भोलेनाथ सदाके दरिद्र हैं। शील तो उनमें नाममात्रको भी नहीं है'॥ ४०॥ वरदायिनी उमा माताके ऐसा कहनेपर स्त्रीस्वभाववश कुपित हो उठीं और किञ्चित् मुसकराकर महादेवजीके पास आयीं॥ ४१॥ उस समय उनका मुख मलिन हो रहा था। निकट आकर देवीने महादेवजीसे कहा—'देव! अब मैं यहाँ (नैहरमें) नहीं रहूँगी। आप मुझे अपने घर ले चलें'॥ ४२॥ कुरुनन्दन! पार्वतीजीके कथनानुसार कार्य करनेके लिये महादेवजीने सम्पूर्ण लोकोंपर दृष्टिपात किया। उन महातेजस्वी महेश्वरने पृथ्वीपर अपने रहनेके लिये सिद्धिक्षेत्र वाराणसीपुरीको पसंद किया। परंतु उस नगरीमें राजा दिवोदास निवास करते हैं, यह जानकर महादेवजीने

पार्श्वे तिष्ठन्तमाहूय निकुम्भमिदमब्रवीत्।
गणेश्वर पुरीं गत्वा शून्यां वाराणसीं कुरु॥ ४५
मृदुनैवाभ्युपायेन ह्यतिवीर्यः स पार्थिवः।
ततो गत्वा निकुम्भस्तु पुरीं वाराणसीं तदा॥ ४६
स्वप्ने निदर्शयामास कण्डुकं नाम नापितम्।
श्रेयस्तेऽहं करिष्यामि स्थानं मे रोचयानघ॥ ४७
मद्रूपां प्रतिमां कृत्वा नगर्यन्ते तथैव च।
ततः स्वप्ने यथोद्दिष्टं सर्वं कारितवान् नृप॥ ४८
पुरीद्वारे तु विज्ञाप्य राजानं च यथाविधि।
पूजां तु महतीं तस्य नित्यमेव प्रयोजयत्॥ ४९
गन्धैश्च धूपमाल्यैश्च प्रोक्षणीयैस्तथैव च।
अन्नपानप्रयोगैश्च अत्यद्भुतमिवाभवत्॥ ५०
एवं सम्पूज्यते तत्र नित्यमेव गणेश्वरः।
ततो वरसहस्त्रं तु नागराणां प्रयच्छति।
पुत्रान् हिरण्यमायुश्च सर्वान् कामांस्तथैव च॥ ५१
राज्ञस्तु महिषी श्रेष्ठा सुयशा नाम विश्रुता।
पुत्रार्थमागता देवी साध्वी राज्ञा प्रचोदिता॥ ५२
पूजां तु विपुलां कृत्वा देवी पुत्रमयाचत।
पुनः पुनरथागत्य बहुशः पुत्रकारणात्॥ ५३
न प्रयच्छति पुत्रं हि निकुम्भः कारणेन हि।
राजा तु यदि नः कुप्येत् कार्यसिद्धिस्ततो भवेत्॥ ५४
अथ दीर्घेण कालेन क्रोधो राजानमाविशत्।
भूत एष महान् द्वारि नागराणां प्रयच्छति॥ ५५
प्रीतो वरान् वै शतशो मम किं न प्रयच्छति।
मामकैः पूज्यते नित्यं नगर्यां मे सदैव हि॥ ५६
विज्ञापितो मयात्यर्थं देव्या मे पुत्रकारणात्।
न ददाति च पुत्रं मे कृतघ्नः केन हेतुना॥ ५७
ततो नार्हति सत्कारं मत्सकाशाद् विशेषतः।
तस्मात् तु नाशयिष्यामि स्थानमस्य दुरात्मनः॥ ५८
एवं स तु विनिश्चित्य दुरात्मा राजकिल्बिषी।
स्थानं गणपतेस्तस्य नाशयामास दुर्मतिः॥ ५९

अपने पास खड़े हुए निकुम्भसे इस प्रकार कहा—'गणेश्वर! तुम जाकर वाराणसीपुरीको मनुष्योंसे सूनी कर दो; परंतु इसके लिये कोमल उपायसे ही काम लेना, क्योंकि वे राजा दिवोदास बड़े बलवान् हैं'। तब निकुम्भने वाराणसीपुरीमें जाकर कण्डुक नाईको स्वप्नमें दर्शन दिया और कहा—'अनघ! तू नगरकी सीमापर मेरी प्रतिमा बनाकर मेरे लिये निवासस्थानकी व्यवस्था कर। ऐसा करनेसे मैं तेरा कल्याण करूँगा।' नरेश्वर! तब उस नाईने स्वप्नमें जैसा कहा गया था उसके अनुसार सब कुछ किया और कराया॥ ४३—४८॥ राजाको सूचना देकर उसने नगरके द्वारपर विधिपूर्वक निकुम्भ-प्रतिमाकी स्थापना की। फिर वह प्रतिदिन बड़े समारोहके साथ उस प्रतिमाकी पूजा करने लगा॥ ४९॥ गन्ध, पुष्प, माला, धूप, प्रोक्षणीय जल तथा अन्न-पान आदि अर्पण करके वह नाई निकुम्भकी पूजा करता था। यह वहाँ अत्यन्त अद्भुत-सी बात हुई॥ ५०॥ इस प्रकार वहाँ नित्य ही निकुम्भ नामक गणेशकी पूजा होती और वे नागरिकोंको सहस्रों वर प्रदान करते थे। पुत्र, सुवर्ण, आयु तथा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुएँ सबको देते थे॥ ५१॥ राजा दिवोदासकी श्रेष्ठ महारानी सुयशा नामसे विख्यात थीं। राजाकी आज्ञा लेकर वे साध्वी महारानी पुत्रकी कामनासे वहाँ आयीं॥ ५२॥ वहाँ जाकर बड़े विस्तारके साथ पूजा करके देवी सुयशाने निकुम्भसे पुत्रके लिये याचना की। उन्होंने बारम्बार आकर पूजन किया और अनेक बार पुत्रके लिये प्रार्थना की॥ ५३॥ परंतु निकुम्भ कारणवश उन्हें पुत्र नहीं देते थे। उन्होंने सोचा—'यदि राजा किसी तरह हमपर कुपित हो जाय तो हमारा काम बन जाय'॥ ५४॥ तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् राजाके मनमें क्रोध हुआ। वे सोचने लगे—'मेरे नगरके द्वारपर बैठा हुआ यह महान् भूत प्रसन्न होकर नागरिकोंको सैकड़ों प्रकारके वर देता है, परंतु मुझे क्यों नहीं देता? सदा मेरी ही नगरीमें, मेरे ही लोग इसकी नित्य पूजा करते हैं। मैंने भी देवीको पुत्र प्रदान करनेके लिये बार-बार निवेदन किया; परंतु यह कृतघ्न न जाने किस कारणसे मुझे पुत्र नहीं दे रहा है। अतः अब यह विशेषतः मुझसे सत्कार पानेके योग्य नहीं रहा। इसलिये इस दुरात्माके स्थानका मैं नाश कर दूँगा'॥ ५५—५८॥ ऐसा निश्चय करके दुरात्मा, दुर्बुद्धि एवं पापी राजाने गणपति निकुम्भके उस स्थानको नष्ट करा दिया॥ ५९॥

भग्नमायतनं दृष्ट्वा राजानमशपत् प्रभुः।
यस्मादनपराधस्य त्वया स्थानं विनाशितम्।
पुर्यकस्मादियं शून्या तव नूनं भविष्यति॥ ६०

ततस्तेन तु शापेन शून्या वाराणसी तदा।
शप्त्वा पुरीं निकुम्भस्तु महादेवमथागमत्॥ ६१

अकस्मात् तु पुरी सा तु विद्रुता सर्वतोदिशम्।
तस्यां पुर्यां ततो देवो निर्ममे पदमात्मनः॥ ६२

रमते तत्र वै देवो रममाणो गिरेः सुताम्।
न रतिं तत्र वै देवी लभते गृहविस्मयात्।
वसाम्यत्र न पुर्यां तु देवी देवमथाब्रवीत्॥ ६३

देव उवाच

नाहं वेश्मनि वत्स्यामि अविमुक्तं हि मे गृहम्।
नाहं तत्र गमिष्यामि गच्छ देवि गृहं प्रति॥ ६४

हसन्नुवाच भगवांस्त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः।
तस्मात् तदविमुक्तं हि प्रोक्तं देवेन वै स्वयम्॥ ६५
एवं वाराणसी शप्ता अविमुक्तं च कीर्तितम्॥ ६६

यस्मिन् वसति वै देवः सर्वदेवनमस्कृतः।
युगेषु त्रिषु धर्मात्मा सह देव्या महेश्वरः॥ ६७

अन्तर्धानं कलौ याति तत्पुरं हि महात्मनः।
अन्तर्हिते पुरे तस्मिन् पुरी सा वसते पुनः।
एवं वाराणसी शप्ता निवेशं पुनरागता॥ ६८

भद्रश्रेण्यस्य पुत्रो वै दुर्दमो नाम विश्रुतः।
दिवोदासेन बालेति घृणया स विवर्जितः॥ ६९

हैहयस्य तु दायाद्यं कृतवान् वै महीपतिः।
आजह्रे पितृदायाद्यं दिवोदासहृतं बलात्॥ ७०

अपने वासस्थानको भग्न हुआ देख भगवान् निकुम्भने राजाको शाप देते हुए कहा—'राजन्! तुमने बिना किसी अपराधके मेरे स्थानको नष्ट कराया है, इसलिये निश्चय ही तुम्हारी यह नगरी अकस्मात् जनशून्य हो जायगी'॥ ६०॥ तदनन्तर उस शापसे उस समय वाराणसीपुरी सूनी हो गयी। उस पुरीको शाप देकर निकुम्भ महादेवजीके पास चले गये॥ ६१॥ वाराणसीमें रहनेवाले सब लोग अकस्मात् सम्पूर्ण दिशाओंमें भाग गये। तब महादेवजीने उस पुरीमें अपना निवास-स्थान बनाया॥ ६२॥ फिर वे भगवान् शिव गिरिराजनन्दिनी उमाका मनोरञ्जन करते हुए वहाँ आनन्दपूर्वक रहने लगे। परंतु देवी पार्वतीका मन वहाँ नहीं लगता था, क्योंकि वहाँ कोई निश्चित गृह न होनेसे वे विस्मयमें पड़ी रहती थीं। (अथवा पिताके घरके लिये उत्कण्ठित होनेके कारण देवीको वहाँ प्रसन्नता नहीं प्राप्त होती थी।) उन्होंने महादेवजीसे कहा—'भगवन्! मैं इस पुरीमें नहीं रहूँगी (आप मेरे घरको चलिये)'॥ ६३॥

महादेवजी बोले—देवि! मैं और किसी घरमें नहीं रहूँगा। यह अविमुक्त क्षेत्र ही मेरा घर है। अतः मैं वहाँ नहीं चलूँगा। तुम जाना चाहो तो अपने उस घरको जाओ॥ ६४॥ त्रिपुरोंका विनाश करनेवाले त्रिनेत्रधारी भगवान् शिवने हँसते हुए पूर्वोक्त बात कही थी। महादेवजीने स्वयं ही उस क्षेत्रको अविमुक्त कहा था, इसलिये वह अविमुक्त नामसे प्रसिद्ध हो गया। इस तरह वाराणसीपुरीको शाप प्राप्त हुआ और उसे अविमुक्त क्षेत्र कहा गया॥ ६५-६६॥ सर्वदेववन्दित धर्मात्मा देव महेश्वर सत्ययुग आदि तीन युगोंमें देवी पार्वतीके साथ उस अविमुक्त क्षेत्रमें प्रत्यक्ष निवास करते हैं॥ ६७॥ कलियुग आनेपर महात्मा महादेवजीका वह नगर अदृश्य हो जाता है। उसके अदृश्य हो जानेपर वाराणसीपुरी फिरसे बसती है। इस प्रकार वाराणसी नगरी शापग्रस्त होकर उजड़ी और पुनः बसी थी॥ ६८॥ भद्रश्रेण्यका एक पुत्र दुर्दम नामसे विख्यात था। दिवोदासने उसे बालक समझकर दयावश जीवित छोड़ दिया था॥ ६९॥ उस राजाने हैहयका पुत्र होना स्वीकार किया और उन्हींकी सहायतासे उसने दिवोदासद्वारा बलपूर्वक अपहृत हुई अपनी पैतृक सम्पत्तिको फिर वापस लौटाया॥ ७०॥

भद्रश्रेण्यस्य पुत्रेण दुर्दमेन महात्मना।
वैरस्यान्तं महाराज क्षत्रियेण विधित्सता॥ ७१

दिवोदासाद् दृषद्वत्यां वीरो जज्ञे प्रतर्दनः।
तेन पुत्रेण बालेन प्रहृतं तस्य वै पुनः॥ ७२

प्रतर्दनस्य पुत्रौ द्वौ वत्सभार्गौ बभूवतुः।
वत्सपुत्रो ह्यलर्कस्तु संनतिस्तस्य चात्मजः॥ ७३

अलर्कः काशिराजस्तु ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः।
अलर्कं प्रति राजर्षिं श्लोको गीतः पुरातनैः॥ ७४

षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिं वर्षशतानि च।
युवा रूपेण सम्पन्न आसीत् काशिकुलोद्वहः॥ ७५

लोपामुद्राप्रसादेन परमायुरवाप सः।
तस्यासीत् सुमहद्राज्यं रूपयौवनशालिनः॥ ७६

शापस्यान्ते महाबाहुर्हत्वा क्षेमकराक्षसम्।
रम्यां निवेशयामास पुरीं वाराणसीं पुनः॥ ७७

संनतेरपि दायादः सुनीथो नाम धार्मिकः।
सुनीथस्य तु दायादः क्षेम्यो नाम महायशाः॥ ७८

क्षेम्यस्य केतुमान् पुत्रः सुकेतुस्तस्य चात्मजः।
सुकेतोस्तनयश्चापि धर्मकेतुरिति स्मृतः॥ ७९

धर्मकेतोस्तु दायादः सत्यकेतुर्महारथः।
सत्यकेतुसुतश्चापि विभुर्नाम प्रजेश्वरः॥ ८०

आनर्तस्तु विभोः पुत्रः सुकुमारस्तु तत्सुतः।
सुकुमारस्य पुत्रस्तु धृष्टकेतुः सुधार्मिकः।
धृष्टकेतोस्तु दायादो वेणुहोत्रः प्रजेश्वरः॥ ८१

वेणुहोत्रसुतश्चापि भर्गो नाम प्रजेश्वरः।
वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भृगुभूमिस्तु भार्गवात्॥ ८२

एते त्वङ्गिरसः पुत्रा जाता वंशेऽथ भार्गवे।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्तयोः पुत्राः सहस्रशः।
इत्येते काशयः प्रोक्ता नहुषस्य निबोध मे॥ ८३

महाराज! भद्रश्रेण्यका महामनस्वी पुत्र दुर्दम एक वीर क्षत्रिय था। उसने वैरका बदला लेनेके लिये ही वैसा किया था॥ ७१॥ दिवोदासके द्वारा उनकी पत्नी दृषद्वतीके गर्भसे वीर प्रतर्दनका जन्म हुआ। उस राजकुमारने बालक होनेपर भी दुर्दमसे पुनः राज्य छीन लिया॥ ७२॥ प्रतर्दनके दो पुत्र थे—वत्स और भार्ग। वत्सके पुत्र अलर्क और अलर्कके संनति हुए॥ ७३॥ काशिराज अलर्क बड़े ब्राह्मणभक्त और सत्यप्रतिज्ञ थे। राजर्षि अलर्कके विषयमें प्राचीन पुरुषोंने निम्नाङ्कित श्लोकका गान किया है॥ ७४॥ 'काशिवंशावतंस अलर्क छाछठ हजार वर्षोंतक युवावस्था तथा सुन्दर रूप-वैभवसे सम्पन्न रहे'॥ ७५॥ उन्होंने लोपामुद्राकी कृपासे उत्तम आयु प्राप्त की थी। रूप और युवावस्थासे सुशोभित होनेवाले अलर्कका राज्य बहुत विशाल था॥ ७६॥ महाबाहु अलर्कने निकुम्भके शापका अन्त होनेपर क्षेमक नामक राक्षसको मारकर पुनः रमणीय वाराणसीपुरी बसायी थी॥ ७७॥ संनतिके पुत्र धर्मात्मा सुनीथ हुए और सुनीथका महायशस्वी पुत्र क्षेम्य नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ ७८॥ क्षेम्यके पुत्र केतुमान्, केतुमान्के पुत्र सुकेतु और सुकेतुके भी पुत्र धर्मकेतु हुए॥ ७९॥ धर्मकेतुके पुत्र महारथी सत्यकेतु हुए और सत्यकेतुके पुत्र प्रजापालक विभु हुए॥ ८०॥ विभुके पुत्रका नाम आनर्त था। आनर्तका पुत्र सुकुमार हुआ। सुकुमारके पुत्र परम धर्मात्मा धृष्टकेतु हुए और धृष्टकेतुके पुत्र राजा वेणुहोत्र थे॥ ८१॥ वेणुहोत्रका पुत्र राजा भर्गके नामसे विख्यात हुआ। प्रतर्दनके जो वत्स और भार्ग नामक दो पुत्र बतलाये गये हैं, उनमेंसे वत्सके वत्सभूमि तथा भार्गके भृगुभूमि नामक पुत्र हुए॥ ८२॥ ये अङ्गिरागोत्री गालवके वंशज हैं, जो भार्गववंशमें उत्पन्न हुए। इनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—तीनों वर्णोंके लोग हैं। वत्सभूमि और भृगुभूमिके सहस्रों पुत्र कहे गये हैं। इस प्रकार ये राजा काशिके कुलमें उत्पन्न हुए क्षत्रिय बताये गये हैं। अब तुम मुझसे नहुषकी संतानोंका वर्णन सुनो॥ ८३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि एकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें उनतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २९॥

त्रिंशोऽध्यायः

नहुष एवं ययातिके वंशका वर्णन तथा ययातिका चरित्र

वैशम्पायन उवाच

उत्पन्नाः पितृकन्यायां विरजायां महौजसः।
नहुषस्य तु दायादाः षडिन्द्रोपमतेजसः॥ १

यतिर्ययातिः संयातिरायातिः पाञ्चिको भवः।
सुयातिः षष्ठस्तेषां वै ययातिः पार्थिवोऽभवत्।
यतिर्ज्येष्ठस्तु तेषां वै ययातिस्तु ततः परम्॥ २

ककुत्स्थकन्यां गां नाम लेभे परमधार्मिकः।
यतिस्तु मोक्षमास्थाय ब्रह्मभूतोऽभवन्मुनिः॥ ३

तेषां ययातिः पञ्चानां विजित्य वसुधामिमाम्।
देवयानीमुशनसः सुतां भार्यामवाप सः।
शर्मिष्ठामासुरीं चैव तनयां वृषपर्वणः॥ ४

यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत।
द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी॥ ५

तस्मै शक्रो ददौ प्रीतो रथं परमभास्वरम्।
असङ्गं काञ्चनं दिव्यं दिव्यैः परमवाजिभिः॥ ६

युक्तं मनोजवैः शुभ्रैर्येन भार्यामुवाह सः।
स तेन रथमुख्येन षड्रात्रेणाजयन्महीम्।
ययातिर्युधि दुर्धर्षस्तथा देवान् सदानवान्॥ ७

स रथः पौरवाणां तु सर्वेषामभवत् तदा।
यावत्तु वसुनाम्नो वै कौरवाज्जनमेजय॥ ८

कुरोः पुत्रस्य राजेन्द्र राज्ञः पारीक्षितस्य ह।
जगाम स रथो नाशं शापाद् गार्ग्यस्य धीमतः॥ ९

गार्ग्यस्य हि सुतं बालं स राजा जनमेजयः।
वाक्क्रूरं हिंसयामास ब्रह्महत्यामवाप सः॥ १०

स लोहगन्धी राजर्षिः परिधावन्नितस्ततः।
पौरजानपदैस्त्यक्तो न लेभे शर्म कर्हिचित्॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! नहुषके उनकी पत्नी पितृकन्या विरजाके गर्भसे छः महाबली पुत्र उत्पन्न हुए, जो इन्द्रके समान तेजस्वी थे॥ १॥ उनके नाम इस प्रकार हैं—यति, ययाति, संयाति, आयाति, पाँचवाँ भव और छठा सुयाति। इनमेंसे ययाति ही राजा हुए। इन छः भाइयोंमें सबसे बड़े थे यति और उनके बाद ययाति उत्पन्न हुए थे॥ २॥ परम धर्मात्मा यतिने ककुत्स्थकी कन्या गौको पत्नीरूपमें प्राप्त किया था। वे मोक्षधर्मका आश्रय ले ब्रह्मस्वरूप मुनि हो गये॥ ३॥ शेष पाँच भाइयोंमें ययातिने इस पृथ्वीको जीतकर शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानी तथा असुरराज वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठाको भी पत्नीके रूपमें प्राप्त किया॥ ४॥ देवयानीने यदु और तुर्वसुको जन्म दिया तथा वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने द्रुह्यु, अनु तथा पूरु—ये तीन पुत्र उत्पन्न किये॥ ५॥ ययातिपर प्रसन्न होकर इन्द्रने उन्हें एक अत्यन्त प्रकाशमान रथ प्रदान किया, जिसमें मनके समान वेगशाली, दिव्य, उत्तम एवं श्वेतवर्णके अश्व जुते हुए थे। वह दिव्य रथ सोनेका बना हुआ था। उसकी गति कहीं भी अवरुद्ध नहीं होती थी। उसी रथके द्वारा वे अपनी भार्याको ब्याहकर लाये थे। उस श्रेष्ठ रथके द्वारा दुर्धर्ष राजा ययातिने छः रातोंमें ही सम्पूर्ण पृथ्वी तथा देवताओं और दानवोंको भी जीत लिया था॥ ६-७॥ जनमेजय! कुरुवंशी राजा वसुतक सभी पौरव नरेशोंके पास वह रथ परम्परया प्राप्त होकर विद्यमान था॥ ८॥ राजेन्द्र! कुरुवंशी परीक्षित्-कुमार इन्द्रोत जनमेजयको बुद्धिमान् गार्ग्यका शाप प्राप्त होनेके कारण वह रथ उनके यहाँसे अदृश्य हो गया॥ ९॥ बात यह थी कि गार्ग्यके एक बालक पुत्र था, जो बड़ा ही वाचाल था। उसे इन्द्रोत नामवाले राजा जनमेजयने मार डाला। इससे उन्हें ब्रह्महत्या प्राप्त हुई॥ १०॥ पुरवासियों तथा जनपदके लोगोंने उन्हें त्याग दिया। उनके शरीरसे लोहेकी-सी गन्ध आती थी। (अथवा वे पतितके समान जान पड़ते थे।) राजर्षि इन्द्रोत इधर-उधर भागते-फिरते थे, किंतु कहीं भी उन्हें शान्ति नहीं मिलती थी॥ ११॥

ततः स दुःखसंतप्तो नालभत् संविदं क्वचित्।
इन्द्रोतः शौनकं राजा शरणं प्रत्यपद्यत॥ १२

याजयामास चेन्द्रोतं शौनको जनमेजयम्।
अश्वमेधेन राजानं पावनार्थं द्विजोत्तमः॥ १३

स लोहगन्धो व्यनशत् तस्यावभृथमेत्य ह।
स च दिव्यो रथो राजन् वसोश्चेदिपतेस्तदा।
दत्तः शक्रेण तुष्टेन लेभे तस्माद् बृहद्रथः॥ १४

बृहद्रथात् क्रमेणैव गतो बार्हद्रथं नृपम्।
ततो हत्वा जरासंधं भीमस्तं रथमुत्तमम्॥ १५

प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनन्दनः।
सप्तद्वीपां ययातिस्तु जित्वा पृथ्वीं ससागराम्॥ १६

व्यभजत् पञ्चधा राजन् पुत्राणां नाहुषस्तदा।
दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वसुं मतिमान् नृपः॥ १७

प्रतीच्यामुत्तरस्यां च द्रुह्युं चानुं च नाहुषः।
दिशि पूर्वोत्तरस्यां वै यदुं ज्येष्ठं न्ययोजयत्॥ १८

मध्ये पूरुं च राजानमभ्यषिञ्चत नाहुषः।
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना॥ १९

यथाप्रदेशमद्यापि धर्मेण प्रतिपाल्यते।
प्रजास्तेषां पुरस्तात् तु वक्ष्यामि नृपसत्तम॥ २०

धनुर्न्यस्य पृषत्कांश्च पञ्चभिः पुरुषर्षभैः।
जरावानभवद् राजा भारमावेश्य बन्धुषु॥ २१

निःक्षिप्तशस्त्रः पृथिवीं निरीक्ष्य पृथिवीपतिः।
प्रीतिमानभवद् राजा ययातिरपराजितः।
एवं विभज्य पृथिवीं ययातिर्यदुमब्रवीत्॥ २२

जरां मे प्रतिगृह्णीष्व पुत्र कृत्यान्तरेण वै।
तरुणस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम्।
जरां त्वयि समाधाय तं यदुः प्रत्युवाच ह॥ २३

जब कहीं भी स्वस्थ होनेका उपाय नहीं सूझा, तब दुःखसे संतप्त हुए राजा इन्द्रोत शौनक मुनिकी शरणमें गये॥ १२॥ द्विजश्रेष्ठ शौनकने राजा इन्द्रोत जनमेजयको शुद्ध करनेके लिये उनसे अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करवाया॥ १३॥ उस यज्ञके अन्तमें अवभृथ स्नान कर लेनेपर इन्द्रोतका पाप दूर हो गया और उनके शरीरसे जो लोहेकी-सी गन्ध आती थी, वह मिट गयी। राजन्! तत्पश्चात् इन्द्रने संतुष्ट होकर वह दिव्य रथ चेदिराज उपरिचर वसुको दे दिया। फिर वसुसे वह रथ मगधराज बृहद्रथको मिला॥ १४॥ बृहद्रथसे क्रमशः वह रथ उनके पुत्र राजा जरासंधको प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् कौरव-कुलको आनन्दित करनेवाले भीमसेनने जरासंधको मारकर वह उत्तम रथ प्रसन्नतापूर्वक भगवान् श्रीकृष्णको दे दिया। राजन्! नहुषनन्दन राजा ययातिने समुद्र और सातों द्वीपोंसहित सारी पृथ्वीको जीतकर उसके पाँच भाग किये और उन्हें अपने पाँचों पुत्रोंमें बाँट दिया। उन बुद्धिमान् नरेशने दक्षिण-पूर्व दिशा तुर्वसुको, पश्चिममें द्रुह्युको और उत्तर दिशामें अनुको अभिषिक्त करके पूर्वोत्तर दिशाके (ईशानकोण) राज्यपर ज्येष्ठ पुत्र यदुको नियुक्त कर दिया॥ १५—१८॥ इसके बाद नहुषनन्दन ययातिने मध्यदेशके राज्य-सिंहासनपर पूरुका अभिषेक किया। नृपश्रेष्ठ! वे तथा उनके वंशज आज भी सातों द्वीपों और नगरोंसहित इस सारी पृथ्वीका अपने-अपने प्रदेशके अनुसार धर्मपूर्वक पालन करते हैं। अब आगे मैं उनकी संतानोंका वर्णन करूँगा॥ १९-२०॥ पाँच पुरुषप्रवर पुत्रोंसे कृतकृत्य हो राजा ययातिने राज्यका भार अपने उन बन्धु-बान्धवोंपर रखकर धनुष और बाणोंका भी त्याग कर दिया। तत्पश्चात् उन्हें जरावस्थाने काबूमें कर लिया॥ २१॥ किसीसे परास्त न होनेवाले पृथ्वीपति राजा ययाति अस्त्र-शस्त्रोंका त्याग करके पृथ्वीको सुव्यवस्थित देख बड़े प्रसन्न हुए। इस तरह भूमण्डलका विभाग करके ययातिने यदुसे कहा—॥ २२॥ 'बेटा! यह दूसरा कार्य उपस्थित हुआ है, जिसके लिये मुझे तुम्हारी युवावस्था चाहिये। तुम मेरा बुढ़ापा ग्रहण करो और मैं तुममें अपनी वृद्धावस्था स्थापित करके तुम्हारे रूपसे तरुण होकर इस पृथ्वीपर विचरण करूँ।' तब यदुने उन्हें यों उत्तर दिया—॥ २३॥

अनिर्दिष्टा मया भिक्षा ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुता।
अनपाकृत्य तां राजन् न ग्रहीष्यामि ते जराम्॥ २४

जरायां बहवो दोषाः पानभोजनकारिताः।
तस्माज्जरां न ते राजन् ग्रहीतुमहमुत्सहे॥ २५

सन्ति ते बहवः पुत्रा मत्तः प्रियतरा नृप।
प्रतिग्रहीतुं धर्मज्ञ पुत्रमन्यं वृणीष्व वै॥ २६

स एवमुक्तो यदुना राजा कोपसमन्वितः।
उवाच वदतां श्रेष्ठो ययातिर्गर्हयन् सुतम्॥ २७

क आश्रयस्तवान्योऽस्ति को वा धर्मो विधीयते।
मामनादृत्य दुर्बुद्धे तदहं तव देशिकः॥ २८

एवमुक्त्वा यदुं तात शशापैनं स मन्युमान्।
अराज्या ते प्रजा मूढ भवित्रीति नराधम॥ २९

स तुर्वसुं च द्रुह्युं चाप्यनुं च भरतर्षभ।
एवमेवाब्रवीद् राजा प्रत्याख्यातश्च तैरपि॥ ३०

शशापताનतिक्रुद्धो ययातिरपराजितः।
यथा ते कथितं पूर्वं मया राजर्षिसत्तमः॥ ३१

एवं शप्त्वा सुतान् सर्वांश्चतुरः पूरुपूर्वजान्।
तदेव वचनं राजा पूरुमप्याह भारत॥ ३२

तरुणस्तव रूपेण चरेयं पृथिवीमिमाम्।
जरां त्वयि समाधाय त्वं पूरो यदि मन्यसे॥ ३३

स जरां प्रतिजग्राह पितुः पूरुः प्रतापवान्।
ययातिरपि रूपेण पूरोः पर्यचरन्महीम्॥ ३४

स मार्गमाणः कामानामन्तं भरतसत्तम।
विश्वाच्या सहितो रेमे वने चैत्ररथे प्रभुः॥ ३५

यदावितृष्णः कामानां भोगेषु स नराधिपः।
तदा पूरोः सकाशाद् वै स्वां जरां प्रत्यपद्यत॥ ३६

'महाराज! मैंने एक ब्राह्मणको मुँहमाँगी भिक्षा देनेकी प्रतिज्ञा कर ली है, अभीतक उसने यह स्पष्टरूपसे बताया नहीं है कि 'मुझे अमुक वस्तु चाहिये।' मैं जबतक उसकी भिक्षाका ऋण उतार न दूँ, तबतक आपका बुढ़ापा नहीं ले सकूँगा॥ २४॥ राजन्! बुढ़ापेमें खान-पानसम्बन्धी बहुत-से दोष हैं, अतः मैं आपका बुढ़ापा नहीं ग्रहण करूँगा॥ २५॥ नरेश्वर! आपके तो बहुत-से पुत्र हैं, जो मुझसे भी बढ़कर प्रिय हैं; अतः धर्मज्ञ महाराज! जरावस्था ग्रहण करनेके लिये किसी दूसरे पुत्रका वरण कीजिये'॥ २६॥ यदुके ऐसा कहनेपर वक्ताओंमें श्रेष्ठ राजा ययाति कुपित हो उठे और अपने उस पुत्रकी निन्दा करते हुए बोले—॥ २७॥ 'दुर्बुद्धे! मेरा अनादर करके तेरा दूसरा कौन-सा आश्रय है? अथवा तू किस धर्मका पालन कर रहा है? मैं तो तेरा गुरु हूँ (फिर मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन कैसे कर रहा है?)'॥ २८॥ तात! अपने पुत्र यदुसे ऐसा कहकर कुपित हुए राजा ययातिने उसे शाप दे दिया—'मूढ! नराधम! तेरी संतान सदा राज्यसे वञ्चित रहेगी'॥ २९॥ भरतश्रेष्ठ! तदनन्तर राजा ययातिने क्रमशः तुर्वसु, द्रुह्यु और अनुको भी बुलाकर उनसे ऐसी ही बात कही, परंतु उन्होंने भी उनकी बात माननेसे इन्कार कर दिया॥ ३०॥ तब किसीसे भी पराजित न होनेवाले राजर्षिशिरोमणि ययातिने अत्यन्त कुपित हो उनको भी वैसा ही शाप दिया जैसा यदुके प्रसङ्गमें पहले तुम्हें बताया गया है॥ ३१॥ भारत! इस प्रकार पूरुसे पहले उत्पन्न हुए अपने चारों पुत्रोंको शाप देकर राजा ययातिने पूरुके सामने भी वही प्रस्ताव रखा॥ ३२॥ 'पूरो! यदि तुम स्वीकार करो तो मैं अपने बुढ़ापेका भार तुमपर रखकर तुम्हारे रूपसे तरुण होकर इस पृथ्वीपर विचरूँ'॥ ३३॥ यह सुनकर प्रतापी पूरुने पिताका बुढ़ापा ले लिया और ययाति भी पूरुके रूपसे तरुण हो इस पृथ्वीपर विचरने लगे॥ ३४॥ भरतश्रेष्ठ! प्रभावशाली ययाति कामनाओंका अन्त ढूँढ़ते हुए चैत्ररथ नामक वनमें गये और वहाँ विश्वाची नामक अप्सराके साथ रमण करने लगे॥ ३५॥ इतनेपर भी जब उन्हें कामोपभोगसे तृप्ति नहीं हुई, तब उन नरेशने घर आकर पूरुसे अपना बुढ़ापा ले लिया॥ ३६॥

तत्र गाथा महाराज शृणु गीता ययातिना।
याभिः प्रत्याहरेत् कामान् सर्वतोऽङ्गानि कूर्मवत्॥ ३७

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥ ३८

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत् सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति॥ ३९

यदा भावं न कुरुते सर्वभूतेषु पापकम्।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥ ४०

यदान्येभ्यो न बिभ्येत यदा चास्मान्न बिभ्यति।
यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥ ४१

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्यतः।
योऽसौ प्राणान्तिको रोगस्तां तृष्णां त्यजतः सुखम्॥ ४२

जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः।
जीविताशा धनाशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यति॥ ४३

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम्॥ ४४

एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्राविशद् वनम्।
कालेन महता वापि चचार विपुलं तपः॥ ४५

भृगुतुङ्गे तपस्तप्त्वा तपसोऽन्ते महातपाः।
अनश्नन् देहमुत्सृज्य सदारः स्वर्गमाप्तवान्॥ ४६

तस्य वंशे महाराज पञ्च राजर्षिसत्तमाः।
यैर्व्याप्ता पृथिवी सर्वा सूर्यस्येव गभस्तिभिः॥ ४७

यदोस्तु शृणु राजर्षेर्वंशं राजर्षिसत्कृतम्।
यत्र नारायणो जज्ञे हरिर्वृष्णिकुलोद्वहः॥ ४८

महाराज! वहाँ ययातिने जो गाथाएँ गायीं (उद्गार प्रकट किये), उन्हें सुनो। उनपर ध्यान देनेसे मनुष्य सब भोगोंकी ओरसे अपने मनको उसी प्रकार हटा सकता है जैसे कछुआ अपने अङ्गोंको सब ओरसे समेट लेता है॥ ३७॥ ययातिने कहा—'भोगोंकी इच्छा उन्हें भोगनेसे कभी शान्त नहीं होती; अपितु घीसे आगकी भाँति और भी बढ़ती ही जाती है॥ ३८॥ इस पृथ्वीपर जितने भी धान, जौ, सुवर्ण, पशु तथा स्त्रियाँ हैं, वे सब एक पुरुषके लिये भी पर्याप्त नहीं हैं। ऐसा समझकर विद्वान् पुरुष मोहमें नहीं पड़ता॥ ३९॥ जब जीव मन, वाणी और क्रियाद्वारा किसी भी प्राणीके प्रति पापबुद्धि नहीं करता, तब वह ब्रह्मभावको प्राप्त हो जाता है॥ ४०॥ जब वह दूसरे प्राणियोंसे नहीं डरता, जब उससे भी दूसरे प्राणी नहीं डरते तथा जब वह इच्छा-द्वेषसे परे हो जाता है, उस समय ब्रह्मभावको प्राप्त होता है॥ ४१॥ खोटी बुद्धिवाले पुरुषोंद्वारा जिसका त्याग होना कठिन है, जो मनुष्यके बूढ़े होनेपर भी स्वयं बूढ़ी नहीं होती तथा जो प्राण-नाशक रोगके समान है, उस तृष्णाका त्याग करनेवालेको ही सुख मिलता है॥ ४२॥ बूढ़े होनेवाले मनुष्यके बाल पक जाते हैं, उसके दाँत भी टूटने लगते हैं, परंतु धन और जीवनकी आशा उस मनुष्यके जीर्ण होनेपर भी जीर्ण (शिथिल) नहीं होती॥ ४३॥ संसारमें जो कामजनित सुख है तथा जो दिव्य महान् सुख हैं, वे सब मिलकर तृष्णा-क्षयसे होनेवाले सुखके सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकते'॥ ४४॥ ऐसा कहकर राजर्षि ययाति स्त्री-सहित वनमें चले गये। वहाँ बहुत समयतक उन्होंने भारी तपस्या की॥ ४५॥ उन महातपस्वी नरेशने भृगुतुङ्ग नामक शिखरपर तपस्या करके स्त्रीसहित उपवासके द्वारा देहको त्याग दिया और स्वर्गलोक प्राप्त किया॥ ४६॥ महाराज! उनके वंशमें यदु आदि पाँच राजर्षिशिरोमणि हुए, जिनके वंशजोंसे यह सारी पृथ्वी उसी प्रकार व्याप्त है, जैसे सूर्यकी किरणोंसे वह व्याप्त होती है॥ ४७॥ राजर्षि यदुका वंश समस्त राजर्षियोंद्वारा सम्मानित है। तुम उसका वर्णन सुनो। उसी वंशमें वृष्णिकुलभूषण श्रीकृष्णके रूपमें श्रीनारायण हरिका अवतार (प्रादुर्भाव) हुआ था॥ ४८॥

धन्यः प्रजावानायुष्मान् कीर्तिमांश्च भवेन्नरः।
ययातेश्चरितं पुण्यं पठञ्छृण्वन् नराधिप॥ ४९

नरेश्वर! जो मनुष्य ययातिके इस पुण्यमय चरित्रको पढ़ता और सुनता है, वह धनसम्पन्न, संतानवान्, दीर्घायु तथा यशस्वी होता है॥ ४९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि ययातिचरिते त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें ययातिका चरित्रविषयक तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३०॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

पूरुकी वंशपरम्पराका वर्णन

जनमेजय उवाच

पूरोर्वंशमहं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।
द्रुह्योश्चानोर्यदोश्चैव तुर्वसोश्च पृथक् पृथक्॥ १
वृष्णिवंशप्रसङ्गेन स्वं वंशं पूर्वमेव तु।
विस्तरेणानुपूर्व्या च तद् भवान् वक्तुमर्हति॥ २

वैशम्पायन उवाच

शृणु पूरोर्महाराज वंशमुत्तमपौरुषम्।
विस्तरेणानुपूर्व्या च यत्र जातोऽसि पार्थिव॥ ३
हन्त ते कीर्तयिष्यामि पूरोर्वंशमनुत्तमम्।
द्रुह्योश्चानोर्यदोश्चैव तुर्वसोश्च नराधिप॥ ४
पूरोः पुत्रो महावीर्यो राजाऽऽसीज्जनमेजयः।
प्रचिन्वांस्तु सुतस्तस्य यः प्राचीमजयद् दिशम्॥ ५
प्रचिन्वतः प्रवीरोऽभून्मनस्युस्तस्य चात्मजः।
राजा चाभयदो नाम मनस्योरभवत् सुतः॥ ६
तथैवाभयदस्यासीत् सुधन्वा तु महीपतिः।
सुधन्वनो बहुगवः शम्यातिस्तस्य चात्मजः॥ ७
शम्यातेस्तु रहस्याती रौद्राश्वस्तस्य चात्मजः।
रौद्राश्वस्य घृताच्यां वै दशाप्सरसि सूनवः॥ ८
ऋचेयुः प्रथमस्तेषां कृकणेयुस्तथैव च।
कक्षेयुः स्थण्डिलेयुश्च सन्नतेयुस्तथैव च॥ ९
दशार्णेयुर्जलेयुश्च स्थलेयुश्च महायशाः।
धनेयुश्च वनेयुश्च पुत्रिकाश्च दश स्त्रियः॥ १०

जनमेजयने कहा—ब्रह्मन्! मैं पूरु, द्रुह्यु, अनु, यदु और तुर्वसुके वंशका पृथक्-पृथक् यथार्थ वर्णन सुनना चाहता हूँ॥ १॥ वृष्णिवंशके प्रसंगसे इन सबका वर्णन मुझे सुनना है; परंतु सबसे पहले मैं अपने ही वंश (पूरुकुल)-का क्रमशः विस्तारपूर्वक वर्णन सुनना चाहता हूँ। अतः आप पहले उसीका वर्णन करें॥ २॥

वैशम्पायनजी बोले—महाराज! उत्तम पराक्रमसे सम्पन्न पूरुवंशका, जिसमें तुम्हारा जन्म हुआ है, मैं क्रमानुसार विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ। पृथ्वीनाथ! तुम इसे सुनो॥ ३॥ नरेश्वर! मैं बड़े हर्षके साथ तुमसे परम उत्तम पूरुवंशका वर्णन करूँगा। फिर द्रुह्यु, अनु, यदु तथा तुर्वसुके वंशका कीर्तन किया जायगा॥ ४॥ पूरुके महापराक्रमी पुत्र राजा जनमेजय हुए। उनके पुत्रका नाम प्रचिन्वान् था, जिन्होंने पूर्वदिशाको जीता था॥ ५॥ प्रचिन्वान्के पुत्र प्रवीर और प्रवीरके मनस्यु हुए, मनस्युके पुत्र राजा अभयद थे॥ ६॥ अभयदके पुत्रका नाम सुधन्वा था, जो इस पृथ्वीका अधिपति हुआ। सुधन्वाके बहुगव और बहुगवके पुत्र शम्याति हुए॥ ७॥ शम्यातिके रहस्याति और रहस्यातिके पुत्र रौद्राश्व हुए। रौद्राश्वके घृताची अप्सराके गर्भसे दस पुत्र हुए॥ ८॥ उनके नाम इस प्रकार हैं—ऋचेयु अपने सभी भाइयोंमें ज्येष्ठ थे। उनके बाद कृकणेयु, कक्षेयु, स्थण्डिलेयु, सन्नतेयु, दशार्णेयु, जलेयु, महायशस्वी स्थलेयु, धनेयु और वनेयु थे। इनके सिवा रौद्राश्वके दस कन्याएँ भी थीं, जो पुत्रिका-धर्मके अनुसार ब्याही जानेवाली थीं॥ ९-१०॥

रुद्रा शूद्रा च भद्रा च मलदा मलहा तथा।
खलदा चैव राजेन्द्र नलदा सुरसापि च।
तथा गोचपला तु स्त्रीरत्नकूटा च ता दश॥ ११
ऋषिर्जातोऽत्रिवंशे तु तासां भर्ता प्रभाकरः।
रुद्रायां जनयामास सुतं सोमं यशस्विनम्॥ १२
स्वर्भानुना हते सूर्ये पतमाने दिवो महीम्।
तमोऽभिभूते लोके च प्रभा येन प्रवर्तिता॥ १३
स्वस्ति तेऽस्त्विति चोक्तो वै पतमानो दिवाकरः।
वचनात् तस्य विप्रर्षेर्न पपात दिवो महीम्॥ १४
अत्रिश्रेष्ठानि गोत्राणि यश्चकार महातपाः।
यज्ञेष्वत्रेर्धनं चैव सुरैर्यस्य प्रवर्तितम्॥ १५
स तासु जनयामास पुत्रिकासु सनामकान्।
दश पुत्रान् महात्मा स तपस्युग्रे रतान् सदा॥ १६
ते तु गोत्रकरा राजन्नृषयो वेदपारगाः।
स्वस्त्यात्रेया इति ख्याताः किं त्वत्रिधनवर्जिताः॥ १७
कक्षेयोस्तनयाश्चासंस्त्रय एव महारथाः।
सभानरश्चाक्षुषश्च परमन्युस्तथैव च॥ १८
सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान् कालानलो नृपः।
कालानलस्य धर्मज्ञः सृञ्जयो नाम वै सुतः॥ १९
सृञ्जयस्याभवत् पुत्रो वीरो राजा पुरञ्जयः।
जनमेजयो महाराज पुरञ्जयसुतोऽभवत्॥ २०
जनमेजयस्य राजर्षेर्महाशालोऽभवत् सुतः।
देवेषु स परिज्ञातः प्रतिष्ठितयशा भुवि॥ २१
महामना नाम सुतो महाशालस्य धार्मिकः।
जज्ञे वीरः सुरगणैः पूजितः सुमहायशाः॥ २२
महामनास्तु पुत्रौ द्वौ जनयामास भारत।
उशीनरं च धर्मज्ञं तितिक्षुं च महाबलम्॥ २३
उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राजर्षिवंशजाः।
नृगा कृमी नवा दर्वा पञ्चमी च दृषद्वती॥ २४
उशीनरस्य पुत्रास्तु पञ्च तासु कुलोद्वहाः।
तपसा वै सुमहता जाता वृद्धस्य भारत॥ २५

राजेन्द्र! उन कन्याओंके नाम इस प्रकार हैं—रुद्रा, शूद्रा, भद्रा, मलदा, मलहा, खलदा, नलदा, सुरसा, गोचपला तथा स्त्रीरत्नकूटा—वे कुल मिलाकर दस थीं॥ ११॥ अत्रिकुलमें उत्पन्न महर्षि प्रभाकर उन सबके पति हुए। उन्होंने रुद्राके गर्भसे यशस्वी सोमको पुत्ररूपमें उत्पन्न किया॥ १२॥ राहुसे आहत होकर जब सूर्य आकाशसे पृथ्वीपर गिरने लगे और समस्त संसारमें अन्धकार छा गया, उस समय प्रभाकरने ही अपनी प्रभा फैलायी॥ १३॥ महर्षिने गिरते हुए सूर्यको 'तुम्हारा कल्याण हो' यह कहकर आशीर्वाद दिया। उन ब्रह्मर्षिके इस वचनसे सूर्यदेव पृथ्वीपर नहीं गिरे॥ १४॥ महातपस्वी प्रभाकरने सब गोत्रोंमें अत्रिगोत्रकी ही श्रेष्ठता स्थापित की। अत्रिके यज्ञोंमें उन्हींके प्रभावसे देवताओंने धन प्रस्तुत किया था॥ १५॥ महात्मा प्रभाकरने रौद्राश्वकी पुत्रिका-धर्मके अनुसार प्राप्त हुई कन्याओंके गर्भसे एक-से ही नामवाले दस पुत्रोंको जन्म दिया, जो सदा उग्र तपस्यामें तत्पर रहनेवाले थे॥ १६॥ राजन्! वे सब-के-सब वेदोंके पारङ्गत विद्वान् तथा गोत्र-प्रवर्तक ऋषि हुए। स्वस्त्यात्रेय नामसे उनकी ख्याति हुई, परंतु वे अत्रिगोत्री पिताके धनसे वञ्चित रहे (क्योंकि पुत्रिका-धर्मके अनुसार वे अपने नानाके पुत्र थे)॥ १७॥ कक्षेयुके सभानर, चाक्षुष और परमन्यु—ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। तीनों ही महारथी थे॥ १८॥ सभानरका पुत्र विद्वान् राजा कालानल हुआ। कालानलका धर्मज्ञ पुत्र सृञ्जय नामसे विख्यात हुआ॥ १९॥ सृञ्जयके पुत्र वीर राजा पुरञ्जय हुए। महाराज! पुरञ्जयका पुत्र जनमेजय हुआ॥ २०॥ राजर्षि जनमेजयके पुत्र महाशाल हुए, जो देवताओंमें भी विख्यात थे और इस पृथ्वीपर भी उनका यश फैला हुआ था॥ २१॥ महाशालके धार्मिक पुत्रका नाम महामना था। वे एक वीर पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए थे। महायशस्वी महामनाका देवता भी सम्मान करते थे॥ २२॥ भरतनन्दन! महामनाने दो पुत्रोंको जन्म दिया—धर्मज्ञ उशीनर और महाबली तितिक्षु॥ २३॥ उशीनरकी पाँच पत्नियाँ थीं, जो राजर्षियोंके कुलमें उत्पन्न हुई थीं। उनके नाम इस प्रकार हैं—नृगा, कृमी, नवा, दर्वा और पाँचवीं दृषद्वती॥ २४॥ उनके गर्भसे उशीनरके पाँच पुत्र हुए, जो अपने वंशकी मर्यादाको ऊँचे उठानेवाले थे। भारत! वे अपने वृद्ध पिताके महान् तपसे उत्पन्न हुए थे॥ २५॥

नृगायास्तु नृगः पुत्रः कृम्यां कृमिरजायत।
नवायास्तु नवः पुत्रो दर्वायाः सुव्रतोऽभवत्॥ २६

दृषद्वत्यास्तु संजज्ञे शिबिरौशीनरो नृपः।
शिबेस्तु शिबयस्तात यौधेयास्तु नृगस्य ह॥ २७

नवस्य नवराष्ट्रं तु कृमेस्तु कृमिला पुरी।
सुव्रतस्य तथाम्बष्ठा शिबिपुत्रान्निबोध मे॥ २८

शिबेश्च पुत्राश्चत्वारो वीरास्त्रैलोक्यविश्रुताः।
वृषदर्भः सुवीरश्च मद्रकः कैकयस्तथा॥ २९

तेषां जनपदाः स्फीताः केकया मद्रकास्तथा।
वृषदर्भाः सुवीराश्च तितिक्षोस्तु प्रजाः शृणु॥ ३०

तैतिक्षवोऽभवद् राजा पूर्वस्यां दिशि भारत।
उषद्रथो महाबाहुस्तस्य फेनः सुतोऽभवत्॥ ३१

फेनात् तु सुतपा जज्ञे सुतः सुतपसो बलिः।
जातो मानुषयोनौ तु स राजा काञ्चनेषुधिः॥ ३२

महायोगी स तु बलिर्बभूव नृपतिः पुरा।
पुत्रानुत्पादयामास पञ्च वंशकरान् भुवि॥ ३३

अङ्गः प्रथमतो जज्ञे वङ्गः सुह्मस्तथैव च।
पुण्ड्रः कलिङ्गश्च तथा बालेयं क्षत्रमुच्यते॥ ३४

बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकरा भुवि।
बलेस्तु ब्रह्मणा दत्ता वराः प्रीतेन भारत॥ ३५

महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणतः।
संग्रामे वाप्यजेयत्वं धर्मे चैव प्रधानता॥ ३६

त्रैलोक्यदर्शनं चैव प्राधान्यं प्रसवे तथा।
बले चाप्रतिमत्वं वै धर्मतत्त्वार्थदर्शनम्॥ ३७

चतुरो नियतान् वर्णांस्त्वं च स्थापयिता भुवि।
इत्युक्तो विभुना राजा बलिः शान्तिं परां ययौ॥ ३८

तस्य ते तनयाः सर्वे क्षेत्रजा मुनिपुङ्गवात्।
सम्भूता दीर्घतपसः सुदेष्णायां महौजसः॥ ३९

नृगाके पुत्र नृग थे, कृमीके गर्भसे कृमिका जन्म हुआ था, नवाके पुत्र नव तथा दर्वाके सुव्रत हुए॥ २६॥ तात! दृषद्वतीके गर्भसे उशीनरकुमार राजा शिबिका जन्म हुआ। शिबिको शिबिदेशका राज्य मिला और नृगको यौधेय प्रदेशका॥ २७॥ नवको नवराष्ट्र तथा कृमिको कृमिलापुरीका राज्य प्राप्त हुआ। सुव्रतके अधिकारमें अम्बष्ठ देश आया। अब शिबिके पुत्रोंका वर्णन सुनो॥ २८॥ शिबिके चार वीर पुत्र हुए—वृषदर्भ, सुवीर, मद्रक तथा कैकय। ये चारों राजकुमार तीनों लोकोंमें विख्यात थे॥ २९॥ इनके समृद्धिशाली जनपद भी इन्हींके नामसे प्रसिद्ध होकर वृषदर्भ, सुवीर, मद्रक तथा केकय कहलाये। अब तितिक्षुकी संततिका वर्णन सुनो॥ ३०॥ भारत! तितिक्षुके पुत्र महाबाहु राजा उषद्रथ हुए, जो पूर्व दिशाके अधिपति थे। इनके पुत्रका नाम फेन था॥ ३१॥ फेनसे सुतपाका जन्म हुआ। सुतपाके पुत्र बलि थे। दानवराज बलि ही मनुष्ययोनिमें जन्म लेकर राजा बलिके नामसे विख्यात हुए। वे सोनेका तरकस रखते थे॥ ३२॥ पूर्वकालमें राजा बलि महान् योगी थे। उन्होंने इस भूतलपर वंशकी वृद्धि करनेवाले पाँच पुत्र उत्पन्न किये॥ ३३॥ उनमें सबसे पहले अङ्गकी उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् क्रमशः वङ्ग, सुह्म, पुण्ड्र तथा कलिङ्ग उत्पन्न हुए। ये सब लोग बालेय क्षत्रिय कहलाते हैं॥ ३४॥ बलिके कुलमें बालेय ब्राह्मण भी हुए, जो इस भूतलपर उनके वंशकी वृद्धि करनेवाले थे। भरतनन्दन! ब्रह्माजीने बलिपर प्रसन्न होकर उन्हें निम्नाङ्कित वर दिये थे—'तुम महायोगी होओगे, तुम्हारी आयु एक कल्पकी होगी, तुम युद्धमें अजेय होओगे, धर्ममें तुम्हारी प्रधानता होगी, तुम तीनों लोकोंकी देखभाल करोगे (अथवा तुम तीनों लोकोंकी सभी बातें प्रत्यक्षकी भाँति देखोगे)। तुम्हारी संतति श्रेष्ठ समझी जायगी, बलमें तुम्हारी समानता करनेवाला कोई न होगा, तुम धर्मतत्त्वके ज्ञाता होओगे तथा भूतलपर चारों वर्णोंको नियन्त्रणमें रखकर उन्हें मर्यादाके भीतर स्थापित करोगे।' भगवान् ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर राजा बलिको बड़ी शान्ति मिली॥ ३५—३८॥ उनके वे सभी पुत्र क्षेत्रज थे। मुनिवर दीर्घतपाद्वारा रानी सुदेष्णाके गर्भसे प्रकट हुए थे। उनका बल महान् था॥ ३९॥

बलिस्तानभिषिच्येह पञ्च पुत्रानकल्मषान्।
कृतार्थः सोऽपि योगात्मा योगमाश्रित्य स प्रभुः॥ ४०
अधृष्यः सर्वभूतानां कालापेक्षी चरन्नपि।
कालेन महता राजन् स्वं च स्थानमुपागमत्॥ ४१
तेषां जनपदाः पञ्च अङ्गा वङ्गाः ससुह्मकाः।
कलिङ्गाः पुण्ड्रकाश्चैव प्रजास्त्वङ्गस्य मे शृणु॥ ४२
अङ्गपुत्रो महानासीद् राजेन्द्रो दधिवाहनः।
दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिविरथोऽभवत्॥ ४३
पुत्रो दिविरथस्यासीच्छक्रतुल्यपराक्रमः।
विद्वान् धर्मरथो नाम तस्य चित्ररथः सुतः॥ ४४
तेन चित्ररथेनाथ तदा विष्णुपदे गिरौ।
यजता सह शक्रेण सोमः पीतो महात्मना॥ ४५
अथ चित्ररथस्यापि पुत्रो दशरथोऽभवत्।
लोमपाद इति ख्यातो यस्य शान्ता सुताभवत्॥ ४६
तस्य दाशरथिर्वीरश्चतुरङ्गो महायशाः।
ऋष्यशृङ्गप्रसादेन जज्ञे कुलविवर्धनः॥ ४७
चतुरङ्गस्य पुत्रस्तु पृथुलाक्ष इति स्मृतः।
पृथुलाक्षसुतो राजा चम्पो नाम महायशाः॥ ४८
चम्पस्य तु पुरी चम्पा या मालिन्यभवत् पुरा।
पूर्णभद्रप्रसादेन हर्यङ्गोऽस्य सुतोऽभवत्॥ ४९
ततो वैभाण्डकिस्तस्य वारणं शक्रवारणम्।
अवतारयामास महीं मन्त्रैर्वाहनमुत्तमम्॥ ५०
हर्यङ्गस्य तु दायादो राजा भद्ररथः स्मृतः।
पुत्रो भद्ररथस्यासीद् बृहत्कर्मा प्रजेश्वरः॥ ५१
बृहद्दर्भः सुतस्तस्य तस्माज्जज्ञे बृहन्मनाः।
बृहन्मनास्तु राजेन्द्र जनयामास वै सुतम्॥ ५२
नाम्ना जयद्रथं नाम यस्माद् दृढरथो नृपः।
आसीद् दृढरथस्यापि विश्वजिज्जनमेजय॥ ५३
दायादस्तस्य कर्णस्तु विकर्णस्तस्य चात्मजः।
तस्य पुत्रशतं त्वासीदङ्गानां कुलवर्धनम्॥ ५४
बृहद्दर्भसुतो यस्तु राजा नाम्ना बृहन्मनाः।
तस्य पत्नीद्वयं चासीच्चैद्यस्यैते सुते शुभे।
यशोदेवी च सत्या च ताभ्यां वंशस्तु भिद्यते॥ ५५

राजा बलिने उन पाँचों निष्पाप पुत्रोंको विभिन्न राज्योंपर अभिषिक्त करके अपनेको कृतार्थ माना। उनका मन सदा योगमें लगा रहता था। वे योगका आश्रय ले समस्त प्राणियोंके लिये अजेय हो गये थे। कालकी प्रतीक्षा करते हुए सर्वत्र विचरते थे। राजन्! दीर्घकालके पश्चात् उन्हें अपना स्थान (सुतललोक) उपलब्ध हुआ॥ ४०-४१॥ उनके पाँच पुत्रोंके अधिकारमें जो जनपद थे, उनके नाम इस प्रकार हैं—अङ्ग, वङ्ग, सुह्म, कलिङ्ग और पुण्ड्रक। अब तुम मुझसे अङ्गकी संतानोंका वर्णन सुनो॥ ४२॥ अङ्गके पुत्र महान् राजाधिराज दधिवाहन थे और दधिवाहनके पुत्र राजा दिविरथ हुए॥ ४३॥ दिविरथके पुत्र इन्द्रतुल्य पराक्रमी और विद्वान् थे। उनका नाम धर्मरथ था। धर्मरथके पुत्र चित्ररथ हुए॥ ४४॥ राजा चित्ररथ जब विष्णुपद पर्वतपर यज्ञ करते थे, उस समय उन महामना नरेशने इन्द्रके साथ बैठकर सोमपान किया था॥ ४५॥ चित्ररथके पुत्र दशरथ हुए, जिनका दूसरा नाम लोमपाद था तथा शान्ता जिनकी पुत्री थी॥ ४६॥ उन लोमपाद या दशरथके पुत्र महायशस्वी वीर चतुरङ्ग हुए, जो ऋष्यशृङ्ग मुनिकी कृपासे उत्पन्न हुए थे। चतुरङ्ग अपने कुलकी वृद्धि करनेवाले थे॥ ४७॥ चतुरङ्गके पुत्र पृथुलाक्ष कहे गये हैं। पृथुलाक्षके पुत्र महायशस्वी राजा चम्प हुए॥ ४८॥ चम्पकी राजधानी चम्पा थी, जो पहले मालिनीके नामसे प्रसिद्ध थी। चम्पके पुत्र हर्यङ्ग हुए, जो पूर्णभद्र नामक मुनिकी कृपासे उत्पन्न हुए थे॥ ४९॥ विभाण्डकपुत्र ऋष्यशृङ्गने हर्यङ्गकी सवारीके लिये इन्द्रके उत्तम वाहन गजराज ऐरावतको मन्त्रोंद्वारा स्वर्गसे भूतलपर उतारा था॥ ५०॥ हर्यङ्गके पुत्र राजा भद्ररथ कहे गये हैं। भद्ररथके पुत्र राजा बृहत्कर्मा थे॥ ५१॥ बृहत्कर्माके पुत्र बृहद्दर्भ थे, उनसे बृहन्मनाका जन्म हुआ। राजेन्द्र! बृहन्मनाने जयद्रथ नामक पुत्रको जन्म दिया, जिससे राजा दृढरथकी उत्पत्ति हुई। जनमेजय! दृढरथके पुत्र विश्वजित् हुए॥ ५२-५३॥ विश्वजित्के पुत्र कर्ण तथा कर्णके पुत्र विकर्ण हुए। विकर्णके सौ पुत्र थे, जो अङ्गवंशकी वृद्धि करनेवाले थे॥ ५४॥ बृहद्दर्भका जो बृहन्मना नामसे प्रसिद्ध पुत्र था, उसकी दो पत्नियाँ थीं। ये दोनों ही चेदिराजकी सुन्दरी कन्याएँ थीं। एकका नाम यशोदेवी था और दूसरीका सत्या। उन दोनोंके द्वारा उस वंशमें भेद हो गया अर्थात् दोनोंकी पृथक्-पृथक् वंश-परम्परा चली॥ ५५॥

जयद्रथस्तु राजेन्द्र यशोदेव्यां व्यजायत।
ब्रह्मक्षत्रोत्तरः सत्यां विजयो नाम विश्रुतः ॥ ५६

विजयस्य धृतिः पुत्रस्तस्य पुत्रो धृतव्रतः।
धृतव्रतस्य पुत्रस्तु सत्यकर्मा महायशाः ॥ ५७

सत्यकर्मसुतश्चापि सूतस्त्वधिरथस्तु वै।
यः कर्णं प्रतिजग्राह ततः कर्णस्तु सूतजः ॥ ५८

एतत् ते कथितं सर्वं कर्णं प्रति महाबलम्।
कर्णस्य वृषसेनस्तु वृषस्तस्यात्मजः स्मृतः ॥ ५९

एतेऽङ्गवंशजाः सर्वे राजानः कीर्तिता मया।
सत्यव्रता महात्मानः प्रजावन्तो महारथाः ॥ ६०

ऋचेयोस्तु महाराज रौद्राश्वतनयस्य ह।
शृणु वंशमनुप्रोक्तं यत्र जातोऽसि पार्थिव ॥ ६१

राजेन्द्र! बृहन्मनाका जो जयद्रथ नामक पुत्र था, वह यशोदेवीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था तथा उनका दूसरा पुत्र, जो विजय नामसे विख्यात था, सत्याके पेटसे पैदा हुआ था। वह शान्ति आदि गुणोंमें ब्राह्मणोंसे और शौर्य आदि गुणोंमें क्षत्रियोंसे भी उत्कृष्ट था॥ ५६॥ विजयका पुत्र धृति और धृतिका पुत्र धृतव्रत था। धृतव्रतके पुत्र महायशस्वी सत्यकर्मा हुए॥ ५७॥ सत्यकर्माका पुत्र अधिरथ नामक सूत हुआ, जिसने कर्णको गोद लिया था। इसीलिये कर्णको सूतपुत्र कहा जाता है॥ ५८॥ राजन्! यह सब मैंने तुम्हें महाबली कर्णके विषयमें बताया है। कर्णका पुत्र वृषसेन हुआ और वृषसेनका पुत्र वृष कहा गया है॥ ५९॥ ये सब अङ्गवंशी राजा मेरे द्वारा बताये गये हैं, जो सत्यव्रती, महात्मा, पुत्रवान् तथा महारथी थे॥ ६०॥ महाराज! पृथ्वीनाथ! अब मैं रौद्राश्वकुमार ऋचेयुके वंशका वर्णन करूँगा, जिसमें तुम्हारा जन्म हुआ है। तुम इसे सुनो॥ ६१॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि कुक्षेयुवंशानुकीर्तनं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें कुक्षेयुवंशका वर्णनविषयक इकतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३१॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

पूरुके वंशके अन्तर्गत ऋचेयुकी वंशपरम्परा—अजमीढवंश, पाञ्चाल एवं सोमकवंश, कौरववंश तथा तुर्वसु, द्रुह्यु और अनुकी संततिका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

अनाधृष्यस्तु राजर्षिर्ऋचेयुश्चैकराट् स्मृतः।
ऋचेयोर्ज्वलना नाम भार्या वै तक्षकात्मजा॥ १

तस्यां स देव्यां राजर्षिर्मतिनारो महीपतिः।
मतिनारसुताश्चासंस्त्रयः परमधार्मिकाः॥ २

तंसुराद्यः प्रतिरथः सुबाहुश्चैव धार्मिकः।
गौरी कन्या च विख्याता मान्धातृजननी शुभा॥ ३

सर्वे वेदविदस्तत्र ब्रह्मण्याः सत्यवादिनः।
सर्वे कृतास्त्रा बलिनः सर्वे युद्धविशारदाः॥ ४

पुत्रः प्रतिरथस्यासीत् कण्वः समभवन्नृपः।
मेधातिथिः सुतस्तस्य यस्मात्काण्वायना द्विजाः॥ ५

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! राजर्षि ऋचेयु एकच्छत्र सम्राट् माने गये हैं। वे दूसरोंके लिये अजेय थे। ऋचेयुकी पत्नीका नाम ज्वलना था, जो तक्षक नागकी पुत्री थी॥ १॥ महारानी ज्वलनाके गर्भसे पृथ्वीपति राजर्षि मतिनारका जन्म हुआ। मतिनारके तीन परम धर्मात्मा पुत्र हुए—प्रथम तंसु, दूसरे प्रतिरथ और तीसरे धर्मात्मा सुबाहु। मतिनारके एक कन्या भी हुई थी, जो गौरी नामसे विख्यात थी। शुभलक्षणा गौरी ही राजा मान्धाताकी जननी हुई॥ २-३॥ मतिनारके सभी पुत्र वेदवेत्ता, ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी, अस्त्रविद्याके विद्वान्, बलवान् तथा युद्धकुशल थे॥ ४॥ मतिनारके दूसरे पुत्र प्रतिरथके बेटेका नाम कण्व था। कण्व राजा थे। कण्वके पुत्र मेधातिथि हुए, जिनसे काण्वायन ब्राह्मणोंकी परम्परा प्रचलित हुई॥ ५॥

ईलिनी भूप यस्यासीत् कन्या वै जनमेजय।
ब्रह्मवादिन्यधि स्त्रीं च तंसुस्तामभ्यगच्छत॥ ६

तंसोः सुरोधो राजर्षिर्धर्मनेत्रो महायशाः।
ब्रह्मवादी पराक्रान्तस्तस्य भार्योपदानवी॥ ७

उपदानवी सुताँल्लेभे चतुरस्त्वैलिकात्मजान्।
दुष्यन्तमथ सुष्मन्तं प्रवीरमनघं तथा॥ ८

दुष्यन्तस्य तु दायादो भरतो नाम वीर्यवान्।
स सर्वदमनो नाम नागायुतबलो महान्॥ ९

चक्रवर्ती सुतो जज्ञे दुष्यन्तस्य महात्मनः।
शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्ना स्थ भारताः॥ १०

दुष्यन्तं प्रति राजानं वागुवाचाशरीरिणी।
माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः॥ ११

भरस्व पुत्रं दुष्यन्त मावमंस्थाः शकुन्तलाम्।
रेतोधाः पुत्र उन्नयति नरदेव यमक्षयात्॥ १२

त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला।
भरतस्य विनष्टेषु तनयेषु महीपतेः॥ १३

मातॄणां तात कोपेन मया ते कथितं पुरा।
बृहस्पतेराङ्गिरसः पुत्रो राजन् महामुनिः।
संक्रामितो भरद्वाजो मरुद्भिः क्रतुभिर्विभुः॥ १४

राजा जनमेजय! जिनकी कन्या ईलिनी नामसे प्रसिद्ध हुई थी, वे ईलिन नामक नरेश ब्रह्मवादी ब्राह्मण-समुदायमें उत्कृष्ट माने जाते थे। उनकी उस ईलिनी नामक कन्याको तंसुने पत्नीरूपमें प्राप्त किया॥ ६॥ तंसुके महायशस्वी राजर्षि सुरोध हुए, जो धर्मके प्रवर्तक होनेसे धर्मनेत्र कहलाते थे। वे ब्रह्मवादी और पराक्रमी थे। उनकी पत्नी उपदानवी थी। उपदानवीने चार पुत्र प्राप्त किये, जो दुष्यन्त, सुष्मन्त, प्रवीर और अनघके नामसे विख्यात थे। ये चारों ईलिनीकुमार सुरोध या धर्मनेत्रके पुत्र थे॥ ७-८॥ दुष्यन्तके पुत्रका नाम भरत था। वे बड़े पराक्रमी थे। सबका दमन करनेके कारण उनका दूसरा नाम सर्वदमन भी था। महान् वीर भरतमें दस हजार हाथियोंका बल था॥ ९॥ महात्मा दुष्यन्तके वीर्य और शकुन्तलाके गर्भसे चक्रवर्ती भरत पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए थे, जिनके नामपर तुमलोग भारत कहलाते हो। १०॥ (कहते हैं—दुष्यन्तने तपोवनमें जाकर शकुन्तलाके साथ गान्धर्व-विवाह किया था और अपनी राजधानीको लौटकर उसके विषयमें कुछ बताया नहीं था। जब शकुन्तला भरतको लेकर दुष्यन्तके यहाँ गयी, तब वे उसे पहचाननेमें भूल करने लगे। उस समय) आकाशवाणीने राजा दुष्यन्तको सम्बोधित करके कहा—'दुष्यन्त! माता तो केवल चमड़ेकी धौंकनीके समान है, पुत्रपर अधिकार तो पिताका ही है। पुत्र जिसके द्वारा जन्म ग्रहण करता है, उसीका स्वरूप होता है। तुम इस पुत्रका पालन-पोषण करो, शकुन्तलाका अपमान मत करो। नरदेव! अपने ही वीर्यसे उत्पन्न हुआ पुत्र अपने पिताको यमलोकसे (निकालकर स्वर्गलोकको) ले जाता है। 'इस पुत्रके आधान करनेवाले तुम्हीं हो'—शकुन्तलाने यह बात ठीक ही कही है'। राजा भरतके कई पुत्र होकर मर गये। तात! माताओंके क्रोधसे ऐसा हुआ था। यह बात मैं तुम्हें पहले (आदिपर्वमें) बता चुका हूँ। राजन्! भरतके यज्ञमें आये हुए देवताओंने भरतके लिये अङ्गिरा-नन्दन बृहस्पतिजीके पुत्र महामुनि भरद्वाजको ही पुत्र बनाकर दे दिया॥ ११—१४॥

अत्रैवोदाहरन्तीमं भरद्वाजस्य धीमतः।
धर्मसंक्रमणं चापि मरुद्भिर्भरताय वै॥ १५
अयाजयद् भरद्वाजो मरुद्भिः क्रतुभिर्हि तम्।
पूर्वं तु वितथे तस्य कृते वै पुत्रजन्मनि॥ १६
ततोऽथ वितथो नाम भरद्वाजसुतोऽभवत्।
ततोऽथ वितथे जाते भरतस्तु दिवं ययौ॥ १७
वितथं चाभिषिच्याथ भरद्वाजो वनं ययौ।
स राजा वितथः पुत्राञ्जनयामास पञ्च वै॥ १८
सुहोत्रं च सुहोतारं गयं गर्गं तथैव च।
कपिलं च महात्मानं सुहोत्रस्य सुतद्वयम्॥ १९
काशिकश्च महासत्त्वस्तथा गृत्समतिर्नृपः।
तथा गृत्समतेः पुत्रा ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः॥ २०
काशिकस्य तु काशेयः पुत्रो दीर्घतपास्तथा।
आजमीढोऽपरो वंशः श्रूयतां पुरुषर्षभ॥ २१
सुहोत्रस्य बृहत् पुत्रो बृहतस्तनयास्त्रयः।
अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च वीर्यवान्॥ २२
अजमीढस्य पत्न्यस्तु तिस्रो वै यशसान्विताः।
नीलिनी केशिनी चैव धूमिनी च वराङ्गना॥ २३
अजमीढस्य नीलिन्यां सुशान्तिरुदपद्यत।
पुरुजातिः सुशान्तेस्तु वाह्याश्वः पुरुजातितः॥ २४
वाह्याश्वतनयाः पञ्च बभूवुरमरोपमाः॥ २५
मुद्गलः सृञ्जयश्चैव राजा बृहदिषुः स्मृतः।
यवीनरश्च विक्रान्तः कृमिलाश्वश्च पञ्चमः॥ २६
पञ्चैते रक्षणायालं देशानामिति विश्रुताः।
पञ्चानां विद्धि पञ्चालान् स्फीतैर्जनपदैर्वृतान्॥ २७
अलं संरक्षणे तेषां पञ्चाला इति विश्रुताः।
मुद्गलस्य तु दायादो मौद्गल्यः सुमहायशाः॥ २८
सर्व एते महात्मानः क्षत्रोपेता द्विजातयः।
एते ह्यङ्गिरसः पक्षं संश्रिताः कण्वमौद्गलाः॥ २९
मौद्गलस्य सुतो ज्येष्ठो ब्रह्मर्षिः सुमहायशाः।
इन्द्रसेनो यतो गर्भं वध्र्यश्वं प्रत्यपद्यत॥ ३०

इसी प्रसङ्गमें बुद्धिमान् भरद्वाजके धर्मसंक्रमणकी यह बात कही जाती है। मरुद्गणोंने भरतको पुत्ररूपमें जब भरद्वाजको ही अर्पित कर दिया, तब भरद्वाजने भरतसे देवताओंसहित यज्ञका अनुष्ठान करवाया। इसके पहले भरतके पुत्र-जन्मका सारा प्रयास वितथ (व्यर्थ) हो चुका था। भरद्वाजके प्रयत्नसे जो पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम वितथ हुआ। वितथका जन्म हो जानेपर भरत स्वर्गवासी हो गये। तत्पश्चात् वितथका राज्याभिषेक करके भरद्वाजजी भी वनमें चले गये। राजा वितथने पाँच पुत्र उत्पन्न किये—सुहोत्र, सुहोता, गय, गर्ग तथा महात्मा कपिल। सुहोत्रके भी दो पुत्र हुए—महान् शक्तिशाली काशिक तथा राजा गृत्समति। गृत्समतिके पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—तीनों वर्णोंके लोग हुए। काशिकके दो पुत्र थे—काशेय और दीर्घतपा। पुरुषप्रवर! अब आजमीढ नामक दूसरे वंशका वर्णन सुनो—पूर्वोक्त राजा सुहोत्रके एक तीसरा पुत्र और था बृहत्। बृहत्के तीन पुत्र हुए—अजमीढ, द्विमीढ और पराक्रमी पुरुमीढ॥ १५—२२॥ अजमीढकी तीन स्त्रियाँ थीं। तीनों ही बड़ी यशस्विनी थीं। उनके नाम थे—नीलिनी, केशिनी और स्त्रियोंमें श्रेष्ठ धूमिनी॥ २३॥ अजमीढके नीलिनीके गर्भसे सुशान्ति नामक पुत्र हुआ। सुशान्तिसे पुरुजाति और पुरुजातिसे वाह्याश्वका जन्म हुआ। वाह्याश्वके पाँच देवोपम पुत्र हुए॥ २४-२५॥ उनके नाम इस प्रकार हैं—मुद्गल, सृञ्जय, राजा बृहदिषु, पराक्रमी यवीनर तथा पाँचवें कृमिलाश्व॥ २६॥ ये पाँचों अपने अधिकारमें आये हुए देशोंकी रक्षाके लिये अलं (समर्थ) थे, इसलिये समृद्धिशाली जनपदोंसे युक्त उन देशोंको पञ्चाल समझो॥ २७॥ उन देशोंकी रक्षाके लिये अलं होनेसे ये पाँचों वीर पञ्चाल नामसे विख्यात हुए। मुद्गलके पुत्र महायशस्वी मौद्गल्य थे। ये सब-के-सब महात्मा क्षात्रधर्मसे युक्त ब्राह्मण थे। ये अङ्गिराके पक्षका आश्रय लेकर कण्वमौद्गल कहलाये॥ २८-२९॥ मौद्गलके ज्येष्ठ पुत्र महायशस्वी ब्रह्मर्षि इन्द्रसेन हुए, जिनसे वध्र्यश्वका जन्म हुआ॥ ३०॥

वध्र्यश्वान्मिथुनं जज्ञे मेनकायामिति श्रुतिः।
दिवोदासश्च राजर्षिरहल्या च यशस्विनी॥ ३१

शरद्वतस्तु दायादमहल्या समसूयत।
शतानन्दमृषिश्रेष्ठं तस्यापि सुमहायशाः॥ ३२

पुत्रः सत्यधृतिर्नाम धनुर्वेदस्य पारगः।
तस्य सत्यधृते रेतो दृष्ट्वाप्सरसमग्रतः॥ ३३

अवस्कन्नं शरस्तम्बे मिथुनं समपद्यत।
कृपया तच्च जग्राह शन्तनुर्मृगयां गतः॥ ३४

कृपः स्मृतः स वै तस्माद् गौतमी च कृपी तथा।
एते शारद्वताः प्रोक्ता एते ते गौतमाः स्मृताः॥ ३५

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दिवोदासस्य संततिम्।
दिवोदासस्य दायादो ब्रह्मर्षिर्मित्रयुर्नृप॥ ३६

मैत्रायणस्ततः सोमो मैत्रेयास्तु ततः स्मृताः।
एते हि संश्रिताः पक्षं क्षत्रोपेतास्तु भार्गवाः॥ ३७

आसीत् पञ्चजनः पुत्रः सृञ्जयस्य महात्मनः।
सुतः पञ्चजनस्यापि सोमदत्तो महीपतिः॥ ३८

सोमदत्तस्य दायादः सहदेवो महायशाः।
सहदेवसुतश्चापि सोमको नाम पार्थिवः॥ ३९

अजमीढात् पुनर्जातः क्षीणवंशे तु सोमकः।
सोमकस्य सुतो जन्तुर्यस्य पुत्रशतं बभौ॥ ४०

तेषां यवीयान् पृषतो द्रुपदस्य पिता प्रभुः।
धृष्टद्युम्नस्तु द्रुपदाद् धृष्टकेतुश्च तत्सुतः॥ ४१

अजमीढाः स्मृता ह्येते महात्मानस्तु सोमकाः।
पुत्राणामजमीढस्य सोमकत्वं महात्मनः॥ ४२

महिषी त्वजमीढस्य धूमिनी पुत्रगृद्धिनी।
तृतीया तव पूर्वेषां जननी पृथिवीपते॥ ४३

वध्र्यश्वद्वारा मेनकाके गर्भसे एक पुत्र और एक कन्याका जन्म हुआ, ऐसी प्रसिद्धि है। पुत्रका नाम दिवोदास था, जो राजर्षि एवं ब्रह्मर्षि थे। कन्या यशस्विनी अहल्या थी॥ ३१॥ अहल्या महर्षि शरद्वान् (गौतम)-की पत्नी थी। उसने गौतमके पुत्र मुनिश्रेष्ठ शतानन्दको जन्म दिया। शतानन्दके भी एक महायशस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम सत्यधृति था। (ये सत्यधृति भी अपने पितामहके समान शरद्वान् कहलाते थे।) सत्यधृति धनुर्वेदके पारङ्गत विद्वान् थे। एक दिन अपने सामने एक अप्सराको उपस्थित देख सत्यधृति (शरद्वान्)-का वीर्य स्खलित होकर सरकंडोंके समूहपर गिर पड़ा। उससे एक बालक और बालिका जुड़वीं संतानें उत्पन्न हुईं। उस समय राजा शन्तनु शिकार खेलनेके लिये वनमें गये हुए थे। उन्होंने कृपापूर्वक उन दोनों बालकोंको ले लिया॥ ३२—३४॥ कृपापूर्वक ग्रहण करनेके कारण बालकका नाम कृप और उस गौतम-बालिकाका नाम कृपी हुआ। ये शतानन्द, सत्यधृति और कृप शारद्वत कहे गये हैं तथा ये गौतम भी कहलाते हैं॥ ३५॥ नरेश्वर! अब मैं दिवोदासकी संततिका वर्णन करूँगा। दिवोदासके पुत्र ब्रह्मर्षि मित्रयु हुए। मित्रयुसे मैत्रायणका जन्म हुआ। मैत्रायणसे सोम हुए। सोमके वंशज मैत्रेय कहे गये हैं। ये भार्गव-पक्षका आश्रय लेकर क्षत्रोपेत भार्गव कहलाये॥ ३६-३७॥ महात्मा सृञ्जयके पञ्चजन नामक पुत्र हुआ और पञ्चजनके पुत्र पृथ्वीपति सोमदत्त हुए॥ ३८॥ सोमदत्तके पुत्र महायशस्वी सहदेव थे और सहदेवके पुत्र राजा सोमक हुए॥ ३९॥ अजमीढवंशी सहदेवसे सोमकका जन्म उस अवस्थामें हुआ जब कि उनकी वंश-परम्परा क्षीण हो चली थी। सोमकके पुत्रका नाम जन्तु था। जिसके स्थानपर सोमकके सौ पुत्र हो गये*॥ ४०॥ उनमें सबसे छोटे थे पृषत, जो राजा द्रुपदके प्रभावशाली पिता थे। द्रुपदसे धृष्टद्युम्न और धृष्टद्युम्नसे धृष्टकेतुका जन्म हुआ। ये महामनस्वी क्षत्रिय अजमीढ और सोमक कहे गये हैं। महामना अजमीढके संतानोंकी ही सोमक संज्ञा हुई॥ ४१-४२॥ राजा अजमीढकी जो धूमिनी नामवाली तीसरी रानी थीं, उनके मनमें पुत्रकी बड़ी लालसा थी। पृथिवीपते! वे ही तुम्हारे पूर्वजोंकी जननी हुईं॥ ४३॥

* सोमकने जन्तुको यज्ञपशु बनाकर एक यज्ञ किया, जिससे उनकी सौ स्त्रियोंके गर्भसे एक-एक करके सौ पुत्र उत्पन्न हुए। (देखिये महाभारत, वनपर्व, १२७-१२८ अध्याय)

सा तु पुत्रार्थिनी देवी व्रतचर्यासमन्विता।
ततो वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम्॥ ४४
हुत्वाग्निं विधिवत् सा तु पवित्रमितभोजना।
अग्निहोत्रकुशेष्वेव सुष्वाप जनमेजय॥ ४५
धूमिन्या स तया देव्या त्वजमीढः समेयिवान्।
ऋक्षं संजनयामास धूमवर्णं सुदर्शनम्॥ ४६
ऋक्षात् संवरणो जज्ञे कुरुः संवरणात् तथा।
यः प्रयागादतिक्रम्य कुरुक्षेत्रं चकार ह॥ ४७
तद्वै तत्स महाभागो वर्षाणि सुबहून्यथ।
तप्यमाने तदा शक्रो यत्रास्य वरदो बभौ॥ ४८
पुण्यं च रमणीयं च पुण्यकृद्भिर्निषेवितम्।
तस्यान्ववायः सुमहांस्तस्य नाम्ना स्थ कौरवाः॥ ४९
कुरोश्च पुत्राश्चत्वारः सुधन्वा सुधनुस्तथा।
परीक्षिच्च महाबाहुः प्रवरश्चारिमेजयः॥ ५०
सुधन्वनस्तु दायादः सुहोत्रो मतिमांस्ततः।
च्यवनस्तस्य पुत्रस्तु राज्ञा धर्मार्थकोविदः॥ ५१
च्यवनात् कृतयज्ञस्तु इष्ट्वा यज्ञैः स धर्मवित्।
विश्रुतं जनयामास पुत्रमिन्द्रसमं नृपः॥ ५२
चैद्योपरिचरं वीरं वसुं नामान्तरिक्षगम्।
चैद्योपरिचराज्जज्ञे गिरिका सप्त मानवान्॥ ५३
महारथो मगधराड् विश्रुतो यो बृहद्रथः।
प्रत्यग्रहः कुशश्चैव यमाहुर्मणिवाहनम्॥ ५४
मारुतश्च यदुश्चैव मत्स्यः काली च सत्तमः।
बृहद्रथस्य दायादः कुशाग्रो नाम विश्रुतः॥ ५५
कुशाग्रस्यात्मजो विद्वान् वृषभो नाम वीर्यवान्।
वृषभस्य तु दायादः पुष्पवान्नाम धार्मिकः॥ ५६
दायादस्तस्य विक्रान्तो राजा सत्यहितः स्मृतः॥ ५७
तस्य पुत्रोऽथ धर्मात्मा नाम्ना ऊर्जस्तु जज्ञिवान्।
ऊर्जस्य सम्भवः पुत्रो यस्य जज्ञे स वीर्यवान्॥ ५८

जनमेजय! पुत्रकी अभिलाषा रखनेवाली धूमिनी देवी व्रतका पालन करने लगीं। वे दस हजार वर्षोंतक अत्यन्त दुष्कर तपस्या करती हुई विधिपूर्वक अग्निमें आहुति देतीं, पवित्रतापूर्वक परिमित भोजन करतीं और अग्निहोत्रके कुशोंपर ही सोतीं॥ ४४-४५॥ तदनन्तर राजा अजमीढने देवी धूमिनीके साथ समागम किया। इससे उन्होंने ऋक्ष नामक पुत्रको जन्म दिया। ऋक्ष धूम्रके समान वर्णवाले एवं सुन्दर दर्शनीय पुरुष थे॥ ४६॥ ऋक्षसे संवरण और संवरणसे कुरु उत्पन्न हुए। जिन्होंने प्रयागसे जाकर कुरुक्षेत्रकी स्थापना की॥ ४७॥ महाभाग कुरुने उस क्षेत्रमें बहुत वर्षोंतक तप किया। उनके तप करते समय वरदायक भगवान् इन्द्रने वहाँ जाकर उन्हें वर प्रदान किया॥ ४८॥ वह पवित्र एवं रमणीय क्षेत्र पुण्यात्माओंद्वारा सेवित है। कुरुका वंश बहुत बड़ा है। तुमलोग कुरुके ही नामसे कौरव कहलाते हो॥ ४९॥ कुरुके चार पुत्र हुए—सुधन्वा, सुधनु, महाबाहु परीक्षित् और श्रेष्ठ वीर अरिमेजय॥ ५०॥ सुधन्वाके पुत्र सुहोत्र हुए। सुहोत्रके मतिमान् तथा मतिमान्के पुत्र राजा च्यवन हुए, जो धर्म और अर्थके ज्ञाता थे॥ ५१॥ च्यवनसे कृतयज्ञ हुए। उन धर्मज्ञ नरेशने यज्ञ करके इन्द्रके समान सुविख्यात पराक्रमी पुत्रको जन्म दिया॥ ५२॥ उसका नाम था उपरिचर वसु। वे वसु चेदि देशके निवासी थे और आकाशमार्गसे चलते थे। चेदिदेशीय उपरिचर वसुसे उनकी पत्नी गिरिकाने सात मनुष्योंको उत्पन्न किया॥ ५३॥ उनमें प्रथम संतान थे सुविख्यात महारथी राजा बृहद्रथ, जो मगध देशके अधिपति थे। दूसरे पुत्रका नाम प्रत्यग्रह था। तीसरे राजा कुश थे, जिन्हें मणिवाहन भी कहते हैं। चौथे मारुत, पाँचवें यदु और छठे श्रेष्ठतम पुरुष मत्स्य थे। सातवीं संतान कन्या थी, जो काली (या सत्यवती) कहलायी॥ ५४½॥ बृहद्रथका पुत्र कुशाग्र नामसे विख्यात हुआ। कुशाग्रके पुत्र वृषभ थे, जो विद्वान् और बलवान् थे। वृषभका पुत्र धर्मात्मा पुष्पवान् था। उसके पुत्र पराक्रमी राजा सत्यहित हुए॥ ५५—५७॥ सत्यहितके धर्मात्मा ऊर्ज नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ऊर्जके पुत्रका नाम सम्भव था (जिसे बृहद्रथ भी कहते हैं)। इसीसे पराक्रमी राजा (जरासंध)की उत्पत्ति हुई थी॥ ५८॥

शकले द्वे स वै जातो जरया संधितः स तु।
जरया संधितो यस्माज्जरासंधस्ततः स्मृतः॥ ५९
सर्वक्षत्रस्य जेतासौ जरासंधो महाबलः।
जरासंधस्य पुत्रो वै सहदेवः प्रतापवान्॥ ६०
सहदेवात्मजः श्रीमानुदायुः स महायशाः।
उदायुर्जनयामास पुत्रं परमधार्मिकम्॥ ६१
श्रुतधर्मेति नामानं मगधान् योऽवसद् विभुः।
परीक्षितस्तु दायादो धार्मिको जनमेजयः॥ ६२
जनमेजयस्य दायादास्त्रय एव महारथाः।
श्रुतसेनोग्रसेनौ च भीमसेनश्च नामतः॥ ६३
एते सर्वे महाभागा विक्रान्ता बलशालिनः।
जनमेजयस्य पुत्रो तु सुरथो मतिमांस्तथा॥ ६४
सुरथस्य तु विक्रान्तः पुत्रो जज्ञे विदूरथः।
विदूरथस्य दायाद ऋक्ष एव महारथः॥ ६५
द्वितीयः स बभौ राजा नाम्ना तेनैव संज्ञितः।
द्वावृक्षौ तव वंशेऽस्मिन् द्वावेव तु परीक्षितौ॥ ६६
भीमसेनास्त्रयो राजन् द्वावेव जनमेजयौ।
ऋक्षस्य तु द्वितीयस्य भीमसेनोऽभवत् सुतः॥ ६७
प्रतीपो भीमसेनस्य प्रतीपस्य तु शन्तनुः।
देवापिर्बाह्लिकश्चैव त्रय एव महारथाः॥ ६८
शन्तनोः प्रसवस्त्वेष यत्र जातोऽसि पार्थिव।
बाह्लिकस्य तु राज्यं वै सप्तवाह्यं नरेश्वर॥ ६९
बाह्लिकस्य सुतश्चैव सोमदत्तो महायशाः।
जज्ञिरे सोमदत्तात्तु भूरिर्भूरिश्रवाः शलः॥ ७०
उपाध्यायस्तु देवानां देवापिरभवन्मुनिः।
च्यवनस्य कृतः पुत्र इष्टश्चासीन्महात्मनः॥ ७१
शन्तनुस्त्वभवद् राजा कौरवाणां धुरन्धरः।
शन्तनोः सम्प्रवक्ष्यामि यत्र जातोऽसि पार्थिव॥ ७२
गाङ्गं देवव्रतं नाम पुत्रं सोऽजनयत् प्रभुः।
स तु भीष्म इति ख्यातः पाण्डवानां पितामहः॥ ७३
काली विचित्रवीर्यं तु जनयामास भारत।
शन्तनोर्दयितं पुत्रं धर्मात्मानमकल्मषम्॥ ७४

वह आधे-आधे शरीरके दो टुकड़ोंके रूपमें (दो माताओंके गर्भसे) उत्पन्न हुआ था। इन दोनों टुकड़ोंको जरा नामवाली राक्षसीने जोड़ दिया। जरासे संधित (जोड़ा गया) होनेसे उसका नाम जरासंध हुआ॥ ५९॥ महाबली जरासंधने सम्पूर्ण क्षत्रिय-समुदायको जीत लिया था। उसका पुत्र प्रतापी सहदेव था॥ ६०॥ सहदेवके कान्तिमान् पुत्र महायशस्वी उदायु हुए। उदायुने श्रुतधर्मा नामक परम धर्मात्मा पुत्रको जन्म दिया, जो वैभवसम्पन्न होकर मगध देशमें निवास करता था। (कुरुके दूसरे पुत्र) परीक्षित्के आत्मज धर्मात्मा जनमेजय हुए। जनमेजयके श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन—ये तीन महारथी पुत्र थे। ये सभी महाभाग राजकुमार पराक्रमी तथा बलशाली थे। जनमेजयके दो पुत्र हुए सुरथ और मतिमान्॥ ६१—६४॥ सुरथके एक पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम था विदूरथ। विदूरथके महारथी पुत्रका नाम भी ऋक्ष ही था। ये दूसरे राजा थे, जो उसी (ऋक्ष) नामसे प्रसिद्ध हुए। राजन्! तुम्हारे इस वंशमें दो 'ऋक्ष' और दो ही 'परीक्षित्' नामके राजा हो गये हैं। तीन 'भीमसेन' और दो 'जनमेजय' हुए हैं। द्वितीय ऋक्षके पुत्र भीमसेन हुए। भीमसेनके प्रतीप और प्रतीपके पुत्र शन्तनु, देवापि तथा बाह्लिक थे। ये तीनों ही महारथी वीर थे॥ ६५—६८॥ पृथ्वीनाथ! यह शन्तनुका कुल है, जिसमें तुम्हारा जन्म हुआ है। नरेश्वर! बाह्लिकका राज्य सप्तवाह्य (मन्त्री आदि सात अङ्गोंद्वारा संचालित होने योग्य) था॥ ६९॥ बाह्लिकके पुत्र महायशस्वी सोमदत्त हुए। सोमदत्तसे भूरि, भूरिश्रवा और शल—ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए॥ ७०॥ देवापि देवताओंके उपाध्याय और मुनि हुए। महात्मा च्यवनने उन्हें अपना प्रिय पुत्र बना लिया था॥ ७१॥ राजा शन्तनु कौरवकुलका भार वहन करनेवाले हुए। पृथ्वीनाथ! अब मैं शन्तनुके वंशका वर्णन करता हूँ, जिसमें तुम्हारा जन्म हुआ है॥ ७२॥ प्रभावशाली शन्तनुने गङ्गाजीके गर्भसे देवव्रत नामक पुत्रको जन्म दिया। वे ही भीष्म नामसे विख्यात हुए, जो पाण्डवोंके पितामह थे॥ ७३॥ भारत! उनकी दूसरी पत्नी काली (सत्यवती)-ने शन्तनुके प्रिय पुत्र विचित्रवीर्यको उत्पन्न किया, जो पापशून्य तथा धर्मात्मा थे॥ ७४॥

कृष्णद्वैपायनश्चैव क्षेत्रे वैचित्रवीर्यके।
धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत्॥ ७५

धृतराष्ट्रश्च गान्धार्यां पुत्रानुत्पादयच्छतम्।
तेषां दुर्योधनः श्रेष्ठः सर्वेषामेव स प्रभुः॥ ७६

पाण्डोर्धनञ्जयः पुत्रः सौभद्रस्तस्य चात्मजः।
अभिमन्योः परीक्षित् तु पिता तव जनेश्वर॥ ७७

एष ते पौरवो वंशो यत्र जातोऽसि पार्थिव।
तुर्वसोस्तु प्रवक्ष्यामि द्रुह्योश्चानोर्यदोस्तथा॥ ७८

सुतस्तु तुर्वसोर्वह्निर्वह्नेर्गोभानुरात्मजः।
गोभानोस्तु सुतो राजा त्रैसानुरपराजितः॥ ७९

करन्धमस्तु त्रैसानोर्मरुत्तस्तस्य चात्मजः।
अन्यस्त्वावीक्षितो राजा मरुत्तः कथितस्तव॥ ८०

अनपत्योऽभवद् राजा यज्वा विपुलदक्षिणः।
दुहिता सम्मता नाम तस्यासीत् पृथिवीपते॥ ८१

दक्षिणार्थं स्म वै दत्ता संवर्ताय महात्मने।
दुष्यन्तं पौरवं चापि लेभे पुत्रमकल्मषम्॥ ८२

एवं ययातेः शापेन जरासंक्रमणे तदा।
पौरवं तुर्वसोर्वंशः प्रविवेश नृपोत्तम॥ ८३

दुष्यन्तस्य तु दायादः करुत्थामः प्रजेश्वरः।
करुत्थामात् तथाऽऽक्रीडश्चत्वारस्तस्य चात्मजाः॥ ८४

पाण्ड्यश्च केरलश्चैव कोलश्चोलश्च पार्थिवः।
तेषां जनपदाः स्फीताः पाण्ड्याश्चोलाः सकेरलाः॥ ८५

द्रुह्योश्च तनयो राजन् बभ्रुः सेतुश्च पार्थिवः।
अङ्गारसेतुस्तत्पुत्रो मरुतां पतिरुच्यते॥ ८६

यौवनाश्वेन समरे कृच्छ्रेण निहतो बली।
युद्धं सुमहदस्यासीन्मासान्परि चतुर्दश॥ ८७

अङ्गारस्य तु दायादो गान्धारो नाम भारत।
ख्यायते तस्य नाम्ना वै गान्धारविषयो महान्॥ ८८

विचित्रवीर्यके क्षेत्र (अर्थात् उनकी पत्नियोंके गर्भ)-से श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजीने धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरको उत्पन्न किया था॥ ७५॥ धृतराष्ट्रने गान्धारीके गर्भसे सौ पुत्र उत्पन्न किये। उन सबमें दुर्योधन ही श्रेष्ठ और प्रभावशाली था॥ ७६॥ पाण्डुके पुत्र धनञ्जय (अर्जुन) हुए। धनञ्जयसे सुभद्राकुमार अभिमन्युका जन्म हुआ। जनेश्वर! अभिमन्युके पुत्र तुम्हारे पिता परीक्षित् थे॥ ७७॥ जनमेजय! यह तुमसे पौरववंशका वर्णन किया गया, जिसमें तुम्हारा जन्म हुआ है। अब तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु और यदुकी संततिका वर्णन करूँगा॥ ७८॥ तुर्वसुके पुत्र वह्नि और वह्निके गोभानु हुए। गोभानुके पुत्र राजा त्रैसानु थे, जो कभी परास्त नहीं होते थे॥ ७९॥ त्रैसानुके करन्धम और करन्धमके पुत्र मरुत्त हुए। अवीक्षित्के पुत्र राजा मरुत्त दूसरे हैं। उनका परिचय तुम्हें दिया जा चुका है*॥ ८०॥ ये करन्धम-पुत्र राजा मरुत्त पुत्रहीन थे। ये बड़े-बड़े यज्ञ करते और उनमें प्रचुर दक्षिणाएँ देते थे। पृथिवीपते! उनके एक पुत्री थी, जिसका नाम सम्मता था॥ ८१॥ उन्होंने महात्मा संवर्तको अपनी वह कन्या ही दक्षिणारूपमें दे दी थी। (फिर संवर्तने दुष्यन्तके पिताको वह कन्या अर्पित कर दी। उनके संयोगसे) सम्मताने पुरुवंशी दुष्यन्तको पुत्ररूपमें प्राप्त किया। दुष्यन्त निष्पाप राजा थे॥ ८२॥ नृपश्रेष्ठ! इस प्रकार पुत्रोंको अपना बुढ़ापा लेनेके लिये कहते समय ययातिने जो शाप दिया था, उसके अनुसार तुर्वसुका वंश समाप्त होकर पौरववंशमें विलीन हो गया॥ ८३॥ दुष्यन्तके (शकुन्तलासे भिन्न दूसरी रानीके गर्भसे) राजा करुत्थाम हुए। करुत्थामसे आक्रीडका जन्म हुआ। उसके चार पुत्र थे—पाण्ड्य, केरल, कोल तथा राजा चोल। उनके समृद्धिशाली प्रदेश भी उन्हींके नामपर पाण्ड्य, चोल और केरल कहलाये॥ ८४-८५॥ राजन्! ययातिकुमार द्रुह्युके पुत्र राजा बभ्रु और सेतु हुए। सेतुके पुत्र अङ्गारसेतु हुए। इन्हें मरुत्पति भी कहा जाता है॥ ८६॥ युवनाश्वके पुत्र मान्धाताके साथ इनका चौदह महीनोंतक बड़ा भारी युद्ध हुआ। उस समराङ्गणमें बलवान् अङ्गारसेतु शत्रुद्वारा बड़ी कठिनाईसे मारे गये॥ ८७॥ भरतनन्दन! अङ्गारके पुत्र गान्धार हुए। उन्हींके नामसे महान् गान्धारदेशकी ख्याति हुई।

* देखिये—महाभारत, द्रोणपर्व (५५। ३७—४९) तथा आश्वमेधिकपर्व (अध्याय ६—१० तक)।

गान्धारदेशजाश्चैव तुरगा वाजिनां वराः।
अनोस्तु पुत्रो धर्मोऽभूद् धृतस्तस्यात्मजोऽभवत्॥ ८९
धृतात् तु दुदुहो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मजः।
प्रचेतसः सुचेतास्तु कीर्तितो ह्यानवो मया॥ ९०
यदोर्वंशं प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठस्योत्तमतेजसः।
विस्तरेणानुपूर्व्यात्तु गदतो मे निशामय॥ ९१

गान्धारदेशके घोड़े सब घोड़ोंसे श्रेष्ठ माने गये हैं। ययातिपुत्र अनुके पुत्र धर्म हुए और धर्मके पुत्र धृत, धृतसे दुदुहका जन्म हुआ। दुदुहके पुत्र प्रचेता और प्रचेताके पुत्र सुचेता हुए। इस प्रकार मैंने (संक्षेपसे) अनुवंशका वर्णन किया है॥ ८८—९०॥ अब मैं ययातिके ज्येष्ठ पुत्र उत्तम तेजस्वी यदुके वंशका क्रमशः विस्तारपूर्वक वर्णन करूँगा। तुम मेरे मुखसे इसको सुनो॥ ९१॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पूरुवंशानुकीर्तने द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पूरुवंशका वर्णनविषयक बत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३२॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

यदुवंशका वर्णन, कार्तवीर्यकी उत्पत्ति एवं चरित्र तथा पाँचों ययाति-पुत्रोंके वंश-वर्णनके श्रवणकी महिमा

वैशम्पायन उवाच

बभूवुस्तु यदोः पुत्राः पञ्च देवसुतोपमाः।
सहस्रदः पयोदश्च क्रोष्टा नीलोऽञ्जिकस्तथा॥ १
सहस्रदस्य दायादास्त्रयः परमधार्मिकाः।
हैहयश्च हयश्चैव राजन् वेणुहयस्तथा॥ २
हैहयस्याभवत् पुत्रो धर्मनेत्र इति स्मृतः।
धर्मनेत्रस्य कार्तस्तु साहञ्जस्तस्य चात्मजः॥ ३
साहञ्जनी नाम पुरी येन राज्ञा निवेशिता।
साहञ्जस्य तु दायादो महिष्मान् नाम पार्थिवः॥ ४
माहिष्मती नाम पुरी येन राज्ञा निवेशिता।
आसीन्महिष्मतः पुत्रो भद्रश्रेण्यः प्रतापवान्॥ ५
वाराणस्यधिपो राजा कथितः पूर्वमेव तु।
भद्रश्रेण्यस्य पुत्रस्तु दुर्दमो नाम विश्रुतः॥ ६
दुर्दमस्य सुतो धीमान् कनको नाम वीर्यवान्।
कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुताः॥ ७
कृतवीर्यः कृतौजाश्च कृतवर्मा तथैव च।
कृताग्निस्तु चतुर्थोऽभूत् कृतवीर्यात् तथार्जुनः॥ ८
यस्तु बाहुसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत्।
जिगाय पृथिवीमेको रथेनादित्यवर्चसा॥ ९

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! यदुके पाँच देवोपम पुत्र हुए—सहस्रद, पयोद, क्रोष्टा, नील और अञ्जिक॥ १॥ राजन्! सहस्रदके तीन परम धर्मात्मा पुत्र हुए—हैहय, हय और वेणुहय॥ २॥ हैहयका पुत्र धर्मनेत्र हुआ। धर्मनेत्रके कार्त और कार्तके साहञ्ज नामक पुत्र हुए॥ ३॥ राजा साहञ्जने साहञ्जनी नामक पुरी बसायी। साहञ्जके पुत्र राजा महिष्मान् हुए, जिन्होंने माहिष्मती नामक नगरी बसायी थी। महिष्मान्के पुत्र प्रतापी भद्रश्रेण्य थे, जो वाराणसीपुरीके अधिपति कहे गये हैं। राजा भद्रश्रेण्यका परिचय तुम्हें पहले ही दे दिया गया है। भद्रश्रेण्यके पुत्रका नाम दुर्दम था, जो भूमण्डलके विख्यात राजा थे। दुर्दमके पुत्र कनक हुए, जो बुद्धिमान् और बलवान् थे। कनकके चार पुत्र हुए, जो सम्पूर्ण विश्वमें विख्यात थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—कृतवीर्य, कृतौजा, कृतवर्मा और कृताग्नि। कृताग्नि कनकके चौथे पुत्र थे। कृतवीर्यसे अर्जुनकी उत्पत्ति हुई॥ ४—८॥ अर्जुन सहस्र भुजाओंसे युक्त हो सातों द्वीपोंका राजा हुआ। उसने अकेले ही सूर्यके समान तेजस्वी रथद्वारा सम्पूर्ण पृथ्वीको जीत लिया था॥ ९॥

स हि वर्षायुतं तप्त्वा तपः परमदुश्चरम्।
दत्तमाराधयामास कार्तवीर्योऽत्रिसम्भवम्॥ १०

तस्मै दत्तो वरान् प्रादाच्चतुरो भूरितेजसः।
पूर्वं बाहुसहस्रं तु प्रार्थितं सुमहद्वरम्॥ ११

अधर्मे वर्तमानस्य सद्भिस्तत्र निवारणम्।
उग्रेण पृथिवीं जित्वा स्वधर्मेणानुरञ्जनम्॥ १२

संग्रामान् सुबहून् कृत्वा हत्वा चारीन् सहस्रशः।
संग्रामे वर्तमानस्य वधं चाप्यधिकाद् रणे॥ १३

तस्य बाहुसहस्रं तु युध्यतः किल भारत।
योगाद् योगेश्वरस्येव प्रादुर्भवति मायया॥ १४

तेनेयं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना।
ससमुद्रा सनगरा उग्रेण विधिना जिता॥ १५

तेन सप्तसु द्वीपेषु सप्त यज्ञशतानि वै।
प्राप्तानि विधिना राज्ञा श्रूयन्ते जनमेजय॥ १६

सर्वे यज्ञा महाबाहोस्तस्यासन् भूरिदक्षिणाः।
सर्वे काञ्चनयूपाश्च सर्वे काञ्चनवेदयः॥ १७

सर्वैर्देवैर्महाराज विमानस्थैरलङ्कृताः।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिताः॥ १८

यस्य यज्ञे जगौ गाथां गन्धर्वो नारदस्तथा।
वरीदासात्मजो विद्वान् महिम्ना तस्य विस्मितः॥ १९

नारद उवाच

न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः।
यज्ञैर्दानैस्तपोभिर्वा विक्रमेण श्रुतेन च॥ २०

स हि सप्तसु द्वीपेषु खड्गी चर्मी शरासनी।
रथी द्वीपाननुचरन् योगी संदृश्यते नृभिः॥ २१

अनष्टद्रव्यता चैव न शोको न च विभ्रमः।
प्रभावेण महाराज्ञः प्रजा धर्मेण रक्षतः॥ २२

पञ्चाशीतिसहस्राणि वर्षाणां वै नराधिपः।
स सर्वरत्नभाक् सम्राट् चक्रवर्ती बभूव ह॥ २३

कृतवीर्यकुमार अर्जुनने दस हजार वर्षोंतक अत्यन्त दुष्कर तपस्या करके अत्रिपुत्र दत्त (दत्तात्रेय)-की आराधना की॥ १०॥ दत्तात्रेयजीने उसे परम तेजस्वी चार वर प्रदान किये। पहले तो उसने बहुत बड़ा वर यह माँगा था कि 'युद्धमें मेरी सहस्र भुजाएँ हो जायँ'॥ ११॥ दूसरा वर यह था कि 'यदि कभी मैं अधर्म-कार्यमें प्रवृत्त होऊँ तो वहाँ साधु पुरुष आकर मुझे रोक दें।' तीसरे वरके रूपमें उसने यह प्रार्थना की कि 'मैं युद्धके द्वारा पृथ्वीको जीतकर स्वधर्म-पालनके द्वारा प्रजाको प्रसन्न रखूँ'॥ १२॥ चौथा वर इस प्रकार है—'मैं बहुत-से संग्राम करके सहस्रों शत्रुओंको मौतके घाट उतारकर संग्राममें ही रहते समय जो युद्धमें मुझसे अधिक शक्तिशाली हो, उसके द्वारा वधको प्राप्त होऊँ'॥ १३॥ भरतनन्दन! युद्ध करते समय किसी योगेश्वरकी भाँति योगबल और संकेतमात्रसे उसके एक सहस्र भुजाएँ प्रकट हो जाती थीं॥ १४॥ राजा अर्जुनने सातद्वीप, समुद्र, पत्तन और नगरोंसहित सारी पृथ्वीको उग्रकर्म (युद्ध)-के द्वारा जीता था॥ १५॥ जनमेजय! उस राजाने सातों द्वीपोंमें विधिपूर्वक सात सौ यज्ञ किये थे, ऐसा सुना जाता है॥ १६॥ महाबाहु अर्जुनके वे समस्त यज्ञ प्रचुर दक्षिणा देकर सम्पन्न किये गये थे। सबमें सोनेके यूप गड़े थे और सोनेकी ही वेदियाँ बनायी गयी थीं॥ १७॥ महाराज विमानोंपर बैठे हुए सम्पूर्ण देवता, गन्धर्व और अप्सराएँ सदा ही उन यज्ञोंको अलंकृत एवं सुशोभित करती थीं॥ १८॥ कार्तवीर्यके यज्ञमें उसकी महिमासे चकित होकर वरीदासके विद्वान् पुत्र नारद नामक गन्धर्वने इस गाथाका गान किया था॥ १९॥

नारद बोले—अन्य राजालोग यज्ञ, दान, तपस्या, पराक्रम और शास्त्रज्ञानमें कार्तवीर्य अर्जुनकी स्थितिको नहीं पहुँच सकते॥ २०॥ वह योगी था, इसलिये मनुष्योंको सातों द्वीपोंमें ढाल-तलवार, धनुष-बाण और रथ लिये सदा सब ओर विचरता दिखायी देता था॥ २१॥ धर्मपूर्वक प्रजाकी रक्षा करनेवाले महाराज कार्तवीर्यके प्रभावसे किसीका धन नष्ट नहीं होता था। न तो किसीको शोक होता और न कोई भ्रममें ही पड़ता था॥ २२॥ वह पचासी हजार वर्षोंतक सब प्रकारके रत्नोंसे सम्पन्न चक्रवर्ती सम्राट् रहा॥ २३॥

स एव यज्ञपालोऽभूत् क्षेत्रपालः स एव च।
स एव वृष्ट्यां पर्जन्यो योगित्वादर्जुनोऽभवत्॥ २४

स वै बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनत्वचा।
भाति रश्मिसहस्रेण शरदीव दिवाकरः॥ २५

स हि नागान् मनुष्येषु माहिष्मत्यां महाद्युतिः।
कर्कोटकसुताञ्जित्वा पुर्यां तस्यां न्यवेशयत्॥ २६

स वै वेगं समुद्रस्य प्रावृट्कालेऽम्बुजेक्षणः।
क्रीडन्निव भुजोद्भिन्नं प्रतिस्रोतश्चकार ह॥ २७

लुण्ठिता क्रीडिता तेन फेनस्रग्दाममालिनी।
चलदूर्मिसहस्रेण शङ्किताभ्येति नर्मदा॥ २८

तस्य बाहुसहस्रेण क्षुभ्यमाणे महोदधौ।
भयान्निलीना निश्चेष्टाः पातालस्था महासुराः॥ २९

चूर्णीकृतमहावीचिं चलन्मीनमहातिमिम्।
मारुताविद्धफेनौघमावर्तक्षोभदुःसहम् ॥ ३०

प्रावर्तयत् तदा राजा सहस्रेण च बाहुना।
देवासुरसमाक्षिप्तः क्षीरोदमिव मन्दरः॥ ३१

मन्दरक्षोभचकिता अमृतोद्भवशङ्किताः।
सहसोत्पतिता भीता भीमं दृष्ट्वा नृपोत्तमम्॥ ३२

नता निश्चलमूर्धानो बभूवुस्ते महोरगाः।
सायाह्ने कदलीखण्डाः कम्पितास्तस्य वायुना॥ ३३

योगी होनेके कारण राजा अर्जुन ही यज्ञों और खेतोंकी रक्षा करता था और वही वर्षाकालमें मेघ बन जाता था॥ २४॥ जैसे शरद्-ऋतुमें भगवान् भास्कर अपनी सहस्रों किरणोंसे शोभा पाते हैं, उसी प्रकार राजा कार्तवीर्य अर्जुन प्रत्यञ्चाकी रगणसे जिनकी त्वचा कठोर हो गयी थी, उन सहस्रों भुजाओंसे सुशोभित होता था॥ २५॥ महातेजस्वी अर्जुनने कर्कोटकनागके पुत्रोंको जीतकर उन्हें अपनी नगरी माहिष्मतीपुरीमें मनुष्योंके बीच बसाया था॥ २६॥ कमलनयन कार्तवीर्य वर्षाकालमें जल-क्रीडा करते समय समुद्रकी जलराशिके वेगोंको अपनी भुजाओंके आघातसे रोककर पीछेकी ओर लौटा देता था॥ २७॥ फेनरूपी पुष्पहारोंसे अलंकृत नर्मदाकी जलराशिमें जब वह लोटता और क्रीड़ा करता था, तब वह परपुरुषके उपभोगमें आयी हुई नारीके समान शङ्कित-सी होकर अपनी सहस्रों चञ्चल लहरोंके साथ अपने पति समुद्रके निकट जाती थी॥ २८॥ महासागरमें घुसकर जब वह अपनी सहस्रों भुजाएँ पटकता, उस समय समुद्र विक्षुब्ध हो उठता था और पातालनिवासी महादैत्य निश्चेष्ट होकर भयसे छिप जाते थे॥ २९॥ जब राजा अर्जुन अपनी सहस्र भुजाओंसे समुद्रको मथने लगता, उस समय उसकी उठती हुई उत्ताल तरंगें चूर-चूर हो जाती थीं। बड़े-बड़े तिमि और मीन आदि जल-जन्तु छटपटाने लगते थे। भुजाओंके वेगसे उठी हुई वायुसे टकराकर उसकी फेनराशि छिन्न-भिन्न हो जाती थी और समुद्र बड़ी-बड़ी भँवरोंके कारण क्षुब्ध एवं दुःसह दिखायी देता था। देवताओं और असुरोंके द्वारा डाले हुए मन्दराचलने क्षीरसमुद्रकी जो दशा कर दी थी, वैसी ही दशा उसकी भुजाओंसे मथित हुए महासागरकी हो रही थी॥ ३०-३१॥ उस समय मन्दराचलके द्वारा समुद्रमन्थनकी आशङ्कासे चकित और अमृतकी उत्पत्तिसे भयभीत हुए बड़े-बड़े नाग सहसा उछलकर देखते और भयंकर नृपश्रेष्ठ कार्तवीर्यपर दृष्टि पड़ते ही मस्तक झुकाकर पत्थरके समान निश्चेष्ट हो जाते थे। जैसे संध्याके समय वायुके झोंकेसे कदली-खण्ड (केलोंके बगीचे) काँपने लगते हैं, उसी प्रकार उसके शरीरसे उठी हुई वायुके द्वारा वे नाग भी हिलने लगते थे॥ ३२-३३॥

स वै बद्ध्वा धनुर्ज्याभिरुत्सिक्तं पञ्चभिः शरैः।
लङ्केशं मोहयित्वा तु सबलं रावणं बलात्।
निर्जित्यैव समानीय माहिष्मत्यां बबन्ध तम्॥ ३४

श्रुत्वा तु बद्धं पौलस्त्यं रावणं त्वर्जुनेन तु।
ततो गत्वा पुलस्त्यस्तमर्जुनं ददृशे स्वयम्।
मुमोच रक्षः पौलस्त्यं पुलस्त्येनानुयाचितः॥ ३५

यस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वनः।
युगान्ते त्वम्बुदस्येव स्फुटतो ह्यशनेरिव॥ ३६

अहो बत मृधे वीर्यं भार्गवस्य यदच्छिनत्।
राज्ञो बाहुसहस्रं तु हैमं तालवनं यथा॥ ३७

तृषितेन कदाचित् स भिक्षितश्चित्रभानुना।
स भिक्षामददाद् वीरः सप्तद्वीपान् विभावसोः॥ ३८

पुराणि ग्रामघोषांश्च विषयांश्चैव सर्वशः।
जज्वाल तस्य सर्वाणि चित्रभानुर्दिधक्षया॥ ३९

स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रभावेण महात्मनः।
ददाह कार्तवीर्यस्य शैलांश्चैव वनानि च॥ ४०

स शून्यमाश्रमं रम्यं वरुणस्यात्मजस्य वै।
ददाह वनवद् भीतश्चित्रभानुः सहैहयः॥ ४१

यं लेभे वरुणः पुत्रं पुरा भास्वन्तमुत्तमम्।
वसिष्ठं नाम स मुनिः ख्यात आपव इत्युत॥ ४२

यत्रापवस्तु तं क्रोधाच्छप्तवानर्जुनं विभुः।
यस्मान्न वर्जितमिदं वनं ते मम हैहय॥ ४३

तस्मात् ते दुष्करं कर्म कृतमन्यो हनिष्यति।
रामो नाम महाबाहुर्जामदग्न्यः प्रतापवान्॥ ४४

छित्त्वा बाहुसहस्रं ते प्रमथ्य तरसा बली।
तपस्वी ब्राह्मणश्च त्वां वधिष्यति स भार्गवः॥ ४५

राजा कार्तवीर्यने अभिमानसे भरे हुए लङ्कापति रावणको अपने पाँच ही बाणोंद्वारा सेनासहित मूर्छित एवं पराजित करके धनुषकी प्रत्यञ्चासे बाँध लिया और माहिष्मतीपुरीमें लाकर बंदी बना लिया॥ ३४॥ अर्जुनने मेरे वंशज रावणको कैद कर लिया है, यह सुनकर महर्षि पुलस्त्य स्वयं वहाँ गये और अर्जुनसे मिले। पुलस्त्यके प्रार्थना करनेपर उसने उनके पौत्र राक्षस रावणको मुक्त कर दिया॥ ३५॥ अर्जुनकी हजार भुजाओंमें धारण किये गये धनुषोंकी प्रत्यञ्चाका ऐसा घोर शब्द होता था, मानो प्रलयकालके मेघ गरजते हों अथवा वज्र फट पड़ा हो॥ ३६॥ अहो! भृगुवंशी परशुरामजीका पराक्रम धन्य है, जिससे उन्होंने युद्धमें सुवर्णमय तालवनके समान राजा कार्तवीर्यकी सहस्रों भुजाओंको काट डाला था॥ ३७॥ एक दिनकी बात है—भूखे-प्यासे अग्निदेवने राजा कार्तवीर्यसे भिक्षा माँगी। तब उस वीर राजाने सातों द्वीप, नगर, गाँव, गोष्ठ तथा सारा राज्य अग्निदेवको भिक्षामें दे दिये। अग्निदेव सर्वत्र प्रज्वलित हो उठे और पुरुषप्रवर महात्मा कार्तवीर्यके प्रभावसे समस्त पर्वतों एवं वनोंको जलाने लगे॥ ३८—४०॥ कार्तवीर्यकी सहायतासे अग्निने दूसरे साधारण वनोंकी भाँति वरुणपुत्रके रमणीय आश्रमको भी सूना पाकर डरते-डरते जला दिया॥ ४१॥ पूर्वकालमें वरुणने जिन तेजस्वी एवं श्रेष्ठ महर्षिको पुत्ररूपमें प्राप्त किया था, उनका नाम वसिष्ठ है। वे ही मुनि आपव नामसे भी विख्यात हैं॥ ४२॥ महर्षि वसिष्ठका सूना आश्रम जलाया गया था, इसलिये उन ऐश्वर्यशाली आपवने अर्जुनको क्रोधपूर्वक शाप दिया—'हैहय! तूने मेरे इस वनको भी जलाये बिना न छोड़ा, इसलिये तेरे द्वारा जो विश्वविजय आदि यशोवर्द्धक दुष्कर कर्म किया गया है, उसे दूसरा वीर (तुझे पराजित करके) नष्ट कर डालेगा। 'जमदग्निके प्रतापी पुत्र महाबाहु परशुराम बलवान् और तपस्वी ब्राह्मण हैं। वे भृगुवंशी वीर तुझे बलपूर्वक मथ डालेंगे और तेरी इन सहस्र भुजाओंको काटकर तुझे भी मौतके घाट उतार देंगे'॥ ४३—४५॥

वैशम्पायन उवाच

अनष्टद्रव्यता यस्य बभूवामित्रकर्शन।
प्रभावेण नरेन्द्रस्य प्रजा धर्मेण रक्षतः॥ ४६

रामात् ततोऽस्य मृत्युर्वै तस्य शापान्मुनेर्नृप।
वरश्चैष हि कौरव्य स्वयमेव वृतः पुरा॥ ४७

तस्य पुत्रशतस्यासन् पञ्च शेषा महात्मनः।
कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो यशस्विनः॥ ४८

शूरसेनश्च शूरश्च धृष्टोक्तः कृष्ण एव च।
जयध्वजश्च नाम्नाऽऽसीदावन्त्यो नृपतिर्महान्॥ ४९

कार्तवीर्यस्य तनया वीर्यवन्तो महारथाः।
जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः॥ ५०

तस्य पुत्राः शतं ख्यातास्तालजङ्घा इति श्रुताः।
तेषां कुले महाराज हैहयानां महात्मनाम्॥ ५१

वीतिहोत्राः सुजाताश्च भोजाश्चावन्तयः स्मृताः।
तौण्डिकेरा इति ख्यातास्तालजङ्घास्तथैव च॥ ५२

भरताश्च सुता जाता बहुत्वान्नानुकीर्तिताः।
वृषप्रभृतयो राजन् यादवाः पूर्णकर्मिणः॥ ५३

वृषो वंशधरस्तत्र तस्य पुत्रोऽभवन्मधुः।
मधोः पुत्रशतं त्वासीद् वृषणस्तस्य वंशभाक्॥ ५४

वृषणाद् वृष्णयः सर्वे मधोस्तु माधवाः स्मृताः।
यादवा यदुना चाग्रे निरुच्यन्ते च हैहयाः॥ ५५

न तस्य वित्तनाशोऽस्ति नष्टं प्रतिलभेच्च सः।
कार्तवीर्यस्य यो जन्म कीर्तयेदिह नित्यशः॥ ५६

एते ययातिपुत्राणां पञ्च वंशा विशाम्पते।
कीर्तिता लोकवीराणां ये लोकान् धारयन्ति वै॥ ५७

भूतानीव महाराज पञ्च स्थावरजङ्गमान्।
श्रुत्वा पञ्चविसर्गं तु राजा धर्मार्थकोविदः॥ ५८

वैशम्पायनजी कहते हैं—शत्रुसूदन जनमेजय! धर्मपूर्वक प्रजाकी रक्षा करनेवाले राजा कार्तवीर्यके प्रभावसे उसके राज्यमें किसीकी धन-सम्पत्ति या दूसरी कोई वस्तु नष्ट नहीं होती थी॥ ४६॥ कुरुवंशी नरेश! वसिष्ठ मुनिके शापसे ही परशुरामके हाथसे उसकी मृत्यु हुई थी। उसने स्वयं ही पहले इसी तरहका वर माँगा था॥ ४७॥ महामना कार्तवीर्यके सौ पुत्र थे, किंतु उनमें पाँच ही शेष बचे। वे सभी अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञाता, बलवान्, शूर, धर्मात्मा और यशस्वी थे॥ ४८॥ उनके नाम ये हैं—शूरसेन, शूर, धृष्ट, कृष्ण और जयध्वज। इनमें जयध्वज अवन्तीदेशके महाराज थे॥ ४९॥ कार्तवीर्यके ये सभी पुत्र बलवान् और महारथी थे। जयध्वजके पुत्र महाबली तालजङ्घ हुए॥ ५०॥ तालजङ्घके सौ पुत्र थे, जो तालजङ्घ नामसे ही विख्यात थे। महाराज! महामनस्वी हैहयोंके कुलमें वीतिहोत्र, सुजात, भोज, अवन्ति, तौण्डिकेर, तालजङ्घ तथा भरत आदि क्षत्रियोंके समुदाय उत्पन्न हुए। इनकी संख्या बहुत होनेके कारण इनके पृथक्-पृथक् नाम नहीं बताये गये। राजन्! वृष आदि बहुत-से पुण्यात्मा यादव इस पृथ्वीपर उत्पन्न हुए थे॥ ५१—५३॥ उनमें वृष वंशप्रवर्तक हुए। वृषके पुत्र मधु थे। मधुके सौ पुत्र हुए, जिनमें वृषण वंश चलानेवाले हुए॥ ५४॥ वृषणसे जो संतान-परम्परा चली, उसके अन्तर्गत सभी क्षत्रिय वृष्णि कहलाये और मधुके वंशज माधव नामसे प्रसिद्ध हुए। इसी प्रकार यदुके नामपर उस वंशके लोग यादव कहलाते हैं तथा आगे होनेवाले हैहयके वंशज हैहय कहे जाते हैं॥ ५५॥ जो यहाँ प्रतिदिन कार्तवीर्य अर्जुनके जन्मका वृत्तान्त कहता या सुनता है, उसके धनका नाश नहीं होता और उसकी खोयी हुई वस्तु भी उसे मिल जाती है॥ ५६॥ प्रजानाथ! इस प्रकार ये विश्वविख्यात वीर ययातिपुत्रोंके पाँच वंश यहाँ बतलाये गये हैं। महाराज! जैसे पाँचों भूत स्थावर, जङ्गम प्राणियोंके शरीरोंको धारण करते हैं, उसी प्रकार ये पाँचों वंश समस्त लोकोंको धारण करते हैं। इन पाँचों वंशोंकी सृष्टिका वर्णन सुनकर राजा धर्म और अर्थके तत्त्वका ज्ञाता होता है,

वशी भवति पञ्चानामात्मजानां तथेश्वरः।
लभेत् पञ्च वरांश्चैव दुर्लभानिह लौकिकान्॥ ५९
आयुः कीर्तिं तथा पुत्रानैश्वर्यं भूमिमेव च।
धारणाच्छ्रवणाच्चैव पञ्चवर्गस्य भारत॥ ६०
क्रोष्टोस्तु शृणु राजेन्द्र वंशमुत्तमपौरुषम्।
यदोर्वंशधरस्याथ यज्वनः पुण्यकर्मणः॥ ६१
क्रोष्टुर्हि वंशं श्रुत्वेमं सर्वपापैः प्रमुच्यते।
यस्यान्ववायजो विष्णुर्हरिर्वृष्णिकुलोद्वहः॥ ६२

अपनी पाँचों इन्द्रियोंको वशमें रखता है तथा अपने पुत्रोंपर प्रभुत्व स्थापित कर लेता है। भरतनन्दन! इन पाँचों वंशोंके श्रवण और धारणसे मनुष्य इस जगत्में आयु, कीर्ति, पुत्र, ऐश्वर्य तथा भूमि—इन पाँच लोकोपयोगी दुर्लभ वरोंको प्राप्त कर लेता है॥ ५७—६०॥ राजेन्द्र! अब तुम उत्तम पुरुषार्थसे युक्त क्रोष्टुवंशका वर्णन सुनो। राजा क्रोष्टु यदुके वंशधर, यज्ञ करनेवाले तथा पुण्यकर्मा थे। उनके इस वंशका वर्णन सुनकर मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। राजा क्रोष्टु वे ही हैं, जिनके कुलमें सर्वव्यापी भगवान् श्रीहरिने वृष्णिवंशावतंस श्रीकृष्णके रूपमें अवतार लिया था॥ ६१-६२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें तैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३३॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

वृष्णिवंशका वर्णन—अक्रूर, वसुदेव, कुन्ती, सात्यकि, उद्धव, चारुदेष्ण, एकलव्य आदिका परिचय

वैशम्पायन उवाच

गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टोर्भार्ये बभूवतुः।
गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम्॥ १
माद्री युधाजितं पुत्रं ततोऽन्यं देवमीढुषम्।
तेषां वंशस्त्रिधा भूतो वृष्णीनां कुलवर्धनः॥ २
माद्र्याः पुत्रस्य जज्ञाते सुतौ वृष्ण्यन्धकावुभौ।
जज्ञाते तनयौ वृष्णेः श्वफल्कश्चित्रकस्तथा॥ ३
श्वफल्कस्तु महाराज धर्मात्मा यत्र वर्तते।
नास्ति व्याधिभयं तत्र नावर्षभयमप्युत॥ ४
कदाचित् काशिराजस्य विभोर्भरतसत्तम।
त्रीणि वर्षाणि विषये नावर्षत् पाकशासनः॥ ५
स तत्र वासयामास श्वफल्कं परमार्चितम्।
श्वफल्कपरिवर्ते च ववर्ष हरिवाहनः॥ ६
श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामविन्दत।
गान्दिनीं नाम सा गां तु ददौ विप्रेषु नित्यशः॥ ७
सा मातुरुदरस्था तु बहून् वर्षगणान् किल।
निवसन्ती न वै जज्ञे गर्भस्थां तां पिताब्रवीत्॥ ८

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! क्रोष्टाकी गान्धारी और माद्री नामकी दो भार्याएँ थीं। गान्धारीके गर्भसे महाबली अनमित्र उत्पन्न हुए॥ १॥ माद्रीके पुत्र युधाजित् और दूसरे पुत्र देवमीढुष हुए, वृष्णियोंके कुलको बढ़ानेवाला उनका वंश तीन शाखाओंमें बँट गया॥ २॥ माद्रीके पुत्र (युधाजित्)-के वृष्णि और अन्धक नामके दो पुत्र हुए और वृष्णिके पुत्र श्वफल्क तथा चित्रक हुए॥ ३॥ महाराज! धर्मात्मा श्वफल्क जहाँ रहते थे, वहाँ व्याधि और अनावृष्टिका भय नहीं होता था॥ ४॥ भरतसत्तम! एक समय शक्तिशाली काशिराजके देशमें इन्द्रने तीन वर्षतक पानी नहीं बरसाया॥ ५॥ तब उन्होंने परम पूज्य श्वफल्कको बुलाकर अपने यहाँ ठहराया और श्वफल्कके पधारते ही इन्द्रने जल बरसाना आरम्भ कर दिया॥ ६॥ श्वफल्कका काशिराजकी गान्दिनी नामवाली पुत्रीसे विवाह हो गया। वह ब्राह्मणोंको नित्यप्रति गौओंका दान देती रहती थी (इसीलिये उसका नाम गान्दिनी पड़ा था)॥ ७॥ वह अपनी माताके उदरमें बहुत वर्षोंतक रही थी और उत्पन्न नहीं होती थी, तब गर्भमें स्थित कन्यासे उसके पिताने कहा—॥ ८॥

जायस्व शीघ्रं भद्रं ते किमर्थमिह तिष्ठसि।
प्रोवाच चैनं गर्भस्था कन्या गां च दिने दिने॥ ९
यदि दद्यां ततोऽद्याहं जाययिष्यामि तां पिता।
तथेत्युवाच तं चास्याः पिता काममपूरयत्॥ १०
दाता यज्वा च धीरश्च श्रुतवानतिथिप्रियः।
अक्रूरः सुषुवे तस्माच्छ्वफल्काद् भूरिदक्षिणः॥ ११
उपासङ्गस्तथा मद्गुर्मृदुरश्चारिमेजयः।
अविक्षिपस्तथोपेक्षः शत्रुघ्नोऽथारिमर्दनः॥ १२
धर्मधृग् यतिधर्मा च गृध्रो भोजोऽन्धकस्तथा।
आवाहप्रतिवाहौ च सुन्दरी च वराङ्गना॥ १३
अक्रूरेणोग्रसेनायां सुगात्र्यां कुरुनन्दन।
प्रसेनश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्चसौ॥ १४
चित्रकस्याभवन् पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च।
अश्वग्रीवोऽश्वबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ॥ १५
अरिष्टनेमिरश्वश्च सुधर्मा धर्मभृत् तथा।
सुबाहुर्बहुबाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ॥ १६
अश्मक्यां जनयामास शूरं वै देवमीढुषः।
महिष्यां जज्ञिरे शूराद् भोज्यायां पुरुषा दश॥ १७
वसुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकदुन्दुभिः।
जज्ञे यस्य प्रसूतस्य दुन्दुभ्यः प्राणदन् दिवि॥ १८
आनकानां च संह्लादः सुमहानभवद् दिवि।
पपात पुष्पवर्षं च शूरस्य भवने महत्॥ १९
मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति समो भुवि।
यस्यासीत् पुरुषाग्र्यस्य कान्तिश्चन्द्रमसो यथा॥ २०
देवभागस्ततो जज्ञे तथा देवश्रवाः पुनः।
अनाधृष्टिः कनवको वत्सावानथ गृञ्जिमः॥ २१
श्यामः शमीको गण्डूषः पञ्च चास्य वराङ्गनाः।
पृथुकीर्तिः पृथा चैव श्रुतदेवा श्रुतश्रवाः॥ २२
राजाधिदेवी च तथा पञ्चैता वीरमातरः।
पृथां दुहितरं वव्रे कुन्तिस्तां कुरुनन्दन॥ २३
शूरः पूज्याय वृद्धाय कुन्तिभोजाय तां ददौ।
तस्मात् कुन्तीति विख्याता कुन्ति भोजात्मजा पृथा॥ २४

'(भद्रे!) तेरा कल्याण हो, तू शीघ्र ही उत्पन्न हो, तू (इतने वर्षोंसे) किसलिये गर्भमें पड़ी हुई है।' तब उस गर्भमें स्थित कन्याने कहा—'यदि आप प्रतिदिन मुझसे गोदान करानेका संकल्प करें तो मैं आज ही उत्पन्न हो जाऊँ।' तब पिताने उससे 'तथास्तु' कहकर उसकी कामनाको पूर्ण किया॥ ९-१०॥ इन श्वफल्क (और गान्दिनी)-के यहाँ दान देनेवाले, यज्ञ करनेवाले, धैर्यवान्, शास्त्रोंके ज्ञाता, अतिथियोंसे प्रेम करनेवाले तथा प्रचुर दक्षिणाएँ देनेवाले अक्रूर उत्पन्न हुए॥ ११॥ तथा उपासङ्ग, मद्गु, मृदुर, अरिमेजय, अविक्षिप, उपेक्ष, शत्रुघ्न, अरिमर्दन, धर्मधृक्, यतिधर्मा, गृध्र, भोज, अन्धक, आवाह और प्रतिवाह (नामक अक्रूरजीके भाई) तथा वराङ्गना नामकी सुन्दरी कन्या (भी) उत्पन्न हुई॥ १२-१३॥ कुरुनन्दन! इन अक्रूरजीसे सुन्दराङ्गी उग्रसेनाके द्वारा देवताओंके समान कान्तिवाले प्रसेन तथा उपदेव नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए॥ १४॥ (अक्रूरजीके भाई) चित्रकके श्रविष्ठा और श्रवणा नामकी दो धर्मपत्नियाँ थीं, जिनसे पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, अश्वबाहु, सुपार्श्वक, गवेषण, अरिष्टनेमि, अश्व, सुधर्मा, धर्मभृत्, सुबाहु तथा बहुबाहु नामक पुत्र उत्पन्न हुए॥ १५-१६॥ (क्रोष्टाके तृतीय पुत्र) देवमीढुषके अश्मकी नामकी पत्नीसे शूर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। शूरके भोजराजकुमारीसे दस पुत्र उत्पन्न हुए॥ १७॥ पहले महाबाहु वसुदेवजी उपनाम आनकदुन्दुभि उत्पन्न हुए, इनके उत्पन्न होनेपर स्वर्गमें—आकाशमें दुन्दुभियाँ बजी थीं॥ १८॥ तथा स्वर्गमें—आकाशमें नगारोंका बड़ा भारी शब्द हुआ था। (इसीसे वसुदेवजीका नाम आनकदुन्दुभि पड़ा।) साथ ही इनके उत्पन्न होनेपर शूरके घरमें पुष्पोंकी बड़ी भारी वर्षा हुई थी॥ १९॥ पुरुषोंमें अग्रगण्य वसुदेवजीकी कान्ति चन्द्रमाके समान थी, इनके समान रूपवान् सम्पूर्ण मनुष्यलोकमें और कोई नहीं था॥ २०॥ कुरुनन्दन! वसुदेवजीके बाद (शूरके यहाँ) देवभाग, देवश्रवा, अनाधृष्टि, कनवक, वत्सावान्, गृञ्जिम, श्याम, शमीक और गण्डूष नामक पुत्र तथा पृथुकीर्ति, पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी नामकी पाँच कन्याएँ उत्पन्न हुईं थीं, जो रमणियोंमें रत्नके समान थीं। ये पाँचों कन्याएँ वीर पुत्रोंकी माता थीं। राजा कुन्तिने पृथाको अपनी पुत्री बनानेके लिये माँग लिया। (इसपर) शूरसेनने पृथाको पूज्य तथा वृद्ध राजा कुन्तिभोजको दे दिया। इस कारण पृथा कुन्तिभोजकी पुत्री और कुन्ती नामसे विख्यात हुई॥ २१—२४॥

अन्त्यस्य श्रुतदेवायां जगृहुः सुषुवे सुतः।
श्रुतश्रवायां चैद्यस्य शिशुपालो महाबलः॥ २५
हिरण्यकशिपुर्योऽसौ दैत्यराजोऽभवत् पुरा।
पृथुकीर्त्यां तु तनयः संजज्ञे वृद्धशर्मणः॥ २६
करूषाधिपतिर्वीरो दन्तवक्रो महाबलः।
पृथां दुहितरं चक्रे कुन्तिस्तां पाण्डुरावहत्॥ २७
यस्यां स धर्मविद् राजा धर्माज्जज्ञे युधिष्ठिरः।
भीमसेनस्तथा वातादिन्द्राच्चैव धनञ्जयः॥ २८
लोकेऽप्रतिरथो वीरः शक्रतुल्यपराक्रमः।
अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद् वृष्णिनन्दनात्॥ २९
शैनेयः सत्यकस्तस्माद् युयुधानश्च सात्यकिः।
असङ्गो युयुधानस्य भूमिस्तस्याभवत् सुतः॥ ३०
भूमेर्युगधरः पुत्र इति वंशः समाप्यते।
उद्धवो देवभागस्य महाभागः सुतोऽभवत्।
पण्डितानां परं प्राहुर्देवश्रवसमुद्धवम्॥ ३१
अश्मक्यां प्राप्तवान् पुत्रमनाधृष्टिर्यशस्विनम्।
निवृत्तशत्रुं शत्रुघ्नं देवश्रवा व्यजायत॥ ३२
देवश्रवाः प्रजातस्तु नैषादिर्यः प्रतिश्रुतः।
एकलव्यो महाराज निषादैः परिवर्धितः॥ ३३
वत्सावते त्वपुत्राय वसुदेवः प्रतापवान्।
अद्भिर्ददौ सुतं वीरं शौरिः कौशिकमौरसम्॥ ३४
गण्डूषाय त्वपुत्राय विष्वक्सेनो ददौ सुतान्।
चारुदेष्णं सुचारुं च पञ्चालं कृतलक्षणम्॥ ३५
असंग्रामेण यो वीरो नावर्तत कदाचन।
रौक्मिणेयो महाबाहुः कनीयान् पुरुषर्षभ॥ ३६
वायसानां सहस्राणि यं यान्तं पृष्ठतोऽन्वयुः।
चारुमांसानि भोक्ष्यामश्चारुदेष्णहतानि तु॥ ३७
तन्द्रिजस्तन्द्रिपालश्च सुतौ कनवकस्य तु।
वीरश्चाश्वहनश्चैव वीरौ तावथ गृञ्जिमौ॥ ३८

अन्त्यके श्रुतदेवासे जगृहु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ तथा चेदिवंशी दमघोषके श्रुतश्रवासे महाबली शिशुपाल उत्पन्न हुआ, यह पहले जन्ममें दैत्यराज हिरण्यकशिपु था। वृद्धशर्मासे पृथुकीर्तिके करूष देशका स्वामी महाबली वीर दन्तवक्र उत्पन्न हुआ। कुन्तिभोजने जिन पृथाको अपनी पुत्री बना लिया था, उनका विवाह पाण्डुके साथ हुआ। उन पृथाके धर्मके जाननेवाले राजा युधिष्ठिर धर्मसे उत्पन्न हुए और वायुसे भीमसेन तथा इन्द्रसे संसारके अनुपम वीर, इन्द्रके समान पराक्रमी धनञ्जय (अर्जुन) उत्पन्न हुए। क्रोष्टाके सबसे छोटे पुत्र, सकल वृष्णिवंशियोंको प्रसन्न करनेवाले अनमित्रसे शिनि उत्पन्न हुए, उनसे शैनेय उपनाम सत्यक हुए और उनसे युयुधान उपनामवाले सात्यकि हुए। युयुधानके पुत्र असङ्ग हुए और असङ्गके पुत्र भूमि हुए। भूमिके पुत्र युगधर हुए। यहाँपर क्रोष्टाका वंश समाप्त होता है। (वसुदेवजीके भ्राता) देवभागके उद्धव नामक महाभाग्यवान् पुत्र उत्पन्न हुए। ये उद्धव देवताओंके समान कीर्तिवाले एवं परम पण्डितके रूपमें प्रसिद्ध हुए॥ २५—३१॥ (वसुदेवजीके तीसरे भाई) अनाधृष्टिने अश्मकीसे यशस्वी नामक पुत्रको उत्पन्न किया तथा दूसरे भाई देवश्रवाने शत्रुओंको हटानेवाले शत्रुघ्न नामक पुत्रको उत्पन्न किया॥ ३२॥ महाराज! (किसी कारणवश बालकपनमें ही त्याग दिये जानेके कारण) इस देवश्रवाके पुत्रको निषादोंने पालकर बड़ा किया था, इसलिये यह निषादवंशी एकलव्यके नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ ३३॥ शूरनन्दन प्रतापी वसुदेवजीने (अपने छोटे भाई) पुत्रहीन वत्सावान्‌को अपना औरस पुत्र कौशिक जलसे संकल्प करके दे दिया॥ ३४॥ (इसी प्रकार) श्रीकृष्णने (वसुदेवजीके दूसरे छोटे भाई) अपुत्र गण्डूषको चारुदेष्ण, सुचारु, पञ्चाल और कृतलक्षण नामके अपने चार पुत्र दे दिये॥ ३५॥ पुरुषर्षभ! रुक्मिणीके छोटे पुत्र महाभुज चारुदेष्ण युद्ध किये बिना (रणभूमिसे) कभी नहीं लौटते थे॥ ३६॥ उनके पीछे हजारों कौए इस इच्छासे जाते थे कि इनके द्वारा मारे गये शत्रुओंका चारु (स्वादिष्ट) मांस हम खायेंगे, (इस प्रकार कौओंको) चारु (स्वादिष्ट) भोजन देनेवाले होनेसे ये चारुदेष्ण कहलाये॥ ३७॥ (वसुदेवजीके भाई) कनवकके तन्द्रिज और तन्द्रिपाल नामक दो पुत्र हुए तथा गृञ्जिमके वीर और अश्वहन नामक दो वीर पुत्र उत्पन्न हुए॥ ३८॥

श्यामपुत्रः शमीकस्तु शमीको राज्यमावहत्।
जुगुप्समानौ भोजत्वाद् राजसूयमवाप सः।
अजातशत्रुः शत्रूणां जज्ञे तस्य विनाशनः॥ ३९

वसुदेवसुतान् वीरान् कीर्तयिष्यामि ताञ्छृणु॥ ४०

वृष्णेस्त्रिविधमेतत् तु बहुशाखं महौजसम्।
धारयन् विपुलं वंशं नानर्थैरिह युज्यते॥ ४१

(वसुदेवजीके भाई श्याम अपने छोटे भाई शमीकको अपने पुत्रके समान मानते थे। इस कारण) श्यामके पुत्र शमीक हुए। इन शमीकने राज्य किया था, उन्होंने भोज होनेके कारण (अर्थात् भोजवंशी एक वंशके और एक देशके ही राजा हैं—यह) निन्दा मानकर उन्होंने राजसूय (साम्राज्य) पाया था। शमीकके शत्रुनाशक अजातशत्रु नामक पुत्र हुआ॥ ३९॥ अब मैं वसुदेवजीके वीर पुत्रोंका वर्णन करता हूँ, उसको आप सुनिये॥ ४०॥ जो मनुष्य वृष्णिके बहुत-सी शाखाओंवाले, महापराक्रमी पुरुषोंसे सुशोभित इस तीन प्रकारके बड़े विशाल वंशके वृत्तान्तको मनमें धारण करता है, वह इस संसारके अनर्थोंसे मुक्त रहता है॥ ४१॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि वृष्णिवंशकीर्तनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें वृष्णिवंशका कीर्तनविषयक चौंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३४॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णका अवतार लेना, श्रीकृष्णके अन्य भाई-बहिनों और कुटुम्बियोंका वर्णन तथा कालयवनकी उत्पत्ति

वैशम्पायन उवाच

याः पत्न्यो वसुदेवस्य चतुर्दश वराङ्गनाः।
पौरवी रोहिणी नाम इन्दिरा च तथा वरा॥ १

वैशाखी च तथा भद्रा सुनाम्नी चैव पञ्चमी।
सहदेवा शान्तिदेवा श्रीदेवा देवरक्षिता॥ २

वृकदेव्युपदेवी च देवकी चैव सप्तमी।
सुतनुर्वडवा चैव द्वे एते परिचारिके॥ ३

पौरवी रोहिणी नाम बाह्लिकस्यात्मजाभवत्।
ज्येष्ठा पत्नी महाराज दयिताऽऽनकदुन्दुभेः॥ ४

लेभे ज्येष्ठं सुतं रामं सारणं शठमेव च।
दुर्दमं दमनं श्वभ्रं पिण्डारकमुशीनरम्॥ ५

चित्रां नाम कुमारीं च रोहिणीतनया दश।
चित्रा सुभद्रेति पुनर्विख्याता कुरुनन्दन॥ ६

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वसुदेवजीकी जो चौदह सुन्दराङ्गी पत्नियाँ थीं, उनमें रोहिणी और रोहिणीसे छोटी इन्दिरा, वैशाखी, भद्रा तथा पाँचवीं सुनाम्नी—ये पाँच पौरववंशकी थीं तथा सहदेवा, शान्तिदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी तथा सातवीं देवकी—ये सात देवककी पुत्रियाँ थीं तथा सुतनु और वडवा—ये दो उनकी परिचर्या करनेवाली स्त्रियाँ थीं॥ १—३॥ महाराज! पौरववंशकी कुमारी रोहिणी (महाराज शन्तनुके बड़े भाई) बाह्लिककी पुत्री थीं, वे वसुदेवजीकी प्रियतमा बड़ी पत्नी थीं॥ ४॥ कुरुनन्दन! रोहिणीके ज्येष्ठ पुत्र बलराम और (उनसे छोटे) सारण, शठ, दुर्दम, दमन श्वभ्र, पिण्डारक और उशीनर हुए तथा चित्रा नामकी पुत्री उत्पन्न हुई। (यह चित्रा एक अप्सरा थी, जो रोहिणीके गर्भसे उत्पन्न होते ही मर गयी थी। इसने मरते समय अपनेको धिक्कारा था कि मैं यादवकुलमें जन्म धारण करके भी यदुवंशमें उत्पन्न होनेवाले भगवान्‌की लीलाको न देख सकी। इस वासनाके कारण) यह चित्रा ही दूसरी बार सुभद्रा बनकर उत्पन्न हुई। इस प्रकार रोहिणीके दस संतानें उत्पन्न हुईं॥ ५-६॥

वसुदेवाच्च देवक्यां जज्ञे शौरिर्महायशाः।
रामाच्च निशठो जज्ञे रेवत्यां दयितः सुतः॥ ७

सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत।
अक्रूरात् काशिकन्यायां सत्यकेतुरजायत॥ ८

वसुदेवस्य भार्यासु महाभागासु सप्तसु।
ये पुत्रा जज्ञिरे शूरा नामतस्तान् निबोध मे॥ ९

भोजश्च विजयश्चैव शान्तिदेवासुतावुभौ।
वृकदेवः सुनामायां गदश्चास्तां सुतावुभौ॥ १०

उपासङ्गवरं लेभे तनयं देवरक्षिता।
अगावहं महात्मानं वृकदेवी व्यजायत॥ ११

कन्या त्रिगर्तराजस्य भर्ता वै शैशिरायणः।
जिज्ञासां पौरुषे चक्रे न चस्कन्देऽथ पौरुषम्॥ १२

कृष्णायससमप्रख्यो वर्षे द्वादशमे तथा।
मिथ्याभिशप्तो गार्ग्यस्तु मन्युनाभिसमीरितः॥ १३

गोपकन्यामुपादाय मैथुनायोपचक्रमे।
गोपाली त्वप्सरास्तस्य गोपस्त्रीवेषधारिणी॥ १४

धारयामास गार्ग्यस्य गर्भं दुर्धरमच्युतम्।
मानुष्यां गार्ग्यभार्यायां नियोगाच्छूलपाणिनः॥ १५

स कालयवनो नाम जज्ञे राजा महाबलः।
वृषपूर्वार्धकायास्तमवहन् वाजिनो रणे॥ १६

अपुत्रस्य स राज्ञस्तु ववृधेऽन्तःपुरे शिशुः।
यवनस्य महाराज स कालयवनोऽभवत्॥ १७

स युद्धकामी नृपतिः पर्यपृच्छद् द्विजोत्तमान्।
वृष्ण्यन्धककुलं तस्य नारदोऽकथयद् विभुः॥ १८

अक्षौहिण्या तु सैन्यस्य मथुरामभ्ययात् तदा।
दूतं सम्प्रेषयामास वृष्ण्यन्धकनिवेशनम्॥ १९

ततो वृष्ण्यन्धकाः कृष्णं पुरस्कृत्य महामतिम्।
समेता मन्त्रयामासुर्यवनस्य भयात् तदा॥ २०

वसुदेवसे देवकीद्वारा महायशस्वी श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए और बलरामजीसे रेवतीके द्वारा उनके प्रिय पुत्र निशठ उत्पन्न हुए॥ ७॥ अर्जुनसे सुभद्राद्वारा रथी अभिमन्यु उत्पन्न हुए और अक्रूरसे काशिराजकुमारीद्वारा सत्यकेतु उत्पन्न हुए॥ ८॥ वसुदेवजीकी सात महाभाग्यवती पत्नियोंसे जो शूरवीर पुत्र उत्पन्न हुए, उनके नाम मैं आपसे कहता हूँ, सुनिये॥ ९॥ भोज और विजय—ये दो शान्तिदेवाके पुत्र थे तथा वृकदेव और गद—ये दो सुनाम्नीके पुत्र थे॥ १०॥ देवरक्षिताके पुत्र उपासङ्गवर हुए और वृकदेवीके पुत्र महात्मा अगावह हुए॥ ११॥ वृकदेवी त्रिगर्तराजकी कन्या थीं। त्रिगर्तराजका भर्ता (पुरोहित) गर्गगोत्री शैशिरायण था। उसके सालेने, जो यादवोंका पुरोहित था, यह जानना चाहा कि इसमें पुंस्त्व है अथवा नहीं, परंतु (व्रतधारी होनेसे) उसका वीर्य स्खलित नहीं हुआ (इसपर उसके सालेने हास्यवश उसको मिथ्या ही नपुंसक घोषित कर दिया)॥ १२॥ बारह वर्षका नियम पूर्ण होनेपर मिथ्या ही नपुंसकताका दोष लगाये जानेके कारण गर्गगोत्री शैशिरायण क्रोधमें भर गये, इससे उनके शरीरका वर्ण लोहेके समान काला दीखने लगा॥ १३॥ उन्होंने एक गोपकन्याके साथ सहवास किया। वह स्त्री गोप-स्त्रीका वेश धारण करनेवाली गोपाली नामकी अप्सरा थी॥ १४॥ उसने गार्ग्य शैशिरायणके अच्युत और दुर्धर वीर्यको धारण कर लिया। उस मनुष्यका वेश धारण करनेवाली गार्ग्यकी भार्यासे शिवजीकी आज्ञासे कालयवन नामक प्रसिद्ध महाबली राजा उत्पन्न हुआ था, बैलोंके समान आधे शरीरवाले घोड़े युद्धमें उसके वाहन बनते थे॥ १५-१६॥ महाराज! एक यवन राजा संतानहीन था, उसके अन्तःपुरमें वह बालक पलने लगा। इस प्रकार वह कालयवनके नामसे प्रसिद्ध* हुआ॥ १७॥ वह राजा युद्ध करनेकी इच्छासे प्रेरित हो ब्राह्मणोंसे (अपने समान योद्धाओंको) पूछने लगा। सब जगह पहुँचनेवाले नारदजीने उसे वृष्णि और अन्धककुलके वीरोंको उसके समान योद्धा बताया॥ १८॥ तब वह एक अक्षौहिणी सेना लेकर मथुरापुरीपर चढ़ आया। उसने वृष्णि और अन्धकोंके भवनमें दूतको भेजा॥ १९॥ तब कालयवनके डरसे वृष्णि और अन्धकोंने महामति श्रीकृष्णके सभापतित्वमें इकट्ठे होकर मन्त्रणा की॥ २०॥

* इससे सिद्ध होता है कि गोपाली अप्सरा शकुन्तलाकी भाँति कालयवनको उत्पन्न कर छोड़ गयी थी।

कृत्वा च निश्चयं सर्वे पलायनपरायणाः।
विहाय मथुरां रम्यां मानयन्तः पिनाकिनम्॥ २१

कुशस्थलीं द्वारवतीं निवेशयितुमीप्सवः।
इति कृष्णस्य जन्मेदं यः शुचिर्नियतेन्द्रियः।
पर्वसु श्रावयेद् विद्वाननृणः स सुखी भवेत्॥ २२

तब वे सब निश्चय करके शिवजीकी मनौती मानते हुए कुशस्थली द्वारकाको बसानेकी इच्छासे रमणीय मथुरापुरीको त्यागकर भाग खड़े हुए। जो विद्वान् पुरुष इन्द्रियोंको वशमें करके पवित्र होकर श्रीकृष्णके जन्मकी इस कथाको पर्वके समय सुनाता है, उसका ऋण चुक जाता है और उसको परम सुखकी प्राप्ति होती है॥ २१-२२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि श्रीकृष्णजन्मानुकीर्तनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें श्रीकृष्णजन्मकीर्तनविषयक पैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३५॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

क्रोष्टाके वंशका वर्णन, पुरोहितके गोत्रसे क्षत्रियोंके गोत्रका बदल जाना

वैशम्पायन उवाच

क्रोष्टोरेवाभवत् पुत्रो वृजिनीवान् महायशाः।
वृजिनीवत्सुतश्चापि स्वाहिः स्वाहाकृतां वरः॥ १

स्वाहिपुत्रोऽभवद् राजा रुषद्गुर्वदतां वरः।
महाक्रतुभिरीजे यो विविधैर्भूरिदक्षिणैः॥ २

सुतप्रसूतिमन्विच्छन् रुषद्गुः सोऽग्र्यमात्मजम्।
जज्ञे चित्ररथस्तस्य पुत्रः कर्मभिरन्वितः॥ ३

आसीच्चैत्ररथिर्वीरो यज्वा विपुलदक्षिणः।
शशबिन्दुः परं वृत्तं राजर्षीणामनुष्ठितः॥ ४

पृथुश्रवाः पृथुयशा राजाऽऽसीच्छशबिन्दुजः।
शंसन्ति च पुराणज्ञाः पार्थश्रवसमुत्तरम्॥ ५

अनन्तरं सुयज्ञस्तु सुयज्ञतनयोऽभवत्।
उशतो यज्ञमखिलं स्वधर्ममुशतां वरः॥ ६

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! (यदुके पुत्र) क्रोष्टाके ही एक वृजिनीवान् नामक महायशस्वी पुत्र हुए; वृजिनीवान्के पुत्र स्वाहि हुए, वे स्वाहा अर्थात् होम करनेवालोंमें श्रेष्ठ थे (जिस प्रकार क्रोष्टाके वंशमें श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए, उसी प्रकार क्रोष्टाके वंशमें सत्यभामा आदि भी हुईं; क्षत्रियोंमें एक कुलके होनेपर भी सात पीढ़ियाँ बीत जानेके बाद पुरोहितके गोत्रसे यजमान क्षत्रियका भी गोत्र बदल जाता है और इस प्रकार गोत्रभेदसे उनमें विवाह हो जाते हैं। इस अध्यायमें क्रोष्टाके वंशकी उस शाखाका वर्णन किया जायगा, जिसमें महालक्ष्मीकी अवताररूपा ईश्वरी शक्ति श्रीरुक्मिणीजी उत्पन्न हुई थीं)॥ १॥ स्वाहिके पुत्र रुषद्गु हुए, वे अच्छे बोलनेवाले थे और बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले अनेक प्रकारके महायज्ञ करते रहते थे। उनकी यह इच्छा थी कि मेरे यहाँ पुत्र-पौत्रोंवाला श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हो; इस प्रकार पुत्रेष्टि आदि यज्ञकर्म करते-करते उनके यहाँ चित्ररथ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ॥ २-३॥ चित्ररथके पुत्र वीर शशबिन्दु हुए, वे बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञ करके राजर्षियोंके श्रेष्ठ आचरणका पालन करते रहते थे॥ ४॥ शशबिन्दुके पुत्र महायशस्वी राजा पृथुश्रवा हुए, पुराणोंके जाननेवाले कहते हैं कि पृथुश्रवाके पुत्र उत्तर हुए॥ ५॥ उत्तरके पुत्र सुयज्ञ हुए, सुयज्ञके पुत्र उशत हुए, कामना करनेवालोंमें श्रेष्ठ उशत अपने सम्पूर्ण धर्मों और यज्ञोंका अनुष्ठान सदा करना चाहते थे॥ ६॥

शिनेयुरभवत् सूनुरुशतः शत्रुतापनः।
मरुत्तस्तस्य तनयो राजर्षिरभवन्नृप॥ ७
मरुत्तोऽलभत ज्येष्ठं सुतं कम्बलबर्हिषम्।
चचार विपुलं धर्មममर्षात् प्रेत्यभागपि॥ ८
सुतप्रसूतिमिच्छन् वै सुतं कम्बलबर्हिषः।
बभूव रुक्मकवचः शतप्रसवतः सुतः॥ ९
निहत्य रुक्मकवचः शतं कवचिनां रणे।
धन्विनां निशितैर्बाणैरवाप श्रियमुत्तमाम्॥ १०
जज्ञेऽथ रुक्मकवचात् पराजित् परवीरहा।
जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महावीर्याः पराजितः॥ ११
रुक्मेषुः पृथुरुक्मश्च ज्यामघः पालितो हरिः।
पालितं च हरिं चैव विदेहेभ्यः पिता ददौ॥ १२
रुक्मेषुरभवद् राजा पृथुरुक्मस्य संश्रितः।
ताभ्यां प्रव्राजितो राज्याज्ज्यामघोऽवसदाश्रमे॥ १३
प्रशान्तः स वनस्थस्तु ब्राह्मणैश्चावबोधितः।
जिगाय रथमास्थाय देशमन्यं ध्वजी रथी॥ १४
नर्मदाकूलमेकाकी नगरीं मृत्तिकावतीम्।
ऋक्षवन्तं गिरिं जित्वा शुक्तिमत्यामुवास सः॥ १५
ज्यामघस्याभवद् भार्या शैब्या बलवती सती।
अपुत्रोऽपि च राजा स नान्यां भार्यामविन्दत॥ १६
तस्यासीद् विजयो युद्धे तत्र कन्यामवाप सः।
भार्यामुवाच संत्रस्तः स्नुषेति स नरेश्वरः॥ १७
एतच्छ्रुत्वाब्रवीद् देवी कस्य चेयं स्नुषेति वै।
अब्रवीत् तदुपश्रुत्य ज्यामघो राजसत्तमः॥ १८
यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्योपदानवी।
उग्रेण तपसा तस्याः कन्यायाः सा व्यजायत।
पुत्रं विदर्भं सुभगा शैब्या परिणता सती॥ १९

राजन्! उशतके पुत्र शत्रुओंको संतप्त करनेवाले शिनेयु हुए, उनके पुत्र राजर्षि मरुत्त हुए॥ ७॥ मरुत्तके ज्येष्ठ पुत्र कम्बलबर्हिष हुए। जो धर्म मरणके अनन्तर फल देता है, अपने जीवनमें ही वह उस महान् धर्मका आचरण करने लगे॥ ८॥ कम्बलबर्हिष बेटों-पोतोंसे समृद्ध पुत्र पाना चाहते थे, उस धर्मानुष्ठानके फलरूप उनके रुक्मकवच नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, जो सौ बालकोंमें अकेला बचा था॥ ९॥ रुक्मकवचने युद्धमें धनुष और कवचको धारण करनेवाले सौ योद्धाओंको मारकर बड़ी भारी कीर्ति पायी थी॥ १०॥ रुक्मकवचके पुत्र शत्रुवीरनाशक पराजित् हुए, पराजित्के महावीर्यवान् पाँच पुत्र हुए॥ ११॥ (उनके नाम इस प्रकार हैं—) रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, पालित और हरि। उनके पिता पराजित्ने पालित और हरिको विदेह देशका पालन करनेके लिये वहाँके राजाको दे दिया था॥ १२॥ रुक्मेषु पृथुरुक्मका आश्रय लेकर राजा बन गया था, उन दोनोंने ज्यामघको राज्यसे निकाल दिया, तब ज्यामघ आश्रममें रहने लगा॥ १३॥ वह (वृद्ध होनेसे) शान्त होकर वनमें पड़ा रहता था, परंतु ब्राह्मणोंने तप आदिके द्वारा उसको बलवान् बना दिया; तब रथी ज्यामघने एक ध्वजावाले रथमें बैठकर एक दूसरे देशको जीत लिया॥ १४॥ उसने अकेले ही नर्मदाके किनारेकी मृत्तिकावती नगरी और ऋक्षवान् पर्वतको जीतकर शुक्तिमतीपुरीमें अपना निवास-स्थान बनाया॥ १५॥ ज्यामघकी भार्या सती शैब्या बड़ी बलवती थी, इसलिये ज्यामघने पुत्रहीन होनेपर भी दूसरा विवाह नहीं किया॥ १६॥ उसने एक युद्धमें विजय होनेपर एक कन्या प्राप्त की, उस नरेश्वरने डरकर अपनी भार्यासे उस कन्याको स्नुषा (पुत्रवधू) कह दिया॥ १७॥ यह सुनकर पत्नीने पूछा—'यह किसकी पुत्रवधू है?' तब राजसत्तम ज्यामघने प्रतिज्ञा करके कहा—॥ १८॥ तेरे जो पुत्र उत्पन्न होगा, यह उपदानवी कन्या उसकी भार्या होगी। उस उपदानवी कन्याकी उग्र तपस्याके प्रभावसे सौभाग्यवती शैब्याके बूढ़ी होनेपर भी उसके विदर्भ नामका एक पुत्र उत्पन्न हुआ॥ १९॥

राजपुत्र्यां तु विद्वांसौ स्नुषायां क्रथकौशिकौ।
पश्चाद् विदर्भोऽजनयच्छूरौ रणविशारदौ॥ २०

लोमपादं तृतीयं तु पुत्रं परमधार्मिकम्।
लोमपादात्मजो बभ्रुराह्वतिस्तस्य चात्मजः॥ २१

आह्वतेः कौशिकश्चैव विद्वान् परमधार्मिकः।
चेदिः पुत्रः कौशिकस्य तस्माच्चैद्या नृपाः स्मृताः॥ २२

भीमो विदर्भस्य सुतः कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत्।
कुन्तेर्धृष्टसुतो जज्ञे रणधृष्टः प्रतापवान्।
धृष्टस्य जज्ञिरे शूरास्त्रयः परमधार्मिकाः॥ २३

आवन्तश्च दशार्हश्च बली विषहरश्च यः।
दशार्हस्य सुतो व्योमा व्योम्नो जीमूत उच्यते॥ २४

जीमूतपुत्रो बृहतिस्तस्य भीमरथः सुतः।
अथ भीमरथस्यासीत् पुत्रो नवरथस्तथा॥ २५

तस्य चासीद् दशरथः शकुनिस्तस्य चात्मजः।
तस्मात् करम्भः कारम्भिर्देवरातोऽभवन्नृपः॥ २६

देवक्षत्रोऽभवत् तस्य दैवक्षत्रिर्महायशाः।
देवगर्भसमो जज्ञे देवक्षत्रस्य नन्दनः॥ २७

मधूनां वंशकृद् राजा मधुर्मधुरवागपि।
मधोर्जज्ञेऽथ वैदर्भ्यां पुत्रो मरुवसास्तथा॥ २८

आसीन्मरुवसः पुत्रः पुरुद्वान् पुरुषोत्तमः।
मधुर्जज्ञेऽथ वैदर्भ्यां भद्रवत्यां कुरूद्वहः॥ २९

ऐक्ष्वाकी चाभवद् भार्या सत्त्वांस्तस्यामजायत।
सत्त्वान् सर्वगुणोपेतः सात्त्वतां कीर्तिवर्धनः॥ ३०

इमां विसृष्टिं विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मनः।
युज्यते परया कीर्त्या प्रजावांश्च भवेन्नरः॥ ३१

तदनन्तर विदर्भने उस राजकुमारीसे शूरवीर एवं रणविशारद क्रथ और कौशिक नामके दो विद्वान् पुत्रोंको उत्पन्न किया॥ २०॥ तथा लोमपाद नामक एक तीसरे परम धार्मिक पुत्रको भी उत्पन्न किया। लोमपादके पुत्र बभ्रु हुए और उनके पुत्र हुए आह्वति॥ २१॥

आह्वतिके पुत्र कौशिक हुए, वे विद्वान् और परम धार्मिक थे। कौशिकके पुत्र चेदि हुए, इस कारण उनके वंशके राजा चैद्य कहलाते हैं॥ २२॥ विदर्भका (चौथा) पुत्र भीम हुआ, भीमके पुत्र कुन्ति हुए, कुन्तिके रणमें ढीठ एवं प्रतापवान् धृष्ट नामक पुत्र हुए। धृष्टके शूरवीर एवं परम धार्मिक आवन्त, दशार्ह और बलवान् विषहर नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। दशार्हके पुत्र व्योम हुए और व्योमके पुत्र जीमूत हुए॥ २३-२४॥ जीमूतके पुत्र बृहति और उनके पुत्र भीमरथ हुए; भीमरथके पुत्र नवरथ हुए॥ २५॥ नवरथके पुत्र दशरथ हुए और दशरथके पुत्र शकुनि हुए। शकुनिके पुत्र करम्भ हुए और करम्भके पुत्र राजा देवरात हुए॥ २६॥ देवरातके पुत्र देवक्षत्र हुए। देवक्षत्रको आनन्द देनेवाले महायशस्वी दैवक्षत्रि हुए, वे देवताओंके बालकोंके समान तेजस्वी थे। उनका नाम मधु था, उनकी वाणी भी मधुर थी, वे मधुवंशके प्रवर्तक राजा थे। मधुके वैदर्भीसे मरुवस नामक पुत्र उत्पन्न हुए॥ २७-२८॥ मरुवसके पुत्र पुरुषोत्तम पुरुद्वान् हुए। उन्हींके विदर्भ-राजकुमारी भद्रवतीसे कुरुवंशकी वृद्धि करनेवाला मधु नामक पुत्र हुआ और इक्ष्वाकुवंशकी भार्यासे सत्त्वान् नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। सत्त्वान् सर्वगुणसम्पन्न थे और अपने वंशमें सात्त्वतोंकी कीर्तिको बढ़ानेवाले थे॥ २९-३०॥ मनुष्य महात्मा ज्यामघके इस वंशका परिचय प्राप्त कर परम कीर्ति पाता है और संतानवान् हो जाता है॥ ३१॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें (ज्यामघके वंशका वर्णनविषयक) छत्तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३६॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

बभ्रुवंशका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

सत्त्वतात्सत्त्वसम्पन्नान् कौशल्या सुषुवे सुतान्।
भजिनं भजमानं च दिव्यं देवावृधं नृपम्॥ १
अन्धकं च महाबाहुं वृष्णिं च यदुनन्दनम्।
तेषां विसर्गाश्चत्वारो विस्तरेणेह ताञ्छृणु॥ २
भजमानस्य सृञ्जय्यौ बाह्यकाथोपबाह्यका।
आस्तां भार्ये तयोस्तस्माज्जज्ञिरे बहवः सुताः॥ ३
कृमिश्च क्रमणश्चैव धृष्टः शूरः पुरञ्जयः।
एते बाह्यकसृञ्जय्यां भजमानाद् विजज्ञिरे॥ ४
अयुताजित्सहस्राजिच्छताजिच्चाथ दाशकः।
उपबाह्यकसृञ्जय्यां भजमानाद् विजज्ञिरे॥ ५
यज्वा देवावृधो राजा चचार विपुलं तपः।
पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम स्यादिति निश्चितः॥ ६
संयुज्यात्मानमेवं तु पर्णाशाया जलं स्पृशन्।
सदोपस्पृशतस्तस्य चकार प्रियमापगा॥ ७
चिन्तयाभिपरीता सा जगामैकाभिनिश्चयम्।
कल्याणत्वान्नरपतेस्तस्य सा निम्नगोत्तमा॥ ८
नाध्यगच्छत तां नारीं यस्यामेवंविधः सुतः।
जायेत् तस्मात् स्वयं हन्त भवाम्यस्य सहव्रता॥ ९
अथ भूत्वा कुमारी सा बिभ्रती परमं वपुः।
वरयामास नृपतिं तामियेष च स प्रभुः॥ १०
तस्यामाधत्त गर्भं च तेजस्विनमुदारधीः।
अथ सा दशमे मासि सुषुवे सरितां वरा॥ ११
पुत्रं सर्वगुणोपेतं बभ्रुं देवावृधान्नृपात्।
अत्र वंशे पुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम्॥ १२
गुणान् देवावृधस्याथ कीर्तयन्तो महात्मनः।
यथैवाग्रे समं दूरात् पश्याम च तथान्तिके॥ १३

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! सत्त्वान् उपनामवाले सत्त्वतसे कौशल्याने भजिन, भजमान, दिव्य राजा देवावृध, महाबाहु अन्धक और यदुनन्दन वृष्णि नामक सत्त्वसम्पन्न पुत्रोंको उत्पन्न किया। उनके चार वंश चले, उनको आप विस्तारपूर्वक सुनिये॥ १-२॥ भजमानके सृञ्जयकी पुत्री बाह्यका और उपबाह्यका नामवाली दो स्त्रियाँ थीं। उनसे उसके बहुतसे पुत्र उत्पन्न हुए॥ ३॥ भजमानके सृञ्जयकी पुत्री बाह्यकासे कृमि, क्रमण, धृष्ट, शूर और पुरञ्जय नामक पुत्र उत्पन्न हुए॥ ४॥ उन्हीं भजमानके सृञ्जयकी दूसरी पुत्री उपबाह्यकासे अयुताजित्, सहस्राजित्, शताजित् और दाशक नामक पुत्र उत्पन्न हुए॥ ५॥ यज्ञ करनेवाले राजा देवावृधने 'मेरे सर्वगुणसम्पन्न पुत्र हो' इस निश्चयके साथ बड़ा भारी तप किया॥ ६॥ वे राजा अपने चित्तमें ऐसा निश्चय करके पर्णाशा नदीके जलमें खड़े होकर तप करते थे। अपने जलमें सदा खड़े रहनेवाले राजाका नदीने प्रिय करना चाहा॥ ७॥ उसको ऐसी कोई स्त्री नहीं दीखी, जिसके द्वारा ऐसा पुत्र उत्पन्न हो सके। तब चिन्तासे व्याप्त होकर नदियोंमें श्रेष्ठ पर्णाशाने उस राजाका कल्याण करनेके लिये एकान्तमें यह विचार किया कि 'मैं ही इनकी सहचारिणी बन जाऊँ'॥ ८-९॥ तदनन्तर उसने कुमारी बनकर श्रेष्ठ रूप धारण करके राजाको वरना चाहा और राजाने भी उसको पत्नी बनाना चाहा॥ १०॥ तदनन्तर उन महाबुद्धिमान् राजाने उसमें तेजस्वी गर्भको स्थापित किया, तब उस नदियोंमें श्रेष्ठ पर्णाशाने राजा देवावृधके वीर्यसे दसवें महीनेमें सर्वगुणसम्पन्न बभ्रु नामक पुत्र उत्पन्न किया॥ ११½॥ सुना है कि इस वंशके प्राचीन इतिहासको जाननेवाले लोग महात्मा देवावृधके गुणोंका इस प्रकार कीर्तन करते थे, 'महात्मा देवावृधको हम जैसे दूर देशमें देखते थे, वैसे ही उनको समीपमें देखते थे अर्थात् उनको योगबलसे अनेक रूप धारण कर सर्वत्र एक रूपमें विराजमान देखते थे'॥ १२-१३॥

बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः।
षष्टिश्च षट् च पुरुषाः सहस्राणि च सप्त च॥ १४

एतेऽमृतत्वं सम्प्राप्ता बभ्रुर्देवावृधावपि।
यज्वा दानपतिर्विद्वान् ब्रह्मण्यः सुदृढायुधः॥ १५

कीर्तिमांश्च महातेजाः सात्त्वतानां महावरः।
तस्यान्ववायः सुमहान् भोजा ये मार्तिकावताः॥ १६

अन्धकात् काश्यदुहिता चतुरोऽलभतात्मजान्।
कुकुरं भजमानं च शमिं कम्बलबर्हिषम्॥ १७

कुकुरस्य सुतो धृष्णुर्धृष्णोस्तु तनयस्तथा।
कपोतरोमा तस्याथ तैत्तिरिस्तनयोऽभवत्॥ १८

जज्ञे पुनर्वसुस्तस्मादभिजित् तु पुनर्वसोः।
तस्य वै पुत्रमिथुनं बभूवाभिजितः किल॥ १९

आहुकश्चाहुकी चैव ख्यातौ ख्यातिमतां वरौ।
इमां चोदाहरन्त्यत्र गाथां प्रति तमाहुकम्॥ २०

श्वेतेन परिवारेण किशोरप्रतिमो महान्।
अशीतिचर्मणा युक्तः स नृपः प्रथमं व्रजेत्॥ २१

नापुत्रवान् नाशतदो नासहस्रशतायुषः।
नाशुद्धकर्मा नायज्वा यो भोजमभितो व्रजेत्॥ २२

पूर्वस्यां दिशि नागानां भोजस्येत्यनुमोदनम्।
सोपासङ्गानुकर्षाणां ध्वजिनां सवरूथिनाम्॥ २३

रथानां मेघघोषाणां सहस्राणि दशैव तु।
रूप्यकाञ्चनकक्षाणां सहस्राणि दशापि च॥ २४

तावन्त्येव सहस्राणि उत्तरस्यां तथा दिशि।
आ भूमिपालान् भोजाः स्वानुपतिष्ठन्किङ्किणीकिणः॥ २५

बभ्रु मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं और देवावृध देवताके समान हैं, सात हजार छाछठ पुरुषोंसहित बभ्रु और देवावृध अमृतत्वको प्राप्त हो गये अर्थात् संग्रामभूमिमें अपने प्राणोंको त्यागकर ब्रह्मलोकमें पहुँच गये। राजा बभ्रु दानियोंमें श्रेष्ठ, यज्ञ करनेवाले, विद्वान् और ब्राह्मणभक्त थे। उनके आयुध बड़े दृढ़ थे। वे कीर्तिमान्, महातेजस्वी तथा सात्त्वतवंशियोंमें परम श्रेष्ठ थे। उन बभ्रुका वंश बहुत बड़ा है, मार्तिकावतभोज उनकी ही संतानोंमें हैं॥ १४—१६॥ अन्धकसे काशिराज (दृढाश्व)-की पुत्रीके द्वारा कुकुर, भजमान, शमि और कम्बलबर्हिष नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए॥ १७॥ कुकुरके पुत्र धृष्णु और धृष्णुके पुत्र कपोतरोमा हुए तथा उनके पुत्र तैत्तिरि हुए॥ १८॥ तैत्तिरिके पुत्र पुनर्वसु हुए, पुनर्वसुके पुत्र अभिजित् हुए; उन अभिजित्के एक पुत्र और एक पुत्री—ये दो जुड़वाँ संतानें हुईं, ऐसी बात सुनी जाती है॥ १९॥ ख्यातिप्राप्त लोगोंमें श्रेष्ठ वे दोनों आहुक और आहुकीके नामसे प्रसिद्ध हुए। इन आहुकके सम्बन्धमें (मनुष्य) इस गाथाको गाया करते हैं॥ २०॥ वह तरुण घोड़ेके समान उत्साही राजा जब अपने विशुद्ध परिवारके साथ चलते थे, तब उनके (काठके बने) राज-सिंहासनको अस्सी मनुष्य उठाया करते थे॥ २१॥ उन भोजके साथ उन्हें घेरकर चलनेवाले लोगोंमें ऐसा कोई नहीं था, जो पुत्रहीन हो अथवा सैकड़ोंकी दक्षिणा देनेवाला न हो अथवा सैकड़ों-सहस्रों वर्षोंकी आयुवाला न हो या अशुद्ध कर्म करनेवाला हो तथा यज्ञ करनेवाला न हो॥ २२॥ पूर्वदिशामें राजा भोज (आहुक)-का अभिनन्दन करनेके लिये चाँदी और सोनेकी साँकलोंसे बाँधे जानेवाले दस हजार हाथी आते थे तथा उपासङ्ग (जुआ), अनुकर्ष (रथके नीचेका काष्ठ) और वरूथ (रथत्राण कवच)-वाले एवं मेघोंकी भाँति घोष करनेवाले ध्वजाधारी दस हजार रथ उनका स्वागत करनेके लिये आते थे॥ २३-२४॥ उतने ही हजार रथ और हाथी उत्तर तथा अन्य दिशाओंमें भी राजा आहुकका अभिनन्दन करनेके लिये आते थे। भोजवंशी यादव सब सामन्तोंको वशमें करके आहुककी उपासना करते थे। राजा आहुकने उन सबके रथ सोनेकी घंटियों—घूँघुरुओंवाले बनवा दिये थे॥ २५॥

आहुकीं चाप्यवन्तिभ्यः स्वसारं ददुरन्धकाः।
आहुकस्य तु काश्यायां द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतुः॥ २६
देवकश्चोग्रसेनश्च देवपुत्रसमावुभौ।
देवकस्याभवन्पुत्राश्चत्वारस्त्रिदशोपमाः॥ २७
देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः।
कुमार्यः सप्त चाप्यासन् वसुदेवाय ता ददौ॥ २८
देवकी शान्तिदेवा च सुदेवा देवरक्षिता।
वृकदेव्युपदेवी च सुनासी चैव सप्तमी॥ २९
नवोग्रसेनस्य सुतास्तेषां कंसस्तु पूर्वजः।
न्यग्रोधश्च सुनामा च कङ्कः शंकुः सुभूमिपः॥ ३०
राष्ट्रपालोऽथ सुतनुरनाधृष्टिश्च पुष्टिमान्।
तेषां स्वसारः पञ्चाऽऽसन् कंसा कंसवती तथा॥ ३१
सुतनू राष्ट्रपाली च कङ्का चैव वराङ्गना।
उग्रसेनः सहापत्यो व्याख्यातः कुकुरोद्भवः॥ ३२
कुकुराणामिमं वंशं धारयन्नमितौजसाम्।
आत्मनो विपुलं वंशं प्रजावानाप्नुयान्नरः॥ ३३

अन्धकवंशियोंने आहुककी बहिन आहुकीको अवन्तिके राजवंशमें ब्याह दी। आहुकके काशिराजकी पुत्रीसे देवकुमारोंके समान सुन्दर देवक और उग्रसेन नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए। देवकके देवकुमारों-जैसे देववान्, उपदेव, सुदेव और देवरक्षित नामके चार पुत्र थे। उन्हींके देवकी, शान्तिदेवा, सुदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी तथा सातवीं सुनासी—इस प्रकार सात पुत्रियाँ थीं; देवकने उन सबका विवाह वसुदेवजीके साथ कर दिया था॥ २६—२९॥ उग्रसेनके नौ पुत्र थे, उनमें कंस सबसे बड़ा था। शेषके नाम इस प्रकार हैं—न्यग्रोध, सुनामा, कङ्क, शंकु, सुभूमिप, राष्ट्रपाल, सुतनु, अनाधृष्टि और पुष्टिमान्। इनकी कंसा, कंसवती, सुतनू, राष्ट्रपाली और कङ्का नामकी पाँच सुन्दराङ्गी बहिनें थीं। इस प्रकार कुकुरवंशमें उत्पन्न हुए उग्रसेन और उनकी संतानका वर्णन किया गया॥ ३०—३२॥ जो मनुष्य इन अमिततेजस्वी कुकुरोंके वंशका वर्णन सुनता है, वह संतान पाता है तथा उसके वंशकी बड़ी वृद्धि होती है॥ ३३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें (बभ्रुवंश-वर्णनविषयक) सैंतीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३७॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

भजमानके वंशका वर्णन और स्यमन्तकमणिकी कथा

वैशम्पायन उवाच

भजमानस्य पुत्रोऽथ रथमुख्यो विदूरथः।
राजाधिदेवः शूरस्तु विदूरथसुतोऽभवत्॥ १
राजाधिदेवस्य सुता जज्ञिरे वीर्यवत्तराः।
दत्तातिदत्तबलिनौ शोणाश्वः श्वेतवाहनः॥ २
शमी च दण्डशर्मा च दण्डशत्रुश्च शत्रुजित्।
श्रवणा च श्रविष्ठा च स्वसारौ सम्बभूवतुः॥ ३
शमीपुत्रः प्रतिक्षत्रः प्रतिक्षत्रस्य चात्मजः।
स्वयंभोजः स्वयंभोजाद्धृदीकः सम्बभूव ह॥ ४

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! अन्धकपुत्र भजमानके रथियोंमें मुख्य विदूरथ नामक पुत्र हुआ। विदूरथके पुत्र शूरवीर राजाधिदेव हुए॥ १॥ राजाधिदेवके बलवान् दत्त और अतिदत्त, शोणाश्व, श्वेतवाहन, शमी, दण्डशर्मा, दण्डशत्रु एवं शत्रुजित् नामक परम बलवान् पुत्र उत्पन्न हुए और श्रवणा तथा श्रविष्ठा नामकी दो कन्याएँ हुई थीं॥ २-३॥ शमीके पुत्र प्रतिक्षत्र हुए, प्रतिक्षत्रके पुत्र स्वयंभोज और स्वयंभोजके पुत्र हृदीक हुए॥ ४॥

तस्य पुत्रा बभूवुर्हि सर्वे भीमपराक्रमाः।
कृतवर्माग्रजस्तेषां शतधन्वाथ मध्यमः॥ ५

देवर्षेर्वचनात् तस्य भिषग् वैतरणश्च यः।
सुदान्तश्च विदान्तश्च कामदा कामदन्तिका॥ ६

देववांश्चाभवत् पुत्रो विद्वान् कम्बलबर्हिषः।
असमौजास्तथा वीरो नासमौजाश्च तावुभौ॥ ७

अजातपुत्राय सुतान् प्रददावसमौजसे।
सुदंष्ट्रं चारुरूपं च कृष्णमित्यन्धकास्त्रयः॥ ८

एते चान्ये च बहवो अन्धकाः कथितास्तव।
अन्धकानामिमं वंशं धारयेद् यस्तु नित्यशः॥ ९

आत्मनो विपुलं वंशं लभते नात्र संशयः।
गान्धारी चैव माद्री च क्रोष्टुर्भार्ये बभूवतुः॥ १०

गान्धारी जनयामास अनमित्रं महाबलम्।
माद्री युधाजितं पुत्रं ततो वै देवमीढुषम्॥ ११

अनमित्रममित्राणां जेतारमपराजितम्।
अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नतो द्वौ बभूवतुः॥ १२

प्रसेनश्चाथ सत्राजिच्छत्रुसेनाजितावुभौ।
प्रसेनो द्वारवत्यां तु निवसन्त्यां महामणिम्॥ १३

दिव्यं स्यमन्तकं नाम समुद्रादुपलब्धवान्।
तस्य सत्राजितः सूर्यः सखा प्राणसमोऽभवत्॥ १४

स कदाचिन्निशापाये रथेन रथिनां वरः।
अब्धिकूलमुपस्प्रष्टुमुपस्थातुं ययौ रविम्॥ १५

तस्योपतिष्ठतः सूर्यं विवस्वानग्रतः स्थितः।
अस्पष्टमूर्तिर्भगवांस्तेजोमण्डलवान् प्रभुः॥ १६

अथ राजा विवस्वन्तमुवाच स्थितमग्रतः।
यथैवं व्योम्नि पश्यामि सदा त्वां ज्योतिषाम्पते॥ १७

तेजोमण्डलिनं देवं तथैव पुरतः स्थितम्।
को विशेषोऽस्ति मे त्वत्तः सख्येनोपागतस्य वै॥ १८

एतच्छ्रुत्वा तु भगवान् मणिरत्नं स्यमन्तकम्।
स्वकण्ठादवमुच्यैव एकान्ते न्यस्तवान् विभुः॥ १९

हृदीकके सभी पुत्र भयंकर पराक्रमी थे, उनमें कृतवर्मा सबसे पहले उत्पन्न हुए और शतधन्वा उनके मझले पुत्र थे॥ ५॥ देवर्षि च्यवनके वचनसे शतधन्वाके भिषक्, वैतरण, सुदान्त एवं विदान्त नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए तथा कामदा और कामदन्तिका नामकी दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं॥ ६॥ (अन्धकपुत्र) कम्बलबर्हिषके पुत्र विद्वान् देववान् हुए तथा वीर असमौजा एवं नासमौजा नामक दो पुत्र और हुए॥ ७॥ अन्धकके (कुकुर आदिके अतिरिक्त) सुदंष्ट्र, चारुरूप और कृष्ण नामके तीन पुत्र (और) थे। अन्धकने उन तीनों पुत्रोंको पुत्रहीन असमौजाको दे दिया॥ ८॥ इनका तथा और भी बहुत-से अन्धकवंशी राजाओंका आपसे वर्णन कर दिया। जो पुरुष नित्यप्रति अन्धकोंके इस वंशका वर्णन सुनता है, उसका वंश अति विस्तृत हो जाता है, इसमें कुछ संदेह नहीं है। यदुपुत्र क्रोष्टाके गान्धारी और माद्री नामकी दो भार्याएँ थीं। गान्धारीके पुत्र महाबली अनमित्र हुए तथा माद्रीके पुत्र युधाजित् और देवमीढ्वान् हुए। अपराजित अनमित्र शत्रुओंको जीतनेवाले थे। अनमित्रके पुत्र निघ्न हुए, निघ्नके प्रसेन और सत्राजित् नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए, वे दोनों शत्रुओंकी सेनाओंको जीतनेवाले थे। द्वारकापुरीमें बसते समय प्रसेनको स्यमन्तक नामकी दिव्य मणि समुद्रके तटपर परम्परासे प्राप्त हुई थी। प्रसेनके भाई सत्राजित्के सूर्यनारायण प्राणके समान प्रिय मित्र थे॥ ९—१४॥ रथियोंमें श्रेष्ठ सत्राजित् एक समय रात्रि बीतनेपर स्नान एवं सूर्योपस्थान करनेके लिये समुद्र-तटपर गये थे॥ १५॥ वे सूर्योपस्थान कर रहे थे कि इतनेमें सूर्यनारायण उनके सामने आकर खड़े हो गये। उस समय सर्वशक्तिसम्पन्न भगवान् सूर्यदेव अपने तेजस्वी मण्डलके मध्यमें विराजमान थे, इस कारण उनका रूप स्पष्ट नहीं दीख रहा था। उस समय राजाने अपने सामने खड़े हुए भगवान् सूर्यसे कहा— 'ज्योतिर्मय ग्रह आदिके स्वामिन्! मैं आपको जैसे नित्यप्रति आकाशमें देखता हूँ, वैसे ही मैं आपको तेजका मण्डल धारणकर अपने सामने खड़ा हुआ देख रहा हूँ तो फिर आप जो मेरे पास मित्रतावश पधारे, इसमें विशेषता क्या हुई?'॥ १६—१८॥ इतना सुनते ही प्रभु सूर्यनारायणने अपने कण्ठसे मणिरत्न स्यमन्तकको उतारकर एकान्तमें अलग रख दिया॥ १९॥

ततो विग्रहवन्तं तं ददर्श नृपतिस्तदा।
प्रीतिमानथ तं दृष्ट्वा मुहूर्तं कृतवान् कथाम्॥ २०

तमपि प्रस्थितं भूयो विवस्वन्तं स सत्रजित्।
लोकानुद्भासयस्येतान् येन त्वं सततं प्रभो।
तदेतन्मणिरत्नं मे भगवन् दातुमर्हसि॥ २१

ततः स्यमन्तकमणिं दत्तवांस्तस्य भास्करः।
स तमाबद्ध्य नगरीं प्रविवेश महीपतिः॥ २२

तं जनाः पर्यधावन्त सूर्योऽयं गच्छतीति ह।
पुरीं विस्मापयित्वा च राजा त्वन्तःपुरं ययौ॥ २३

तत् प्रसेनजितं दिव्यं मणिरत्नं स्यमन्तकम्।
ददौ भ्रात्रे नरपतिः प्रेम्णा सत्राजिदुत्तमम्॥ २४

स मणिः स्यन्दते रुक्मं वृष्ण्यन्धकनिवेशने।
कालवर्षी च पर्जन्यो न च व्याधिभयं ह्यभूत्॥ २५

लिप्सां चक्रे प्रसेनात्तु मणिरत्ने स्यमन्तके।
गोविन्दो न च तल्लेभे शक्तोऽपि न जहार सः॥ २६

कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूषितः।
स्यमन्तककृते सिंहाद् वधं प्राप वनेचरात्॥ २७

अथ सिंहं प्रधावन्तमृक्षराजो महाबलः।
निहत्य मणिरत्नं तदादाय बिलमाविशत्॥ २८

ततो वृष्ण्यन्धकाः कृष्णं प्रसेनवधकारणात्।
प्रार्थनां तां मणेर्बुद्ध्वा सर्व एव शशङ्किरे॥ २९

स शङ्क्यमानो धर्मात्मा नकारी तस्य कर्मणः।
आहरिष्ये मणिमिति प्रतिज्ञाय वनं ययौ॥ ३०

यत्र प्रसेनो मृगयामाचरत् तत्र चाप्यथ।
प्रसेनस्य पदं गृह्य पुरुषैराप्तकारिभिः॥ ३१

ऋक्षवन्तं गिरिवरं विन्ध्यं च गिरिमुत्तमम्।
अन्वेषयन् परिश्रान्तः स ददर्श महामनाः॥ ३२

तब राजा स्पष्ट अवयवोंवाले सूर्यनारायणके शरीरको देखकर प्रसन्न हुए और उन्होंने सूर्यनारायणके साथ मुहूर्तभर (दो घड़ीतक) वार्तालाप किया॥ २०॥ बातचीत करनेके अनन्तर जब सूर्यनारायण फिर चलने लगे, तब सत्राजित्ने उनसे कहा—'भगवन्! आप जिससे सदा इन तीनों लोकोंको प्रकाशित करते रहते हैं, उस स्यमन्तकमणिको मुझे दे दीजिये'॥ २१॥ तब सूर्यनारायणने वह स्यमन्तकमणि उन्हें दे दी और राजाने उसे बाँधकर नगरमें प्रवेश किया॥ २२॥ तब तो मनुष्य 'ये सूर्य जा रहे हैं' कहते हुए उनके पीछे दौड़े। इस प्रकार नगरीको विस्मित करते हुए वे राजा अपने रनवासमें चले गये॥ २३॥ तदनन्तर राजा सत्राजित्ने मणियोंमें रत्नरूप वह दिव्य स्यमन्तकमणि प्रेमके कारण अपने भाई प्रसेनजित्को दे दी॥ २४॥ वह मणि जिस वृष्णि और अन्धककुलवालेके घरमें रहती थी, उसके यहाँ वह सुवर्णकी वर्षा करती रहती थी। उस देशमें मेघ समयपर वर्षा करते थे और वहाँ व्याधिका भय भी नहीं होता था॥ २५॥ श्रीकृष्णने प्रसेनजित्से मणियोंमें रत्नके समान वह दिव्य मणि स्यमन्तक लेनी चाही, परंतु उसने नहीं दी। श्रीकृष्ण यद्यपि समर्थ थे, तथापि वह मणि उन्होंने बलपूर्वक नहीं छीनी॥ २६॥ प्रसेन एक समय उस मणिसे विभूषित होकर शिकार खेलने गये और मणिके कारण ही वनमें विचरण करनेवाले सिंहके द्वारा मारे गये॥ २७॥ तदनन्तर महाबली ऋक्षराज जाम्बवान्ने उस दौड़ते हुए सिंहको मार डाला और उस मणिरत्नको लेकर वे अपने बिल (गुफा)-में घुस गये॥ २८॥ उस समय प्रसेनके मारे जानेसे सभी वृष्णि और अन्धकोंने यह समझा कि श्रीकृष्णने सत्राजित्से मणि माँगी थी, अतएव उन्होंने ही उसको मार डाला होगा॥ २९॥ यद्यपि उन्होंने यह कार्य नहीं किया था, फिर भी उन धर्मात्मापर ऐसी शंका की जा रही थी; अतएव 'मैं मणिको लाऊँगा' यह प्रतिज्ञा करके वे वनको चले॥ ३०॥ उन्होंने विश्वासी मनुष्योंसे जहाँ प्रसेनने शिकार खेला था, वहाँ उनके पैरोंके चिह्नोंका पता लगाया॥ ३१॥ उन चिह्नोंके सहारे खोज लगाते-लगाते जब महात्मा श्रीकृष्ण थक गये, तब उन्होंने ऋक्षवान् और विन्ध्य नामक श्रेष्ठ पर्वतोंको देखा॥ ३२॥

साश्वं हतं प्रसेनं वै नाविन्दच्चेच्छितं मणिम्।
अथ सिंहः प्रसेनस्य शरीरस्याविदूरतः॥ ३३

ऋक्षेण निहतो दृष्टः पादैर्ऋक्षश्च सूचितः।
पादैरन्वेषयामास गुहामृक्षस्य माधवः॥ ३४

महत्यृक्षबिले वाणीं शुश्राव प्रमदेरिताम्।
धात्र्या कुमारमादाय सुतं जाम्बवतो नृप।
क्रीडापयन्त्या मणिना मा रोदीरित्यथेरिताम्॥ ३५

धात्र्युवाच

सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः।
सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः॥ ३६

सुव्यक्तीकृतशब्दस्तु तूर्ष्णीं बिलमथाविशत्।
प्रविश्य चापि भगवांस्तमृक्षबिलमञ्जसा॥ ३७

स्थापयित्वा बिलद्वारि यदूल्लाँङ्गलिना सह।
शार्ङ्गधन्वा बिलस्थं तु जाम्बवन्तं ददर्श ह॥ ३८

युयुधे वासुदेवस्तु बिले जाम्बवता सह।
बाहुभ्यामेव गोविन्दो दिवसानेकविंशतिम्॥ ३९

प्रविष्टे तु बिलं कृष्णे बलदेवपुरःसराः।
पुरीं द्वारवतीमेत्य हतं कृष्णं न्यवेदयन्॥ ४०

वासुदेवस्तु निर्जित्य जाम्बवन्तं महाबलम्।
भेजे जाम्बवतीं कन्यामृक्षराजस्य सम्मताम्।
मणिं स्यमन्तकं चैव जग्राहात्मविशुद्धये॥ ४१

अनुनीयर्क्षराजानं निर्ययौ च तदा बिलात्।
द्वारकामगमत् कृष्णः श्रिया परमया युतः॥ ४२

एवं स मणिमाहृत्य विशोध्यात्मानमच्युतः।
ददौ सत्राजिते तं वै सर्वसात्त्वतसंसदि॥ ४३

एवं मिथ्याभिशप्तेन कृष्णेनामित्रघातिना।
आत्मा विशोधितः पापाद् विनिर्जित्य स्यमन्तकम्॥ ४४

सत्राजितो दश त्वासन् भार्यास्तासां शतं सुताः।
ख्यातिमन्तस्त्रयस्तेषां भङ्गकारस्तु पूर्वजः॥ ४५

श्रीकृष्णने वहाँ प्रसेनको और उसके घोड़ेको मरा हुआ पाया; परंतु जिसकी उनको इच्छा थी, वह मणि उन्हें वहाँ नहीं मिली। तदनन्तर प्रसेनकी लाशसे थोड़ी दूरपर ही रीछके द्वारा मारा हुआ सिंह उन्हें पड़ा हुआ दीखा, मारनेवालेके पैरोंसे यह पता चलता था कि यह रीछ था। तदनन्तर माधवने रीछके पदचिह्नोंसे रीछकी गुफाको ढूँढ़ना आरम्भ किया॥ ३३-३४॥ राजन्! उस समय श्रीकृष्णने (रीछके बिलके पास पहुँचनेपर) एक स्त्रीकी वाणी सुनी। उन्हें ऐसा लगा कि धाय जाम्बवान्‌के बालक पुत्रको लेकर मणिसे खिलाती हुई उससे कह रही थी, तू रो मत॥ ३५॥

धाय कह रही थी—मेरे मुन्ना! सिंहने प्रसेनको मार डाला और सिंहको जाम्बवान्‌ने मार डाला; अब तू रो मत, यह स्यमन्तकमणि अब तेरी ही है॥ ३६॥ जब धायकी बात उन्होंने स्पष्ट सुन ली, तब भगवान्‌ने बलरामको तथा यादवोंको तो गुफाके द्वारपर खड़ा कर दिया और स्वयं मौन होकर सीधे बिलमें जा घुसे। इस प्रकार शार्ङ्गधनुषधारी भगवान्‌ने गुफामें आगे बढ़कर जाम्बवान्‌को देखा॥ ३७-३८॥ वसुदेवनन्दन गोविन्द जाम्बवान्‌के साथ अपनी भुजाओंसे ही इक्कीस दिनतक बिलमें युद्ध करते रहे॥ ३९॥ श्रीकृष्णके बिलमें प्रवेश करनेके बाद बहुत दिनोंतक न लौटनेपर बलदेव आदिने द्वारकामें जाकर कहा कि श्रीकृष्ण मारे गये॥ ४०॥ (उधर) श्रीकृष्णने महाबली जाम्बवान्‌को जीतकर ऋक्षराजकी प्यारी पुत्री जाम्बवतीसे विवाह किया और अपनी निर्दोषता सिद्ध करनेके लिये स्यमन्तकमणिको भी ले लिया॥ ४१॥ तदनन्तर श्रीकृष्ण जाम्बवान्‌से अनुनय-विनय करके बिलसे निकल आये और परम शोभा पाते हुए द्वारकाको चल दिये॥ ४२॥ भगवान् अच्युतने इस प्रकार मणिको लाकर सब सात्त्वतोंकी सभामें अपनी विशुद्धताको प्रमाणित कर वह मणि सत्राजित्‌को दे दी॥ ४३॥ शत्रुनाशक श्रीकृष्णने इस प्रकार मिथ्या दोष लगनेके कारण स्यमन्तकमणिको जीतकर लानेके बाद अपने-आपको निर्दोष सिद्ध कर दिया॥ ४४॥ सत्राजित्‌के दस भार्याएँ थीं और उनसे सौ पुत्र हुए थे; उनमें तीन प्रसिद्ध थे, जिनमें सबसे बड़ा भङ्गकार था। (दूसरा)

वीरो वातपतिश्चैव उपस्वावांश्च ते त्रयः।
कुमार्यश्चापि तिस्रो वै दिक्षु ख्याता नराधिप॥ ४६
सत्यभामोत्तमा स्त्रीणां व्रतिनी च दृढव्रता।
तथा प्रस्वापिनी चैव भार्यां कृष्णाय तां ददौ॥ ४७
समाक्षो भङ्गकारस्य नारेयश्च नरोत्तमौ।
जज्ञाते गुणसम्पन्नौ विश्रुतौ रूपसम्पदा॥ ४८
माद्रीपुत्रस्य जज्ञेऽथ पृश्निः पुत्रो युधाजितः।
जज्ञाते तनयौ पृश्नेः श्वफल्कश्चित्रकस्तथा॥ ४९
श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामविन्दत।
गान्दिनीं नाम तस्याश्च सदा गाः प्रददौ पिता॥ ५०
तस्यां जज्ञे महाबाहुः श्रुतवानिति विश्रुतः।
अक्रूरोऽथ महाभागो यज्वा विपुलदक्षिणः॥ ५१
उपासङ्गस्तथा मद्गुर्मृदुरश्चारिमेजयः।
अविक्षिपस्तथोपेक्षः शत्रुहा चारिमर्दनः॥ ५२
धर्मधृग् यतिधर्मा च गृध्रो भोजोऽन्धकस्तथा।
आवाहप्रतिवाहौ च सुन्दरी च वराङ्गना॥ ५३
विश्रुता साम्बमहिषी कन्या चास्य वसुंधरा।
रूपयौवनसम्पन्ना सर्वसत्त्वमनोहरा॥ ५४
अक्रूरेणोग्रसेन्यां तु सुतौ द्वौ कुरुनन्दन।
प्रसेनश्चोपदेवश्च जज्ञाते देववर्चसौ॥ ५५
चित्रकस्याभवन् पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च।
अश्वग्रीवोऽश्वबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ॥ ५६
अरिष्टनेमिरश्वश्च सुधर्मा धर्मभृत् तथा।
सुबाहुर्बहुबाहुश्च श्रविष्ठाश्रवणे स्त्रियौ॥ ५७
इमां मिथ्याभिशस्तिं यः कृष्णस्य समुदाहृताम्।
वेद मिथ्याभिशापास्तं न स्पृशन्ति कदाचन॥ ५८

वीर वातपति था और तीसरेका नाम उपस्वावान् था। राजन्! इसी प्रकार स्त्रियोंमें रत्नस्वरूपा सत्यभामा, दृढव्रतधारिणी व्रतिनी और प्रस्वापिनी—ये उनकी तीन पुत्रियाँ थीं, जो दिशा-विदिशाओंमें प्रसिद्ध थीं। इनमेंसे उसने सत्यभामाका विवाह श्रीकृष्णके साथ कर दिया॥ ४५—४७॥ भङ्गकारके पुत्र समाक्ष और नारेय हुए, ये दोनों अपने रूप और गुणोंके कारण मनुष्योंमें उत्तम माने जाते थे॥ ४८॥ (अब क्रोष्टाकी छोटी रानी माद्रीके पुत्र युधाजित्के वंशका वर्णन किया जाता है—) माद्रीकुमार युधाजित्के पुत्र पृश्नि हुए तथा पृश्निके पुत्र श्वफल्क और चित्रक हुए॥ ४९॥ श्वफल्कका विवाह काशिराजकी पुत्री गान्दिनीसे हुआ था; इन गान्दिनीके पिता अपनी पुत्रीसे प्रतिदिन गोदान कराया करते थे॥ ५०॥ उन गान्दिनीसे महाभाग्यवान् अक्रूरजी उत्पन्न हुए, ये महाबाहु अक्रूर शास्त्रके रूपमें प्रसिद्ध थे, इन्होंने यज्ञ करके बड़ी-बड़ी दक्षिणाएँ दी थीं॥ ५१॥ गान्दिनीके अक्रूरजीके अतिरिक्त उपासङ्ग, मद्गु, मृदुर, अरिमेजय, अविक्षिप, उपेक्ष, शत्रुघ्न, अरिमर्दन, धर्मधृक्, यतिधर्मा, गृध्र, भोज, अन्धक, आवाह और प्रतिवाह नामक पुत्र तथा वराङ्गना नामकी सुन्दरी कन्या भी उत्पन्न हुई थी॥ ५२-५३॥ वे साम्बदेशकी रानी प्रसिद्ध हैं, इनकी रूप-यौवनसे सम्पन्न एवं सब प्राणियोंके मनको मोहित करनेवाली कन्याका नाम वसुन्धरा था॥ ५४॥ कुरुनन्दन! अक्रूरसे उग्रसेनीके द्वारा देवताके समान कान्तिवाले प्रसेन और उपदेव नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए थे॥ ५५॥ (अक्रूरजीके चाचा) चित्रकके श्रवणा और श्रविष्ठा नामकी दो धर्मपत्नियाँ थीं; उनसे पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, अश्वबाहु, सुपार्श्वक, गवेषण, अरिष्टनेमि, अश्व, सुधर्मा, धर्मभृत्, सुबाहु और बहुबाहु नामक पुत्र हुए॥ ५६-५७॥ जो पुरुष श्रीकृष्णके इस मिथ्या कलंककी कथाको पढ़ता है, उसको झूठे दोष कभी नहीं लगते॥ ५८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वण्यष्टत्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें (स्यमन्तकमणिकी कथाविषयक) अड़तीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३८॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

स्यमन्तकमणिके कारण प्रसेन, सत्राजित् और शतधन्वाका मारा जाना, बलदेवजीका दुर्योधनको गदा-विद्या सिखाना, अक्रूरजीका श्रीकृष्णको मणि देना और श्रीकृष्णका पुनः अक्रूरको मणि लौटा देना

वैशम्पायन उवाच

यत् तत् सत्राजिते कृष्णो मणिरत्नं स्यमन्तकम्।
अदात् तद्धारयामास बभ्रुर्वै शतधन्वना॥ १
सदा हि प्रार्थयामास सत्यभामामनिन्दिताम्।
अक्रूरोऽन्तरमन्विच्छन् मणिं चैव स्यमन्तकम्॥ २
सत्राजितं ततो हत्वा शतधन्वा महाबलः।
रात्रौ तं मणिमादाय ततोऽक्रूराय दत्तवान्॥ ३
अक्रूरस्तु ततो रत्नमादाय भरतर्षभ।
समयं कारयाञ्चक्रे नावेद्योऽयं त्वयेत्युत॥ ४
वयमभ्युपयास्यामः कृष्णेन त्वामभिद्रुतम्।
ममाद्य द्वारका सर्वा वशे तिष्ठत्यसंशयम्॥ ५
हते पितरि दुःखार्ता सत्यभामा यशस्विनी।
प्रययौ रथमारुह्य नगरं वारणावतम्॥ ६
सत्यभामा तु तद्वृत्तं भोजस्य शतधन्वनः।
भर्तुर्निवेद्य दुःखार्ता पार्श्वस्थाश्रूण्यवर्तयत्॥ ७
पाण्डवानां तु दग्धानां हरिः कृत्वोदकक्रियाम्।
कुल्यार्थे चापि पाण्डूनां न्ययोजयत सात्यकिम्॥ ८
ततस्त्वरितमागत्य द्वारकां मधुसूदनः।
पूर्वजं हलिनं श्रीमानिदं वचनमब्रवीत्॥ ९
हतः प्रसेनः सिंहेन सत्राजिच्छतधन्वना।
स्यमन्तकः स मद्गामी तस्य प्रभुरहं विभो॥ १०
तदारोह रथं शीघ्रं भोजं हत्वा महाबलम्।
स्यमन्तको महाबाहो ह्यस्माकं स भविष्यति॥ ११
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं भोजकृष्णयोः।
शतधन्वा ततोऽक्रूरमवैक्षत् सर्वतो दिशम्॥ १२

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! श्रीकृष्णने सत्राजित्को जो मणियोंमें रत्नस्वरूप स्यमन्तकमणि लौटाकर दी, बभ्रु (अक्रूर) उसको शतधन्वाके द्वारा चुरवाना चाहने लगे॥ १॥ मणि सुवर्ण देती थी, इस कारण उसको चाहते हुए अक्रूर अनिन्द्यसुन्दरी सत्यभामाको भी सदा चाहते थे॥ २॥ एक दिन मौका पाकर महाबली शतधन्वाने रात्रिमें सत्राजित्को मारकर वह मणि लाकर अक्रूरजीको दे दी॥ ३॥ भरतर्षभ! उस समय अक्रूरने रत्न लेकर शतधन्वासे प्रतिज्ञा करा ली कि आप किसीको यह न बतायें कि मणि मेरे पास है॥ ४॥ जब श्रीकृष्ण (श्वशुरके वधसे क्रोधमें भरकर) आपके पीछे पड़ेंगे, तब हम भी आपके साथमें खड़े होकर लड़ेंगे। आजकल सारी द्वारका मेरे वशमें है, इसमें आप कुछ संदेह न समझें॥ ५॥ यशस्विनी सत्यभामा पिताके मारे जानेपर बड़ी दुःखी हुईं और रथपर चढ़कर हस्तिनापुरको चली गयीं॥ ६॥ वहाँ दुखिया सत्यभामाने अपने पतिसे भोजवंशी शतधन्वाकी करतूत कह सुनायी और वे उनके पास खड़ी होकर नेत्रोंसे आँसू बहाने लगीं॥ ७॥ उस समय श्रीकृष्ण (हस्तिनापुरमें थे और लाक्षागृहमें) भस्म हुए पाण्डवोंकी उदक-क्रिया कर चुके थे, इसके उपरान्त उन्होंने पाण्डवोंका अस्थि-संचयन करनेका कार्य सात्यकिको सौंप दिया॥ ८॥ तदनन्तर श्रीमान् कृष्णचन्द्रने तुरंत ही द्वारकापुरीमें आकर अपने बड़े भाई हलधरसे यह बात कही—॥ ९॥ 'प्रभो! प्रसेनको सिंहने मार डाला था, शतधन्वाने सत्राजित्को मार डाला। अब इस मणिका उत्तराधिकार मुझे प्राप्त होता है; अब मैं उसका स्वामी हूँ॥ १०॥ महाबाहो! इसलिये अब आप शीघ्र ही रथपर चढ़िये; महाबली भोज (वंशी शतधन्वा)-को मारनेके बाद वह स्यमन्तकमणि निःसंदेह हमारी होगी'॥ ११॥ तदनन्तर भोजवंशी शतधन्वा और श्रीकृष्णमें घमासान युद्ध आरम्भ हुआ। उस समय शतधन्वा सब दिशाओंमें अक्रूरको देखने लगा॥ १२॥

संरब्धौ तावुभौ दृष्ट्वा तत्र भोजजनार्दनौ।
शक्तोऽपि शाठ्याद्धार्दिक्यमक्रूरो नाभ्यपद्यत॥ १३

अपयाने ततो बुद्धिं भोजश्चक्रे भयार्दितः।
योजनानां शतं साग्रं हयया प्रत्यपद्यत॥ १४

विख्याता हृदया नाम शतयोजनगामिनी।
भोजस्य वडवा राजन् यया कृष्णमयोधयत्॥ १५

क्षीणां जवेन च हयामध्वनः शतयोजने।
दृष्ट्वा रथस्य तां वृद्धिं शतधन्वा समत्यजत्॥ १६

ततस्तस्या हयायास्तु श्रमात् खेदाच्च भारत।
खमुत्पेतुरथ प्राणाः कृष्णो राममथाब्रवीत्॥ १७

तिष्ठस्वेह महाबाहो दृष्टदोषा हया मया।
पद्भ्यां गत्वा हरिष्यामि मणिरत्नं स्यमन्तकम्॥ १८

पद्भ्यामेव ततो गत्वा शतधन्वानमच्युतः।
मिथिलामभितो राजन् जघान परमास्त्रवित्॥ १९

स्यमन्तकं च नापश्यद्धत्वा भोजं महाबलम्।
निवृत्तं चाब्रवीत् कृष्णं रत्नं देहीति लाङ्गली॥ २०

नास्तीति कृष्णश्चोवाच ततो रामो रुषान्वितः।
धिक्छब्दमसकृत् कृत्वा प्रत्युवाच जनार्दनम्॥ २१

भ्रातृत्वान्मर्षयाम्येष स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्यहम्।
कृत्यं न मे द्वारकया न त्वया न च वृष्णिभिः॥ २२

प्रविवेश ततो रामो मिथिलामरिमर्दनः।
सर्वकामैरुपहृतैर्मैथिलेनाभिपूजितः ॥ २३

एतस्मिन्नेव काले तु बभ्रुर्मतिमतां वरः।
नानारूपान् क्रतून् सर्वानाजहार निरर्गलान्॥ २४

दीक्षामयं स कवचं रक्षार्थं प्रविवेश ह।
स्यमन्तककृते प्राज्ञो गान्दीपुत्रो महायशाः॥ २५

शतधन्वा और श्रीकृष्णको क्रोधमें भरा हुआ देखकर अक्रूर समर्थ होनेपर भी शठताके कारण हृदीकके पुत्र शतधन्वाकी सहायता करने नहीं गये॥ १३॥ तब तो भयसे घबराया हुआ शतधन्वा भागनेका विचार करने लगा और वह घोड़ीपर चढ़कर चार सौ कोससे अधिक दूर निकल गया॥ १४॥ राजन्! शतधन्वाने जिस घोड़ीपर चढ़कर श्रीकृष्णके साथ युद्ध किया था, उस घोड़ीका नाम हृदया था और वह चार सौ कोसका धावा मारनेवालीके रूपमें प्रसिद्ध थी॥ १५॥ घोड़ी वेगसे चलनेके कारण चार सौ कोसका मार्ग तय करनेके बाद थकने लगी। इधर शतधन्वाने श्रीकृष्णके रथको बढ़ते देखकर घोड़ीको छोड़ दिया (और वह पैदल भागने लगा)॥ १६॥ भारत! तदनन्तर उस घोड़ीने श्रम और खेदके कारण अपने प्राणोंको छोड़ दिया। उस समय श्रीकृष्णने बलदेवजीसे कहा—॥ १७॥ 'महाबाहो! घोड़े थक गये हैं, उनका यह दोष मैंने देख लिया है; अतः आप यहीं ठहरिये, मैं पैदल ही जाकर मणियोंमें रत्नस्वरूप स्यमन्तक-मणिको छीन लाऊँगा'॥ १८॥ राजन्! तदनन्तर अस्त्रविद्याके पारगामी श्रीकृष्णने पैदल ही जाकर शतधन्वाको मिथिलानगरीके समीप मार डाला॥ १९॥ महाबली भोजवंशी शतधन्वाको मारनेपर भी श्रीकृष्णको स्यमन्तकमणि न मिली। श्रीकृष्णके वापस आनेपर बलदेवजीने उनसे कहा कि 'वह मणि-रत्न दीजिये'॥ २०॥ तब श्रीकृष्णने कहा—'मणि तो वहाँ नहीं मिली' तब तो बलदेवजीने क्रोधमें भरकर बारम्बार 'धिक्कार है! धिक्कार है!!' कहकर श्रीकृष्णसे कहा—॥ २१॥ 'भाई होनेके कारण आपकी इस करतूतको मैं सह रहा हूँ, आपका कल्याण हो! मैं चलता हूँ। अब मुझे द्वारकासे, आपसे और वृष्णिवंशियोंसे भी कोई काम नहीं है'॥ २२॥ तदनन्तर शत्रुमर्दन बलदेवजी मिथिलापुरीमें चले गये। वहाँ मिथिलानरेशने बहुत-से पदार्थोंकी भेंट देकर बलदेवजीका स्वागत किया॥ २३॥ इसी समय बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ बभ्रु (वंशी अक्रूरजी भी) अनेक प्रकारके बहुत-से यज्ञोंको धड़ल्लेके साथ करने लगे॥ २४॥ महायशस्वी बुद्धिमान् गान्दीपुत्रने स्यमन्तकके लिये दीक्षारूपी कवचको अपनी रक्षाके लिये पहिन लिया (अर्थात् यज्ञमें दीक्षा लेनेवालेको युद्ध करनेका अधिकार नहीं होता, इसलिये उन्होंने युद्धसे बचनेका यह मार्ग निकाल लिया)॥ २५॥

अथ रत्नानि चाग्र्याणि द्रव्याणि विविधानि च।
षष्टिं वर्षाणि धर्मात्मा यज्ञेषु विनियोजयत्॥ २६

अक्रूरयज्ञा इति ते ख्यातास्तस्य महात्मनः।
बह्वन्नदक्षिणाः सर्वे सर्वकामप्रदायिनः॥ २७

अथ दुर्योधनो राजा गत्वा तु मिथिलां प्रभुः।
गदाशिक्षां ततो दिव्यां बलभद्रादवाप्तवान्॥ २८

प्रसाद्य तु ततो रामो वृष्ण्यन्धकमहारथैः।
आनीतो द्वारकामेव कृष्णेन च महात्मना॥ २९

अक्रूरस्त्वन्धकैः सार्धमपायाद् भरतर्षभ।
हत्वा सत्राजितं सुप्तं सहबन्धुं महाबलम्॥ ३०

ज्ञातिभेदभयात् कृष्णस्तमुपेक्षितवानथ।
अपयाते तथाक्रूरे नावर्षत् पाकशासनः॥ ३१

अनावृष्ट्या यदा राज्यमभवद् बहुधा कृशम्।
ततः प्रसादयामासुरक्रूरं कुकुरान्धकाः॥ ३२

पुनर्द्वारवतीं प्राप्ते तस्मिन् दानपतौ ततः।
प्रववर्ष सहस्राक्षः कच्छे जलनिधेस्तदा॥ ३३

कन्यां च वासुदेवाय स्वसारं शीलसम्मताम्।
अक्रूरः प्रददौ धीमान् प्रीत्यर्थं कुरुनन्दन॥ ३४

अथ विज्ञाय योगेन कृष्णो बभ्रुगतं मणिम्।
सभामध्ये गतं प्राह तमक्रूरं जनार्दनः॥ ३५

यत् तद् रत्नं मणिवरं तव हस्तगतं विभो।
तत् प्रयच्छस्व मानार्ह मयि मानार्यकं कृथाः॥ ३६

षष्टिवर्षे गते काले यद्रोषोऽभून्ममानघ।
स संरूढोऽसकृत्प्राप्तस्ततः कालात्ययो महान्॥ ३७

ततः कृष्णस्य वचनात् सर्वसात्त्वतसंसदि।
प्रददौ तं मणिं बभ्रुरक्लेशेन महामतिः॥ ३८

ततस्तमार्जवप्राप्तं बभ्रोर्हस्तादरिंदमः।
ददौ हृष्टमनाः कृष्णस्तं मणिं बभ्रवे पुनः॥ ३९

उसके बाद धर्मात्मा अक्रूरने साठ वर्षोंतक यज्ञोंमें अनेक प्रकारके द्रव्य और उत्तम रत्न दक्षिणारूपमें दिये॥ २६॥ उन महात्माके किये हुए वे सब यज्ञ अक्रूर-यज्ञोंके नामसे प्रसिद्ध हैं, उनमें बहुत-सा अन्न और बहुत-सी दक्षिणाएँ दी गयीं तथा उन सभी यज्ञोंमें ऋत्विजोंकी सब प्रकारकी कामनाएँ पूर्ण की गयीं॥ २७॥ इसी समय शक्तिशाली राजा दुर्योधनने मिथिलापुरीमें जाकर बलदेवजीसे दिव्य गदा-विद्याकी शिक्षा ग्रहण की॥ २८॥ तदनन्तर वृष्णि और अन्धकवंशी महारथी तथा महात्मा श्रीकृष्ण बलरामजीको प्रसन्न करके द्वारकामें ही बुला लाये॥ २९॥ भरतश्रेष्ठ! रात्रिमें सोये हुए महाबली सत्राजित् और उनके बन्धुओंको शतधन्वाके द्वारा मरवाकर अक्रूर (अपने कुटुम्बी कतिपय) अन्धकवंशियोंको साथ लेकर भाग गये थे, किंतु श्रीकृष्णने जातिमें फूट पड़नेके भयसे उनकी उपेक्षा कर दी, परंतु अक्रूरके चले जानेपर इन्द्रदेवने वर्षा करना बंद कर दिया॥ ३०-३१॥ जब अनावृष्टि होनेसे राज्यके मनुष्य प्रायः दुर्बल होने लगे, तब कुकुर और अन्धकवंशियोंने अक्रूरको अनुनय-विनय करके (द्वारका लौटनेके लिये) राजी कर लिया॥ ३२॥ फिर क्या था, उन दानपति अक्रूरके द्वारकापुरीमें वापस आते ही सहस्राक्ष इन्द्रने समुद्रके तटवर्ती प्रदेशपर जोरोंसे वर्षा करनी आरम्भ कर दी॥ ३३॥ कुरुनन्दन! बुद्धिमान् अक्रूरजीने अपनी शीलवती बहिनका, जो कुमारी थी, श्रीकृष्णके साथ उनको प्रसन्न करनेके लिये विवाह कर दिया॥ ३४॥ तदनन्तर जनार्दन श्रीकृष्णने योगके द्वारा यह जानकर कि मणि अक्रूरके पास है, सभामें बैठे हुए अक्रूरसे (एक दिन) कहा— ॥ ३५॥ 'माननीय विभो! जो मणिरत्न स्यमन्तक आपके पास है, आप उसे दे दीजिये, अनार्यताका व्यवहार न कीजिये॥ ३६॥ निष्पाप अक्रूरजी! साठ वर्ष पहले (मणिके कारणसे) जो रोष मुझे चढ़ा था, वही रोष बहुत समय बीतनेपर भी मुझे फिर बार-बार आ रहा है (अतः उस मणिको मुझे दे दीजिये)'॥ ३७॥ इस प्रकार श्रीकृष्णके कहनेपर महाबुद्धिमान् अक्रूरजीने सम्पूर्ण सात्त्वतोंकी सभामें वह मणि बिना कष्ट पाये ही श्रीकृष्णको अर्पण कर दी॥ ३८॥ तदनन्तर अक्रूरजीके हाथसे सरलतापूर्वक मणि पा जानेपर अरिदमन श्रीकृष्णने मनमें प्रसन्न होकर वह मणि फिर अक्रूरजीको दे दी॥ ३९॥

स कृष्णहस्तात् सम्प्राप्तं मणिरत्नं स्यमन्तकम्।
आबद्ध्य गान्दिनीपुत्रो विरराजांशुमानिव॥ ४०
यस्त्वेवं शृणुयान्नित्यं शुचिर्भूत्वा समाहितः।
सुखानां सकलानां च फलभागीह जायते॥ ४१
आ ब्रह्मभुवनाच्चापि यशःख्यातिर्न संशयः।
भविष्यति नृपश्रेष्ठ सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ ४२

तब श्रीकृष्णके हाथसे मिली हुई मणिरत्न स्यमन्तक-मणिको गलेमें बाँधकर गान्दिनीपुत्र अक्रूर सूर्यके समान सुशोभित हुए॥ ४०॥ इस प्रकार जो मनुष्य पवित्र होकर सावधानतापूर्वक इस कथाको नित्यप्रति सुनता है, उसको फलरूपमें सम्पूर्ण सुख प्राप्त होते हैं॥ ४१॥ नृपश्रेष्ठ! उसकी कीर्ति ब्रह्मलोकतक पहुँचती है, इसमें कुछ संदेह नहीं है, यह मैं आपसे सत्य कह रहा हूँ॥ ४२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वण्येकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें (बलदेवजीके द्वारा दुर्योधनको गदा-विद्याकी शिक्षाविषयक) उनतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ३९॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

जनमेजयका भगवान्‌के वराह, नृसिंह, परशुराम, श्रीकृष्ण आदि अवतारोंका रहस्य पूछना

जनमेजय उवाच

प्रादुर्भावान् पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः।
सतां कथयतामेव वाराह इति नः श्रुतम्॥ १

न जाने तस्य चरितं न विधिं नैव विस्तरम्।
न कर्मगुणसंतानं न हेतुं न मनीषितम्॥ २

किमात्मको वराहः स का मूर्तिः का च देवता।
किमाचारः प्रभावो वा किं वा तेन पुरा कृतम्॥ ३

यज्ञार्थं समवेतानां मिषतां च द्विजन्मनाम्।
महावराहचरितं कृष्णद्वैपायनेरितम्॥ ४

जनमेजयने कहा—ब्रह्मन्! मैंने कथा कहनेवाले सज्जनोंके मुखसे अमिततेजस्वी विष्णुके अवतारोंमें वराह अवतारकी भी बात पुराणोंमें सुनी है (वराह शब्दका आध्यात्मिक अर्थ वर और अह अर्थात् श्रेष्ठ यज्ञ है)॥ १॥ परंतु मैं उन वराह भगवान्‌के (सर्वकार्य-जनकत्वरूप) चरित्रको, (अपूर्वस्वरूपका आविष्कार करनेकी) विधिको, (अनुष्ठानकी आवश्यकतारूप) विस्तारको तथा उनके कर्म (अर्थात् उसके कर्मसे तृप्त होनेवाले देवता आदि) तथा गुण-देश-द्रव्य-काल आदि एवं संतान (प्रयोगविधि)-को, हेतु अर्थात् अधिकारको और वे किस अभिप्रायसे त्यागात्मक स्वरूपको ग्रहण करते हैं, उसे मैं कुछ नहीं समझता (अतः आप मुझे ये सब बातें समझाइये)॥ २॥ (इस प्रकार वराहावतारके अधियज्ञस्वरूपकी बात पूछनेके अनन्तर अब राजा जनमेजय उनके आधिदैविक रूपके विषयमें पूछते हैं—) उन वराहका वास्तविक स्वरूप क्या है? उनकी मूर्ति (बाहरी आकृति) कैसी है? उनका (अधिष्ठातृ) देवता कौन है? उनके कर्म क्या हैं? उनका प्रभाव कैसा है और उन्होंने उस अवतारमें क्या किया था?॥ ३॥ मैंने कृष्णद्वैपायनजीका कहा हुआ महावराहका चरित्र यज्ञमें एकत्रित हुए ब्राह्मणोंके वाद-विवादमें सुना है (परंतु उसका तत्त्व मेरी समझमें नहीं आया)॥ ४॥

यथा नारायणो ब्रह्मन् वाराहं रूपमास्थितः।
दंष्ट्रया गां समुद्रस्थामुज्जहारारिसूदनः॥ ५

विस्तरेणैव कर्माणि सर्वाणि रिपुघातिनः।
श्रोतुमिच्छाम्यशेषेण हरेः कृष्णस्य धीमतः॥ ६

कर्मणामानुपूर्व्याच्च प्रादुर्भावाश्च ये विभोः।
या चास्य प्रकृतिर्ब्रह्मंस्तां मे व्याख्यातुमर्हसि॥ ७

कथं च भगवान् विष्णुः सुरशत्रुनिषूदनः।
वसुदेवकुले धीमान् वासुदेवत्वमागतः॥ ८

अमरैरावृतं पुण्यं पुण्यकृद्भिर्निषेवितम्।
देवलोकं समुत्सृज्य मर्त्यलोकमिहागतः॥ ९

देवमानुषयोर्नेता यो भुवः प्रभवो विभुः।
किमर्थं दिव्यमात्मानं मानुष्ये संन्ययोजयत्॥ १०

यच्चक्रं वर्तयत्येको मानुषाणामनामयम्।
मानुष्ये स कथं बुद्धिं चक्रे चक्रभृतां वरः॥ ११

गोपायनं यः कुरुते जगतः सार्वलौकिकम्।
स कथं गां गतो देवो विष्णुर्गोपत्वमागतः॥ १२

महाभूतानि भूतात्मा यो दधार चकार च।
श्रीगर्भः स कथं गर्भे स्त्रिया भूचरया धृतः॥ १३

येन लोकान् क्रमैर्जित्वा त्रिभिस्त्रींस्त्रिदशेप्सया।
स्थापिता जगतो मार्गास्त्रिवर्गप्रभवास्त्रयः॥ १४

योऽन्तकाले जगत् पीत्वा कृत्वा तोयमयं वपुः।
लोकमेकार्णवं चक्रे दृश्यादृश्येन वर्त्मना॥ १५

यः पुराणे पुराणात्मा वाराहं रूपमास्थितः।
विषाणाग्रेण वसुधामुज्जहारारिसूदनः॥ १६

ब्रह्मन्! भगवान् नारायणने जिस प्रकार वराहरूप धारण किया और उन अरिसूदन भगवान्‌ने जिस प्रकार अपनी दाढ़से समुद्रके गर्भमें पड़ी हुई पृथ्वीका उद्धार किया, यह सब मुझे आप बतानेकी कृपा करें॥ ५॥ मैं शत्रुसंहारक परम ज्ञानी हरिरूप भगवान् श्रीकृष्णके (वराह आदि सब अवतारोंमें किये हुए) सभी चरित्रोंको विस्तारपूर्वक पूर्णरीतिसे सुनना चाहता हूँ॥ ६॥ ब्रह्मन्! लीलाओंके क्रमसे इन सर्वव्यापी भगवान्‌के जितने भी अवतार हुए हैं उन सबकी और (उन अवतारोंके समय उनकी) जो प्रकृति थी उसकी आप कृपा करके व्याख्या कीजिये॥ ७॥ फिर देवताओंके शत्रुओंका नाश करनेवाले परम चतुर भगवान् विष्णु वसुदेवके कुलमें उत्पन्न होकर वासुदेव क्यों कहलाये (अर्थात् वे कर्मबन्धनसे रहित होनेपर भी उत्तम स्थानसे नीचे स्थानमें क्यों आये)?॥ ८॥ वे देवताओंसे घिरे हुए एवं पुण्यात्माओंद्वारा सेवित पवित्र देवलोकको छोड़कर इस मृत्युलोकमें क्यों आये?॥ ९॥ जो देवता और मनुष्योंके नेता हैं और जो विभु पृथ्वीके भी उत्पत्तिस्थान हैं, उन्होंने अपने दिव्य आत्माको मनुष्य-शरीरमें क्यों स्थापित किया?॥ १०॥ जो अकेले ही सब मनुष्योंके (कर्मसे जन्म और जन्मसे पुनः कर्मरूप) चक्रको निर्विघ्नतापूर्वक चलाते हैं, उन चक्रधारियोंमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णने मनुष्य बननेका विचार क्यों किया?॥ ११॥ जो जगत्‌के सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा करते हैं, वे भगवान् विष्णु पृथ्वीपर आकर गोप कैसे बन गये?॥ १२॥ जो समस्त भूतोंके अन्तरात्मा प्रभु स्वयं महाभूतोंको रचते और धारण करते हैं, उन श्रीगर्भको पृथ्वीपर विचरण करनेवाली स्त्रीने अपने गर्भमें किस प्रकार धारण किया?॥ १३॥ जिन्होंने देवताओंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये तीन पैड़ों (डगों)-से तीनों लोकोंको जीतकर जगत्‌में धर्म, अर्थ और कामसे प्राप्त होनेवाले तीन मार्ग—तीन गतियाँ स्थापित कर दीं (धर्मसे स्वर्ग अर्थात् ऊर्ध्वगति, अर्थसे मर्त्यलोक अर्थात् मध्यमगति और कामसे नरकादि अधोलोक अर्थात् अधोगति मिलती है)॥ १४॥ जो भगवान् प्रलयकालमें दृश्य और अदृश्य रीतिसे (कारणसहित) सम्पूर्ण जगत्‌का पान (ग्रास) करके अपने शरीरको जलमय बनाकर सम्पूर्ण जगत्‌को एक जलमय ही कर देते हैं,॥ १५॥ प्राचीन समयमें जिन पुराणात्मा अरिसूदन भगवान्‌ने वराहके रूपमें अपने दाँतोंके अग्रभागसे पृथ्वीका उद्धार किया,॥ १६॥

यः पुरा पुरुहूतार्थे त्रैलोक्यमिदमव्ययः।
ददौ जित्वासुरगणान् सुराणां सुरसत्तमः॥ १७

येन सैंहं वपुः कृत्वा द्विधा कृत्वा च तत् पुनः।
पूर्वं दैत्यो महावीर्यो हिरण्यकशिपुर्हतः॥ १८

यः पुरा ह्यनलो भूत्वा और्वः संवर्तको विभुः।
पातालस्थोऽर्णवगतं पपौ तोयमयं हविः॥ १९

सहस्रशिरसं ब्रह्मन् सहस्राक्षं सहस्रदम्।
सहस्रचरणं देवं यमाहुर्वै युगे युगे॥ २०

नाभ्यारण्यां समुत्पन्नं यस्य पैतामहं गृहम्।
एकार्णवजलस्थस्य नष्टे स्थावरजङ्गमे॥ २१

येन ते निहता दैत्याः संग्रामे तारकामये।
सर्वदेवमयं कृत्वा सर्वायुधधरं वपुः॥ २२

गरुडस्थेन चोत्सिक्तः कालनेमिर्निपातितः।
निर्जितश्च मयो दैत्यस्तारकश्च महासुरः॥ २३

उत्तरान्ते समुद्रस्य क्षीरोदस्यामृतोदधेः।
यः शेते शाश्वतं योगमास्थाय तिमिरं महत्॥ २४

सुरारणिर्गर्भमधत्त दिव्यं
तपःप्रकर्षाददितिः पुराणम्।
शक्रं च यो दैत्यगणावरुद्धं
गर्भावसाने निभृतं चकार॥ २५

पदानि यो लोकमयानि कृत्वा
चकार दैत्यान् सलिलेशयांस्तान्।
कृत्वा च देवांस्त्रिदिवस्य देवां-
श्चक्रे सुरेशं त्रिदशाधिपत्ये॥ २६

पात्राणि दक्षिणा दीक्षा चमसोलूखलानि च।
गार्हपत्येन विधिना अन्वाहार्येण कर्मणा॥ २७

अग्निमाहवनीयं च वेदीं चैव कुशं स्रुवम्।
प्रोक्षणीयं ध्रुवां चैव आवभृथ्यं तथैव च॥ २८

पहले जिन अविनाशी सुरश्रेष्ठने इन्द्रके लिये असुरोंकी सेनाको जीतकर देवताओंको तीनों लोक (वापस) दिला दिये॥ १७॥ जिन्होंने पूर्वकालमें सिंहका रूप धारणकर और फिर उसको दो प्रकारका अर्थात् नर-सिंहरूप बनाकर महान् पराक्रमी दैत्य हिरण्यकशिपुको मार डाला॥ १८॥ जिन विभुने पहले (प्रलयकालमें) पातालमें जाकर और्ववंशी संवर्तक अग्निका स्वरूप धारण कर समुद्रके जलरूप हवि (घी)-का पान कर लिया॥ १९॥ ब्रह्मन्! प्रत्येक युगमें जिन भगवान्को सहस्र अर्थात् अनन्त सिरवाला, अनन्त आँखोंवाला, अनन्त दान करनेवाला और अनन्त चरणोंवाला कहा जाता है॥ २०॥ स्थावर-जङ्गमात्मक जगत्के लीन होनेपर जिन एक समुद्रमय जलमें स्थित पुरुषकी नाभिसे प्रकट होनेवाले कमल-नालरूप अरणि (मन्थनदण्ड)-से पितामहका भवन (लोककमल) उत्पन्न हुआ॥ २१॥ जिन्होंने तारकामय संग्राममें अपने शरीरको सर्वदेवमय और सर्वायुधधारी बनाकर दैत्योंको मार डाला॥ २२॥ जिन्होंने गरुड़पर बैठकर उद्दण्ड कालनेमिको नष्ट कर दिया तथा मय दैत्य और महान् असुर तारकको मार डाला॥ २३॥ जो क्षीरसमुद्रके उत्तर तटपर स्थित अमृत-समुद्रमें योगमायारूप शाश्वत योगका आश्रय लेकर शयन करते हैं॥ २४॥ देवताओंको उत्पन्न करनेवाली अरणिरूपा अदितिने महान् तप करके जिन पुराणपुरुष (वामन)-रूपी गर्भको धारण किया और जिन्होंने गर्भसे निकलनेके बाद दैत्योंके चक्रमें फँसे हुए इन्द्रको दैत्योंके चक्रसे मुक्त करके पूर्णकाम बना दिया॥ २५॥ जिन्होंने अपने डगोंको लोकमय करके अर्थात् एक-एक डगसे एक-एक लोकको नापकर दैत्योंको पातालमें भेज दिया, देवताओंको स्वर्गका विहार करनेवाला बना दिया और देवराज इन्द्रको देवताओंके सम्राट्-पदपर स्थापित कर दिया॥ २६॥ जिन्होंने गृह्यसूत्रोंमें कही हुई विधि तथा अन्वाहार्यकर्म* के साथ (यज्ञोपयोगी) चमस, उलूखल आदि पात्र, दक्षिणा और दीक्षा आदिकी रचना की॥ २७॥ जिन्होंने आहवनीय अग्नि, वेदी, स्रुवा, कुशाएँ, प्रोक्षणीपात्र, ध्रुवा और अवभृथ स्नानोपयोगी सामग्रीकी कल्पना की॥ २८॥

* पितरोंके निमित्तसे प्रति अमावस्याको किया जानेवाला मासिक श्राद्ध।

सुधात्रीणि च यश्चक्रे हव्यकव्यप्रदान् द्विजान्।
हव्यादांश्च सुरान् यज्ञे क्रव्यादांस्तु पितॄनपि॥ २९

भागार्थे मन्त्रविधिना यश्चक्रे यज्ञकर्मणि।
यूपान् समित् स्रुचं सोमं पवित्रान् परिधीनपि॥ ३०

यज्ञियानि च द्रव्याणि यज्ञांश्च सचयानलान्।
सदस्यान् यजमानांश्च मेध्यादींश्च क्रतूत्तमान्॥ ३१

विबभाज पुरा सर्वं पारमेष्ठ्येन कर्मणा।
युगानुरूपान् यः कृत्वा लोकाननुपराक्रमत्॥ ३२

क्षणा लवाश्च काष्ठाश्च कलास्त्रैकाल्यमेव च।
मुहूर्तास्तिथयो मासाः पक्षाः संवत्सरास्तथा॥ ३३

ऋतवः कालयोगाश्च प्रमाणं त्रिविधं त्रिषु।
आयुः क्षेत्राण्युपचयो लक्षणं रूपसौष्ठवम्॥ ३४

त्रयो वर्णास्त्रयो लोकास्त्रैविद्यं पावकास्त्रयः।
त्रैकाल्यं त्रीणि कर्माणि त्रयोऽपायास्त्रयो गुणाः॥ ३५

त्रयो लोकाः पुरा सृष्टा येनानन्त्येन कर्मणा।
सर्वभूतगणस्रष्टा सर्वभूतगुणात्मकः॥ ३६

नृणामिन्द्रियपूर्वेण योगेन रमते च यः।
गतागताभ्यां यो नेता सर्वत्र जगदीश्वरः॥ ३७

जिन्होंने (ऊर्ध्व, मध्य और अधोगतिरूप) सुधा आदि तीन भोग्य पदार्थ बनाकर ब्राह्मणोंको हव्य-कव्य प्रदान करनेवाला, देवताओंको यज्ञमें हवि भक्षण करनेवाला और पितरोंको (श्राद्धादिमें अर्पण किये जानेवाले पिण्ड आदि) कव्य भक्षण करनेवाला बनाया॥ २९॥ जिन्होंने (देवताओंका) भाग निकालनेके लिये मन्त्रके प्रयोगकी विधिके साथ-साथ यज्ञकर्ममें यूप, समिधा, स्रुवा, सोम, पवित्र (पैंती) एवं परिधियोंकी कल्पना की,॥ ३०॥ जिन्होंने यज्ञोपयोगी द्रव्य, यज्ञ, ईंटोंके बने अग्नि-स्थापनके स्थान तथा आहवनीय आदि तीन प्रकारकी अग्नियाँ, सदस्य (यज्ञकर्मका निरीक्षण करनेवाले ब्राह्मण), यजमान, उत्तम यज्ञ एवं मेध्य आदि पदार्थोंका ब्रह्माजीकी प्रचलित की हुई विधिसे विभाग किया और जिन्होंने लोकोंको युगोंके अनुरूप बनाकर फिर अपना हाथ हटा लिया॥ ३१-३२॥ जिन्होंने क्षण, लव, काष्ठा, कला, (प्रातः, मध्याह्न और सायंकालरूप) तीन काल, मुहूर्त, तिथि, मास, पक्ष, वर्ष, ऋतु, कालके विविध योग, (नित्य, नैमित्तिक और काम्य इन) तीन प्रकारके (प्रमेय) कर्मोंमें (श्रुति, स्मृति, शिष्टाचाररूप) तीन प्रकारका प्रमाण, आयु, क्षेत्र (स्थावर-जङ्गम शरीर), वृद्धि, (दो पैर, चार पैर आदि) लक्षण और आकृतिकी सुन्दरता रची॥ ३३-३४॥ जिन्होंने तीन वर्ण (शूद्रको यज्ञ करनेका अधिकार नहीं है, अतः उसका ग्रहण नहीं किया), (भू आदि) तीन लोक, (ऋक्, यजुः, सामरूप) तीन विद्याएँ, (गार्हपत्य, आहवनीय एवं दक्षिण नामकी) तीन अग्नियाँ, (भूत, भविष्यत्, वर्तमानरूप) तीन काल, (सात्त्विक, राजस और तामसरूप) तीन कर्म, (पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणारूप) तीन अपाय और (सत्त्व, रज, तमरूप) तीन गुण रचे॥ ३५॥ जिन्होंने (जीवोंके) अनन्त कर्मोंके कारण तीन लोकोंकी रचना की, (साथ ही) जो सब प्राणियोंको रचनेवाले हैं और जिनमें सब भूतोंके गुण रहते हैं,॥ ३६॥ जो जगदीश्वर समस्त ब्रह्माण्डमें जीवात्माको जन्म-मृत्यु देनेके कारण सबके नेता हैं और जो (जीवरूपसे) इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग करके सर्वत्र रमण करते हैं॥ ३७॥

यो गतिर्धर्मयुक्तानामगतिः पापकर्मणाम्।
चातुर्वर्ण्यस्य प्रभवश्चातुर्होत्रस्य रक्षिता॥ ३८

चातुर्विद्यस्य यो वेत्ता चातुराश्रम्यसंश्रयः।
दिगन्तरो नभोभूतो वायुरापो विभावसुः॥ ३९

यश्चन्द्रसूर्ययोर्ज्योतिर्योगीशः क्षणदान्तकः।
यत् परं श्रूयते ज्योतिर्यत् परं श्रूयते तपः॥ ४०

यं परं प्राहुरपरं यः परः परमात्मवान्।
नारायणपरा वेदा नारायणपराः क्रियाः॥ ४१

नारायणपरो धर्मो नारायणपरा गतिः।
नारायणपरं सत्यं नारायणपरं तपः॥ ४२

नारायणपरो मोक्षो नारायणपरायणम्।
आदित्यादिस्तु यो दिव्यो यश्च दैत्यान्तको विभुः॥ ४३

युगान्तेष्वन्तको यश्च यश्च लोकान्तकान्तकः।
सेतुर्यो लोकसेतूनां मेध्यो यो मेध्यकर्मणाम्॥ ४४

जो धर्म करनेवालोंकी गति (गन्तव्य स्थान) हैं और पापकर्म करनेवालोंकी अगति हैं अर्थात् पापकर्म करनेवाले जिनको नहीं पा सकते, जो चारों वर्णोंके उत्पत्तिस्थान हैं (यह बात '**ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्**' आदि श्रुतिको लक्ष्य करके कही गयी है) और जो (जिसमें चार ऋत्विज् हवन करते हैं ऐसे) चातुर्होत्र (यज्ञ)-के रक्षक हैं,॥ ३८॥ जो (आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता और दण्डनीतिरूप) चार विद्याओंके ज्ञाता हैं, जो (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यासरूप) चारों आश्रमोंके आश्रय हैं (अर्थात् जिनकी प्राप्तिके लिये चारों आश्रमोंके धर्मोंका पालन किया जाता है) और दिशाएँ जिनके गर्भमें रहती हैं (अर्थात् जो दिशाओंको भी अवकाश देते हैं) तथा जो वायु, आकाश, जल, अग्नि और पृथ्वीरूप हैं,॥ ३९॥ जो चन्द्रमा और सूर्यको भी ज्योति देनेवाले हैं, योगीश्वर हैं, (मोहरूपी) रात्रिका अन्त करनेवाले हैं, जो परम ज्योतिः-स्वरूप सुने जाते हैं अर्थात् जिनका ज्योति:स्वरूप नेत्र सर्वत्र सब कुछ देखता है और जो परम तप:स्वरूप सुने जाते हैं अर्थात् जो परम तपस्याके द्वारा प्राप्त होते हैं,॥ ४०॥ जिनको पर (सूत्रात्मा) और अपर (विराट्) भी कहते हैं और जो परात्पर हैं अर्थात् सूत्रात्मासे भी पर मायासम्पन्न महेश्वर सगुण ब्रह्म हैं, आत्मवान् हैं अर्थात् आत्माके समान ही मायारूपी शरीरवाले हैं। वेद नारायणका ही निरूपण करते हैं। सभी क्रियाओंका पर्यवसान भी नारायणमें ही होता है॥ ४१॥ धर्मका लक्ष्य भी नारायण हैं, सम्पूर्ण गतियोंकी परम गति नारायण हैं, नारायण ही सत्यके आधार हैं और नारायण ही तपके द्वारा प्राप्य हैं॥ ४२॥ नारायण ही मोक्षके आधार हैं। नारायण ही परम आश्रयरूप हैं। जो प्रभु आकाशमें विचरण करनेवाले आदित्य आदि ग्रहोंके स्वरूपमें स्थित हैं और दैत्योंका संहार करनेवाले हैं॥ ४३॥ जो प्रलयके समय कालका रूप धारण कर लेते हैं, संसारका अन्त करनेवाले यमके भी यम हैं, मृत्युकी भी मृत्यु हैं, लोकोंकी मर्यादा बाँधनेवाले (मनु आदिके भी) सेतु हैं अर्थात् मनु आदिको भी मर्यादामें रखनेवाले हैं और पवित्र करनेवाले (गङ्गा आदि तीर्थों)-को भी पवित्र करनेवाले हैं॥ ४४॥

वेद्यो यो वेदविदुषां प्रभुर्यः प्रभवात्मनाम्।
सोमभूतस्तु सौम्यानामग्निभूतोऽग्निवर्चसाम्॥ ४५

मनुष्याणां मनोभूतस्तपोभूतस्तपस्विनाम्।
विनयो नयवृत्तीनां तेजस्तेजस्विनामपि।
सर्गाणां सर्गकारश्च लोकहेतुरनुत्तमः॥ ४६

विग्रहो विग्रहार्हाणां गतिर्गतिमतामपि।
आकाशप्रभवो वायुर्वायुप्राणो हुताशनः॥ ४७

देवा हुताशनप्राणाः प्राणोऽग्नेर्मधुसूदनः।
रसाद् वै शोणितं जातं शोणितान्मांसमुच्यते॥ ४८

मांसात्तु मेदसो जन्म मेदसोऽस्थीनि चैव हि।
अस्थ्नो मज्जा समभवन्मज्जातः शुक्रमेव च॥ ४९

शुक्राद् गर्भः समभवद् रसमूलेन कर्मणा।
तत्रापां प्रथमो भागः स सौम्यो राशिरुच्यते॥ ५०

गर्भोष्मसम्भवोऽग्निर्यो द्वितीयो राशिरुच्यते।
शुक्रं सोमात्मकं विद्यादार्तवं विद्धि पावकम्॥ ५१

भागौ रसात्मकौ ह्येषां वीर्यं च शशिपावकौ।
कफवर्गे भवेच्छुक्रं पित्तवर्गे च शोणितम्॥ ५२

कफस्य हृदयं स्थानं नाभ्यां पित्तं प्रतिष्ठितम्।
देहस्य मध्ये हृदयं स्थानं तन्मनसः स्मृतम्।
नाभिकोष्ठान्तरं यत् तु तत्र देवो हुताशनः॥ ५३

जो वेदके ज्ञाताओंद्वारा जाननेयोग्य हैं, प्रभुत्व स्वभाववाले (मरीचि आदि)-के भी प्रभु हैं और जो सौम्य पुरुषोंमें चन्द्रमाकी भाँति प्रियदर्शन हैं, जो अग्निके समान तेजस्वी पुरुषोंमें अग्निस्वरूप हैं॥ ४५॥ जो मनुष्योंके मनरूप हैं, तपस्वियोंके तपरूप हैं, जो नीतिमान् पुरुषोंमें नम्रतारूपसे विराजमान रहते हैं और तेजस्वियोंमें तेज:स्वरूप हैं और जो सृष्टियोंके रचनेवाले तथा संसारके सर्वश्रेष्ठ कारण हैं॥ ४६॥ जो शरीर धारण करके अवतार लेनेवाले देवताओंके विग्रहरूप हैं, गतिमानोंकी गति हैं, आकाशमें उत्पन्न होनेवाले वायु हैं तथा वायुसे जीनेवाले अग्निस्वरूप हैं॥ ४७॥ अग्नि देवताओंके प्राण हैं और मधुसूदन अग्निके भी प्राण हैं। (वे अग्निके प्राण बनकर अग्निके द्वारा क्या करते हैं, इसको स्पष्ट करते हुए कहते हैं, अग्निके द्वारा पृथक् किये हुए अन्नके साररूप) रससे रक्त बनता है (और उससे क्रमशः वीर्य बनकर गर्भ रहता है, इस प्रकार वह अग्निके प्राण बनकर अग्निके द्वारा सारा सृष्टि-कार्य चलाते हैं) और रक्तसे मांस बनता है॥ ४८॥ मांससे मेद (चर्बी)-की उत्पत्ति होती है और मेदसे अस्थियोंकी उत्पत्ति होती है, हड्डियोंसे मज्जा बनती है और मज्जासे वीर्यकी उत्पत्ति होती है॥ ४९॥ रसमूल कर्मके द्वारा वीर्यसे गर्भ रहता है, उसमें प्रथम भाग जलका अंश (वीर्य होता है, वह श्वेत होनेसे) सौम्य होता है, जलप्रधान सोमका अंश होता है और गर्भकी गरमीसे अर्थात् जठराग्निसे उत्पन्न हुआ (रक्तरूप) जो दूसरा भाग उसमें रहता है, वह (रक्त-राशि) अग्निका अंश कहलाता है। (इस प्रकार) वीर्यको सोमका अंश और रजको अग्निका अंश समझना चाहिये॥ ५०-५१॥ (पूर्वोक्त रीतिसे) ये दोनों रसके ही भाग हैं, क्योंकि शशि और पावक अर्थात् शुक्र और शोणित इन रस आदिके ही सार हैं। (अब जगत्के अग्नीषोमात्मकस्वरूपको सिद्ध करते हैं) शुक्र (वीर्य) कफवर्गमें है और रक्त पित्तवर्गमें है। (वीर्यके आश्रयसे रहनेवाले और जिसका देवता सोम है, ऐसे) कफका स्थान हृदय है। (रक्तके आश्रयसे रहनेवाले और जिसका देवता अग्नि है, ऐसे) पित्तका स्थान नाभि है। देहके मध्यमें जो हृदय है, वही मनका स्थान कहलाता है और नाभिकोष्ठके भीतर (वाणीका अधिष्ठातृदेवता) अग्नि रहता है॥ ५२-५३॥

मनः प्रजापतिर्ज्ञेयः कफः सोमो विभाव्यते।
पित्तमग्निः स्मृतं ह्येतदग्नीषोमात्मकं जगत्॥ ५४

एवं प्रवर्तिते गर्भे वर्द्धितेऽम्बुदसंनिभे।
वायुः प्रवेशं संचक्रे सङ्गतः परमात्मना॥ ५५

ततोऽङ्गानि विसृजति बिभर्ति परिवर्द्धयन्।
स पञ्चधा शरीरस्थो भिद्यते वर्द्धते पुनः॥ ५६

प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च।
प्राणः स प्रथमं स्थानं वर्द्धयन् परिवर्तते॥ ५७

अपानः पश्चिमं कायमुदानोर्ध्वं शरीरिणः।
व्यानो व्यायच्छते येन समानः संनिवर्तयेत्।
भूतावाप्तिस्ततस्तस्य जायतेन्द्रियगोचरात्॥ ५८

पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम्।
तस्येन्द्रियाणि विष्टानि स्वं स्वं योगं प्रचक्रिरे॥ ५९

(मनका अधिष्ठातृदेवता प्रजापति होनेके कारण) मनको प्रजापति समझना चाहिये, कफको सोम समझना चाहिये और पित्तको अग्नि कहा गया है। इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् अग्नीषोमात्मक है॥ ५४॥ जैसे धुएँ, ज्योति, जल और पवनसे मेघ बढ़ता है, उसी प्रकार गर्भ भी अन्न, अग्नि, जल और प्राणसे बढ़ता है, अतएव अचेतन है, उसके बढ़नेपर (प्राणवायुका सहचर होनेसे जीवरूप) वायु ईश्वरके साथ उसमें प्रवेश करता है (और उसीके साथ उत्क्रमण करता है)॥ ५५॥ देहमें प्रवेश करनेके अनन्तर वह (प्राणोपाधिक) जीव (सिर आदि) अङ्गोंको रचता है और उनको बढ़ाता हुआ उनको पुष्ट भी करता रहता है। वह (प्राणके पाँच प्रकारका होनेसे स्वयं भी) पाँच भागोंमें बँटकर बढ़ता रहता है॥ ५६॥ वे पाँच भेद इस प्रकार हैं—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। इनमें प्राण प्रथम स्थान (हृत्-पिण्ड-हृदय)-को पुष्ट करता हुआ चलता रहता है॥ ५७॥ अपान प्राणीके (जङ्घासे लेकर चरणतक) अधःशरीरको और उदान प्राणीके (जङ्घाओंसे ऊपरके) ऊर्ध्व-शरीरको बढ़ाता है तथा व्यान व्यायाम अर्थात् बल-साध्य कर्म करता है (अतएव वह शरीरकी सब संधियोंमें वर्तमान रहता है) एवं समान (नाभिमें रहकर) खायी और पीयी हुई वस्तुओंको समान करता है (यथास्थान पहुँचा देता है)। इस प्रकार प्राणके कर्मोंका विभाग होनेके अनन्तर जीवको इन्द्रियोंके विषय (रूप आदि)-के द्वारा उनके आश्रय (अग्नि आदि) भूतोंका साक्षात्कार होता है॥ ५८॥ (इसका कारण यह है कि) पृथ्वी, जल, तेज, वायु और पाँचवाँ आकाश—ये सब इन्द्रियोंके रूपमें परिणत होकर शरीरके अन्तर्गत अपने-अपने नेत्र-गोलक आदि स्थानोंमें प्रविष्ट हो जाते हैं, इस प्रकार वे अपने-अपने सजातीयको ग्रहण करते हैं (अर्थात् पार्थिव घ्राणेन्द्रिय पृथ्वीके गुण गन्धको ग्रहण करती है, जलीय रसनेन्द्रिय जलके गुण रसको ग्रहण करती है, तैजस् चक्षु तेजके गुण रूपको ग्रहण करती है, वायवीय त्वगिन्द्रिय वायुके गुण स्पर्शको ग्रहण करती है और आकाशीय श्रोत्रेन्द्रिय आकाशके गुण शब्दको ग्रहण करती है)॥ ५९॥

पार्थिवं देहमाहुस्तं प्राणात्मानं च मारुतम्।
छिद्राण्याकाशयोनीनि जलात् स्रावः प्रवर्तते॥ ६०

देहको अर्थात् इकट्ठे हुए कठिनांशको पृथ्वीका विकार कहते हैं, प्राणको वायुका, शरीरमें स्थित नौ छिद्रोंको आकाशका विकार कहते हैं और शरीरसे निकलनेवाले (मूत्र, पसीना, वीर्य आदि) सभी स्राव जलके विकार हैं॥ ६०॥

ज्योतिश्चक्षुश्च तेजात्मा तेषां यन्ता मनः स्मृतः।
ग्रामाश्च विषयाश्चैव यस्य वीर्यात् प्रवर्तिताः॥ ६१

इत्येवं पुरुषः सर्वान् सृजँल्लोकान् सनातनान्।
कथं लोके नैधनेऽस्मिन् नरत्वं विष्णुरागतः॥ ६२

चक्षुरिन्द्रिय तेजःस्वरूप है, इन सब पृथ्वी आदिके (सम्मिलित) तेजका अंश मन है, यह सभी इन्द्रियोंका नियामक है—इन सबको वशमें रखता है (मनके संयोगसे ही ये सब कार्यक्षम होती हैं)। इस मनके वीर्य-शक्तिसे ही (रूप आदिके आश्रय) पृथ्वी आदिका समूह और गन्ध आदि विषय प्रत्यक्ष होते हैं अथवा ग्राम-नगर सब मनके लगनेपर ही बनाये जाते हैं॥ ६१॥ पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु इस प्रकार इन सनातन लोकोंको रचते रहते हैं। ऐसे विष्णुभगवान् इस मरणशील संसारमें मनुष्य क्यों बने?॥ ६२॥

एष मे संशयो ब्रह्मन्नेवं मे विस्मयो महान्।
कथं गतिर्गतिमतामापन्नो मानुषीं तनुम्॥ ६३

ब्रह्मन्! मुझे यही संदेह और बड़ा भारी विस्मय हो रहा है कि गतिमानोंको भी गति देनेवाले भगवान्ने मनुष्य-शरीर किसलिये धारण किया॥ ६३॥

श्रुतो मे स्वस्य वंशस्य पूर्वेषां चैव सम्भवः।
श्रोतुमिच्छामि विष्णोस्तु वृष्णीनां च यथाक्रमम्॥ ६४

मैंने अपने वंशकी और अपने पूर्वजोंकी उत्पत्ति सुन ली, अब मैं विष्णुकी और वृष्णिवंशियोंकी उत्पत्तिको क्रमानुसार सुनना चाहता हूँ॥ ६४॥

आश्चर्यं परमं विष्णुर्देवैर्दैत्यैश्च कथ्यते।
विष्णोरुत्पत्तिमाश्चर्यं ममाचक्ष्व महामुने॥ ६५

महामुने! देवता और दैत्य विष्णुको परम अचरजभरा बताते हैं, अतः आप विष्णुकी अचरजसे भरी हुई उत्पत्तिका मुझसे वर्णन कीजिये॥ ६५॥

एतदाश्चर्यमाख्यानं कथयस्व सुखावहम्।
प्रख्यातबलवीर्यस्य विष्णोरमिततेजसः।
कर्म चाश्चर्यभूतस्य विष्णोस्तत्त्वमिहोच्यताम्॥ ६६

आप बल और वीर्यके लिये प्रसिद्ध अमित तेजस्वी भगवान् विष्णुके इस सुख देनेवाले आश्चर्यजनक आख्यानको सुनाइये और आश्चर्यस्वरूप विष्णुके कर्मोंको तथा तत्त्वको भी मुझे सुनाइये॥ ६६॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि वराहोत्पत्तिवर्णने चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें वराहोत्पत्तिविषयक चालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४०॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवान् विष्णुके वराह, नृसिंह, वामन, दत्तात्रेय, परशुराम, श्रीराम, श्रीकृष्ण, व्यास तथा कल्कि-अवतारोंकी संक्षिप्त कथा

वैशम्पायन उवाच

प्रश्नभारो महांस्तात त्वयोक्तः शार्ङ्गधन्वनि।
यथाशक्ति तु वक्ष्यामि श्रूयतां वैष्णवं यशः॥ १

विष्णोः प्रभावश्रवणे दिष्ट्या ते मतिरुत्थिता।
हन्त विष्णोः प्रवृत्तिं च शृणु दिव्यां मयेरिताम्॥ २

सहस्राक्षं सहस्रास्यं सहस्रचरणं च यम्।
सहस्रशिरसं देवं सहस्रकरमव्ययम्॥ ३

सहस्रजिह्वं भास्वन्तं सहस्रमुकुटं प्रभुम्।
सहस्रदं सहस्रादिं सहस्रभुजमव्ययम्॥ ४

सवनं हवनं चैव हव्यं होतारमेव च।
पात्राणि च पवित्राणि वेदिं दीक्षां चरुं स्रुवम्॥ ५

स्रुक्सोमं शूर्पमुसलं प्रोक्षणं दक्षिणायनम्।
अध्वर्युं सामगं विप्रं सदस्यं सदनं सदः॥ ६

यूपं समित्कुशं दर्वीं चमसोलूखलानि च।
प्राग्वंशं यज्ञभूमिं च होतारं चयनं च यत्॥ ७

ह्रस्वान्यतिप्रमाणानि चराणि स्थावराणि च।
प्रायश्चित्तानि चार्थं च स्थण्डिलानि कुशांस्तथा॥ ८

मन्त्रं यज्ञवहं वह्निं भागं भागवहं च यत्।
अग्रेभुजं सोमभुजं घृतार्चिषमुदायुधम्॥ ९

आहुर्वेदविदो विप्रा यं यज्ञे शाश्वतं विभुम्।
तस्य विष्णोः सुरेशस्य श्रीवत्साङ्कस्य धीमतः॥ १०

प्रादुर्भावसहस्राणि अतीतानि न संशयः।
भूयश्चैव भविष्यन्तीत्येवमाह प्रजापतिः॥ ११

वैशम्पायनजीने कहा—तात! तुमने शार्ङ्ग धनुष धारण करनेवाले भगवान् विष्णुके विषयमें यह प्रश्नका महान् भार मेरे ऊपर रख दिया। तथापि मैं यथाशक्ति तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर दूँगा। तुम श्रीहरिकी यशोगाथा—लीला-कथाका श्रवण करो॥ १॥ भगवान् विष्णुके प्रभावको सुननेमें जो तुम्हारे मनकी प्रवृत्ति हुई है, यह बड़े सौभाग्यकी बात है। अतः मैं हर्षपूर्वक श्रीहरिकी दिव्य लीला-कथाका वर्णन करता हूँ। तुम ध्यान देकर उसे सुनो॥ २॥ वेदवेत्ता ब्राह्मण जिन्हें सहस्रमुख, सहस्रनेत्र, सहस्रचरण, सहस्रशिर, सहस्रकर, अविनाशी देव, सहस्रों जिह्वाओंसे युक्त, प्रकाशमान, सहस्रों मुकुटोंसे सुशोभित प्रभु, सहस्रोंका दान करनेवाले, सहस्रों प्राणियोंके आदिस्रष्टा, सहस्रबाहु, अविकारी, सवन (यज्ञोपयोगी काल), हवनरूप कर्म, हव्य (हवनीय पदार्थ), होता (यजमान), यज्ञपात्र, पवित्रक, वेदी, दीक्षा, चरु, स्रुवा, स्रुक्, सोम, सूप, मुसल, प्रोक्षणी (पात्र), दक्षिणायन, अध्वर्यु (यजुर्वेदी), साम गान करनेवाला ब्राह्मण, सदस्य, पत्नीशाला, सभा, यूप, समिधा, कुशा, दर्वी, चमस, ऊखल, प्राग्वंश (यज्ञमण्डपमें स्थित यजमानगृह), यज्ञभूमि, होता (ऋत्विज्), चयन (ईंटोंकी बनी हुई वेदी), छोटे-बड़े चराचर जीव, प्रायश्चित्त, प्रयोजन या फल, स्थण्डिल (वेदी), कुश, मन्त्र, यज्ञवाहक अग्नि, देवताओंका भाग, भागवाहक, अग्रासनभोजी, सोमभोक्ता, घीकी आहुतिसे उठनेवाली ज्वाला, उदायुध (यज्ञ-समाप्तिके समय की जानेवाली उदयनीय नामक इष्टि) तथा यज्ञमें विद्यमान सनातन प्रभु कहते हैं, उन श्रीवत्सचिह्नविभूषित देवेश्वर बुद्धिमान् भगवान् विष्णुके सहस्रों अवतार हो चुके हैं और भविष्यमें भी समय-समयपर बारम्बार होते रहेंगे—इसमें संशय नहीं है। ऐसा प्रजापति ब्रह्माजीका कथन है॥ ३—११॥

यत् पृच्छसि महाराज पुण्यां दिव्यां कथां शुभाम्।
यदर्थं भगवान् विष्णुः सुरेशो रिपुसूदनः।
देवलोकं समुत्सृज्य वसुदेवकुलेऽभवत्॥ १२

तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि शृणु सर्वमशेषतः।
वासुदेवस्य माहात्म्यं चरितं च महाद्युतेः॥ १३

हितार्थं सुरमर्त्यानां लोकानां प्रभवाय च।
बहुशः सर्वभूतात्मा प्रादुर्भवति कार्यतः॥ १४

प्रादुर्भावांश्च वक्ष्यामि पुण्यान् दिव्यगुणैर्युतान्।
छान्दसीभिरुदाराभिः श्रुतिभिः समलंकृतान्॥ १५

शुचिः प्रयतवाग् भूत्वा निबोध जनमेजय।
इदं पुराणं परमं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम्॥ १६

हन्त ते कथयिष्यामि विष्णोर्दिव्यां कथां शृणु।
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
धर्मसंस्थापनार्थाय तदा सम्भवति प्रभुः॥ १७

तस्य ह्येका महाराज मूर्तिर्भवति सत्तमा।
नित्यं दिविष्ठा या राजंस्तपश्चरति दुश्चरम्॥ १८

द्वितीया चास्य शयने निद्रायोगमुपाययौ।
प्रजासंहारसर्गार्थं किमध्यात्मविचिन्तकम्॥ १९

सुप्त्वा युगसहस्रं स प्रादुर्भवति कार्यवान्।
पूर्णे युगसहस्रे तु देवदेवो जगत्पतिः॥ २०

पितामहो लोकपालाश्चन्द्रादित्यौ हुताशनः।
ब्रह्मा च कपिलश्चैव परमेष्ठी तथैव च॥ २१

देवाः सप्तर्षयश्चैव त्र्यम्बकश्च महायशाः।
वायुः समुद्राः शैलाश्च तस्य देहं समाश्रिताः॥ २२

सनत्कुमारश्च महानुभावो
मनुर्महात्मा भगवान् प्रजाकरः।
पुराणदेवोऽथ पुराणि चक्रे
प्रदीप्तवैश्वानरतुल्यतेजाः ॥ २३

महाराज! तुम जिस पवित्र, दिव्य एवं मङ्गलमयी कथाको पूछ रहे हो, उसका तथा जिस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये देवताओंके स्वामी शत्रुनाशक भगवान् विष्णु देवलोकको त्यागकर वसुदेवके कुलमें अवतीर्ण हुए थे, उसका भी मैं तुमसे भलीभाँति वर्णन करूँगा, तुम वह सब प्रसङ्ग पूर्णरूपसे सुनो। साथ ही महातेजस्वी वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णका माहात्म्य एवं चरित्र भी श्रवण करो॥ १२-१३॥ समस्त भूतोंके आत्मा भगवान् श्रीहरि देवता और मनुष्योंका कल्याण तथा लोकोंका अभ्युदय करनेके लिये आवश्यकतावश बारम्बार अवतीर्ण होते हैं॥ १४॥ मैं भगवान्‌के उदार वैदिक श्रुतियोंद्वारा वर्णित दिव्य गुणवाले पवित्र अवतारोंका वर्णन करूँगा॥ १५॥ जनमेजय! यह पवित्र एवं श्रेष्ठ पुराण वेदोंके समान सम्मानित है। तुम पवित्र एवं मौन होकर इसे सुनो। मैं बड़े हर्षके साथ तुमसे भगवान् विष्णुकी यह दिव्य कथा कहता हूँ। इसे श्रवण करो। भारत! जब-जब धर्मका ह्रास होता है, तब-तब प्रभु धर्मको दृढ़-रूपमें स्थापित करनेके लिये अवतार ग्रहण करते हैं॥ १६-१७॥ राजन्! महाराज! उनकी एक श्रेष्ठतम सात्त्विकी मूर्ति है, जो दिव्यलोकमें रहकर सदा दुष्कर तप करती है॥ १८॥ उनकी दूसरी मूर्ति प्रजाके संहार और सृष्टिके लिये योगनिद्राका आश्रय ले शेषशय्यापर शयन करती है। वह योगनिद्रा अध्यात्मचिन्तकोंकी समाधिसे भी उत्कृष्ट है॥ १९॥ एक सहस्र चतुर्युगोंतक शयन करके वे सृष्टि-संचालनके कार्यसे पुनः विभिन्न (देवता आदिके) रूपोंमें प्रकट होते हैं। सहस्र युग पूर्ण हो जानेपर वे देवाधिदेव जगदीश्वर विष्णु ही पितामह ब्रह्मा, इन्द्रादि लोकपाल, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, कपिल, परमेष्ठी (दक्ष), देवता, सप्तर्षि और महायशस्वी त्रिनेत्रधारी शिव आदिके रूपमें प्रादुर्भूत होते हैं। वायु, समुद्र और पर्वत—ये सब-के-सब उन्हींके विराट्-रूपका आश्रय लेकर स्थित हैं॥ २०—२२॥ महान् प्रभावशाली सनत्कुमार और प्रजाकी सृष्टि करनेवाले ऐश्वर्यशाली महात्मा मनु भी उन्हींके स्वरूप हैं। प्रदीप्त अग्निके समान तेजस्वी उन पुराणदेव श्रीहरिने ही समस्त देहधारियोंके शरीरोंकी रचना की है॥ २३॥

येन चार्णवमध्यस्थौ नष्टे स्थावरजङ्गमे।
नष्टे देवासुरगणे प्रणष्टोरगराक्षसे॥ २४

योद्धुकामौ सुदुर्धर्षौ दानवौ मधुकैटभौ।
हतौ प्रभवता तेन तयोर्दत्त्वामितं वरम्॥ २५

पुरा कमलनाभस्य स्वपतः सागराम्भसि।
पुष्करे यत्र सम्भूता देवाः सर्षिगणाः पुरा॥ २६

एष पौष्करको नाम प्रादुर्भावो महात्मनः।
पुराणे कथ्यते यत्र वेदः श्रुतिसमाहितः॥ २७

वाराहस्तु श्रुतिमुखः प्रादुर्भावो महात्मनः।
यत्र विष्णुः सुरश्रेष्ठो वाराहं रूपमास्थितः।
महीं सागरपर्यन्तां सशैलवनकाननाम्॥ २८

वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तश्चितीमुखः।
अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः॥ २९

अहोरात्रेक्षणो दिव्यो वेदाङ्गः श्रुतिभूषणः।
आज्यनासः स्रुवातुण्डः सामघोषस्वनो महान्॥ ३०

धर्मसत्यमयः श्रीमान् क्रमविक्रमसत्कृतः।
प्रायश्चित्तनखो धीरः पशुजानुर्महाभुजः॥ ३१

उद्गात्रन्तो होमलिङ्गः फलबीजमहौषधिः।
वाय्वन्तरात्मा मन्त्रस्फिग्विकृतः सोमशोणितः॥ ३२

वेदीस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यातिवेगवान्।
प्राग्वंशकायो द्युतिमान् नानादीक्षाभिरार्चितः॥ ३३

महाप्रलयके समय जब कि देवता, असुरगण, नाग तथा राक्षस आदि समस्त चराचर प्राणी नष्ट हो गये थे, एकार्णवके जलमें दो अत्यन्त दुर्धर्ष दानव प्रकट हुए। उनके नाम थे मधु और कैटभ। वे दोनों युद्ध चाहते थे। सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णुने ही उन दोनोंको मोक्षका अनुपम वर देकर मार डाला था॥ २४-२५॥ पूर्वकालमें जब कमलनाभ भगवान् विष्णु समुद्रके जलमें शयन कर रहे थे, उनकी नाभिसे एक कमल प्रकट हुआ, जिसमें पहले ऋषियोंसहित सम्पूर्ण देवताओंका प्रादुर्भाव हुआ॥ २६॥ पुराणमें यह परमात्मा विष्णुका पौष्कर नामका अवतार या सर्ग कहा जाता है। पुराण वह विद्या है, जिसमें मन्त्र एवं ब्राह्मण-भागकी श्रुतियोंसे सम्पन्न सम्पूर्ण वेद ही प्रतिष्ठित हैं (पुराणोंमें वेदार्थका ही विस्तार किया गया है)॥ २७॥ उन परमात्माका जो वाराह नामक अवतार है, वह श्रुतिमें वर्णित है। उस अवतारके समय सुरश्रेष्ठ भगवान् विष्णुने वाराहरूप धारणकर पर्वत और वनसहित समुद्रतककी सारी पृथ्वीका जलसे उद्धार किया था॥ २८॥ चारों वेद उनके चार चरण और यूप उनकी दाढ़ें हैं। यज्ञ दाँत और श्येनचित् आदि चिति (इष्टिका-चयन) मुख है। साक्षात् अग्नि ही उनकी जिह्वा, कुशा रोमावलि और ब्रह्म मस्तक है। उनका तप महान् है॥ २९॥ दिन और रात्रि उनके नेत्र हैं, वे दिव्यस्वरूप हैं। वेद उनका अङ्ग और श्रुतियाँ आभूषण हैं। हविष्य (घृत) नासिका, स्रुवा थूथन और सामवेदका गम्भीर घोष ही उनका स्वर है। वे महान् हैं॥ ३०॥ धर्म और सत्य उनका स्वरूप है। वे श्रीसम्पन्न तथा क्रम (गति) और विक्रम (पराक्रम)-के द्वारा सम्मानित हैं। प्रायश्चित्त उनके नख और पशु उनके घुटने हैं। वे धीर तथा विशाल भुजाओंसे युक्त हैं॥ ३१॥ उद्गाता अन्त्र (आँत), होम लिङ्ग तथा बड़ी-बड़ी ओषधियाँ उनके अण्डकोश और वीर्य हैं। वायु अन्तरात्मा, मन्त्र नितम्ब और निचोड़कर निकाला हुआ सोमरस ही उनका रक्त है॥ ३२॥ वेदी ही स्कन्ध, हविष्य गन्ध तथा हव्य और कव्य उनका प्रचण्ड वेग है। प्राग्वंश यजमान-गृह उनका शरीर है। वे परम कान्तिमान् और नाना प्रकारकी दीक्षाओंसे सम्पन्न हैं॥ ३३॥

दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो महान्।
उपाकर्मोष्ठरुचकः प्रवर्ग्यावर्तभूषणः॥ ३४

नानाछन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः।
छायापत्नीसहायो वै मेरुशृङ्ग इवोच्छ्रितः॥ ३५

महीं सागरपर्यन्तां सशैलवनकाननाम्।
एकार्णवजले भ्रष्टामेकार्णवगतः प्रभुः॥ ३६

दंष्ट्रया यः समुद्धृत्य लोकानां हितकाम्यया।
सहस्रशीर्षो देवादिश्चकार पृथिवीं पुनः॥ ३७

एवं यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना।
उद्धृता पृथिवी सर्वा सागराम्बुधरा पुरा॥ ३८

वाराह एष कथितो नारसिंहमतः शृणु।
यत्र भूत्वा मृगेन्द्रेण हिरण्यकशिपुर्हतः॥ ३९

पुरा कृतयुगे राजन् सुरारिर्बलदर्पितः।
दैत्यानामादिपुरुषश्चचार तप उत्तमम्॥ ४०

दश वर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च।
जपोपवासनिरतः स्थानमौनदृढव्रतः॥ ४१

ततः शमदमाभ्यां च ब्रह्मचर्येण चानघ।
ब्रह्मा प्रीतोऽभवत् तस्य तपसा नियमेन च॥ ४२

तं वै स्वयम्भूर्भगवान् स्वयमागत्य भूपते।
विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता॥ ४३

आदित्यैर्वसुभिः साध्यैर्मरुद्भिर्दैवतैः सह।
रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसकिंनरैः॥ ४४

दिशाभिर्विदिशाभिश्च नदीभिः सागरैस्तथा।
नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खेचरैश्च महाग्रहैः॥ ४५

देवर्षिभिस्तपोवृद्धैः सिद्धैः सप्तर्षिभिस्तथा।
राजर्षिभिः पुण्यतमैर्गन्धर्वैश्चाप्सरोगणैः॥ ४६

चराचरगुरुः श्रीमान् वृतः सर्वैः सुरैस्तथा।
ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत्॥ ४७

दक्षिणा ही उनका हृदय है। महान् सत्र (लम्बे कालतक चलनेवाले यज्ञ) उन महान् योगीका स्वरूप है। वेदोंका स्वाध्याय उनके ओठोंका आभूषण है और प्रवर्ग्य नामक कर्मकी आवृत्ति ही उनका भूषण है॥ ३४॥ अनेक प्रकारके छन्दोंकी गति उनका मार्ग है और वे गोपनीय उपनिषद्रूपी आसनपर विराजमान रहते हैं। जलमें पड़नेवाली छाया (परछाईं) ही पत्नीकी भाँति उस समय उनकी सहायिका थी और वे मेरुपर्वतके शिखरके समान ऊँचे जान पड़ते थे॥ ३५॥ उन सहस्रों सिरवाले भगवान् वाराहने, जो देवताओंके आदिकारण हैं, एकार्णवके जलमें प्रवेश करके उसमें डूबी हुई पर्वत, वन और काननोंसहित समुद्रतककी सारी पृथ्वीको अपनी दाढ़से ऊपर उठाकर सम्पूर्ण लोकोंके हितकी कामनासे पुनः उसे जलके ऊपर स्थिरतापूर्वक स्थापित कर दिया॥ ३६-३७॥ इस प्रकार प्रकट होकर समस्त प्राणियोंका हित चाहनेवाले यज्ञात्मा भगवान् वाराहने समुद्र-जलको धारण करनेवाली समूची पृथ्वीका पूर्वकालमें उद्धार किया था॥ ३८॥ यह वाराह-अवतारकी कथा कही गयी। इसके बाद नरसिंह-अवतार हुआ, उसका वर्णन सुनो। उस अवतारमें भगवान्ने नरसिंहरूप धारण करके हिरण्यकशिपु नामक दैत्यका वध किया था॥ ३९॥ राजन्! पहले सत्ययुगमें देवताओंका शत्रु हिरण्यकशिपु समस्त दैत्योंका आदि पुरुष था। उसे अपने बलका बड़ा घमंड था। उसने साढ़े ग्यारह हजार वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्या की। वह सदा जप और उपवासमें संलग्न रहता था। दृढ़ आसन लगाकर मौनावलम्बनपूर्वक दृढ़ताके साथ उत्तम व्रतका पालन करता था॥ ४०-४१॥ निष्पाप नरेश! तदनन्तर उसके इन्द्रियसंयम, मनोनिग्रह, ब्रह्मचर्य, तपस्या और शौच-संतोषादि नियमोंके पालनसे ब्रह्माजी उसके ऊपर बहुत प्रसन्न हुए॥ ४२॥ भूपाल! स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माजी हंससे युक्त सूर्यके समान तेजस्वी विमानद्वारा स्वयं वहाँ पधारे॥ ४३॥ उनके साथ आदित्य, वसु, साध्य, मरुद्गण, अन्य देवगण, रुद्रगण, विश्वेदेव, यक्ष, राक्षस, किंनर, दिशाएँ, विदिशाएँ, नदियाँ, समुद्र, नक्षत्र, मुहूर्त, आकाशचारी महान् ग्रह, तपस्यामें बढ़े-चढ़े देवर्षि, सिद्ध, सप्तर्षि, परम पुण्यात्मा राजर्षि, गन्धर्व तथा अप्सराएँ भी थीं॥ ४४—४६॥ सम्पूर्ण देवताओंसे घिरे हुए ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ चराचर-गुरु श्रीमान् ब्रह्मा उस दैत्यसे इस प्रकार बोले—॥ ४७॥

प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसानेन सुव्रत।
वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि॥ ४८

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले दैत्यराज! तुम मेरे भक्त हो। तुम्हारी इस तपस्यासे मैं बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारा भला हो। तुम कोई वर माँगो और मनोवाञ्छित भोग प्राप्त करो'॥ ४८॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः।
न मानुषाः पिशाचाश्च निहन्युर्मां कथंचन॥ ४९
ऋषयो वा न मां शापैः क्रुद्धा लोकपितामह।
शपेयुस्तपसा युक्ता वरमेतं वृणोम्यहम्॥ ५०
न शस्त्रेण न चास्त्रेण गिरिणा पादपेन वा।
न शुष्केण न चार्द्रेण स्यान्न चान्येन मे वधः॥ ५१
पाणिप्रहारेणैकेन सभृत्यबलवाहनम्।
यो मां नाशयितुं शक्तः स मे मृत्युर्भविष्यति॥ ५२
भवेयमहमेवार्कः सोमो वायुर्हुताशनः।
सलिलं चान्तरिक्षं च नक्षत्राणि दिशो दश॥ ५३
अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवो यमः।
धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षः किम्पुरुषाधिपः॥ ५४
एवमुक्तस्तु दैत्येन स्वयम्भूर्भगवांस्तदा।
उवाच दैत्यराजं तं प्रहसन् नृपसत्तम॥ ५५

हिरण्यकशिपु बोला—लोकपितामह! मुझे देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, नाग, राक्षस, मनुष्य और पिशाच किसी तरह मार न सकें। तपस्वी ऋषि-महर्षि कुपित होकर मुझे शाप न दें, मैं आपसे यही वर माँगता हूँ॥ ४९-५०॥ न शस्त्रसे, न अस्त्रसे, न पर्वत अथवा वृक्षसे, न सूखेसे, न गीलेसे और न दूसरे ही किसी आयुधसे मेरा वध हो॥ ५१॥ जो मेरे सेवक, सेना और वाहनोंसहित मुझे एक ही थप्पड़से मार डालनेमें समर्थ हो, उसीके हाथसे मेरी मृत्यु हो॥ ५२॥ मैं ही सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, जल, आकाश, नक्षत्र और दसों दिशाओंके रूपमें स्थित रहूँ॥ ५३॥ मैं ही काम और क्रोधका अधिष्ठाता होऊँ। मैं ही वरुण, इन्द्र, यम, धनाध्यक्ष कुबेर, यक्ष एवं किम्पुरुषोंका स्वामी होऊँ॥ ५४॥ नृपश्रेष्ठ! उस दैत्यके यों कहनेपर स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा ठठाकर हँस पड़े और उस समय उस दैत्यराजसे इस प्रकार बोले॥ ५५॥

ब्रह्मोवाच

एते दिव्या वरास्तात मया दत्तास्तवाद्भुताः।
सर्वान् कामानिमांस्तात प्राप्स्यसि त्वं न संशयः॥ ५६
एवमुक्त्वा तु भगवाञ्जगामाकाशमेव हि।
वैराजं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम्॥ ५७
ततो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा मुनयस्तथा।
वरप्रदानं श्रुत्वा ते पितामहमुपस्थिताः॥ ५८
विभुं विज्ञापयामासुर्देवा इन्द्रपुरोगमाः॥ ५९

ब्रह्माजीने कहा—तात! ये दिव्य और अद्भुत वर मैंने तुम्हें दे दिये। तुम इन सम्पूर्ण अभीष्टोंको प्राप्त कर लोगे, इसमें संशय नहीं है॥ ५६॥ यों कहकर भगवान् ब्रह्मा आकाशमें स्थित, ब्रह्मर्षिगणोंसे सेवित वैराजपद नामक ब्रह्मधामको चले गये॥ ५७॥ तदनन्तर देवता, नाग, गन्धर्व और मुनि वह वरदान सुनकर पितामह ब्रह्माजीके पास गये॥ ५८॥ वहाँ पहुँचकर इन्द्र आदि देवताओंने भगवान् ब्रह्मासे अपने मानसिक भयको इस प्रकार सूचित किया॥ ५९॥

देवा ऊचुः

वरेणानेन भगवन् बाधयिष्यति नोऽसुरः।
ततः प्रसीद भगवन् वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम्॥ ६०
भवान् हि सर्वभूतानां स्वयम्भूरादिकृद् विभुः।
स्रष्टा च हव्यकव्यानामव्यक्तप्रकृतिर्ध्रुवः॥ ६१

देवताओंने कहा—भगवन्! इस वरके प्रभावसे तो वह असुर हमलोगोंको सदा ही महान् कष्ट पहुँचाता रहेगा। अतः आप प्रसन्न होइये और उसके वधका भी कोई उपाय सोचिये; क्योंकि आप ही सम्पूर्ण भूतोंके आदिस्रष्टा, स्वयम्भू, सर्वव्यापी, हव्य-कव्यके निर्माता, अव्यक्तप्रकृति और ध्रुवस्वरूप हैं॥ ६०-६१॥

ततो लोकहितं वाक्यं श्रुत्वा देवः प्रजापतिः।
प्रोवाच भगवान् वाक्यं सर्वान् देवगणांस्तदा॥ ६२

अवश्यं त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम्।
तपसोऽन्तेऽस्य भगवान् वधं विष्णुः करिष्यति॥ ६३

एतच्छ्रुत्वा सुराः सर्वे वाक्यं पङ्कजसम्भवात्।
स्वानि स्थानानि दिव्यानि जग्मुस्ते वै मुदान्विताः॥ ६४

लब्धमात्रे वरे चापि सर्वाः सोऽबाधत प्रजाः।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वरदानेन दर्पितः॥ ६५

आश्रमेषु महाभागान् मुनीन् वै शंसितव्रतान्।
सत्यधर्मरतान् दान्तान् पुरा धर्षितवांस्तु सः॥ ६६

देवांस्त्रिभुवनस्थांस्तु पराजित्य महासुरः।
त्रैलोक्यं वशमानीय स्वर्गे वसति दानवः॥ ६७

यदा वरमदोन्मत्तो न्यवसद् दानवो दिवि।
यज्ञियान् कृतवान् दैत्यान् देवांश्चैवाप्ययज्ञियान्॥ ६८

आदित्याश्च ततो रुद्रा विश्वे च मरुतस्तथा।
शरण्यं शरणं विष्णुमुपाजग्मुर्महाबलम्॥ ६९

वेदयज्ञमयं ब्रह्म ब्रह्मदेवं सनातनम्।
भूतं भव्यं भविष्यं च प्रभुं लोकनमस्कृतम्।
नारायणं विभुं देवाः शरणं शरणागताः॥ ७०

देवा ऊचुः

त्रायस्व नोऽद्य देवेश हिरण्यकशिपोर्भयात्।
त्वं हि नः परमो धाता ब्रह्मादीनां सुरोत्तम॥ ७१
त्वं हि नः परमो देवस्त्वं हि नः परमो गुरुः।
उत्फुल्लाम्बुजपत्राक्षः शत्रुपक्षभयंकरः।
क्षयाय दितिवंशस्य शरण्यस्त्वं भवस्व नः॥ ७२

विष्णुरुवाच

भयं त्यजध्वममरा ह्यभयं वो ददाम्यहम्।
तथैवं त्रिदिवं देवाः प्रतिपत्स्यथ माचिरम्॥ ७३
एष तं सगणं दैत्यं वरदानेन दर्पितम्।
अवध्यममरेन्द्राणां दानवेन्द्रं निहन्म्यहम्॥ ७४

उस समय देवताओंका यह लोकहितकारी वचन सुनकर उन प्रजापतिदेव भगवान् ब्रह्माने समस्त देवताओंसे इस प्रकारकी बात कही—॥ ६२॥ 'देवताओ! उस असुरको अपनी तपस्याका फल अवश्य प्राप्त होगा। (फल-भोगके द्वारा) जब तपस्याकी समाप्ति हो जायगी, तब भगवान् विष्णु स्वयं ही उसका वध करेंगे'॥ ६३॥ कमलयोनि ब्रह्माजीके मुखसे यह बात सुनकर समस्त देवता प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने दिव्य स्थानोंको चले गये॥ ६४॥ वह वर पाते ही दैत्य हिरण्यकशिपु समस्त प्रजाको कष्ट देने लगा; क्योंकि ब्रह्माजीके उस वरदानसे उसका घमंड बहुत बढ़ गया था॥ ६५॥ सबसे पहले आश्रमोंमें रहनेवाले उत्तम व्रतके पालक, सत्यधर्मपरायण तथा जितेन्द्रिय महाभाग मुनियोंको उसने पीड़ा देना आरम्भ किया॥ ६६॥ तीनों लोकोंमें रहनेवाले देवताओंको हराकर त्रिलोकीके राज्यको अपने वशमें करके वह महान् असुर दानव स्वर्गमें रहने लगा॥ ६७॥ वरदानके मदसे उन्मत्त हुआ वह दानव जब देवलोकमें निवास करता था, उन दिनों उसने दैत्योंको तो यज्ञका भागी बनाया और देवताओंको उससे वञ्चित कर दिया॥ ६८॥ तब आदित्य, रुद्र, विश्वेदेव और मरुद्गण आदि मिलकर शरणागतवत्सल, वेद एवं यज्ञस्वरूप, ब्रह्माजीके भी आराध्यदेव, सनातन ब्रह्मरूप महाबली भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। भूत, वर्तमान और भविष्य जिनका स्वरूप है, जो सब कुछ करनेमें समर्थ तथा समस्त लोकोंद्वारा वन्दित हैं, उन्हीं सर्वव्यापी नारायणकी उन शरणागत देवताओंने शरण ली॥ ६९-७०॥

देवताओंने कहा—देवेश्वर! आप हिरण्यकशिपुके भयसे अब हमारी रक्षा करें। सुरश्रेष्ठ! आप हम ब्रह्मा आदि देवताओंके भी परम पालक हैं॥ ७१॥ आप ही हमारे परम देवता और आप ही हमारे परम गुरु हैं। आपके नेत्र प्रफुल्ल कमलदलके समान शोभा पाते हैं। आप शत्रुपक्षको भय देनेवाले हैं। प्रभो! आप दैत्योंके विनाशके लिये हमारे शरणदाता हों॥ ७२॥

भगवान् विष्णुने कहा—देवताओ! भय छोड़ दो। मैं तुम्हें अभय देता हूँ। तुम शीघ्र ही पहलेकी भाँति स्वर्गलोक प्राप्त कर लोगे॥ ७३॥ जो वरदान पाकर घमंडमें भर गया है तथा जो देवेश्वरोंके लिये अवध्य हो गया है, उस दितिपुत्र दानवराज हिरण्यकशिपुको उसके सेवकोंसहित मार डालता हूँ॥ ७४॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा स भगवान् विसृज्य त्रिदशेश्वरान्।
हिरण्यकशिपो राजन्नाजगाम हरिः सभाम्॥ ७५

नरस्य कृत्वार्धतनुं सिंहस्यार्धतनुं प्रभुः।
नारसिंहेण वपुषा पाणिं निष्पिष्य पाणिना॥ ७६

जीमूतघनसंकाशो जीमूतघननिःस्वनः।
जीमूतघनदीप्तौजा जीमूत इव वेगवान्॥ ७७

दैत्यं सोऽतिबलं दीप्तं दृप्तशार्दूलविक्रमम्।
दृप्तैर्दैत्यगणैर्गुप्तं हतवानेकपाणिना॥ ७८

नृसिंह एष कथितो भूयोऽयं वामनोऽपरः।
यत्र वामनमाश्रित्य रूपं दैत्यविनाशकृत्॥ ७९

बलेर्बलवतो यज्ञे बलिना विष्णुना पुरा।
विक्रमैस्त्रिभिरक्षोभ्याः क्षोभितास्ते महासुराः॥ ८०

विप्रचित्तिः शिबिः शंकुरयःशंकुस्तथैव च।
अयःशिराः शंकुशिरा हयग्रीवश्च वीर्यवान्॥ ८१

वेगवान् केतुमानुग्रः सोमव्यग्रो महासुरः।
पुष्करः पुष्कलश्चैव वेपनश्च महारथः॥ ८२

बृहत्कीर्तिर्महाजिह्वः साश्वोऽश्वपतिरेव च।
प्रह्लादोऽश्वशिराः कुम्भः संह्लादो गगनप्रियः।
अनुह्लादो हरिहरौ वराहः शंकरो रुजः॥ ८३

शरभः शलभश्चैव कुपनः कोपनः क्रथः।
बृहत्कीर्तिर्महाजिह्वः शंकुकर्णो महास्वनः॥ ८४

दीर्घजिह्वोऽर्कनयनो मृदुचापो मृदुप्रियः।
वायुर्यविष्ठो नमुचिः शम्बरो विज्वरो महान्॥ ८५

चन्द्रहन्ता क्रोधहन्ता क्रोधवर्धन एव च।
कालकः कालकेयश्च वृत्रः क्रोधो विरोचनः॥ ८६

गरिष्ठश्च वरिष्ठश्च प्रलम्बनरकावुभौ।
इन्द्रतापनवातापी केतुमान् बलदर्पितः॥ ८७

असिलोमा पुलोमा च वाक्कलः प्रमदो मदः।
खसृमः कालवदनः करालः कैशिकः शरः॥ ८८

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! यों कहकर भगवान् विष्णुने उन देवेश्वरोंको तो विदा कर दिया और स्वयं हिरण्यकशिपुके सभाभवनमें पधारे॥ ७५॥

उस समय उन प्रभुने अपना आधा शरीर मनुष्यका-सा बना लिया था और आधा सिंहका-सा। इस प्रकार नृसिंहरूप धारण करके वे एक हाथसे दूसरे हाथको रगड़ते हुए वहाँ आये॥ ७६॥

उनके शरीरका वर्ण सजल मेघके समान श्याम था। उनका शब्द भी जलपूर्ण मेघकी गर्जनाके समान ही गम्भीर था। उनके उद्दीप्त तेज और वेग भी बरसनेवाले बादलके ही तुल्य थे॥ ७७॥

यद्यपि दैत्य हिरण्यकशिपु अत्यन्त बलवान्, तेजस्वी, दर्पमें भरे हुए सिंहके समान पराक्रमी तथा बलाभिमानी दैत्योंद्वारा सुरक्षित था तो भी भगवान् नृसिंहने उसे एक ही थप्पड़से मारकर यमलोक पहुँचा दिया॥ ७८॥

यह नृसिंहावतारकी कथा कही गयी। अब दूसरे वामन-अवतारका वर्णन सुनो, जिसमें वामनरूप धारण करके भगवान्ने दैत्योंका विनाश किया था॥ ७९॥

पूर्वकालमें सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णु (वामनरूप धारणकर) बलवान् बलिके यज्ञमें गये और वहाँ उन्होंने अपने तीन ही पगोंसे (त्रिलोकीको नापकर) किसीसे क्षुब्ध न होनेवाले बड़े-बड़े असुरोंको क्षुब्ध कर डाला॥ ८०॥

जिस समय भगवान् हृषीकेश अपने डग बढ़ा रहे थे, उस समय विप्रचित्ति, शिबि, शंकुरय और शंकु, अयःशिरा तथा शंकुशिरा, पराक्रमी हयग्रीव, वेगवान्, केतुमान्, उग्र, महान् असुर सोमव्यग्र, पुष्कर और पुष्कल तथा महारथी वेपन, बृहत्कीर्ति, महाजिह्व तथा अश्वसहित अश्वपति, प्रह्लाद, अश्वशिरा, कुम्भ, संह्लाद, गगनप्रिय, अनुह्लाद, हरि और हर, वराह, शंकर, रुज, शरभ तथा शलभ, कुपन, कोपन, क्रथ, बृहत्कीर्ति, महाजिह्व, शंकुकर्ण, महास्वन, दीर्घजिह्व, अर्कनयन, मृदुचाप, मृदुप्रिय, वायु, यविष्ठ, नमुचि, शम्बर, महाकाय विज्वर, चन्द्रहन्ता, क्रोधहन्ता एवं क्रोधवर्धन, कालक तथा कालकेय, वृत्र, क्रोध, विरोचन, गरिष्ठ और वरिष्ठ, प्रलम्ब और नरक नामक दो दैत्य, इन्द्रतापन और वातापि, बलाभिमानी केतुमान्, असिलोमा तथा पुलोमा, वाक्कल, प्रमद, मद, खसृम, कालवदन कराल, कैशिक, शर,॥ ८१—८८॥

एकाक्षश्चन्द्रहा राहुः संह्लादः सृमरः खनः।
शतघ्नीचक्रहस्ताश्च तथा परिघपाणयः॥ ८९

महाशिलाप्रहरणाः शूलहस्ताश्च दानवाः।
अश्मयन्त्रायुधोपेता भिन्दिपालायुधास्तथा॥ ९०

शूलोलूखलहस्ताश्च परश्वधधरास्तथा।
पाशमुद्गरहस्ता वै तथा मुसलपाणयः॥ ९१

नानाप्रहरणा घोरा नानावेषा महाजवाः।
कूर्मकुक्कुटवक्त्राश्च शशोलूकमुखास्तथा॥ ९२

खरोष्ट्रवदनाश्चैव वराहवदनास्तथा।
भीमा मकरवक्त्राश्च क्रोष्टुवक्त्राश्च दानवाः।
आखुदर्दुरवक्त्राश्च घोरा वृकमुखास्तथा॥ ९३

मार्जारगजवक्त्राश्च महावक्त्रास्तथापरे।
नक्रमेषाननाः शूराः गोऽजाविमहिषाननाः॥ ९४

गोधाशल्यकवक्त्राश्च क्रौञ्चवक्त्राश्च दानवाः।
गरुडाननाः खड्गमुखा मयूरवदनास्तथा॥ ९५

गजेन्द्रचर्मवसनास्तथा कृष्णाजिनाम्बराः।
चीरसंवृतदेहाश्च तथा वल्कलवाससः॥ ९६

उष्णीषिणो मुकुटिनस्तथा कुण्डलिनोऽसुराः।
किरीटिनो लम्बशिखाः कम्बुग्रीवाः सुवर्चसः।
नानावेषधरा दैत्या नानामाल्यानुलेपनाः॥ ९७

स्वान्यायुधानि संगृह्य प्रदीप्तान्यतितेजसा।
क्रममाणं हृषीकेशमुपावर्तन्त सर्वशः॥ ९८

प्रमथ्य सर्वान् दैतेयान् पादहस्ततलैः प्रभुः।
रूपं कृत्वा महाभीमं जहाराशु स मेदिनीम्॥ ९९

एकाक्ष, चन्द्रहा, राहु, संह्लाद, सृमर और खन आदि दैत्य चारों ओरसे भगवान्‌को घेरकर खड़े हो गये। उनमेंसे किसीके हाथमें शतघ्नी (बंदूक) थी और किसीके हाथमें चक्र। बहुतेरे अपने हाथोंमें परिघ लिये खड़े थे। कुछ दानव बड़ी-बड़ी शिलाओंसे प्रहार करते थे। कितनोंके हाथोंमें शूल थे। कितने ही पत्थरके गोले फेंकनेवाले यन्त्ररूपी आयुधसे सम्पन्न थे। बहुतेरे भिन्दिपाल नामक अस्त्रका प्रयोग करते थे। कितने ही दैत्योंने अपने हाथोंमें शूल, ऊखल, फरसे, पाश, मुद्गर और मुसल ले रखे थे। इस प्रकार वे भाँति-भाँतिके आयुध धारण किये हुए थे। उनके वेष भी कई तरहके थे। वे सब-के-सब महान् वेगशाली और भयंकर थे। किन्हींके मुख कछुओं और मुर्गोंके समान थे तो किन्हींके खरहे और घूघुओंके सदृश। कितने ही दानवोंके मुख गदहे, ऊँट, सूअर, मगर और सियारोंके समान थे। वे सभी बड़े भयानक जान पड़ते थे। कुछ घोर रूपधारी दैत्योंके मुख चूहों और मेढकोंके समान थे। कितनोंके मुख भेड़ियोंसे मिलते-जुलते थे। किन्हींके मुख बिलाव-जैसे थे तो किन्हींके हाथियोंके समान। कोई-कोई इससे भी बड़े मुखवाले थे। बहुतोंके मुख नक्र (नाके), मेढ़े, बैल, बकरे, भेड़, भैंसे, गोह, साही, क्रौंच (कुरर), गरुड़, गैंडे और मोरोंसे मिलते-जुलते थे। कुछ दैत्योंने गजराजके चमड़े ओढ़ रखे थे और कितनोंने वस्त्रकी जगह काले मृगचर्मको ही लपेट रखा था। बहुतोंके शरीर चीरसे ढके थे, और कितने ही वल्कल वस्त्र पहने थे; किन्हींके मस्तकपर पगड़ी शोभा पाती थी और किन्हींके मुकुट। कितने ही असुर किरीट और कुण्डलोंसे सुशोभित थे, किन्हींके सिरपर लम्बी शिखाएँ शोभा पाती थीं। बहुत-से दैत्योंकी गर्दनें शङ्खके समान थीं। वे अत्यन्त तेजस्वी दैत्य नाना प्रकारके वेष धारण किये भाँति-भाँतिकी मालाओं और चन्दनोंसे अलंकृत थे। वे अत्यन्त तेजसे चमकते हुए अपने-अपने आयुध लिये खड़े थे। उन सर्वशक्तिमान् भगवान्‌ने महाभयानक रूप धारण करके समस्त दैत्योंको लातों और थप्पड़ोंसे मथ डाला और शीघ्र ही इस पृथ्वीको उनसे छीन लिया॥ ८९—९९॥

तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे।
नभः प्रक्रममाणस्य नाभ्यां किल समास्थितौ॥ १००

परं प्रक्रममाणस्य जानुदेशे स्थितावुभौ।
विष्णोरतुलवीर्यस्य वदन्त्येवं द्विजातयः॥ १०१

हृत्वा स पृथिवीं कृत्स्नां जित्वा चासुरपुंगवान्।
ददौ शक्राय त्रिदिवं विष्णुर्बलवतां वरः॥ १०२

एष ते वामनो नाम प्रादुर्भावो महात्मनः।
वेदविद्भिर्द्विजैरेवं कथ्यते वैष्णवं यशः॥ १०३

भूयो भूतात्मनो विष्णोः प्रादुर्भावो महात्मनः।
दत्तात्रेय इति ख्यातः क्षमया परया युतः॥ १०४

तेन नष्टेषु वेदेषु प्रक्रियासु मखेषु च।
चातुर्वर्ण्ये तु संकीर्णे धर्मे शिथिलतां गते॥ १०५

अभिवर्धति चाधर्मे सत्ये नष्टेऽनृते स्थिते।
प्रजासु शीर्यमाणासु धर्मे चाकुलतां गते॥ १०६

सहयज्ञक्रिया वेदाः प्रत्यानीता हि तेन वै।
चातुर्वर्ण्यमसंकीर्णं कृतं तेन महात्मना॥ १०७

तेन हैहयराजस्य कार्तवीर्यस्य धीमतः।
वरदेन वरो दत्तो दत्तात्रेयेण धीमता॥ १०८

एतद् बाहुद्वयं यत्ते मृधे मम कृतेऽनघ।
शतानि दश बाहूनां भविष्यन्ति न संशयः॥ १०९

पालयिष्यसि कृत्स्नां च वसुधां वसुधाधिप।
दुर्निरीक्ष्योऽरिवृन्दानां धर्मज्ञश्च भविष्यसि॥ ११०

एष ते वैष्णवः श्रीमान् प्रादुर्भावोऽद्भुतः शुभः।
कथितो वै महाराज यथाश्रुतमरिंदम॥ १११

कहते हैं—जब वे भूमिको नाप रहे थे, उस समय चन्द्रमा और सूर्य उन विराट्-रूपधारी भगवान्‌के स्तनोंके बीचमें आ गये थे और जब वे आकाश (स्वर्गलोक)-को नापने लगे, तब चन्द्रमा और सूर्य उनकी नाभिमें आ गये॥ १००॥ वे अतुलपराक्रमी भगवान् विष्णु जब स्वर्गसे भी ऊपरके (मह, जन, तप और सत्य नामक) लोकोंको नाप रहे थे, उस समय सूर्य और चन्द्रमा उनके दोनों घुटनोंमें स्थित दिखायी दिये—इस प्रकार ब्राह्मणलोग कहते हैं॥ १०१॥ इस प्रकार बलवानोंमें श्रेष्ठ श्रीविष्णुने सारी पृथ्वीका अपहरण करके बड़े-बड़े असुरोंको हराकर स्वर्गलोकका राज्य इन्द्रको दे दिया॥ १०२॥ जनमेजय! इस प्रकार मैंने तुम्हें परमात्मा श्रीहरिके वामन नामक अवतारकी कथा सुनायी। वेदवेत्ता ब्राह्मण इसी तरह भगवान् विष्णुके यश (लीला-चरित्र)-का वर्णन करते हैं॥ १०३॥ इसके बाद भूतात्मा परमात्मा विष्णुका फिर जो अवतार हुआ, वह दत्तात्रेयके नामसे विख्यात है। भगवान् दत्तात्रेय बड़े ही क्षमाशील थे॥ १०४॥ उस समय वेद लुप्त हो गये थे, वैदिकी प्रक्रिया और यज्ञ भी नष्टप्राय हो गये थे, चारों वर्णोंमें संकरता आ गयी थी, धर्म शिथिल हो चला था, अधर्म बड़े जोरोंके साथ बढ़ रहा था। सत्य मिटता जा रहा था और सब ओर असत्यका बोलबाला था। प्रजा क्षीण हो रही थी और धर्म पाखण्डसे मिश्रित हो गया था॥ १०५-१०६॥ ऐसे समयमें भगवान् दत्तात्रेयने यज्ञों और क्रियाओंसहित वेदोंका पुनरुद्धार किया और चारों वर्णोंको पृथक्-पृथक् करके उन्हें व्यवस्थित कर दिया॥ १०७॥ वरदायक एवं ज्ञाननिष्ठ भगवान् दत्तात्रेयने हैहयवंशी बुद्धिमान् राजा कार्तवीर्यको यह वर दिया था—॥ १०८॥ 'निष्पाप नरेश! ये जो तुम्हारी दो भुजाएँ हैं, मेरे वरदानके प्रभावसे युद्धके समय निःसंदेह एक हजार भुजाओंके रूपमें परिणत हो जायँगी'॥ १०९॥ 'पृथ्वीनाथ! तुम सारी पृथ्वीका पालन करोगे, शत्रुओंके समुदाय तुम्हारी ओर बड़ी कठिनतासे देख सकेंगे तथा तुम धर्मके ज्ञाता होओगे'॥ ११०॥ शत्रुओंका दमन करनेवाले महाराज! मैंने जैसा सुना था, उसके अनुसार तुमसे भगवान् विष्णुके इस अद्भुत, शुभ एवं तेजस्वी अवतारका वर्णन किया है॥ १११॥

भूयश्च जामदग्न्योऽयं प्रादुर्भावो महात्मनः।
यत्र बाहुसहस्रेण विस्मितं दुर्जयं रणे।
रामोऽर्जुनमनीकस्थं जघान नृपतिं प्रभुः॥ ११२

रथस्थं पार्थिवं रामः पातयित्वार्जुनं भुवि।
धर्षयित्वा यथाकामं क्रोशमानं च मेघवत्॥ ११३

कृत्स्नं बाहुसहस्रं च चिच्छेद भृगुनन्दनः।
परश्वधेन दीप्तेन ज्ञातिभिः सहितस्य वै॥ ११४

कीर्णा क्षत्रियकोटीभिर्मेरुमन्दरभूषणा।
त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवी तेन निःक्षत्रिया कृता॥ ११५

कृत्वा निःक्षत्रियां चैव भार्गवः सुमहातपाः।
सर्वपापविनाशाय वाजिमेधेन चेष्टवान्॥ ११६

तस्मिन् यज्ञे महादाने दक्षिणां भृगुनन्दनः।
मारीचाय ददौ प्रीतः कश्यपाय वसुंधराम्॥ ११७

वारुणांस्तुरगाञ्छीघ्रान् रथं च रथिनां वरः।
हिरण्यमक्षयं धेनूर्गजेन्द्रांश्च महामनाः।
ददौ तस्मिन् महायज्ञे वाजिमेधे महायशाः॥ ११८

अद्यापि च हितार्थाय लोकानां भृगुनन्दनः।
चरमाणस्तपो दीप्तं जामदग्न्यः पुनः पुनः।
तिष्ठते देववद् धीमान् महेन्द्रे पर्वतोत्तमे॥ ११९

एष विष्णोः सुरेशस्य शाश्वतस्याव्ययस्य च।
जामदग्न्य इति ख्यातः प्रादुर्भावो महात्मनः॥ १२०

चतुर्विंशे युगे चापि विश्वामित्रपुरस्सरः।
राज्ञो दशरथस्याथ पुत्रः पद्मायतेक्षणः॥ १२१

कृत्वाऽऽत्मानं महाबाहुश्चतुर्धा प्रभुरीश्वरः।
लोके राम इति ख्यातस्तेजसा भास्करोपमः॥ १२२

प्रसादनार्थं लोकस्य रक्षसां निधनाय च।
धर्मस्य च विवृद्ध्यर्थं जज्ञे तत्र महायशाः॥ १२३

फिर परमात्मा श्रीहरिका जमदग्निनन्दन परशुरामके रूपमें अवतार हुआ। उस अवतारमें भगवान् परशुरामने सेनाके बीचमें खड़े उस राजा अर्जुनका वध किया था, जो अपनी सहस्र भुजाओंके कारण घमंडमें भरा रहता था और समराङ्गणमें शत्रुओंके लिये दुर्जय बना हुआ था॥ ११२॥ राजा अर्जुन रथपर बैठा था, परंतु भृगुनन्दन परशुरामजीने उसे धरतीपर गिरा दिया और इच्छानुसार छातीपर चढ़कर चमकते हुए फरसेसे उसकी सम्पूर्ण सहस्रों भुजाएँ काट डालीं। यद्यपि वह जाति-भाइयों एवं कुटुम्बीजनोंके साथ था तो भी उसकी यह दशा हो गयी। उस समय कार्तवीर्य मेघके समान गम्भीर स्वरमें जोर-जोरसे चीखता-चिल्लाता रहा॥ ११३-११४॥ उन्होंने मेरु और मन्दराचलसे विभूषित समस्त पृथ्वीपर करोड़ों क्षत्रियोंकी लाशें बिछा दीं तथा इक्कीस बार भूतलको क्षत्रियोंसे शून्य कर दिया॥ ११५॥ पृथ्वीको क्षत्रियहीन करके महातपस्वी भृगुनन्दन परशुरामने अपने सम्पूर्ण पापोंका नाश (प्रायश्चित्त) करनेके लिये अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान किया॥ ११६॥ जिसमें बड़ा भारी दान किया जाता है, उस अश्वमेध यज्ञमें भृगुनन्दन परशुरामने प्रसन्न होकर मरीचिकुमार कश्यपको दक्षिणारूपसे यह सारी पृथ्वी दे दी थी॥ ११७॥ महायशस्वी, महामनस्वी, रथियोंमें श्रेष्ठ परशुरामने उस अश्वमेध नामक महायज्ञमें वरुणके यहाँसे प्राप्त हुए शीघ्रगामी घोड़े, रथ, अक्षय सुवर्णराशि, धेनु और गजराज भी दानमें दिये थे॥ ११८॥ आज भी समस्त लोकोंके हितके लिये बारम्बार तीव्र तपस्या करते हुए भृगुकुलनन्दन जमदग्निकुमार बुद्धिमान् परशुराम उत्तम महेन्द्रपर्वतपर देवताओंके समान निवास करते हैं॥ ११९॥ जनमेजय! समस्त देवताओंके स्वामी सनातन एवं अविनाशी पुरुष परमात्मा विष्णुके इस परशुराम नामक अवतारका वर्णन किया गया॥ १२०॥ चौबीसवें त्रेतायुगमें भगवान् विष्णु राजा दशरथके पुत्र कमलनयन श्रीरामके रूपमें प्रकट हुए और कुछ कालतक विश्वामित्रके अनुयायी रहे॥ १२१॥ उस समय सर्वसमर्थ महाबाहु भगवान् अपनेको चार रूपोंमें प्रकट करके स्वयं श्रीराम नामसे विख्यात हुए। वे श्रीराम सूर्यके समान तेजस्वी थे॥ १२२॥ महायशस्वी श्रीराम सब लोगोंको प्रसन्न रखने, राक्षसोंको मारने और धर्मकी वृद्धि करनेके लिये उस समय अवतीर्ण हुए थे॥ १२३॥

तमप्याहुर्मनुष्येन्द्रं सर्वभूतपतेस्तनुम्।
यस्मै दत्तानि चास्त्राणि विश्वामित्रेण धीमता॥ १२४

वधार्थं देवशत्रूणां दुर्धराणि सुरैरपि।
यज्ञविघ्नकरो येन मुनीनां भावितात्मनाम्॥ १२५

मारीचश्च सुबाहुश्च बलेन बलिनां वरौ।
निहतौ च निराशौ च कृतौ तेन महात्मना॥ १२६

वर्तमाने मखे येन जनकस्य महात्मनः।
भग्नं माहेश्वरं चापं क्रीडता लीलया पुरा॥ १२७

यः समाः सर्वधर्मज्ञश्चतुर्दश वनेऽवसत्।
लक्ष्मणानुचरो रामः सर्वभूतहिते रतः॥ १२८

रूपिणी यस्य पार्श्वस्था सीतेति प्रथिता जनैः।
पूर्वोचिता तस्य लक्ष्मीर्भर्तारमनुगच्छति॥ १२९

चतुर्दश तपस्तप्त्वा वने वर्षाणि राघवः।
जनस्थाने वसन् कार्यं त्रिदशानां चकार ह॥ १३०

सीतायाः पदमन्विच्छँल्लक्ष्मणानुचरो विभुः।
विराधं च कबन्धं च राक्षसौ भीमविक्रमौ।
जघान पुरुषव्याघ्रौ गन्धर्वौ शापवीक्षितौ॥ १३१

हुताशनार्केन्दुतडिद्घनाभैः
प्रतप्तजाम्बूनदचित्रपुङ्खैः।
महेन्द्रवज्राशनितुल्यसारैः
शरैः शरीरेण वियोजितौ बलात्॥ १३२

सुग्रीवस्य कृते येन वानरेन्द्रो महाबलः।
वाली विनिहतो युद्धे सुग्रीवश्चाभिषेचितः॥ १३३

देवासुरगणानां हि यक्षगन्धर्वभोगिनाम्।
अवध्यं राक्षसेन्द्रं तं रावणं युद्धदुर्मदम्॥ १३४

युक्तं राक्षसकोटीभिर्नीलाञ्जनचयोपमम्।
त्रैलोक्यरावणं घोरं रावणं राक्षसेश्वरम्॥ १३५

ज्ञानी पुरुष उन नरेन्द्र श्रीरामको समस्त भूतोंके स्वामी भगवान् विष्णुका अवतार-विग्रह बताते हैं, जिन्हें परम बुद्धिमान् विश्वामित्रजीने देव-द्रोही असुरोंका वध करनेके लिये ऐसे दिव्यास्त्र प्रदान किये थे, जिन्हें धारण करना देवताओंके लिये भी कठिन था। महात्मा श्रीरामने पवित्र अन्तःकरणवाले मुनियोंके यज्ञमें विघ्न डालनेवाले बलवानोंमें श्रेष्ठ मारीच और सुबाहुको अपने बाणोंका निशाना बनाया और उनकी आशा पूर्ण होने नहीं दी॥ १२४—१२६॥ पूर्वकालमें जब महात्मा राजा जनकके यहाँ यज्ञ हो रहा था, उस समय उन्हीं श्रीरामने खेल-सा करते हुए महादेवजीके धनुषको अनायास ही तोड़ डाला था॥ १२७॥ वे सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता तथा समस्त प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले थे। उन्होंने लक्ष्मणको साथ ले चौदह वर्षोंतक वनमें निवास किया॥ १२८॥ उस समय उनके साथ मूर्तिमती लक्ष्मी भी थीं, जो लोगोंमें 'सीता' के नामसे प्रसिद्ध थीं। वे उनकी पूर्वोचित पत्नी थीं और पतिके पीछे-पीछे वनमें गयी थीं॥ १२९॥ चौदह वर्षोंतक वनमें तपस्या करके जनस्थानमें निवास करते हुए रघुनन्दन श्रीरामने देवताओंका अभीष्ट कार्य सिद्ध किया॥ १३०॥ उन भगवान् श्रीरामने (रावणके द्वारा अपहृत) सीताका पता लगाते हुए लक्ष्मणके साथ जाकर भयानकपराक्रमी राक्षस विराध और कबन्धको मार डाला। वे दोनों वास्तवमें पुरुषसिंह गन्धर्व थे, किंतु शाप-ग्रस्त होकर राक्षस हो गये थे॥ १३१॥ इन राक्षसोंपर श्रीरामचन्द्रजीने ऐसे बाणोंद्वारा प्रहार किया, जो अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, बिजली और मेघके समान प्रकाशित होते थे, जिनके विचित्र पङ्ख तपाये हुए जाम्बूनद नामक सुवर्णके बने हुए थे और जो इन्द्रके वज्र तथा विद्युत्के समान शक्तिशाली थे। उन बाणोंद्वारा उन्होंने बलपूर्वक उन दोनों राक्षसोंको शरीरसे विलग कर दिया॥ १३२॥ श्रीरामने अपने मित्र सुग्रीव (-की भलाई)-के लिये युद्धमें महाबली वानरराज बालीको मार डाला और उसके राज्यपर सुग्रीवका अभिषेक कर दिया॥ १३३॥ उन दिनों राक्षसराज रावण देवता, असुर, यक्ष, गन्धर्व और नागोंके लिये अवध्य हो रहा था। युद्धमें वह उन्मत्त होकर लड़ता था। करोड़ों राक्षस उसके सहायक थे। उसका शरीर काले अञ्जनके ढेरके समान था। त्रिलोकीको रुलानेवाला वह भयंकर राक्षसराज रावण दुर्जय और दुर्द्धर्ष था॥ १३४-१३५॥

दुर्जयं दुर्धरं दृप्तं शार्दूलसमविक्रमम्।
दुर्निरीक्ष्यं सुरगणैर्वरदानेन दर्पितम्॥ १३६

जघान सचिवैः सार्द्धं ससैन्यं रावणं युधि।
महाभ्रघनसंकाशं महाकायं महाबलम्॥ १३७

तमागस्कारिणं घोरं पौलस्त्यं युधि दुर्जयम्।
सभ्रातृपुत्रसचिवं ससैन्यं क्रूरनिश्चयम्॥ १३८

रावणं निजघानाशु रामो भूतपतिः पुरा।
मधोश्च तनयो दृप्तो लवणो नाम दानवः॥ १३९

हतो मधुवने वीरो वरदृप्तो महासुरः।
समरे युद्धशौण्डेन तथा चान्येऽपि राक्षसाः॥ १४०

एतानि कृत्वा कर्माणि रामो धर्मभृतां वरः।
दशाश्वमेधाञ्जारूथ्यानाजहार निरर्गलान्॥ १४१

नाश्रूयन्ताशुभा वाचो नाकुलं मारुतो ववौ।
न वित्तहरणं त्वासीद् रामे राज्यं प्रशासति॥ १४२

पर्यदेवन्न विधवा नानर्थाश्चाभवंस्तदा।
सर्वमासीज्जगद् दान्तं रामे राज्यं प्रशासति॥ १४३

न प्राणिनां भयं चापि जलानलनिघातजम्।
न च स्म वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते॥ १४४

ब्रह्म पर्यचरत् क्षत्रं विशः क्षत्रमनुव्रताः।
शूद्राश्चैव हि वर्णांस्त्रीञ्छुश्रूषन्त्यनहंकृताः।
नार्यो नात्यचरन् भर्तॄन् भार्यां नात्यचरत् पतिः॥ १४५

सर्वमासीज्जगद् दान्तं निर्दस्युरभवन्मही।
राम एकोऽभवद् भर्त्ता रामः पालयिताभवत्॥ १४६

उसका पराक्रम सिंहके समान था। उसका घमंड बहुत बढ़ा हुआ था। वरदानके कारण वह और भी घमंडी हो गया था। देवताओंके लिये उसकी ओर देखना भी कठिन था। उसका शरीर मेघोंकी घटाके समान काला था। भगवान् श्रीरामने उस महाकाय महाबली रावणका युद्धमें मन्त्रियों तथा सेनाओंसहित संहार कर डाला॥ १३६-१३७॥ पुलस्त्य-पौत्र रावण भयानक अपराधी था, उसका प्रत्येक निश्चय क्रूरतासे पूर्ण होता था; युद्धमें उसपर विजय पाना कठिन था तो भी सम्पूर्ण भूतोंके पालक भगवान् श्रीरामने पूर्वकालमें उसे भाई, पुत्र, मन्त्री और सेनाओंसहित शीघ्रतापूर्वक मार डाला। उन्हीं दिनों मधुवन (मथुरा)-में लवण नामक दानव रहता था, जो मधुका पुत्र था। वह महान् असुर वीर तो था ही, मनोवाञ्छित वर पा जानेके कारण और भी घमंडमें भर गया था। वह श्रीरामके ही स्वरूपभूत शत्रुघ्नके हाथसे मारा गया। युद्धकुशल श्रीराम (तथा उनके भाइयों)-ने समराङ्गणमें और भी बहुत-से राक्षसोंका संहार किया॥ १३८—१४०॥ इन सब (पराक्रमपूर्ण) कर्मोंका सम्पादन करके धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरामने तीनगुनी दक्षिणासे युक्त दस अश्वमेध यज्ञ किये जो बिना किसी विघ्न-बाधाके पूर्ण हो गये॥ १४१॥ श्रीरामचन्द्रजी जब राज्यका शासन करते थे, उन दिनों कहीं अशुभ बातें नहीं सुनी जाती थीं, वायु प्रचण्ड वेगसे नहीं चलती थी तथा कोई किसीके धनका अपहरण नहीं करता था॥ १४२॥ श्रीरामके राज्य-शासनकालमें कभी विधवाओंका करुण क्रन्दन नहीं सुना गया। कहीं भी अनर्थपूर्ण घटनाएँ नहीं घटित हुईं। सारे जगत्‌के लोग (मन और इन्द्रियोंका संयम रखकर) विनीत एवं अनुशासित रहते थे॥ १४३॥ श्रीरामके राज्यकालमें प्राणियोंको जल और अग्निसे मृत्युका भय कभी नहीं होता था और बूढ़ोंको बालकोंकी प्रेतक्रिया नहीं करनी पड़ती थी॥ १४४॥ क्षत्रिय ब्राह्मणोंकी परिचर्या करते थे, वैश्य क्षत्रियोंके प्रति श्रद्धा रखते थे और शूद्र अहंकार छोड़कर ब्राह्मण आदि तीनों वर्णोंकी सेवा करते थे। श्रीरामके राज्यमें स्त्रियाँ अपने पतिको छोड़कर दूसरे किसी पुरुषमें आसक्त नहीं होती थीं और पुरुष भी अपनी पत्नीके सिवा दूसरी किसी स्त्रीपर आसक्तिपूर्ण दृष्टि नहीं डालते थे॥ १४५॥ उस समय सारा जगत् जितेन्द्रिय था। पृथ्वीपर डाकुओंका कहीं नाम भी नहीं था। एकमात्र श्रीराम ही सबके स्वामी और संरक्षक थे॥ १४६॥

आयुर्वर्षसहस्राणि तथा पुत्रसहस्त्रिणः।
अरोगाः प्राणिनश्चासन् रामे राज्यं प्रशासति॥ १४७

देवतानामृषीणां च मनुष्याणां च सर्वशः।
पृथिव्यां समवायोऽभूद् रामे राज्यं प्रशासति॥ १४८

गाथा अप्यत्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः।
रामे निबद्धतत्त्वार्था माहात्म्यं तस्य धीमतः॥ १४९

श्यामो युवा लोहिताक्षो दीप्तास्यो मितभाषिता।
आजानुबाहुः सुमुखः सिंहस्कन्धो महाभुजः॥ १५०

दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च।
अयोध्याधिपतिर्भूत्वा रामो राज्यमकारयत्॥ १५१

ऋक्सामयजुषां घोषो ज्याघोषश्च महात्मनः।
अव्युच्छिन्नोऽभवद्राज्ये दीयतां भुज्यतामिति॥ १५२

सत्त्ववान् गुणसम्पन्नो दीप्यमानः स्वतेजसा।
अति चन्द्रं च सूर्यं च रामो दाशरथिर्बभौ॥ १५३

ईजे क्रतुशतैः पुण्यैः समाप्तवरदक्षिणैः।
हित्वायोध्यां दिवं यातो राघवः समहाबलः॥ १५४

एवमेष महाबाहुरिक्ष्वाकुकुलनन्दनः।
रावणं सगणं हत्वा दिवमाचक्रमे प्रभुः॥ १५५

वैशम्पायन उवाच

अपरः केशवस्यायं प्रादुर्भावो महात्मनः।
विख्यातो माथुरे कल्पे सर्वलोकहिताय वै॥ १५६

यत्र शाल्वं च मैन्दं च द्विविदं कंसमेव च।
अरिष्टमृषभं केशिं पूतनां दैत्यदारिकाम्॥ १५७

नागं कुवलयापीडं चाणूरं मुष्टिकं तथा।
दैत्यान् मानुषदेहस्थान् सूदयामास वीर्यवान्॥ १५८

श्रीरामके शासनकालमें मनुष्योंकी आयु हजारों वर्षकी होती थी। वे सहस्रों पुत्रोंके पिता होते थे और किसी भी प्राणीको रोग नहीं सताता था॥ १४७॥ भगवान् श्रीराम जब यहाँ राज्यशासन करते थे, उन दिनों इस भूतलपर देवता, ऋषि और मनुष्योंका सब ओर समागम होता रहता था॥ १४८॥ श्रीरामके विषयमें 'वे ही परम तत्त्व हैं' ऐसी दृढ़ आस्था रखनेवाले पुराणवेत्ता पुरुष इस प्रसङ्गमें निम्नाङ्कित गाथाएँ गाया करते हैं, जो उन बुद्धिमान् श्रीरघुनाथजीके माहात्म्यको सूचित करती हैं— ॥ १४९॥ 'श्रीरामचन्द्रजीका वर्ण श्याम था, वे सदा तरुण दिखायी देते थे, उनके नेत्र (कुछ-कुछ) लालिमा लिये हुए थे, मुखसे तेज बरसता रहता था, वे बहुत कम बोलते थे, उनकी लम्बी भुजाएँ घुटनोंतक पहुँचती थीं, उनका मुख बड़ा सुन्दर था, कंधे सिंहके-से जान पड़ते थे, महाबाहु श्रीरामने अयोध्याके अधिपति होकर ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य किया था॥ १५०-१५१॥ उनके राज्यमें सदा ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेदका घोष सुनायी देता था। धनुषकी प्रत्यञ्चा खींचनेसे उसकी टंकार-ध्वनि भी सदा श्रवणगोचर होती रहती थी तथा दान देने और भोजन करानेका उपदेश कभी बंद नहीं होता था॥ १५२॥ दशरथनन्दन श्रीराम सत्त्ववान् और गुणवान् होनेके साथ ही सदा अपने तेजसे देदीप्यमान रहते थे। उनकी सूर्य और चन्द्रमासे भी अधिक शोभा होती थी॥ १५३॥ श्रीरघुनाथजीने पर्याप्त एवं उत्तम दक्षिणाओंसे युक्त सैकड़ों पवित्र यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। अन्तमें वे अयोध्याके महान् जन-समुदायको साथ ले अपनी उस पुरीको छोड़कर साकेत धामको पधारे'॥ १५४॥ इस प्रकार इक्ष्वाकुकुलका आनन्द बढ़ानेवाले ये महाबाहु भगवान् श्रीराम दलबलसहित रावणका संहार करके अपने परमधामको चले गये॥ १५५॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—(जनमेजय!) इसके बाद परमात्मा भगवान् केशवका 'श्रीकृष्ण' नामक अवतार माथुर कल्प (मथुरामण्डल)-में हुआ, जो सर्वत्र विख्यात है। भगवान्‌का यह अवतार सम्पूर्ण जगत्‌के हितके लिये हुआ था॥ १५६॥ इस अवतारमें परम पराक्रमी हरिने शाल्व, मैन्द, द्विविद, कंस, अरिष्ट, ऋषभ, केशी, दैत्य-कन्या पूतना, कुवलयापीड़ हाथी, चाणूर तथा मुष्टिक आदि मनुष्य-शरीरधारी दैत्योंका संहार किया था॥ १५७-१५८॥

छिन्नं बाहुसहस्रं च बाणस्याद्भुतकर्मणः।
नरकश्च हतः संख्ये यवनश्च महाबलः॥ १५९

हृतानि च महीपानां सर्वरत्नानि तेजसा।
दुराचाराश्च निहताः पार्थिवाश्च महीतले॥ १६०

नवमे द्वापरे विष्णुरष्टाविंशे पुराभवत्।
वेदव्यासस्तथा जज्ञे जातूकर्ण्यपुरस्सरः॥ १६१

एको वेदश्चतुर्धा तु कृतस्तेन महात्मना।
जनितो भारतो वंशः सत्यवत्याः सुतेन च॥ १६२

एते लोकहितार्थाय प्रादुर्भावा महात्मनः।
अतीताः कथिता राजन् कथ्यन्ते चाप्यनागताः॥ १६३

कल्किर्विष्णुयशा नाम शम्भले ग्रामके द्विजः।
सर्वलोकहितार्थाय भूयश्चोत्पत्स्यते प्रभुः॥ १६४

दशमे भाव्यसम्पन्नो याज्ञवल्क्यपुरस्सरः।
क्षपयित्वा च तान् सर्वान् भाविनार्थेन चोदितान्॥ १६५

गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठां प्राप्स्यति सानुगः।
ततः कुले व्यतीते तु सामात्ये सहसैनिके॥ १६६

नृपेष्वथ प्रणष्टेषु तदा त्वप्रग्रहाः प्रजाः।
रक्षणे विनिवृत्ते च हत्वा चान्योन्यमाहवे॥ १६७

इसके अतिरिक्त उन्होंने अद्भुत कर्म करनेवाले बाणासुरकी सहस्र भुजाएँ काट डालीं, युद्धमें नरकासुरका नाश किया और महाबली कालयवनको भस्म करा दिया॥ १५९॥ इतना ही नहीं, उन्होंने अपने तेजसे भूमिपालोंके सभी रत्न छीन लिये और भूतलके दुराचारी राजाओंको मौतके घाट उतार दिया॥ १६०॥ (यहाँतक जो सात अवतार बताये गये, उनमें मत्स्य-कच्छप अवतारोंका भी अन्तर्भाव करके उन्हें नौ समझना चाहिये।) अट्ठाईसवें द्वापरमें भगवान् विष्णुका यह (श्रीकृष्ण नामक) नवम अवतार हुआ था। इससे कुछ पहले ही उनका दसवाँ अवतार भी हो गया था, जो जातूकर्ण्यके साथ प्रकट हुआ था। वह वेदव्यासके नामसे प्रसिद्ध है॥ १६१॥ उन सत्यवतीपुत्र महात्मा व्यासने एक वेदके चार विभाग किये और उन्होंने ही भरतवंशकी लुप्त हुई परम्पराको पुनः प्रचलित किया॥ १६२॥ राजन्! समस्त जगत्का कल्याण करनेके लिये प्रकट हुए परमात्मा श्रीहरिके जो उक्त (दस) अवतार बीत गये हैं, उनकी चर्चा यहाँ की गयी। अब उनके भविष्यमें होनेवाले अवतार बताये जाते हैं॥ १६३॥ (भावी अवतारोंमें पहले 'बुद्ध' का प्राकट्य होगा।) इसके बाद विष्णुयशा नामसे प्रसिद्ध कल्कि अवतार होनेवाला है। भगवान् विष्णु शम्भल नामक ग्राममें सम्पूर्ण जगत्के हितके लिये पुनः एक ब्राह्मणके रूपमें प्रकट होंगे॥ १६४॥ पूर्वोक्त दशम अवतारका समय बीत जानेपर याज्ञवल्क्य ऋषिको साथ लेकर प्रकट होनेवाला यह अवतार भावी प्रयोजन (दुष्टोंके संहार और धर्मकी संस्थापना)-को सिद्ध करनेकी शक्तिसे सम्पन्न होगा। भगवान् कल्कि भवितव्यतासे प्रेरित होकर अधर्मके पथपर चलनेवाले उन समस्त पापाचारियोंका संहार करके अपने अनुयायियोंसहित गङ्गा और यमुनाके मध्यवर्ती देशमें अपने अवतारकार्यको समाप्त करेंगे। तदनन्तर मन्त्री और सैनिकोंसहित राजवंशके विनष्ट हो जानेपर जब कोई शासक नरेश नहीं रह जायगा, तब सारी प्रजा बेलगाम होकर स्वेच्छाचारमें प्रवृत्त हो जायगी। रक्षाकी राजकीय व्यवस्था समाप्त हो जानेपर लोग (आपसमें लड़ेंगे और)

परस्परहृतस्वाश्च निराक्रन्दाः सुदुःखिताः।
एवं कष्टमनुप्राप्ताः कलिसंध्यांशके तदा।
प्रजाः क्षयं प्रयास्यन्ति सार्द्धं कलियुगेन ह॥ १६८

क्षीणे कलियुगे तस्मिंस्ततः कृतयुगं पुनः।
प्रपत्स्यते यथान्यायं स्वभावादेव नान्यथा॥ १६९

एते चान्ये च बहवो दिव्या देवगुणैर्युताः।
प्रादुर्भावाः पुराणेषु गीयन्ते ब्रह्मवादिभिः॥ १७०

यत्र देवाश्च मुह्यन्ति प्रादुर्भावानुकीर्तने।
पुराणं वर्तते यत्र वेदश्रुतिसमाहितम्॥ १७१

एतदुद्देशमात्रेण प्रादुर्भावानुकीर्तनम्।
कीर्तितं कीर्तनीयस्य सर्वलोकगुरोः प्रभोः॥ १७२

प्रीयन्ते पितरस्तस्य प्रादुर्भावानुकीर्तनात्।
विष्णोरतुलवीर्यस्य यः शृणोति कृताञ्जलिः॥ १७३

एतास्तु योगेश्वरयोगमायाः
श्रुत्वा नरो मुच्यति सर्वपापैः।
ऋद्धिं समृद्धिं विपुलांश्च भोगान्
प्राप्नोति सर्वं भगवत्प्रसादात्॥ १७४

उस युद्धमें एक-दूसरेको मारकर नष्ट हो जायँगे। आपसमें एक-दूसरेका धन लूटकर असहाय एवं अत्यन्त दुःखी हो जायँगे। उस समय कलियुगका संध्यांश बीत रहा होगा, उन दिनों इस प्रकार कष्टमें पड़ी हुई सारी प्रजा कलियुगके साथ ही नष्ट हो जायगी—ऐसी बात कही जाती है॥ १६५—१६८॥ कलियुगके समाप्त हो जानेपर फिर स्वभावसे ही सत्ययुगकी यथोचितरूपसे प्रवृत्ति होगी, दूसरे किसी प्रकारसे नहीं॥ १६९॥ राजन्! ये तथा और भी भगवान्‌के बहुत-से दिव्य अवतार हुए हैं, जो देवोचित गुणोंसे सम्पन्न थे। ब्रह्मवादी मुनियोंने पुराणोंमें उनका गान किया है॥ १७०॥ भगवान्‌के इन अवतारोंका वर्णन करनेमें देवता भी चकरा जाते हैं—इस विषयमें पुराण ही प्रमाण है, जिसका वैदिक श्रुतियोंद्वारा समर्थन होता है॥ १७१॥ सम्पूर्ण जगत्‌के गुरु तथा कीर्तन करने-योग्य सर्वशक्तिमान् भगवान्‌के अवतारोंका यह वर्णन संक्षेपसे ही किया गया है॥ १७२॥ अनुपम शक्तिशाली भगवान् विष्णुके अवतारोंकी बारम्बार चर्चा करनेसे पितरोंको प्रसन्नता होती है। जो हाथ जोड़कर आदर-पूर्वक इस अवतार-कथाको सुनता है, उसके पितरोंको भी अक्षय तृप्ति प्राप्त होती है॥ १७३॥ जो मनुष्य योगेश्वर भगवान् श्रीहरिकी योगमाया द्वारा प्रकट हुए अवतारोंकी इन लीला-कथाओंको सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा भगवान्‌की कृपासे शीघ्र ही उसे ऋद्धि, समृद्धि एवं प्रचुर भोग—सबकी प्राप्ति हो जाती है॥ १७४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि प्रादुर्भावानुसंग्रहो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें अवतारोंका संग्रह नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४१॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवान् विष्णुके ईश्वरत्वका वर्णन एवं आश्चर्यतारकामय संग्रामकी कथा

वैशम्पायन उवाच

विश्वत्वं शृणु मे विष्णोर्हरित्वं च कृते युगे।
वैकुण्ठत्वं च देवेषु कृष्णत्वं मानुषेषु च॥ १

ईश्वरत्वं च तस्येदं गहनां कर्मणां गतिम्।
सम्प्रत्यतीतां भाव्यां च शृणु राजन् यथातथम्॥ २

अव्यक्तो व्यक्तलिङ्गस्थो यत्रैव भगवान् प्रभुः।
नारायणो ह्यनन्तात्मा प्रभवोऽव्यय एव च॥ ३

एष नारायणो भूत्वा हरिरासीत् कृते युगे।
ब्रह्मा शक्रश्च सोमश्च धर्मः शुक्रो बृहस्पतिः॥ ४

अदितेरपि पुत्रत्वमेत्य यादवनन्दनः।
एष विष्णुरिति ख्यात इन्द्रादवरजोऽभवत्॥ ५

प्रसादजं ह्यस्य विभोरदित्याः पुत्रजन्म तत्।
वधार्थं सुरशत्रूणां दैत्यदानवरक्षसाम्॥ ६

प्रधानात्मा पुरा ह्येष ब्रह्माणमसृजत् प्रभुः।
सोऽसृजत् पूर्वपुरुषः पुरा कल्पे प्रजापतीन्॥ ७

ते तन्वानास्तनूस्तत्र ब्रह्मवंशाननुत्तमान्।
तेभ्योऽभवन्महात्मभ्यो बहुधा ब्रह्म शाश्वतम्॥ ८

एतदाश्चर्यभूतस्य विष्णोर्नामानुकीर्तनम्।
कीर्तनीयस्य लोकेषु कीर्त्यमानं निबोध मे॥ ९

वृत्ते वृत्रवधे तात वर्तमाने कृते युगे।
आसीत् त्रैलोक्यविख्यातः संग्रामस्तारकामयः॥ १०

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! अब तुम मुझसे सत्ययुगमें विष्णुके विश्वत्वको (उनके अभयदायक आश्वासक रूपको), हरित्वको (पापहारी रूपको), देवताओंमें भगवान्के वैकुण्ठत्वको (सर्वसमर्थताको) और पुरुषोंमें उनके श्रीकृष्णत्वको (सच्चिदानन्दताको) तथा उनके ईश्वरत्वको (दण्ड देने और कृपा करनेकी सामर्थ्यको) और उनके भूत, भविष्य एवं वर्तमान कर्मों (लीलाओं)-की गहन गति (दुर्बोधस्वरूप)-को यथार्थरूपसे सुनो॥ १-२॥ वे सर्वशक्तिमान् प्रभु अव्यक्त होनेपर भी (अवतार-विग्रह धारण करते समय) अपनी मूर्तिको प्रकट किये रहते हैं, वे नारायण, अनन्तस्वरूप, सबके उत्पत्तिस्थान और अव्यय (अविनाशी) हैं॥ ३॥ सत्ययुगमें ये नारायणरूप होकर हरि—मोक्षदायक बने और ये ही ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्रमा, धर्म, शुक्र और बृहस्पतिके रूपोंमें प्रकट हुए॥ ४॥ इसके अनन्तर ये यादवनन्दन (श्रीकृष्णरूपसे अवतार लेनेवाले भगवान्) ही विष्णुके नामसे अदितिके पुत्र बनकर उत्पन्न हुए। उस जन्ममें ये इन्द्रके छोटे भाई बने थे॥ ५॥ देवताओंके शत्रु दैत्य, दानव और राक्षसोंका संहार करनेके लिये भगवान् विष्णु अदितिके यहाँ पुत्र बनकर उत्पन्न हुए। यह उन विभुका प्रसाद (वरदान)-रूप जन्म था॥ ६॥ सृष्टिके आदिमें इन प्रधानात्मा—प्रकृतिके संचालक प्रभुने ही ब्रह्माको उत्पन्न किया और इन्हीं पुराण-पुरुषने पूर्वकल्पमें (मरीचि आदि) प्रजापतियोंकी सृष्टि की॥ ७॥ उन प्रजापतियोंने (कश्यप आदिके रूपसे) अपने स्वरूपका विस्तार करके श्रेष्ठ ब्रह्मवंशों (गोत्रों)- को उत्पन्न किया और उन महात्माओंसे सनातन वेद अनेक शाखाओंमें विभक्त हो गया॥ ८॥ लोकोंमें कीर्तनीय आश्चर्यमय विष्णुके इस (वेदरूप) नामकीर्तनका उल्लेख मेरे द्वारा किया जा रहा है, तुम इसे सुनो॥ ९॥ तात! वर्तमान सत्ययुगमें वृत्रासुरका वध हो चुकनेपर त्रिलोकीमें प्रसिद्ध तारकामय संग्राम हुआ॥ १०॥

तत्रासन् दानवा घोराः सर्वे संग्रामदर्पिताः।
घ्नन्ति देवगणान् सर्वान् सयक्षोरगराक्षसान्॥ ११

ते वध्यमाना विमुखाः क्षीणप्रहरणा रणे।
त्रातारं मनसा जग्मुर्देवं नारायणं हरिम्॥ १२

एतस्मिन्नन्तरे मेघा निर्वाणाङ्गारवर्षिणः।
सार्कचन्द्रग्रहगणं छादयन्तो नभस्तलम्॥ १३

चञ्चद्विद्युद्गणाविद्धा घोरा निर्ह्रादकारिणः।
अन्योन्यवेगाभिहताः प्रववुः सप्त मारुताः॥ १४

दीप्ततोयाशनीपातैर्वज्रवेगानिलाकुलैः।
ररास घोरैरुत्पातैर्दह्यमानमिवाम्बरम्॥ १५

पेतुरुल्कासहस्राणि मुहुराकाशगान्यपि।
न्युब्जानि च विमानानि प्रपतन्त्युत्पतन्ति च॥ १६

चतुर्युगान्तपर्याये लोकानां यद् भयं भवेत्।
तादृशान्येव रूपाणि तस्मिन्नुत्पातलक्षणे॥ १७

तमसा निष्प्रभं सर्वं न प्राज्ञायत किंचन।
तिमिरौघपरिक्षिप्ता न रेजुश्च दिशो दश॥ १८

निशेव रूपिणी काली कालमेघावगुण्ठिता।
द्यौर्न भात्यभिभूतार्का घोरेण तमसा वृता॥ १९

तान् घनौघान् सतिमिरान् दोर्भ्यामुत्क्षिप्य स प्रभुः।
वपुः संदर्शयामास दिव्यं कृष्णवपुर्हरिः॥ २०

बलाहकाञ्जननिभं बलाहकतनूरुहम्।
तेजसा वपुषा चैव कृष्णं कृष्णमिवाचलम्॥ २१

दीप्तपीताम्बरधरं तप्तकाञ्चनभूषणम्।
धूमान्धकारवपुषा युगान्ताग्निमिवोत्थितम्॥ २२

उस समय सब-के-सब दानव संग्राममें दर्पभरे एवं भयंकर दिखायी देते थे। उन्होंने यक्ष, राक्षस और सर्पोंसहित समस्त देवताओंको मारना आरम्भ कर दिया था॥ ११॥ मार खाते-खाते जब उनके आयुध क्षीण हो गये, तब वे रणसे विमुख हो गये और सबकी रक्षा करनेवाले नारायणदेव श्रीहरिके ही मनसे शरण हो गये॥ १२॥ इसी बीचमें मेघ तपे हुए लोहेके समान ज्वालारहित अँगारे बरसाने लगे। वे सूर्य, चन्द्रमा आदि ग्रहोंसहित आकाशको ढकते हुए दिखायी देते थे॥ १३॥ कौंधती हुई बिजलियोंसे व्याप्त हो वे भयंकर बादल बड़े जोरसे गर्जने और परस्पर वेगसे टकराने लगे; क्योंकि उस समय प्रवह आदि सात प्रकारकी हवाएँ चल रही थीं॥ १४॥ बिजली और तपे हुए जलके गिरने तथा वज्रके समान वेगवाली वायुके चलने आदि भयंकर उत्पातोंसे जलता हुआ-सा आकाश मानो कराहने लगा॥ १५॥ उस समय हजारों उल्काएँ गिरती और फिर आकाशमें पहुँच जाती थीं तथा विमान नीचेको मुख करके गिरते और फिर उलटे ही उड़ जाते थे॥ १६॥ हजार चतुर्युगोंके अन्तमें होनेवाले प्रलयके समय लोकोंको जो भय प्राप्त होता है, इस उत्पातके समय भी वैसे ही चिह्न दीखने लगे॥ १७॥ सारा संसार अन्धकारसे व्याप्त हो जानेके कारण प्रभाहीन प्रतीत होने लगा; कुछ भी सूझता न था। अन्धकारसमूहसे आच्छादित हुई दसों दिशाएँ ज्ञात ही नहीं होती थीं॥ १८॥ जैसे काले मेघोंके घिर आनेपर अमावास्याकी रात्रि मूर्तिमती-सी दीख पड़ती है, वैसे ही अन्धकारसे सूर्यके तिरोहित होनेपर घोर अन्धकारसे भरा हुआ आकाश शोभायमान नहीं लगता था॥ १९॥ उस समय श्यामवर्ण भगवान् श्रीहरिने अपनी दोनों भुजाओंद्वारा अन्धकारसे व्याप्त उन मेघसमूहोंको ऊपरकी ओर ठेलकर अपने दिव्य स्वरूपका साक्षात्कार कराया॥ २०॥ भगवान्‌के श्रीविग्रहका वर्ण मेघ और अञ्जनके समान था। उनके केश भी मेघके समान (काले) थे। उनका शरीर तो काले पर्वतके समान कृष्णवर्ण था ही, उससे तेज भी कृष्णवर्ण निकल रहा था। वे चमकता हुआ पीताम्बर धारण किये हुए थे और तपे हुए सुवर्णके आभूषण पहने थे। उस समय वे ऐसे लगते थे, जैसे धूमके समान अन्धकारमय शरीरसे आवेष्टित होकर प्रलयकालकी अग्नि प्रकट हुई हो॥ २१-२२॥

चतुर्द्विगुणपीनांसं बलाकापङ्क्तिभूषणम्।
चामीकरकराकारैरायुधैरुपशोभितम् ॥ २३

चन्द्रार्ककिरणोद्द्योतं गिरिकूटं शिलोच्चयम्।
नन्दकानन्दितकरं शराशीविषधारिणम्॥ २४

शक्तिचित्रं हलोदग्रं शङ्खचक्रगदाधरम्।
विष्णुशैलं क्षमामूलं श्रीवृक्षं शार्ङ्गधन्विनम्॥ २५

हर्यश्वरथसंयुक्ते सुपर्णध्वजशोभिते।
चन्द्रार्कचक्ररुचिरे मन्दराक्षधृतान्तरे॥ २६

अनन्तरश्मिसंयुक्ते दद्दशे मेरुकूबरे।
तारकाचित्रकुसुमे ग्रहनक्षत्रबन्धुरे॥ २७

भयेष्वभयदं व्योम्नि देवा दैत्यपराजिताः।
दद्दशुस्ते स्थितं देवं दिव्यलोकमये रथे॥ २८

ते कृताञ्जलयः सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः।
जयशब्दं पुरस्कृत्य शरण्यं शरणं गताः॥ २९

स तेषां ता गिरः श्रुत्वा विष्णुर्दयितदेवतः।
मनश्चक्रे विनाशाय दानवानां महामृधे॥ ३०

आकाशे तु स्थितो विष्णुः सोत्तमे पुरुषोत्तमः।
उवाच देवताः सर्वाः सप्रतिज्ञमिदं वचः॥ ३१

शान्तिं भजत भद्रं वो मा भैष्ट मरुतां गणाः।
जिता मे दानवाः सर्वे त्रैलोक्यं प्रतिगृह्यताम्॥ ३२

वे (अष्टभुज होनेके कारण) आठ मांसल बाहुमूलोंसे सुशोभित थे। चमकते हुए आभूषणोंसे युक्त उनका श्रीविग्रह ऐसी शोभा देता था, जैसे बगुलोंकी पंक्तिसे विभूषित मेघ हो। वे सुवर्णकी बनी मूठवाले आयुधोंसे सुशोभित तथा चन्द्रमा और सूर्यकी किरणोंसे दमकते हुए पर्वतके समान अचल थे। कटिप्रदेशमें मैनसिलके समान पीले रंगका नारा बाँधे हुए थे।* उनका एक हाथ नन्दक नामके खड्गसे सुशोभित था, वे दूसरे हाथमें सर्पाकार (लहरदार) बाण धारण किये हुए थे। शक्तिसे उनकी विचित्र शोभा हो रही थी। तीसरे हाथमें हल लिये रहनेके कारण वे बहुत ऊँचे दिखायी दे रहे थे। अन्य तीन हाथोंमें उन्होंने शङ्ख, चक्र और गदा धारण कर रखी थी। एक हाथमें उनके शार्ङ्ग (सींगका बना) धनुष था। भगवान् विष्णु एक पर्वतके समान दीख रहे थे। उनके अङ्गोंमें जो श्री हैं, वे ही वृक्ष-स्थानीय थीं। जैसे पर्वतका मूलभाग क्षमा (पृथ्वी)-पर प्रतिष्ठित है, उसी तरह श्रीहरिकी प्राप्तिका मूल क्षमाभाव है। भयके अवसरोंपर अभयदान देनेवाले पर्वतके समान अटल भगवान् विष्णुको दैत्योंसे हारे हुए देवताओंने आकाशके बीच दिव्यलोकमय रथमें बैठे देखा। उस रथमें हरे रंगके घोड़े जुते हुए थे। वह गरुड़की ध्वजासे शोभित था। सूर्य और चन्द्रमारूपी पहियोंसे वह सुन्दर दिखायी देता था। उसके भीतरी भागको मन्दराचलरूपी धुरेने धारण कर रखा था। भगवान् शेष ही उसमें रश्मि (लगाम) बने हुए थे। मेरु पर्वत उसका कूबर (आगेका भाग) था। तारे ही उसमें रंग-बिरंगे फूलोंके रूपमें सजे थे तथा ग्रह-नक्षत्र उसमें डोरीके रूपमें लगे थे॥ २३—२८॥ उस समय इन्द्र आदि समस्त देवताओंने जय-जय शब्दका उच्चारण किया और हाथ जोड़कर शरण देनेवाले विष्णुभगवान्‌की शरण ग्रहण की॥ २९॥ विष्णुको देवता प्रिय हैं, अतएव उन्होंने देवताओंकी उस वाणीको सुनकर महायुद्धमें दानवोंके नाश करनेका अपने मनमें विचार किया॥ ३०॥ उत्तम आकाशमें विराजमान उन पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुने सब देवताओंसे प्रतिज्ञापूर्वक यह बात कही—॥ ३१॥ 'देवताओ! तुम्हारा कल्याण हो! अब तुम शान्त हो जाओ, डरो मत। मेरे द्वारा सारे दानव जीत लिये गये—यों समझना चाहिये। (अब) तुम त्रिलोकीका राज्य अपना ही मानो और उसपर अधिकार करो'॥ ३२॥

* यहाँ नीलकण्ठजीने शिलाका अर्थ मैनसिल और उच्चयका अर्थ नीवीबन्ध या नारा दिया है।

ते तस्य सत्यसंधस्य विष्णोर्वाक्येन तोषिताः।
देवाः प्रीतिं परां जग्मुः प्राप्येवामृतमुत्थितम्॥ ३३
ततस्तमः संह्रियते विनेशुश्च बलाहकाः।
प्रववुश्च शिवा वाताः प्रसन्नाश्च दिशो दश॥ ३४
सुप्रभाणि च ज्योतींषि चन्द्रं चक्रुः प्रदक्षिणम्।
दीप्तिमन्ति च तेजांसि चक्रुरर्कं प्रदक्षिणम्॥ ३५
न विग्रहं ग्रहाश्चक्रुः प्रसन्नाश्चापि सिन्धवः।
नीरजस्का बभुर्मार्गा नाकमार्गादयस्त्रयः॥ ३६
यथार्थमूहुः सरितो नापि चुक्षुभिरेऽर्णवाः।
आसञ्छुभानीन्द्रियाणि नराणामन्तरात्मसु॥ ३७
महर्षयो वीतशोका वेदानुच्चैरधीयते।
यज्ञेषु च हविः स्वादु शिवमश्नाति पावकः॥ ३८
प्रवृत्तधर्माः संवृत्ता लोका मुदितमानसाः।
प्रीत्या परमया युक्ता देवदेवस्य भूपते।
विष्णोः सत्यप्रतिज्ञस्य श्रुत्वारिनिधने गिरम्॥ ३९

सत्यप्रतिज्ञ भगवान् विष्णुके वाक्यसे आश्वासित हो देवता अत्यधिक प्रसन्न हुए, मानो उनको क्षीरसागरसे प्रकट हुआ अमृत मिल गया॥ ३३॥ उस समय अन्धकार दूर हो गया, मेघ विलीन हो गये, सुखदायक वायु चलने लगी और दसों दिशाएँ निर्मल हो गयीं॥ ३४॥ सुन्दर प्रभावाले नक्षत्र चन्द्रमाकी और प्रकाशमान ग्रह सूर्यकी प्रदक्षिणा करने लगे॥ ३५॥ ग्रहोंने आपसमें टकराना छोड़ दिया, नदियोंका जल निर्मल हो गया तथा देवयान, पितृयान और मोक्षमार्ग नामक तीनों मार्ग भी रज (धूल या रजोगुण)-से रहित हो गये॥ ३६॥ नदियाँ ठीक ढंगसे बहने लगीं, समुद्रोंका क्षुब्ध होना बंद हो गया, मनुष्योंके मनोंमें इन्द्रियोंको शुभ कामोंमें लगानेकी इच्छा होने लगी॥ ३७॥ महर्षि शोकरहित होकर उच्चस्वरसे वेदध्वनि करने लगे, अग्निदेव भी यज्ञोंमें पवित्र और स्वादु हविका भक्षण करने लगे॥ ३८॥ पृथ्वीनाथ! सच्ची प्रतिज्ञा करनेवाले देवपूज्य भगवान् विष्णुके द्वारा की गयी शत्रुनाशकी प्रतिज्ञा सुनकर प्राणी अपने मनमें प्रसन्न होकर परम प्रीतिसे यज्ञ आदि धर्मानुष्ठानमें प्रवृत्त हो गये॥ ३९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि आश्चर्यतारकामये द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें आश्चर्यतारकामय संग्रामविषयक बयालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४२॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

देवताओंके साथ युद्धके लिये उद्यत हुई दैत्यसेनाका वर्णन

वैशम्पायन उवाच

ततो भयं विष्णुमयं श्रुत्वा दैतेयदानवाः।
उद्योगं विपुलं चक्रुर्युद्धाय युधि दुर्जयाः॥ १

मयस्तु काञ्चनमयं त्रिनल्वान्तरमव्ययम्।
चतुश्चक्रं विक्रमन्तं सुकल्पितमहायुधम्॥ २

किङ्किणीजालनिर्घोषं द्वीपिचर्मपरिष्कृतम्।
खचितं रत्नजालैश्च हेमजालैश्च भूषितम्॥ ३

वैशम्पायनजी कहते हैं— जनमेजय! तदनन्तर मुख्यतः भगवान् विष्णुकी ओरसे भय प्राप्त हुआ है, यह सुनकर रण-दुर्जय दैत्यों और दानवोंने युद्धके लिये बड़ा भारी उद्योग किया। मयासुर एक सुवर्णमय रथपर आरूढ़ हुआ, जिसका विस्तार बारह सौ हाथका था। उसमें चार पहिये लगे थे। वह रथ टूटने या बिगड़नेवाला नहीं था। कैसी ही विषम भूमि क्यों न हो, उसमें वह आगे बढ़ जाता था। उस रथमें बड़े-बड़े आयुध सुन्दर ढंगसे सजाकर रखे गये थे। उसमें छोटी-छोटी घंटियोंसे युक्त झालरें लगी थीं, जिनसे मधुर ध्वनिका विस्तार होता रहता था। रथके ऊपरी भागमें उसकी रक्षाके लिये चीतेकी खाल मढ़ी गयी थी। उस रथमें भाँति-भाँतिके रत्न जड़े गये थे तथा सोनेकी जालियाँ उसकी शोभा बढ़ा रही थीं॥ १—३॥

स्वक्षं रथवरोदग्रं सूपस्थानमगोपमम्।
ईहामृगगणाकीर्णं पक्षिभिश्च विराजितम्।
दिव्यास्त्रतूणीरधरं पयोधरनिनादितम्॥ ४

गदापरिघसम्पूर्णं मूर्तिमन्तमिवार्णवम्।
हेमकेयूरवलयं स्वर्णमण्डलकूबरम्॥ ५

सपताकध्वजोदग्रं सादित्यमिव मन्दरम्।
गजेन्द्राम्भोदसदृशं लम्बकेसरवर्चसम्॥ ६

युक्तमृक्षसहस्रेण सहस्राम्बुदनादितम्।
दीप्तमाकाशगं दिव्यं रथं पररथारुजम्॥ ७

अध्यतिष्ठद्रणाकाङ्क्षी मेरुं दीप्तमिवांशुमान्।
तारस्तु क्रोशविस्तारमायसं वायसध्वजम्॥ ८

शैलोत्करसमाकीर्णं नीलाञ्जनचयोपमम्।
काललोहाष्टचरणं लोहेषायुगकूबरम्।
तिमिराङ्गारकिरणं गर्जन्तमिव तोयदम्॥ ९

लोहजालेन महता सगवाक्षेण दंशितम्।
आयसैः परिघैः कीर्णं क्षेपणीयैस्तथाश्मभिः॥ १०

प्रासैः पाशैश्च विततैरवसक्तैश्च मुद्गरैः।
शोभितं त्रासनीयैश्च तोमरैः सपरश्वधैः॥ ११

उद्यन्तं द्विषतां हेतोर्द्वितीयमिव मन्दरम्।
युक्तं खरसहस्रेण सोऽध्यारोहद्रथोत्तमम्॥ १२

उसका धुरा बहुत अच्छा था। वह रथ अच्छी श्रेणीके रथोंमें भी सबसे अच्छा था। उसकी बैठक बड़ी सुन्दर थी। वह देखनेमें पर्वत-जैसा जान पड़ता था। उसमें जीव-जन्तुओंके चित्र अङ्कित थे। भाँति-भाँतिके पक्षियोंके चित्र भी उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। उसके भीतर दिव्यास्त्र और तरकस रखे गये थे। उस रथसे मेघगर्जनाके समान गम्भीर घर्घर-शब्द होता रहता था। गदाओं और परिघोंसे परिपूर्ण वह विशाल रथ मूर्तिमान् समुद्र-सा जान पड़ता था। उस रथमें जहाँ-जहाँ संधिस्थलोंको बाँधे रखनेके लिये पट्टियाँ लगी थीं, वहाँ-वहाँ वे पट्टिकाएँ सुवर्णनिर्मित केयूर और वलयके सदृश शोभा पाती थीं। उसका कूबर सोनेका मण्डल-सा जान पड़ता था। ध्वजा-पताकाओंसे सुशोभित वह ऊँचा रथ सूर्यमण्डलसे विभासित मन्दराचल-सा जान पड़ता था। दूरसे देखनेपर उसका रंग बड़े-बड़े गजराजों, मेघोंकी घटाओं तथा भालुओंके समान जान पड़ता था। उसमें एक हजार रीछ जुते हुए थे। उसकी घरघराहट सहस्रों मेघोंकी गर्जनाको तिरस्कृत किये देती थी। वह दीप्तिमान् दिव्य रथ आकाशमें भी चल सकता था और शत्रु-पक्षके रथोंको तोड़-फोड़ डालनेमें समर्थ था। युद्धकी आकाङ्क्षा रखनेवाला मयासुर उस रथपर सवार हुआ मानो अंशुमाली सूर्य दीप्तिमान् मेरु पर्वतपर आरूढ़ हुए हों। तार नामक दैत्य लोहेके बने हुए उत्तम रथपर आरूढ़ हुआ, जिसका विस्तार एक कोसका था; उसके ऊपर कौएके चिह्नसे सुशोभित ध्वजा फहरा रही थी। उसके भीतर शिलाखण्डोंके समूह भरे हुए थे। वह नीली कज्जलराशिके समान प्रतीत होता था। उसमें काले लोहेके आठ पहिये लगे थे। उसके ईषादण्ड (हरसे या बम), जुआ और कूबर भी लोहेके ही बने हुए थे। उसकी कान्ति काले कोयलेके समान काली थी, वह अपनी घरघराहटसे गरजता हुआ मेघ-सा जान पड़ता था। उसके ऊपर लोहेकी बहुत बड़ी जाली लगी हुई थी, जिसमें झरोखे शोभा पाते थे। वह रथ लोहेके परिघों तथा फेंकने योग्य पत्थरोंके गोलोंसे भरा था। बहुत-से भाले, विस्तृत पाश, बहुसंख्यक लटकते हुए मुद्गर, डरावने तोमर और फरसे उसकी शोभा बढ़ाते थे। वह शत्रुओंके लिये दूसरे मन्दराचलकी भाँति उदित हुआ था, उस श्रेष्ठ रथमें एक हजार गधे जुते हुए थे॥ ४—१२॥

विरोचनस्तु संक्रुद्धो गदापाणिरवस्थितः।
प्रमुखे तस्य सैन्यस्य दीप्तशृङ्ग इवाचलः॥ १३

युक्तं हयसहस्रेण हयग्रीवस्तु दानवः।
स्यन्दनं वाहयामास सपत्नानीकमर्दनः॥ १४

व्यायतं बहुसाहस्रं धनुर्विस्फारयन् महत्।
वराहः प्रमुखे तस्थौ सावरोह इवाचलः॥ १५

खरस्तु विक्षरन् दर्पान्नेत्राभ्यां रोषजं जलम्।
स्फुरद्दन्तौष्ठवदनः संग्रामं सोऽभ्यकाङ्क्षत॥ १६

त्वष्टा त्वष्टादशहयं यानमास्थाय दानवः।
व्यूहितो दानवैर्व्यूहैः परिचक्राम वीर्यवान्॥ १७

विप्रचित्तिसुतः श्वेतः श्वेतकुण्डलभूषणः।
श्वेतशैलप्रतीकाशो युद्धायाभिमुखः स्थितः॥ १८

अरिष्टो बलिपुत्रस्तु वरिष्ठोऽद्रिशिलायुधैः।
युद्धायातिष्ठदायस्तो धराधर इवापरः॥ १९

किशोरस्त्वतिसंहर्षात् किशोर इव चोदितः।
अभवद् दैत्यसैन्यस्य मध्ये रविरिवोदितः॥ २०

लम्बस्तु लम्बमेघाभः प्रलम्बाम्बरभूषणः।
दैत्यव्यूहगतो भाति सनीहार इवांशुमान्॥ २१

स्वर्भानुर्वक्त्रयोधी तु दशनौष्ठेक्षणायुधः।
हसंस्तिष्ठति दैत्यानां प्रमुखे स महाग्रहः॥ २२

क्रोधमें भरा हुआ विरोचन नामक दैत्य हाथमें गदा लिये उस सेनाके मुहानेपर खड़ा हो गया। वह देखनेमें ऐसा जान पड़ता था, मानो कान्तिमान् शिखरसे युक्त कोई पर्वत खड़ा हो॥ १३॥ दानव हयग्रीव शत्रुओंकी सेनाको कुचल डालनेमें समर्थ था। उसने एक हजार घोड़ोंसे जुते हुए रथको अपना वाहन बनाया॥ १४॥ वराह नामक दानव कई हजार हाथ लम्बा विशाल धनुष टंकारता हुआ दैत्य-सेनाके अग्रभागमें खड़ा हो गया, उस समय वह बरोहों (जटाओं)-से युक्त बरगदके समान प्रतीत होता था॥ १५॥ खर नामक दैत्य अपने नेत्रोंसे रोषजनित आँसू बहाता हुआ बड़े दर्पके साथ आया और युद्धकी इच्छासे डट गया, उस समय उसके दाँत, ओठ और मुख क्रोधसे फड़क रहे थे॥ १६॥ त्वष्टा नामक बलशाली दानव अठारह घोड़ोंसे जुते हुए रथपर सवार होकर आया और व्यूहमें खड़े हुए दानवोंके साथ स्वयं भी व्यूहका एक अङ्ग बनकर सब ओर घूमने लगा॥ १७॥ विप्रचित्तिका पुत्र श्वेत सफेद कुण्डलोंसे विभूषित हो युद्धके लिये सामने आकर डट गया, वह श्वेतपर्वतके समान दिखायी देता था॥ १८॥ बलिका ज्येष्ठ पुत्र अरिष्ट पर्वतीय शिलाखण्डोंको आयुधके रूपमें धारण किये शत्रुओंका सामना करनेके लिये खड़ा हुआ, उसने युद्धकी कलामें विशेष परिश्रम किया था। वह दूसरे पर्वतके समान प्रतीत होता था॥ १९॥ किशोर नामक दैत्य चाबुकसे हाँके गये बछेड़ेके समान बड़े हर्ष और उत्साहके साथ आकर दैत्यसेनाके मध्यभागमें खड़ा हो गया। वह नवोदित सूर्यके समान शोभा पा रहा था॥ २०॥ लम्ब नामक दानव बरसनेके लिये झुके हुए मेघोंकी काली घटाके समान काला दिखायी देता था, उसके वस्त्र और आभूषण बड़े-बड़े थे। दैत्य-सेनाके व्यूहमें खड़ा होकर वह कुहासेसे ढँके हुए सूर्यके समान सुशोभित होता था॥ २१॥ मुखसे युद्ध करनेवाला राहु नामक महान् ग्रह हँसता हुआ आकर दैत्य-सेनाके मुहानेपर डट गया। वह अपने दाँतों, नेत्रों और ओठोंसे भी आयुधका काम लेता था॥ २२॥

अन्ये हयगता भान्ति नागस्कन्धगताः परे।
सिंहव्याघ्रगताश्चान्ये वराहर्क्षगताः परे॥ २३

केचित् खरोष्ट्रयातारः केचित् तोयदवाहनाः।
नानापक्षिगताश्चान्ये केचित् पवनवाहनाः॥ २४

पत्तयश्चापरे दैत्या भीषणा विकृताननाः।
एकपादा द्विपादाश्च नर्दन्तो युद्धकाङ्क्षिणः॥ २५

प्रक्ष्वेडमाना बहवः स्फोटयन्तश्च ते भुजान्।
दृप्तशार्दूलनिर्घोषा नेदुर्दानवपुङ्गवाः॥ २६

ते गदापरिघैरुग्रैर्धनुर्व्यायामशालिनः।
बाहुभिः परिघाकारैस्तर्जयन्ति स्म देवताः॥ २७

प्रासैः पाशैश्च खड्गैश्च तोमरांकुशपट्टिशैः।
चिक्रीडुस्ते शतघ्नीभिः शतधारैश्च मुद्गरैः॥ २८

गण्डशैलैश्च शैलैश्च परिघैश्चोत्तमायुधैः।
चक्रैश्च दैत्यप्रवराश्चक्रुरानन्दितं बलम्॥ २९

एवं तद् दानवं सैन्यं सर्वं युद्धबलोत्कटम्।
देवताभिमुखं तस्थौ मेघानीकमिवोत्थितम्॥ ३०

तदद्भुतं दैत्यसहस्रगाढं
वाय्वग्नितोयाम्बुदशैलकल्पम्।
बलं रणौघाभ्युदयावकीर्णं
युयुत्सयोन्मत्तमिवावभासे॥ ३१

कुछ दानव घोड़ोंपर सवार दिखायी देते थे और कुछ गजराजोंकी पीठपर। दूसरे बहुत-से दैत्य सिंह, व्याघ्र, सूअर और रीछोंपर चढ़े हुए थे॥ २३॥

कोई गधों और ऊँटोंपर चढ़कर जा रहे थे, तो कोई बादलोंको ही अपना वाहन बनाये हुए थे। दूसरे दैत्य नाना प्रकारके पक्षियोंपर बैठे थे और कितने ही दानव वायुके सहारे ही उड़ रहे थे॥ २४॥ दूसरे विकराल मुखवाले भीषण दैत्य पैदल ही चल रहे थे। किन्हींके एक पैर थे तो किन्हींके दो पैर, वे सभी युद्धकी अभिलाषासे गरज रहे थे॥ २५॥ बहुत-से दानवराज उछलते-कूदते और ताल ठोंकते हुए बलोन्मत्त सिंहोंके समान दहाड़ रहे थे॥ २६॥ धनुष खींचनेके परिश्रमसे सुशोभित होनेवाले वे दैत्य अपनी गदाओं, भयंकर परिघों तथा परिघ-जैसी मोटी एवं बलिष्ठ भुजाओंद्वारा देवताओंको डाँट बता रहे थे॥ २७॥ वे भालों, पाशों, खड्गों, तोमरों, अंकुशों, पट्टिशों, शतघ्नियों और सौ धारवाले मुद्गरोंसे खेल रहे थे॥ २८॥ वे श्रेष्ठ दैत्यवीर पहाड़ोंसे टूटकर गिरी हुई बड़ी-बड़ी चट्टानों, शैल-शिखरों, परिघों, चक्रों तथा अन्य उत्तमोत्तम आयुधोंसे अपनी सेनाको आनन्दित कर रहे थे॥ २९॥ इस प्रकार युद्धके लिये बलाभिमानसे उन्मत्त हुई वह दानवोंकी सम्पूर्ण सेना मेघोंकी घिरी हुई घटाके समान देवताओंके सम्मुख डटकर खड़ी थी॥ ३०॥ वह अद्भुत दैत्य-सेना सहस्रों दैत्यवीरोंसे ठसाठस भरी थी। वायु, अग्नि, जल, मेघ एवं पर्वतमालाओंके समान दिखायी देती थी। युद्धके प्रवाहको बढ़ानेके लिये सब ओर फैली हुई थी और लड़नेकी इच्छासे उन्मत्त हुई-सी प्रतीत होती थी॥ ३१॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें तैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४३॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

आश्चर्यतारकामय संग्राममें देव-सेनाकी युद्धके लिये तैयारी

वैशम्पायन उवाच

श्रुतस्ते दैत्यसैन्यस्य विस्तरस्तात विग्रहे।
सुराणां सर्वसैन्यस्य विस्तरं वैष्णवं शृणु॥ १

आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च महाबलौ।
सबलाः सानुगाश्चैव संनह्यन्त यथाबलम्॥ २

पुरुहूतस्तु पुरतो लोकपालः सहस्रदृक्।
ग्रामणीः सर्वदेवानामारुरोह सुरद्विपम्॥ ३

सव्ये चास्य रथः पार्श्वे पक्षिप्रवरवेगवान्।
सुचारुचक्रचरणो हेमवज्रपरिष्कृतः॥ ४

देवगन्धर्वयक्षौघैरनुयातः सहस्रशः।
दीप्तिमद्भिः सदस्यैश्च ब्रह्मर्षिभिरभिष्टुतः॥ ५

वज्रविस्फूर्जितोद्धूतैर्विद्युदिन्द्रायुधान्वितैः।
गुप्तो बलाहकगणैः कामगैरिव पर्वतैः॥ ६

समारूढः स भगवान् पर्येति मघवा गजम्।
हविर्धानेषु गायन्ति विप्राः सोममखे स्थिताः॥ ७

स्वर्गे शक्रानुयानेषु देवतूर्यनिनादिषु।
इन्द्रं समुपनृत्यन्ति शतशो ह्यप्सरोगणाः॥ ८

केतुना वंशजातेन राजमानो यथा रविः।
युक्तो हरिसहस्रेण मनोमारुतरंहसा॥ ९

स स्यन्दनवरो भाति युक्तो मातलिना तदा।
कृत्स्नः परिवृतो मेरुर्भास्करस्येव तेजसा॥ १०

यमस्तु दण्डमुद्यम्य कालयुक्तं च मुद्गरम्।
तस्थौ सुरगणानीके दैत्यान् नादेन भीषयन्॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—तात! उस युद्धके समय दैत्य-सेनाका जो विस्तार था, वह तुमने सुन लिया। अब देवताओंकी सम्पूर्ण सेनाका विस्तार, जो भगवान् विष्णुके आश्रित है, सुनो॥ १॥ आदित्य, वसु, रुद्र और महाबली अश्विनीकुमार—ये अपने दल-बल और अनुयायियोंको साथ ले यथाशक्ति युद्ध करनेके लिये कवच आदिसे सुसज्जित हो गये॥ २॥ सबसे पहले समस्त देवताओंके नेता सहस्र नेत्रधारी इन्द्र देवताओंके हाथी ऐरावतपर आरूढ़ हुए॥ ३॥ उनकी बायीं ओर बहुत ही सुन्दर चक्ररूपी चरणोंसे गरुड़के समान वेगपूर्वक चलनेवाला सुवर्ण और हीरोंसे जड़ा हुआ उनका रथ चल रहा था॥ ४॥ उनके पीछे देवता, गन्धर्व और यक्षोंकी मण्डलियाँ चल रही थीं तथा यज्ञमें सहायता करनेवाले सहस्रों दीप्तिमान् ब्रह्मर्षि स्तुति करते हुए चल रहे थे॥ ५॥ वज्र (गाज)-की गड़गड़ाहटसे फटते हुए तथा बिजली एवं इन्द्रधनुषसे युक्त मेघसमूह देवराजके साथ चल रहे थे। वे ऐसे लगते थे मानो इच्छानुसार चलनेवाले पर्वत हों। इन्द्रका वह रथ उन मेघोंद्वारा सुरक्षित था॥ ६॥ सोमयागमें भाग लेनेवाले ब्राह्मण हविष्य रखनेके स्थानोंमें हविष्य रखते समय जिनकी स्तुति करते हैं, स्वर्गमें जिनकी सवारियोंके अवसरपर देवताओंकी तुरहियाँ बजती हैं और जिनके साथ अप्सराओंकी सैकड़ों मण्डलियाँ नाचती हुई चलती हैं, वे ही भगवान् इन्द्र हाथीपर सवार होकर चल रहे थे॥ ७-८॥ बाँसकी ध्वजासे सुशोभित तथा मन और वायुके समान वेगवाले हजार घोड़ोंसे खींचा जानेवाला इन्द्रका रथ सूर्यकी तरह दमक रहा था॥ ९॥ (इन्द्रके सारथि) मातलिसे युक्त वह रथ सूर्यके तेजसे घिरा हुआ सम्पूर्ण मेरुपर्वत-सा दीखता था॥ १०॥ यमराज मृत्यु-देवताके द्वारा अधिष्ठित दण्ड तथा मुद्गरको धारण कर अपने सिंहनादसे दैत्योंको भयभीत करते हुए देवताओंकी सेनाके मुहानेपर डट गये॥ ११॥

चतुर्भिः सागरैर्गुप्तो लेलिहानैश्च पन्नगैः।
शङ्खमुक्ताङ्गदधरो बिभ्रत्तोयमयं वपुः॥ १२

कालपाशं समाविध्य हयैः शशिकरोपमैः।
वाय्वीरितजलोद्गारैः कुर्वँल्लीलाः सहस्रशः॥ १३

पाण्डुरोद्धूतवसनः प्रवालरुचिराधरः।
मणिश्यामोत्तमवपुर्हारभारार्पितोदरः ॥ १४

वरुणः पाशभृन्मध्ये देवानीकस्य तस्थिवान्।
युद्धवेलामभिलषन् भिन्नवेल इवार्णवः॥ १५

यक्षराक्षससैन्येन गुह्यकानां गणैरपि।
मणिश्यामोत्तमवपुः कुबेरो नरवाहनः॥ १६

युक्तश्च शङ्खपद्माभ्यां निधीनामधिपः प्रभुः।
राजराजेश्वरः श्रीमान् गदापाणिरदृश्यत॥ १७

विमानयोधी धनदो विमाने पुष्पके स्थितः।
स राजराजः शुशुभे युद्धार्थी नरवाहनः।
प्रेक्ष्यमाणः शिवसखः साक्षादिव शिवः स्वयम्॥ १८

पूर्वं पक्षं सहस्राक्षः पितृराजस्तु दक्षिणम्।
वरुणः पश्चिमं पक्षमुत्तरं नरवाहनः॥ १९

चतुर्षु युक्ताश्चत्वारो लोकपाला बलोत्कटाः।
स्वासु दिक्ष्वभ्यरक्षन् वै तस्य देवबलस्य ह॥ २०

सूर्यः सप्ताश्वयुक्तेन रथेनाम्बरगामिना।
श्रिया जाज्वल्यमानेन दीप्यमानैश्च रश्मिभिः॥ २१

उदयास्तमयं चक्रे मेरुपर्यन्तगामिना।
त्रिदिवद्वारचक्रेण तपता लोकमव्ययम्॥ २२

युद्धका अवसर चाहते हुए पाशधारी वरुण किनारेको तोड़कर आगे बढ़नेवाले समुद्रकी भाँति देवताओंकी सेनाके बीचमें आकर डट गये। वे चारों समुद्रों और जीभ लपलपाते हुए सर्पोंसे सुरक्षित थे। उन्होंने शङ्ख और मोतियोंके बाजूबन्द धारण कर रखे थे। उनका शरीर जलमय था। वे कालपाशको घुमाते हुए चन्द्रमाकी किरणोंके समान श्वेत रंगके घोड़ोंसे और वायुके द्वारा उछाले जानेवाले जलके उद्गारोंसे सहस्रों प्रकारकी क्रीडाएँ कर रहे थे। उनका श्वेत वस्त्र फहरा रहा था। उनके सुन्दर ओठ मूँगे एवं नूतन पल्लवोंके समान लाल-लाल थे। मणिमय आभूषणोंसे विभूषित हुए उनके श्याम अङ्गोंकी बड़ी उत्तम शोभा हो रही थी तथा हारोंका भार उनके उदरपर पड़ रहा था॥ १२—१५॥ नवों निधियोंके स्वामी, महान् शक्तिशाली, राजराजेश्वर श्रीमान् कुबेर, जिनका उत्तम शरीर नीलमणिके समान श्याम कान्तिसे सुशोभित था और जो मनुष्योंके द्वारा ढोयी जानेवाली पालकीमें सवार होते हैं, मूर्तिमान् शङ्ख और पद्म नामकी निधियोंको साथ लेकर हाथमें गदा धारण किये दिखायी दिये। उनके साथ यक्ष और राक्षसोंकी सेना तथा गुह्यकोंके गण विद्यमान थे॥ १६-१७॥ विमानमें बैठकर युद्ध करनेवाले, शिवजीके मित्र, राजाधिराज नरवाहन कुबेर युद्धके लिये पुष्पक विमानमें स्थित हो बड़ी शोभा पा रहे थे। उस समय वे साक्षात् भगवान् शिवके समान दृष्टिगोचर होते थे॥ १८॥ उस देवसेनाके पूर्व-पक्षकी देखभाल सहस्रलोचन देवराज इन्द्र कर रहे थे। दक्षिण-पक्षकी देखभालका भार पितृराज यमने सम्हाला। पश्चिम-पक्षकी देख-रेख वरुणदेवने की और उत्तर-पक्षका निरीक्षण नरवाहन कुबेरने किया। इस प्रकार चारों दिशाओंमें सावधानीके साथ खड़े हुए चारों उत्कट बलशाली लोकपाल अपनी-अपनी दिशाकी ओरसे उस सेनाकी रक्षा कर रहे थे॥ १९-२०॥ सूर्यदेव सात घोड़ोंसे युक्त आकाशगामी रथके द्वारा युद्धभूमिमें आये थे। उनका वह रथ उत्तम शोभा तथा दीप्तिमान् किरणोंसे जगमगा रहा था। वह मेरु पर्वतके चारों ओर चक्कर लगानेवाला, स्वर्गके द्वारपर चक्रकी भाँति घूमनेवाला और जो प्रवाहरूपसे अक्षय बने रहते हैं, उन समस्त लोकोंको प्रकाशित करनेवाला था। उसीके द्वारा सूर्यदेव संसारमें उदय और अस्तकी झाँकी कराते हैं॥ २१-२२॥

सहस्ररश्मियुक्तेन भ्राजमानः स्वतेजसा।
चचार मध्ये देवानां द्वादशात्मा दिनेश्वरः॥ २३

सोमः श्वेतहयैर्भाति स्यन्दने शीतरश्मिवान्।
हिमतोयप्रपूर्णाभिर्भाभिराह्लादयञ्जगत् ॥ २४

तमृक्षयोगानुगतं शिशिरांशुं द्विजेश्वरम्।
जगच्छायाङ्कितततनुं नैशस्य तमसः क्षयम्॥ २५

ज्योतिषामीश्वरं व्योम्नि रसानां रसनं प्रभुम्।
ओषधीनां परित्राणं निधानममृतस्य च॥ २६

जगतः प्रथमं भागं सौम्यं शीतमयं रसम्।
ददृशुर्दानवाः सोमं हिमप्रहरणस्थितम्॥ २७

यः प्राणः सर्वभूतानां पञ्चधा भिद्यते नृषु।
सप्तस्कन्धगतो लोकांस्त्रीन् दधार चराचरान्॥ २८

यमाहुरग्नेर्यन्तारं सर्वप्रभवमीश्वरम्।
सप्तस्वरगता यस्य योनिर्गीतिरुदीर्यते॥ २९

यं वदन्त्युत्तमं भूतं यं वदन्त्यशरीरिणम्।
यमाहुराकाशगमं शीघ्रगं शब्दयोनिजम्॥ ३०

स वायुः सर्वभूतायुरुद्धूतः स्वेन तेजसा।
ववौ प्रव्यथयन् दैत्यान् प्रतिलोमः सतोयदः॥ ३१

मरुतो देवगन्धर्वा विद्याधरगणैः सह।
चिक्रीडुरसिभिः शुभ्रैर्निर्मुक्तैरिव पन्नगैः॥ ३२

सृजन्तः सर्पपतयस्तीव्रं रोषमयं विषम्।
शरभूताः सुरेन्द्राणां चेरुर्व्यात्तमुखा दिवि॥ ३३

पर्वतास्तु शिलाशृङ्गैः शतशाखैश्च पादपैः।
उपतस्थुः सुरगणान् प्रहर्तुं दानवं बलम्॥ ३४

सहस्रों किरणोंसे सम्पन्न अपने ही तेजसे प्रकाशित होनेवाले, द्वादश रूपधारी भगवान् दिनेश (सूर्य) पूर्वोक्त रथके द्वारा आकर देव-सेनाके बीचमें विचरने लगे॥ २३॥ शीतल किरणोंवाले चन्द्रमा श्वेत घोड़ोंसे युक्त रथमें बैठे हुए बड़ी शोभा पा रहे थे। वे हिम और जलसे भरी हुई अपनी प्रभाओंद्वारा सम्पूर्ण जगत्को आह्लाद प्रदान करते थे॥ २४॥ नक्षत्र और योग जिनका अनुसरण करते हैं, जो शीतल किरणोंसे सुशोभित हैं, ब्राह्मणोंके राजा हैं, जिनका शरीर नीले धब्बेके रूपमें पृथ्वीकी छायासे अङ्कित रहता है, जो रात्रिके अन्धकारका नाश करनेवाले हैं, आकाशमें स्थित ज्योतिर्मयी तारिकाओंके अधीश्वर हैं, रसोंके आश्रय एवं प्रभु हैं, ओषधियोंके रक्षक तथा अमृतकी निधि हैं, (अग्नीषोमात्मक) जगत्के प्रथम (मुख्य) भाग हैं और सौम्य तथा शीतल रस हैं, उन्हीं चन्द्रमाको दैत्योंने हिमका आयुध ग्रहण करके खड़ा हुआ देखा॥ २५—२७॥ जो समस्त भूतोंके प्राण हैं, मनुष्य आदि जीवोंके भीतर प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान—इन पाँचों रूपोंमें विभक्त होकर निवास करते हैं, आवह, प्रवह आदि सात स्कन्धोंमें स्थित हो त्रिलोकीके चराचर जीवोंको धारण करते हैं, जिन्हें अग्निका सारथि कहा जाता है, जो सबके उत्पत्तिस्थान और ईश्वर हैं, जिनके कारणभूत आकाशकी शब्दतन्मात्रा निषाद, ऋषभ आदि स्वरोंमें उतर आनेपर गीति कहलाती है, जिन्हें पाँच महाभूतोंमें उत्तम तथा शरीररहित बताते हैं, जिनको आकाशचारी और शीघ्रगामी भी कहते हैं तथा शब्दयोनि (आकाश)-से जिनकी उत्पत्ति बतायी गयी है, वे समस्त प्राणियोंके जीवनरूप वायुदेव अपने तेजसे दैत्योंको व्यथित करते हुए वहाँ मेघोंके साथ प्रतिकूल एवं प्रचण्ड गतिसे प्रवाहित होने लगे॥ २८—३१॥ उनचास मरुत, देवता और गन्धर्व, विद्याधरगणोंके साथ आकर केंचुलसे निकले हुए सर्पोंके समान, म्यानसे बाहर निकाली हुई चमचमाती तलवारोंसे खेलने लगे॥ ३२॥ देवेश्वरोंके बाण बने हुए बहुसंख्यक नागराज अपने मुखको फैलाकर तीव्र रोषमय विष उगलते हुए आकाशमें घूमने लगे॥ ३३॥ पर्वतोंके अधिष्ठाता देवता भी बहुत-सी चट्टानों, शिखरों तथा सौ-सौ डालियोंवाले वृक्षोंद्वारा दानवदलपर प्रहार करनेके लिये देवगणोंकी सेवामें उपस्थित थे॥ ३४॥

य: स देवो हृषीकेश: पद्मनाभस्त्रिविक्रम:।
कृष्णवर्त्मा युगान्ताभो विश्वस्य जगत: प्रभु:॥ ३५

समुद्रयोनिर्मधुहा हव्यभुक्क्रतुसत्कृत:।
भूरापोव्योमभूतात्मा सम: शान्तिकरोऽरिहा॥ ३६

जगद्योनिर्जगद्बीजो जगद्गुरुरुदारधी:।
सोऽर्कमग्निमिवोद्यन्तमुद्यम्योत्तमतेजसम्॥ ३७

अरिघ्नममरानीके चक्रं चक्रगदाधर:।
सपरीवेषमुद्यन्तं सवितुर्मण्डलं यथा॥ ३८

सव्येनालम्ब्य महतीं सर्वासुरविनाशिनीम्।
करेण कालीं वपुषा शत्रुकालप्रदां गदाम्॥ ३९

शेषैर्भुजै: प्रदीप्तानि भुजगारिध्वज: प्रभु:।
दधारायुधजालानि शार्ङ्गादीनि महायशा:॥ ४०

स कश्यपस्यात्मभवं द्विजं भुजगभोजनम्।
पवनाधिकसम्पातं गगनक्षोभणं खगम्।
भुजगेन्द्रेण वदने निविष्टेन विराजितम्॥ ४१

अमृतारम्भनिर्मुक्तं मन्दराद्रिमिवोच्छ्रितम्।
देवासुरविमर्देषु शतशो दृष्टविक्रमम्॥ ४२

जो हृषीकेशके नामसे प्रसिद्ध हैं, सबके आराध्यदेव हैं, सृष्टिके आरम्भमें जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ था, जो अपने तीन डगोंसे सम्पूर्ण त्रिलोकीको नाप चुके हैं, प्रलयकालमें प्रकाशित होनेवाले अग्निदेवके समान जिनका सहज तेज है, जो सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी हैं, नारायणरूपसे समुद्रमें शयन करते हैं, इसलिये समुद्र जिनकी शयनस्थली है, जिन्होंने मधु नामक दैत्यका नाश किया है, जो हविष्यके भोक्ता और यज्ञोंमें पूजित एवं सम्मानित होनेवाले हैं, पृथ्वी, जल, आकाश तथा अन्यान्य भूत जिन विराट्-रूपधारी प्रभुके अङ्ग हैं, जो सर्वत्र समभावसे रहते और समता रखते हैं, जो शान्तिका विस्तार करनेवाले और शत्रुनाशक हैं, जगत्‌की योनि (उत्पत्तिस्थान), जगत्‌के बीज (आदि कारण) तथा जगत्‌के गुरु हैं, जिनकी बुद्धिमें सदा उदारता भरी रहती है, वे चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् विष्णु अग्नि तथा उगते हुए सूर्यके समान उत्तम तेजसे सम्पन्न शत्रुनाशक चक्र उठाये हुए देव-सेनाके मध्यभागमें विराजमान थे। उन्हें देखकर ऐसा लगता था, मानो वे परिधिसहित उगते हुए सूर्यमण्डलको ही पकड़कर ले आये हों॥ ३५—३८॥ सर्पोंके शत्रु गरुड़ जिनके ध्वज हैं, उन महायशस्वी भगवान् श्रीहरिने अपने बायें हाथमें समस्त असुरोंका विनाश करनेवाली तथा शत्रुओंको कालके गालमें भेजनेवाली काले रंगकी विशाल गदा ले रखी थी और शेष भुजाओंमें वे अत्यन्त दीप्तिमान् शार्ङ्ग आदि आयुध धारण किये हुए थे॥ ३९-४०॥ सबके पाप और दु:खका अपहरण करनेवाले श्रीमान् भगवान् नारायण सर्पोंका भक्षण करनेवाले, कश्यपकुमार एवं अरुणके छोटे भाई पक्षिश्रेष्ठ गरुड़पर सवार होकर वहाँ आये थे। गरुड़जीके पंख बड़े सुन्दर थे तथा वे अपने सुन्दर शरीरसे सुवर्णके समान मनोरम कान्ति फैला रहे थे। आकाशमें विचरनेवाले पक्षिप्रवर गरुड़ वायुकी अपेक्षा भी अधिक वेगसे उड़ते थे, उनके वेगपूर्वक चलते समय आकाशमें खलबली मच जाती थी। वे अपने मुखमें एक नागराजको दबाये हुए थे, इससे उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। अमृत निकालनेके लिये प्रारम्भमें ही क्षीरसागरमें छोड़े गये मन्दराचलके समान वे ऊँचे दिखायी देते थे। देवासुर-संग्रामके अवसरोंपर सैकड़ों बार उनका पराक्रम देखा जा चुका था॥ ४१-४२॥

महेन्द्रेणामृतस्यार्थे वज्रेण कृतलक्षणम्।
शिखिनं चूडिनं चैव तप्तकुण्डलभूषणम्।
विचित्रपक्षवसनं धातुमन्तमिवाचलम्॥ ४३

स्फीतक्रोडावलम्बेन शीतांशुसमतेजसा।
भोगिभोगावसक्तेन मणिरत्नेन भास्वता॥ ४४

पक्षाभ्यां चारुचित्राभ्यामावृत्य दिवि लीलया।
युगान्ते सेन्द्रचापाभ्यां तोयदाभ्यामिवाम्बरम्॥ ४५

नीललोहितपीताभिः पताकाभिरलङ्कृतम्।
केतुवेषप्रतिच्छन्नं महाकायनिकेतनम्॥ ४६

अरुणावरजं श्रीमानारुह्य समरे हरिः।
सुवर्णं स्वेन वपुषा सुपर्णं खेचरोत्तमम्॥ ४७

तमन्वयुर्देवगणा मुनयश्च तपोधनाः।
गीर्भिः परममन्त्राभिस्तुष्टुवुश्च गदाधरम्॥ ४८

तद् वैश्रवणसंश्लिष्टं वैवस्वतपुरस्सरम्।
वारिराजपरिक्षिप्तं देवराजविराजितम्॥ ४९

चन्द्रप्रभाभिर्विमलं युद्धाय समुपस्थितम्।
पवनाबद्धनिर्घोषं सम्प्रदीप्तहुताशनम्॥ ५०

विष्णोर्जिष्णोः सहिष्णोश्च भ्राजिष्णोस्तेजसा वृतम्।
बलं बलवदुद्धूतं युद्धाय समवर्तत॥ ५१

स्वस्त्यस्तु देवेभ्य इति स्तुत्वा तत्राङ्गिराऽब्रवीत्।
स्वस्त्यस्तु दैत्येभ्य इति उशना वाक्यमाददे॥ ५२

जब वे स्वर्गमें अमृत लेने गये थे, उस समय इन्द्रने उस अमृतकी रक्षाके लिये उनपर वज्रसे प्रहार किया था, जिसकी चोटका चिह्न उस समय भी दीख रहा था, उनके सिरपर मोरकी-सी कलँगी और चोटी थी तथा वे तपे हुए सुवर्णके कुण्डलोंसे विभूषित थे। रंग-बिरंगे पंख ही उन्होंने वस्त्ररूपमें धारण कर रखे थे, जिनके कारण वे विविध धातुओंसे मण्डित पर्वतके समान प्रतीत होते थे। उनका वक्षःस्थल चौड़ा था, उसपर (मुखमें आधे निगले हुए) सर्पके मस्तकमें चिपकी हुई श्रेष्ठमणि लटकती थी, जो अपने तेजसे शीतल किरणवाले चन्द्रमाकी भाँति उद्भासित हो रही थी। वे अपने मनोहर एवं विचित्र पंखोंसे लीलापूर्वक आकाशको घेरकर इस तरह खड़े थे, मानो प्रलयकालमें इन्द्रधनुषसे युक्त हुए दो मेघखण्डोंसे आकाश घिर गया हो। श्रीहरिकी ध्वजामें चिह्नके रूपमें छिपे हुए पक्षिराज गरुड़ नीली, पीली और लाल रंगकी पताकाओंसे अलंकृत थे। उनका आधारभूत ध्वजदण्ड बहुत विशाल था॥ ४३—४७॥ उस समय समस्त देवता और तपोधन मुनि भगवान् गदाधरके पीछे-पीछे चलने और श्रेष्ठ मन्त्रमयी स्तुतियोंद्वारा उनका स्तवन करने लगे॥ ४८॥ देवताओंकी वह सेना कुबेरके द्वारा सुसङ्गठित की गयी थी। यमराज उसके आगे-आगे चलनेवाले सेनानायक थे। जलके स्वामी वरुणने समुद्ररूपसे उसको सब ओरसे घेर रखा था तथा देवराज इन्द्र स्वयं उपस्थित होकर उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। चन्द्रमाकी प्रभाओंसे वह सारा सैन्यसमूह उज्ज्वल एवं निर्मल दिखायी देता था। वायुके वेगपूर्वक चलनेसे उसमें बड़ा गम्भीर शब्द होता था और उस सेनामें खड़े हुए अग्निदेव बड़े वेगसे प्रज्वलित हो रहे थे। ऐसी देवसेना वहाँ दैत्योंके साथ युद्ध करनेके लिये उपस्थित हुई॥ ४९-५०॥ जो नित्य विजयशील, सब कुछ सहन करनेमें समर्थ और नित्य प्रकाशमान हैं, उन भगवान् विष्णुके तेजसे व्याप्त हुई देवताओंकी वह बलवती सेना उत्साहसम्पन्न हो युद्धके लिये तैयार हो गयी॥ ५१॥ उस समय अङ्गिराके पुत्र देवगुरु बृहस्पतिने स्तुति करके कहा—'देवताओंका कल्याण हो।' फिर दैत्योंके गुरु शुक्राचार्य भी बोल उठे—'दैत्योंका मङ्गल हो'॥ ५२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि आश्चर्यतारकामये चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें आश्चर्यतारकामय संग्रामविषयक चौवालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४४॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

देवासुर-संग्राम एवं और्व अग्निकी उत्पत्ति

वैशम्पायन उवाच

ताभ्यां बलाभ्यां संजज्ञे तुमुलो विग्रहस्तदा।
सुराणामसुराणां च परस्परजयैषिणाम्॥ १

दानवा दैवतैः सार्द्धं नानाप्रहरणोद्यताः।
समीयुर्युध्यमाना वै पर्वताः पर्वतैरिव॥ २

तत् सुरासुरसंयुक्तं युद्धमत्यद्भुतं बभौ।
धर्माधर्मसमायुक्तं दर्पेण विनयेन च॥ ३

ततो रथैः प्रजविभिर्वाहनैश्च प्रचोदितैः।
उत्पतद्भिश्च गगनं सासिहस्तैः समन्ततः॥ ४

विक्षिप्यमाणैर्मुसलैः सम्प्रेष्यद्भिश्च सायकैः।
चापैर्विस्फार्यमाणैश्च पात्यमानैश्च मुद्गरैः॥ ५

तद् युद्धमभवद् घोरं देवदानवसंकुलम्।
जगतस्त्रासजननं युगसंवर्तकोपमम्॥ ६

स्वहस्तमुक्तैः परिघैः क्षिप्यमाणैश्च पर्वतैः।
दानवाः समरे जघ्नुर्देवानिन्द्रपुरोगमान्॥ ७

ते वध्यमाना बलिभिर्दानवैर्जितकाशिभिः।
विषण्णमनसो देवा जग्मुरार्तिं परां मृधे॥ ८

तेऽस्त्रजालैः प्रमथिताः परिघैर्भिन्नमस्तकाः।
भिन्नोरस्का दितिसुतैर्वेमू रक्तं व्रणैर्बहु॥ ९

स्पन्दिताः पाशजालैश्च निर्यत्नाश्च शरैः कृताः।
प्रविष्टा दानवीं मायां न शेकुस्ते विचेष्टितुम्॥ १०

संस्तम्भितमिवाभाति निष्प्राणसदृशाकृति।
बलं सुराणामसुरैर्निष्प्रयत्नायुधं कृतम्॥ ११

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! एक-दूसरेपर विजय पानेकी इच्छावाले देवताओं और असुरोंकी उन सेनाओंमें उस समय घोर युद्ध आरम्भ हो गया॥ १॥ दानव-सैनिक नाना प्रकारके हथियार उठाये देवताओंके साथ युद्ध करते हुए उनसे भिड़ गये, मानो एक श्रेणीके पर्वत दूसरी श्रेणीके पर्वतोंसे टकरा रहे हैं॥ २॥ देवताओं और असुरोंका वह तुमुल युद्ध अत्यन्त अद्भुत प्रतीत होता था, मानो धर्म और अधर्म परस्पर जूझ रहे हों, दर्प और विनय एक-दूसरेसे लड़ रहे हों॥ ३॥ तदनन्तर रथोंके वेगपूर्वक दौड़ने, घोड़ोंके एड़ लगाकर भगाये जाने, चारों ओर तलवार हाथमें लिये योद्धाओंके आकाशमें उछलने, मुसलोंके फेंके जाने, बाणोंके चलाने, धनुषोंके खींचे जाने और मुद्गरोंके गिराये जानेसे देवताओं और दानवोंसे भरा हुआ वह घोर युद्ध प्रलयकालकी अग्निके समान सम्पूर्ण जगत्को त्रास देने लगा॥ ४—६॥ उस समराङ्गणमें समस्त दानव अपने हाथोंसे छोड़े गये परिघों और फेंके जाते हुए पर्वतशिखरोंकी चोटसे इन्द्र आदि देवताओंको घायल करने लगे॥ ७॥ युद्धस्थलमें अपनी विजयसे उल्लसित एवं सुशोभित होनेवाले महाबली दानवोंकी मार खाकर समस्त देवता मन-ही-मन खिन्न हो उठे, उन्हें बड़ी पीड़ा हुई॥ ८॥ दैत्योंने अपने अस्त्रसमूहोंसे देवताओंको मथ डाला, परिघोंकी मारसे उनके मस्तक फोड़ डाले और वक्षःस्थल विदीर्ण कर दिये। उस समय देवता अपने घावोंसे बहुत रक्त बहा रहे थे॥ ९॥ दैत्योंने फन्दोंके जाल बिछाकर देवताओंको निरुपाय कर दिया और बाणोंके प्रहारसे उन्हें इतना घायल कर दिया कि वे अपने अङ्गोंसे रक्तकी धारा बहाने लगे। दानवोंकी मायाके वशीभूत होकर वे हिलने-डुलनेकी भी शक्ति खो बैठे॥ १०॥ असुरोंने देवताओंकी सेनाके सारे प्रयत्न और आयुध निष्फल कर दिये। उस समय वह सेना मन्त्रशक्तिसे स्तम्भित की हुई-सी प्रतीत होती थी, प्राणशून्य मुर्दे-जैसे दिखायी देती थी॥ ११॥

मायापाशान् विकर्षंश्च भिन्दन् वज्रेण ताञ्शरान्।
शक्रो दैत्यबलं घोरं विवेश बहुलोचनः॥ १२

स दैत्यान् प्रमुखे हत्वा तद् दानवबलं महत्।
तामसेनास्त्रजालेन तमोभूतमथाकरोत्॥ १३

तेऽन्योन्यं नावबुध्यन्त देवान् वा दानवानपि।
घोरेण तमसाऽऽविष्टाः पुरुहूतस्य तेजसा॥ १४

मायापाशैर्विमुक्ताश्च यत्नवन्तः सुरोत्तमाः।
वपूंषि दैत्यसंघानां तमोभूतान्यपातयन्॥ १५

अपध्वस्ता विसंज्ञाश्च तमसा नीलवर्चसः।
पेतुस्ते दानवगणाश्छिन्नपक्षा इवाचलाः॥ १६

दैत्यानां तद्घनीभूतमन्धकारमहार्णवम्।
प्रविष्टं बलमुत्रस्तं तमोभूतमिवाबभौ॥ १७

तदासृजन्महामायां मयस्तां तामसीं दहन्।
युगान्ताग्निमिवात्युग्रां सृष्टामौर्वेण वह्निना॥ १८

सा ददाह तमः सर्वं माया मयविकल्पिता।
दैत्याश्च दीप्तवपुषः सद्य उत्तस्थुराहवे॥ १९

मायामौर्वीं समासाद्य दह्यमाना दिवौकसः।
भेजिरे चन्द्रविषयं शीतांशुसलिले शयात्॥ २०

ते दह्यमाना ह्यौर्वेण तेजसा भ्रष्टतेजसः।
शशंसुर्वज्रिणे देवाः संतप्ताः शरणैषिणः॥ २१

संतप्ते मायया सैन्ये दह्यमाने च दानवैः।
चोदितो देवराजेन वरुणो वाक्यमब्रवीत्॥ २२

वरुण उवाच

पुरा ब्रह्मर्षिजः शक्र तपस्तेपेऽतिदारुणम्।
ऊर्वो मुनिः स तेजस्वी सदृशो ब्रह्मणो गुणैः॥ २३

तब बहुसंख्यक नेत्रोंसे सुशोभित होनेवाले देवराज इन्द्रने अपने वज्रसे दैत्योंके माया-पाशोंको हटाते और उनके चलाये हुए बाणोंको काटते हुए उनकी घोर सेनामें प्रवेश किया॥ १२॥ उन्होंने सामने खड़े हुए दैत्योंको मारकर दानवोंकी उस विशाल वाहिनीपर तामसास्त्रका जाल-सा बिछा दिया और उसे अन्धकारसे अभिभूत कर डाला॥ १३॥ इन्द्रके प्रभावसे घोर अन्धकारमें डूबे हुए दैत्य न तो आपसमें ही किसीको जान पाते थे और न देवताओं अथवा दानवोंको ही पहचान पाते थे॥ १४॥ दैत्योंके मायापाशसे मुक्त हुए श्रेष्ठ देवताओंने प्रयत्नशील होकर उन दैत्यसमूहोंके अन्धकारसे आच्छन्न हुए शरीरोंको धरतीपर गिराना आरम्भ किया॥ १५॥ अन्धकारसे नीली कान्ति धारण करनेवाले वे दानव देवताओंकी मार खाकर मूर्च्छित हो पंख कटे हुए पर्वतोंके समान धराशायी होने लगे॥ १६॥ अन्धकारके महासागरमें डूबी हुई दैत्योंकी वह घनीभूत सेना अत्यन्त भयभीत हो गयी और स्वयं तमोमयी-सी प्रतीत होने लगी॥ १७॥ तब मय नामक दानवने इन्द्रके द्वारा फैलायी हुई उस तामसी मायाको नष्ट करते हुए एक महामायाकी सृष्टि की, जो और्व नामक अग्नि (बड़वानल)-के द्वारा रची गयी थी और प्रलयकालकी अग्निके समान अत्यन्त भयंकर थी॥ १८॥ मयके द्वारा फैलायी हुई उस मायाने सारे अन्धकारको जलाकर भस्म कर दिया; फिर तो दैत्योंके शरीर दमक उठे और वे तत्काल युद्धके लिये खड़े हो गये॥ १९॥ अब तो देवतालोग और्वी मायाके सम्पर्कमें आकर दग्ध होने लगे और ठंढे जलमें शयन करनेके लिये चन्द्रमाके समीप गये॥ २०॥ वे सब देवता और्वके तेजसे झुलसकर अपना तेज खो बैठे। उन्होंने अत्यन्त संतप्त होकर शरण पानेकी इच्छासे इन्द्रके पास जाकर पुकार की॥ २१॥ जब मयासुरकी मायासे सारी सेना संतप्त हो उठी और दानव भी उसे जलाने लगे, तब देवराजके द्वारा उसकी शान्तिके लिये प्रेरित होनेपर वरुणने इस प्रकार कहा॥ २२॥

वरुण बोले—देवेन्द्र! पूर्वकालमें ऊर्व नामसे प्रसिद्ध एक तेजस्वी मुनि थे, जो ब्रह्मर्षि भृगुके पुत्र थे। वे गुणोंमें ब्रह्माजीके समान थे। उन्होंने अत्यन्त दारुण तप करना आरम्भ किया॥ २३॥

तं तपन्तमिवादित्यं तपसा जगदव्ययम्।
उपतस्थुर्मुनिगणा देवा ब्रह्मर्षिभिः सह॥ २४

हिरण्यकशिपुश्चैव दानवो दानवेश्वरः।
ऋषिं विज्ञापयामास पुरा परमतेजसम्॥ २५

तमूचुर्ब्रह्मऋषयो वचनं ब्रह्मसम्मितम्।
ऋषिवंशेषु भगवञ्छिन्नमूलमिदं कुलम्॥ २६

एकस्त्वमनपत्यश्च गोत्रं यन्नानुवर्तसे।
कौमारं व्रतमास्थाय क्लेशमेवानुवर्तसे॥ २७

बहूनि विप्र गोत्राणि मुनीनां भावितात्मनाम्।
एकदेहानि तिष्ठन्ति विभक्तानि विना प्रजाः॥ २८

कुलेषूच्छिन्नमूलेषु तेषु नो नास्ति कारणम्।
भवांस्तु तपसा श्रेष्ठः प्रजापतिसमद्युतिः॥ २९

तत् प्रवर्तस्व वंशाय वर्द्धयात्मानमात्मना।
त्वमाधत्स्वोर्जितं तेजो द्वितीयां वै तनुं कुरु॥ ३०

स एवमुक्तो मुनिभिर्मुनिर्मनसि ताडितः।
जगर्हे तानृषिगणान् वचनं चेदमब्रवीत्॥ ३१

यथायं शाश्वतो धर्मो मुनीनां विहितः पुरा।
सदाऽऽर्षं सेवतां कर्म वन्यमूलफलाशिनाम्॥ ३२

ब्रह्मयोनौ प्रसूतस्य ब्राह्मणस्यानुवर्तिनः।
ब्रह्मचर्यं सुचरितं ब्रह्माणमपि चालयेत्॥ ३३

जैसे सूर्य इस अव्यय (प्रवाहरूपसे सदा रहनेवाले) जगत्‌को सदा तपाते रहते हैं, उसी प्रकार वे भी अपनी तपस्यासे सबको ताप देने लगे। तब ब्रह्मर्षियोंसहित देवता और मुनिगण उनके पास आये॥ २४॥ दानव हिरण्यकशिपु भी, जो समस्त दानवोंका स्वामी था, किसी समय उन परम तेजस्वी महर्षिके पास आया और उनसे शान्तिके लिये प्रार्थना करता रहा; यह प्राचीन कालकी बात है॥ २५॥ ब्रह्मर्षियोंने उनसे यह वेदतुल्य बात कही—'भगवन्! ऋषियोंके वंशोंमें आपके इस कुलकी जड़ कट-सी गयी है'॥ २६॥ एकमात्र आप ही अपने कुलमें बचे हैं और आपके कोई संतान नहीं है तो भी आप गोत्रका अनुसरण नहीं करते हैं—उसकी परम्पराको बनाये रखनेके लिये कोई प्रयत्न नहीं करते हैं। केवल नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका व्रत धारण करके तपस्याजनित क्लेशका ही अनुगमन कर रहे हैं॥ २७॥ 'विप्रवर! विशुद्ध अन्तःकरणवाले मुनियोंके बहुत-से ऐसे गोत्र या कुल हैं, जो एक शरीर (एक व्यक्ति)-पर ही अवलम्बित रहे हैं और संतान न होनेके कारण जड़से अलग होकर नष्ट हो गये हैं॥ २८॥ मूलके ही नष्ट हो जानेसे उन कुलोंकी वृद्धिका हमारे देखनेमें कोई कारण नहीं रह गया है, परंतु आप तो (अपनी भावी वंशपरम्पराके मूलरूपमें विद्यमान ही हैं। आपके रहते इस कुलका उच्छेद नहीं होना चाहिये। आप) तपकी दृष्टिसे श्रेष्ठ हैं और तेज एवं कान्तिमें भी प्रजापतियोंके तुल्य हैं॥ २९॥ अतः आप अपने वंशको चलानेका उद्योग कीजिये और अपने द्वारा अपने-आपको बढ़ाइये। अपने ओजस्वी तेज (वीर्य)-का (योग्य पत्नीमें) आधान कीजिये और ऐसा करके पुत्ररूपमें अपने दूसरे शरीरको प्रकट कीजिये'॥ ३०॥ उन महर्षियोंके ऐसा कहनेपर ऊर्व मुनिके हृदयमें गहरा धक्का लगा। वे उन ऋषियोंकी निन्दा करने लगे और इस प्रकार बोले—॥ ३१॥ महात्माओ! जो वनके फल-मूल खाकर रहते हैं और सदा आर्षशास्त्रोंमें बताये हुए सत्कर्मका सेवन करते हैं, उन हम-जैसे ऋषि-मुनियोंके लिये तो प्राचीन कालसे इस तप एवं ब्रह्मचर्यरूप सनातनधर्मका ही विधान किया गया है॥ ३२॥ ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न होकर ब्राह्मण-धर्मका अनुसरण करनेवाले द्विजके द्वारा इस ब्रह्मचर्य-व्रतका यदि भलीभाँति आचरण किया जाय तो यह ब्रह्माजीको भी विचलित कर सकता है॥ ३३॥

द्विजानां वृत्तयस्तिस्रो ये गृहाश्रमवासिनः।
अस्माकं तु वनं वृत्तिर्वनाश्रमनिवासिनाम्॥ ३४

अम्बुभक्षा वायुभक्षा दन्तोलूखलिकास्तथा।
अश्मकुट्टा दशनपाः पञ्चातपतपाश्च ये॥ ३५

एते तपसि तिष्ठन्तो व्रतैरपि सुदुष्करैः।
ब्रह्मचर्यं पुरस्कृत्य प्रार्थयन्ते परां गतिम्॥ ३६

ब्रह्मचर्याद् ब्राह्मणस्य ब्राह्मणत्वं विधीयते।
एवमाहुः परे लोके ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः॥ ३७

ब्रह्मचर्ये स्थितं धैर्यं ब्रह्मचर्ये स्थितं तपः।
ये स्थिता ब्रह्मचर्येषु ब्राह्मणास्ते दिवि स्थिताः॥ ३८

नास्ति योगं विना सिद्धिर्नास्ति सिद्धिं विना यशः।
नास्ति लोके यशोमूलं ब्रह्मचर्यात् परं तपः॥ ३९

तन्निगृह्येन्द्रियग्रामं भूतग्रामं च पञ्चमम्।
ब्रह्मचर्येण वर्तेत किमतः परमं तपः॥ ४०

अयोगे केशहरणमसंकल्पे व्रतक्रिया।
अब्रह्मचर्ये चर्या च त्रयं स्याद् दम्भसंज्ञितम्॥ ४१

क्व दाराः क्व च संयोगः क्व च भावविपर्ययः।
यदेयं ब्रह्मणा सृष्टा मनसा मानसी प्रजा॥ ४२

यद्यस्ति तपसो वीर्यं युष्माकममितात्मनाम्।
सृजध्वं मानसान् पुत्रान् प्राजापत्येन कर्मणा॥ ४३

'जो गृहस्थ-आश्रममें निवास करते हैं, उन ब्राह्मणोंके लिये ही शास्त्रमें यज्ञ कराना, वेद पढ़ाना और दान ग्रहण करना—ये तीन वृत्तियाँ बतायी गयी हैं। हम-जैसे ऊर्ध्वरेता वनवासियोंके लिये तो वनके फल-मूल ही जीविकाके साधन हैं॥ ३४॥ कुछ लोग केवल जल या वायु पीकर ही रहते हैं, कुछ दाँतोंसे ही ओखली और मूसलका काम लेते हैं अर्थात् दाँत रहनेपर भूसीसहित नीवार आदिको चबा लेते हैं। ये ही 'दशनप' कहलाते हैं। परंतु जिनके दाँत नहीं हैं, वे पत्थरोंसे ही कूट-पीसकर वन्य वस्तुओंको खाते हैं। कुछ पञ्चाग्निके तापका सेवन करते हैं॥ ३५॥ ये अत्यन्त दुष्कर व्रतोंका आचरण करते हुए भी तपस्यामें लगे रहते और मुख्यतः ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करके उत्कृष्ट गतिको पाना चाहते हैं॥ ३६॥ 'ब्रह्मचर्यके पालनसे ही ब्राह्मणको ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति होती है। इसी तरह ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंका कहना है कि ब्रह्मचर्यका पालन ही परलोकमें ब्रह्मकी प्राप्तिका मुख्य साधन है॥ ३७॥ ब्रह्मचर्यमें धैर्यकी स्थिति है और ब्रह्मचर्यमें ही तप प्रतिष्ठित है। जो ब्राह्मण ब्रह्मचर्यमें दृढ़तापूर्वक स्थित हैं, वे ब्रह्मलोकमें ही विराजमान हैं॥ ३८॥ योगके बिना सिद्धि नहीं मिलती और सिद्धिके बिना यश नहीं प्राप्त होता है। यशका मूल कारण है तप; परंतु इस जगत्में ब्रह्मचर्यसे बढ़कर दूसरा कोई तप नहीं है॥ ३९॥ अतः इन्द्रिय-समुदायको तथा शब्द आदि सूक्ष्म भूतरूप उसके विषयसमूहको वशमें करके ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक रहे। इससे बढ़कर और कौन-सा तप हो सकता है?॥ ४०॥ अवश्यकर्तव्य ध्यानरूप योगके अभावमें भी सिर मुड़ा लेना, परलोक सुधारनेका संकल्प न रहनेपर भी केवल लोकरंजनके लिये कृच्छ्र आदि व्रतोंका आचरण करना तथा ब्रह्मकी प्राप्तिको लक्ष्य बनाकर नियमित वेदाध्ययनके बिना ही ब्रह्मचर्यके नियमोंका आश्रय लेना—ये तीनों दम्भ कहलाते हैं॥ ४१॥ जब ब्रह्माजीने मनके द्वारा मानसी प्रजा (सनत्कुमार आदि)-की सृष्टि की थी, उस समय स्त्री कहाँ थी? स्त्री-पुरुषका संयोग कहाँ था? और चित्तकी विकृति (कामातुरता) भी कहाँ थी?॥ ४२॥ महर्षियो! आपलोग अमेय आत्मबलसे सम्पन्न हैं, यदि आपमें तपस्याकी शक्ति हो तो आप प्रजापतिके समान कर्म करके मानसिक पुत्र उत्पन्न करें'॥ ४३॥

मनसा निर्मिता योनिराधातव्या तपस्विना।
न दारयोगं बीजं वा व्रतमुक्तं तपस्विनाम्॥ ४४

यदिदं लुप्तधर्मार्थं युष्माभिरिह निर्भयैः।
व्याहृतं सद्भिरत्यर्थमसद्भिरिव मे मतिः॥ ४५

वपुर्दीप्तान्तरात्मानमेष कृत्वा मनोमयम्।
दारयोगं विना स्रक्ष्ये पुत्रमात्मतनूरुहम्॥ ४६

एवमात्मानमात्मा मे द्वितीयं जनयिष्यति।
वन्येनानेन विधिना दिधक्षन्तमिव प्रजाः॥ ४७

ऊर्वस्तु तपसाऽऽविष्टो निवेश्योरुं हुताशने।
ममन्थैकेन दर्भेण पुत्रस्य प्रभवारणिम्॥ ४८

तस्योरुं सहसा भित्त्वा ज्वालामाली निरिन्धनः।
जगतो निधनाकाङ्क्षी पुत्रोऽग्निः समपद्यत॥ ४९

ऊर्वस्योरुं विनिर्भिद्य और्वो नामान्तकोऽनलः।
दिधक्षन्निव लोकांस्त्रीञ्जज्ञे परमकोपनः॥ ५०

उत्पन्नमात्रश्चोवाच पितरं दीप्तया गिरा।
क्षुधा मे बाधते तात जगद् भक्षे त्यजस्व माम्॥ ५१

त्रिदिवारोहिभिर्ज्वालैर्जृम्भमाणो दिशो दश।
निर्दहन्निव भूतानि ववृधे सोऽन्तकोऽनलः॥ ५२

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा सर्वलोकपतिः प्रभुः।
आजगाम मुनिर्यत्र व्यसृजत् पुत्रमुत्तमम्॥ ५३

स ददर्शोरुमूर्वस्य दीप्यमानं सुताग्निना।
और्वकोपाग्निसंतप्ताँल्लोकांश्च ऋषिभिः सह॥ ५४

तमुवाच ततो ब्रह्मा मुनिमूर्वं सभाजयन्।
धार्यतां पुत्रजं तेजो लोकानां हितकाम्यया।
अस्यापत्यस्य ते विप्र करिष्ये साह्यमुत्तमम्॥ ५५

'तपस्वीको तो अपने मनसे कल्पित योनिमें ही मानसिक संकल्पसे गर्भाधान करना चाहिये। स्त्रीके साथ संयोग अथवा वीर्यका आधान—यह तपस्वी पुरुषोंका नियम नहीं बताया गया है॥ ४४॥ आपलोग सज्जन हैं तो भी निरे असज्जनोंके समान आपने निःशङ्क होकर यहाँ यह धर्म और अर्थसे शून्य बात कह डाली है, ऐसा मेरा विचार है॥ ४५॥ अच्छा! देखिये, मैं अभी मनोमय वपु (योनि)-का निर्माण करके स्त्री सहवासके बिना ही अपने शरीरसे उत्पन्न होनेवाले ऐसे पुत्रकी सृष्टि कर रहा हूँ, जिसकी अन्तरात्मा अत्यन्त उद्दीप्त होगी॥ ४६॥ इस प्रकार मेरा यह शरीर वनवासीके लिये उचित इस विधानके द्वारा ही मेरे दूसरे स्वरूप (पुत्र)-को जन्म देगा, जो समस्त प्रजाको जलाकर भस्म कर देनेकी इच्छा रखता होगा॥ ४७॥ ऐसा कहकर तपके आवेशमें भरे हुए ऊर्व मुनिने अपनी जाँघको अग्निमें डाल दिया और पुत्रकी उत्पत्तिके लिये अरणिरूप उस जाँघको एक कुशसे मथने लगे॥ ४८॥ उस समय सहसा उनके ऊरु (जाँघ)-का भेदन करके एक अग्निस्वरूप पुत्र उत्पन्न हुआ, जो बिना ईंधनके ही ज्वालामालाओंसे अलंकृत था। वह समस्त संसारके विनाशकी इच्छा रखता था॥ ४९॥ ऊर्वकी जाँघको चीरकर जो वह लोक-विनाशक परम क्रोधी अनल प्रकट हुआ था, वह और्वके नामसे विख्यात हुआ। उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था, मानो वह तीनों लोकोंको दग्ध कर डालना चाहता हो॥ ५०॥ उसने उत्पन्न होते ही प्रदीप्त वाणीमें अपने पितासे कहा—'तात! मुझे भूख सता रही है, मेरे आहारके लिये यह सम्पूर्ण जगत् मुझे अर्पित कर दीजिये'॥ ५१॥ वह कालरूप अग्नि समस्त प्राणियोंको दग्ध-सा करता हुआ बढ़ने लगा। अपनी स्वर्गतक पहुँचनेवाली ज्वालाओंके द्वारा वह दसों दिशाओंमें फैलता जा रहा था॥ ५२॥ इसी बीचमें सब लोकोंके स्वामी भगवान् ब्रह्मा उस स्थानपर आ पहुँचे, जहाँ ऊर्व मुनिने अपने श्रेष्ठ पुत्रको उत्पन्न किया था॥ ५३॥ उन्होंने देखा कि ऊर्वकी जाँघ पुत्ररूप अग्निसे देदीप्यमान हो रही है और और्वकी क्रोधाग्निसे ऋषियोंसहित तीनों लोक संतप्त हो उठे हैं॥ ५४॥ तब ब्रह्मा ऊर्व मुनिका सत्कार करते हुए उनसे कहने लगे—'विप्रवर! तुम लोकोंका हित करनेकी इच्छासे अपने पुत्रके तेजको रोके रहो। मैं तुम्हारे इस पुत्रकी उत्तम सहायता करूँगा'॥ ५५॥

वासं चास्य प्रदास्यामि प्राशनं चामृतोपमम्।
तथ्यमेतन्मम वचः शृणु त्वं वदतां वर॥ ५६

'वक्ताओंमें श्रेष्ठ! तुम मेरे इस तथ्य वचनको भी सुनो। मैं इसे अमृतके समान भोजन और रहनेके लिये स्थान भी दूँगा'॥ ५६॥

ऊर्व उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यन्ममाद्य भवाञ्छिशोः।
मतिमेतां ददातीह परमानुग्रहाय वै॥ ५७

प्रभावकाले सम्प्राप्ते काङ्क्षितव्ये समागमे।
भगवंस्तर्पितः पुत्रः कैर्हव्यैः प्राप्स्यते सुखम्॥ ५८

कुत्र चास्य निवासो वै भोजनं च किमात्मकम्।
विधास्यति भवानस्य वीर्यतुल्यं महौजसः॥ ५९

ऊर्वने कहा—'आज मैं धन्य हूँ। मेरे ऊपर आपका बड़ा अनुग्रह है, जो आप यहाँ पधारकर मेरे पुत्रपर परम अनुग्रह करनेके लिये ऐसी सलाह दे रहे हैं॥ ५७॥ भगवन्! जब इसका यौवनकाल उपस्थित होगा और इसके लिये भोजनकी व्यवस्था वाञ्छनीय होगी, तब यह किस हविसे तृप्त होकर सुख पायेगा? इसका निवासस्थान कहाँ होगा? इस महान् शक्तिशाली पुत्रकी शक्तिके अनुरूप आप किस भोजनकी व्यवस्था करेंगे?'॥ ५८-५९॥

ब्रह्मोवाच

वडवामुखेऽस्य वसतिः समुद्रास्ये भविष्यति।
मम योनिर्जलं विप्र तच्च तोयमयं वपुः॥ ६०

तद्धविस्तव पुत्रस्य विसृजाम्यालयं तु तत्।
तत्रायमास्तां नियतः पिबन् वारिमयं हविः॥ ६१

ततो युगान्ते भूतानामेष चाहं च सुव्रत।
सहितौ विचरिष्यावो लोकानिति पुनः पुनः॥ ६२

एषोऽग्निरन्तकाले तु सलिलाशी मया कृतः।
दहनः सर्वभूतानां सदेवासुररक्षसाम्॥ ६३

एवमस्त्विति सोऽप्यग्निः संवृतज्वालमण्डलः।
प्रविवेशार्णवमुखं निक्षिप्य पितरि प्रभाम्॥ ६४

प्रतियातस्ततो ब्रह्मा ते च सर्वे महर्षयः।
और्वस्याग्नेः प्रभावज्ञाः स्वां स्वां गतिमुपाश्रिताः॥ ६५

हिरण्यकशिपुर्दृष्ट्वा तदद्भुतमपूजयत्।
ऊर्वं प्रणतसर्वाङ्गो वाक्यं चेदमुवाच ह॥ ६६

भगवन्नद्भुतमिदं निर्वृत्तं लोकसाक्षिकम्।
तपसा ते मुनिश्रेष्ठ परितुष्टः पितामहः॥ ६७

अहं तु तव पुत्रस्य तव चैव महाव्रत।
भृत्य इत्यवगन्तव्यः श्लाघ्योऽस्मि यदि कर्मणा॥ ६८

ब्रह्माजीने कहा—विप्रवर! जिसकी आकृति घोड़ीके मुखके समान है, समुद्रके उस मुखमें इसका निवास होगा। जल मेरी योनि (उत्पत्तिका स्थान) है और उस (समुद्र एवं उसके मुख)-का स्वरूप भी जलमय ही है॥ ६०॥ उसी जलको मैं तुम्हारे पुत्रके लिये हविष्यरूपमें अर्पित करता हूँ और उसके लिये रहनेका स्थान भी वही होगा। यह जलमय हविष्यका पान करता हुआ सदा वहीं रहे॥ ६१॥ सुव्रत! तदनन्तर प्राणियोंका प्रलयकाल आनेपर यह और मैं दोनों साथ-साथ सम्पूर्ण लोकोंमें बारम्बार विचरेंगे॥ ६२॥ इस अग्निको मैंने जलाहारी बना दिया। यह प्रलयके समय देवता, राक्षस और असुर आदि समस्त प्राणियोंको भस्म करनेवाला होगा॥ ६३॥ तब 'एवमस्तु' कहकर उस और्व नामक अग्निने अपनी ज्वालाओंको समेट लिया और पिताके शरीरमें यशरूपी तेजको स्थापित करके उसी क्षण समुद्रके मुखमें प्रवेश किया॥ ६४॥ तब ब्रह्माजी लौट गये तथा और्व अग्निके प्रभावको जाननेवाले वे सब महर्षि भी अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ६५॥ इस अद्भुत घटनाको देखकर हिरण्यकशिपुने ऊर्वको साष्टाङ्ग प्रणाम करके उनका पूजन किया और यह बात कही—॥ ६६॥ 'भगवन्! आपने समस्त लोकोंके सामने यह अद्भुत बात कर दिखायी। मुनिश्रेष्ठ! आपकी तपस्यासे पितामह ब्रह्मा भी बहुत संतुष्ट हैं॥ ६७॥ महाव्रत! यदि आप मेरे कर्मोंको देखकर मुझे प्रशंसाके योग्य समझते हों तो मुझे अपने पुत्रका और अपना किङ्कर समझें'॥ ६८॥

तन्मां पश्य समापन्नं तवैवाराधने रतम्।
यदि सीदे मुनिश्रेष्ठ तवैव स्यात् पराजयः॥ ६९

'अतः मुनिश्रेष्ठ! मैं शरणमें आकर आपकी ही आराधनामें तत्पर हूँ। आप मुझपर कृपादृष्टि कीजिये। यदि मैं कष्टमें पड़ा तो यह आपकी ही पराजय होगी'॥ ६९॥

ऊर्व उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य तेऽहं गुरुर्मतः।
नास्ति ते तपसानेन भयमद्येह सुव्रत॥ ७०

इमां च मायां गृह्णीष्व मम पुत्रेण निर्मिताम्।
निरिन्धनामग्निमयीं दुःस्पर्शां पावकैरपि॥ ७१

एषा ते स्वस्य वंशस्य वशगारिविनिग्रहे।
रक्षिष्यत्यात्मपक्षं सा परांश्च प्रहरिष्यति॥ ७२

एवमस्त्विति तां गृह्य प्रणम्य मुनिपुङ्गवम्।
जगाम त्रिदिवं हृष्टः कृतार्थो दानवेश्वरः॥ ७३

ऊर्व मुनिने कहा—सुव्रत! तुम मुझे अपना गुरु या पिता मान रहे हो, अतः मैं धन्य हूँ, यह तुम्हारा मुझपर महान् अनुग्रह है। मेरी इस तपस्याके प्रभावसे अब तुम्हें यहाँ कोई भय नहीं होगा॥ ७०॥ साथ ही तुम मेरे पुत्रके द्वारा रची हुई इस मायाको ग्रहण करो। इस ईंधनरहित अग्निमयी मायाका स्पर्श करना साक्षात् अग्निके लिये भी कठिन होगा॥ ७१॥ यह (माया) तुम्हारे जीवनकालतक सदा तुम्हारे वंशजोंके वशमें होकर रहेगी और शत्रुओंका दमन करते समय यह अपने पक्षवालोंकी रक्षा तथा शत्रुओंका संहार करेगी॥ ७२॥ तब 'एवमस्तु' कहकर दानवराजने उस मायाको ग्रहण कर लिया और प्रसन्न हो कृतार्थताका अनुभव करता हुआ उन मुनिवरको प्रणाम करके स्वर्गको चला गया॥ ७३॥

वरुण उवाच

सैषा दुर्विषहा माया देवैरपि दुरासदा।
और्वेण निर्मिता पूर्वं पावकेनोर्वसूनुना॥ ७४

तस्मिंस्तु व्युत्थिते दैत्ये निर्वीर्यैषा न संशयः।
शापो ह्यस्याः पुरा दत्तः सृष्टा येनैव तेजसा॥ ७५

यद्येषा प्रतिहन्तव्या कर्तव्यो भगवान् सुखी।
दीयतां मे सखा शक्र तोययोनिर्निशाकरः॥ ७६

तेनाहं सह संगम्य यादोभिश्च समावृतः।
मायामेतां हनिष्यामि त्वत्प्रसादान्न संशयः॥ ७७

वरुण कहते हैं—इस प्रकार प्राचीन कालमें ऊर्व ऋषिके पुत्र और्व नामक अग्निने इस मायाको रचा था, जो देवताओंके लिये भी दुःसह एवं दुर्जय है॥ ७४॥ यह दैत्य अब संसारसे उठ गया है। अतः यह माया निर्बल हो गयी है, इसमें कोई संदेह नहीं है; क्योंकि जिन्होंने अपने तेजसे इसको रचा था, उन्होंने ही इसको शाप भी दिया था (कि यह माया हिरण्यकशिपुके जीवनतक ही बलवती रहेगी)॥ ७५॥ इन्द्रदेव! यदि आपको इस मायाका संहार करना है और अपनेको प्रसन्न करना है तो आप मुझे जलके उत्पत्तिस्थान चन्द्रमाको मेरी सहायताके लिये दीजिये॥ ७६॥ मैं चन्द्रमाके सहयोगसे और (अपने अधीनस्थ) जलचर जीवोंसे घिरा रहकर आपकी कृपासे इस मायाका अवश्य ही नाश कर डालूँगा॥ ७७॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि और्वाग्निसम्भवो नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें और्व अग्निके उत्पत्तिविषयक पैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४५॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्रद्वारा चन्द्रमाकी स्तुति, चन्द्रदेव और वरुणदेवके द्वारा दैत्यसेनाका संहार, मयदानवद्वारा मायाका प्रयोग, पवन और अग्निदेवका दैत्यसेनाके साथ संग्राम और कालनेमिका रणमें आगमन

वैशम्पायन उवाच

एवमस्त्विति संहृष्टः शक्रस्त्रिदशवर्द्धनः।
संदिदेशाग्रतः सोमं युद्धाय शिशिरायुधम्॥ १

शक्र उवाच

गच्छ सोम सहायत्वं कुरु पाशधरस्य वै।
असुराणां विनाशाय जयाय च दिवौकसाम्॥ २

त्वमप्रतिमवीर्यश्च ज्योतिषां चेश्वरेश्वरः।
त्वन्मयं सर्वलोकानां रसं रसविदो विदुः॥ ३

क्षयवृद्धी तवाव्यक्ते सागरस्येव मण्डले।
परिवर्तस्यहोरात्रं कालं जगति योजयन्॥ ४

लोकच्छायामयं लक्ष्म तवाङ्के शशसंज्ञितम्।
न विदुः सोमदेवाऽपि ये च नक्षत्रयोगिनः॥ ५

त्वमादित्यपथादूर्ध्वं ज्योतिषां चोपरि स्थितः।
तमश्चोत्सार्य वपुषा भासयस्यखिलं जगत्॥ ६

श्वेतभानुर्हिमतनुर्ज्योतिषामधिपः शशी।
अब्दकृत् कालयोगात्मा ईज्यो यज्ञरसोऽव्ययः॥ ७

ओषधीशः क्रियायोनिरम्भोयोनिरनुष्णभाक्।
शीतांशुरमृताधारश्चपलः श्वेतवाहनः॥ ८

त्वं कान्तिः कान्तवपुषां त्वं सोमः सोमवृत्तिनाम्।
सौम्यस्त्वं सर्वभूतानां तिमिरघ्नस्त्वमृक्षराट्॥ ९

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तब देवताओंकी उन्नति करनेवाले इन्द्र अति प्रसन्न होकर बोल उठे—'अच्छा, ऐसा ही होगा।' तदनन्तर वे अपने सामने ही स्थित, हिमसे आयुधका काम लेनेवाले चन्द्रमाको समझाने लगे॥ १॥

इन्द्रने कहा—सोम! आप जाइये और पाशधारी वरुणकी सहायता कीजिये। ऐसा करनेसे असुरोंका संहार और देवताओंकी विजय होगी॥ २॥ आपका पराक्रम अनुपम है। आप ग्रह-नक्षत्रोंके अधिपतियोंके भी अधिपति हैं। रसके तत्त्वको जाननेवाले विद्वानोंका यह अनुभव है कि सब प्राणियोंमें जो रस है, वह आपका ही है॥ ३॥ समुद्रके समान आपके मण्डलकी क्षय-वृद्धि सदा अव्यक्त रहती है। आप संसारमें कालको प्रवर्तित करते हुए दिन और रात्रिका परिवर्तन करते रहते हैं॥ ४॥ सोम! आपके अङ्क (मण्डलके मध्य)-में पृथ्वीलोककी छाया (प्रतिबिम्ब) ही शश नामक चिह्न है। नक्षत्रोंका विचार करनेवाले विद्वान् और चन्द्रोपासक भी आपको (वास्तविक रूपमें) नहीं जान सकते॥ ५॥ आप आदित्यपथसे भी ऊर्ध्वदेशमें और सम्पूर्ण ज्योतिर्मण्डलोंके भी ऊपर स्थित रहते हैं। आप अपने (तेजोमय) शरीरके द्वारा अन्धकारको दूर कर समस्त संसारको प्रकाशित करते हैं॥ ६॥ आपकी किरणें श्वेतवर्णकी हैं। आपका शरीर हिममय है। आप नक्षत्रोंके स्वामी, शशके चिह्नसे युक्त, संवत्सररूप (काल)-के रचयिता, कालयोगस्वरूप, पूजनीय, (वर्षा आदिके रूपमें) यज्ञके रस और अव्यय (प्रवाहरूपसे नित्य) हैं॥ ७॥ आप (अन्नादि) ओषधियोंके स्वामी, क्रियाओं और जलके उत्पत्तिस्थान तथा स्वभावसे ही शीतलता धारण करनेवाले हैं। आपकी किरणें शीतल हैं। आप अमृतके आधार हैं, चपल हैं। आपका वाहन श्वेतवर्णका है॥ ८॥ आप ही कान्तिमान् शरीरवाले नर-नारियों और देवताओंकी कान्ति हैं और सोमसे जीविका चलानेवाले देवसमूहके लिये आप ही सोम हैं। आप सभी प्राणियोंके लिये सौम्य हैं, अन्धकारका नाश करनेवाले हैं तथा नक्षत्रोंके राजा हैं॥ ९॥

तद् गच्छ त्वं सहानेन वरुणेन वरूथिना।
शमयस्वासुरीं मायां यया दह्याम संगरे॥ १०

सोम उवाच

यन्मां वदसि युद्धार्थे देवराज जगत्पते।
एष वर्षामि शिशिरं दैत्यमायापकर्षणम्॥ ११

एतान् मच्छीतनिर्दग्धान् पश्य त्वं हिमवेष्टितान्।
विमायान् विमदांश्चैव दानवांस्त्वं महामृधे॥ १२

वैशम्पायन उवाच

ततो हिमकरोत्सृष्टाः सबाष्पा हिमवृष्टयः।
वेष्टयन्ति स्म तान् घोरान् दैत्यान् मेघगणा इव॥ १३

तौ पाशशुक्लांशुधरौ वरुणेन्दू महारणे।
जघ्नतुर्हिमपातैश्च पाशघातैश्च दानवान्॥ १४

द्वावम्बुनाथौ समरे तौ पाशहिमयोधिनौ।
मृधे चेरतुरम्भोभिः क्षुब्धाविव महार्णवौ॥ १५

ताभ्यामाप्लावितं सैन्यं तद् दानवमदृश्यत।
जगत् संवर्तकाम्भोदैः प्रवृष्टैरिव संवृतम्॥ १६

तावुद्यतांशुपाशौ द्वौ शशाङ्कवरुणौ रणे।
शमयामासतुर्मायां देवौ दैतेयनिर्मिताम्॥ १७

शीतांशुजलनिर्दग्धाः पाशैश्च प्रसिता रणे।
न शेकुश्चलितुं दैत्या विशिरस्का इवाद्रयः॥ १८

शीतांशुनिहतास्ते तु पेतुर्दैत्या हिमार्दिताः।
हिमप्रावृतसर्वाङ्गा निरूष्माण इवाग्नयः॥ १९

तेषां तु दिवि दैत्यानां विपरीतप्रभाणि च।
विमानानि विचित्राणि निपतन्त्युत्पतन्ति च॥ २०

तान् पाशहस्तग्रथितांश्छादितान् हिमरश्मिना।
मयो ददर्श मायावी दानवान् दिवि दानवः॥ २१

अतः आप सेना लेकर (युद्धके लिये) तैयार खड़े हुए इन वरुणदेवके साथ जाइये और समराङ्गणमें जिससे हम जल रहे हैं, उस आसुरी मायाको शान्त कीजिये॥ १०॥

सोमने कहा—देवराज! जगत्पते! आप युद्धके लिये मुझसे जो कुछ कह रहे हैं, उसके अनुसार मैं अभी दैत्योंकी मायाको नष्ट करनेके लिये हिमकी वर्षा करता हूँ॥ ११॥ देखिये, इस महासमरमें ये दानव किस प्रकार मेरे बरसाये हुए ओलोंसे दग्ध होते हैं। हिमसे आवेष्टित होनेपर कैसे इनकी माया नष्ट होती है और किस तरह इनका सारा मद उतर जाता है॥ १२॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर चन्द्रमाकी छोड़ी हुई सुन्दर भापसहित ओलोंकी वर्षाने मेघोंकी भाँति उन भयंकर दैत्योंको जकड़ना आरम्भ कर दिया॥ १३॥ उस महायुद्धमें पाशधारी वरुण और श्वेत किरणोंवाले चन्द्रमा पाशसे मारकर और ओले गिराकर दानवोंका संहार करने लगे॥ १४॥ पाश और हिमका प्रहार करनेवाले वे दोनों जलके स्वामी वरुण और सोम जलकी वर्षा करते हुए क्षोभमें भरे हुए दो समुद्रोंके समान संग्राममें विचरने लगे॥ १५॥ उन दोनोंके द्वारा की गयी जलवर्षासे आप्लावित हुई वह दानवोंकी सेना प्रलयकालमें प्रबल वर्षा करनेवाले संवर्तक मेघोंके द्वारा अनन्त जलराशिमें डुबाये गये जगत्के समान दीखने लगी॥ १६॥ (इस प्रकार) चन्द्रदेव और वरुणदेव दोनों उस युद्धमें अपनी किरणों और पाशोंका प्रयोग करके दैत्योंकी रची हुई मायाका शमन करने लगे॥ १७॥ शीतल किरणोंवाले चन्द्रमाके (हिम) जलसे अकड़े हुए और (वरुणके) पाशोंसे जकड़े हुए दैत्य रणमें शिखरहीन पर्वतोंकी भाँति हिल-डुल भी न सके॥ १८॥ शीतरश्मि चन्द्रमाकी मार खाकर हिमसे पीड़ित हुए दैत्य पृथ्वीपर गिरने लगे। उनके सारे अङ्ग बर्फसे ढक गये थे। उस समय वे उष्णतारहित अग्निके समान जान पड़ते थे॥ १९॥ फिर तो स्वर्गमें दैत्योंके विचित्र विमान प्रभाहीन होकर गिरने और गिरकर उछलने लगे॥ २०॥ मायावी दानव मयने देखा कि स्वर्गमें बहुत-से दानवोंको पाशधारी वरुणने जकड़ लिया है और बहुतोंको शीतल किरणोंवाले चन्द्रमाने बर्फसे ढक दिया है॥ २१॥

स शिलाजालविततां गण्डशैलाट्टहासिनीम्।
पादपोत्कटकूटाग्रां कन्दराकीर्णकाननाम्॥ २२

सिंहव्याघ्रगजाकीर्णां नदन्तीमिव यूथपैः।
ईहामृगगणाकीर्णां पवनाघूर्णितद्रुमाम्॥ २३

निर्मितां स्वेन पुत्रेण क्रौञ्चेन दिवि कामगाम्।
प्रथितां पार्वतीं मायां ससृजे दानवोत्तमः॥ २४

साश्मशब्दैः शिलावर्षैः सम्पतद्भिश्च पादपैः।
निजघ्ने देवसंघांस्तान् दानवांश्चाप्यजीवयत्॥ २५

नैशाकरी वारुणी च मायेऽन्तर्दधतस्ततः।
अश्मभिश्चायसघनैः कीर्णा देवगणा रणे॥ २६

साश्मसंघातविषमा द्रुमपर्वतसंकटा।
अभवद् घोरसंचारा पृथिवीं पर्वतैरिव॥ २७

नानाहतोऽश्मभिः कश्चिच्छिलाभिश्चाप्यताडितः।
नानिरुद्धो द्रुमगणैर्देवोऽदृश्यत संयुगे॥ २८

तदपभ्रष्टधनुषं भग्नप्रहरणाविलम्।
निष्प्रयत्नं सुरानीकं वर्जयित्वा गदाधरम्॥ २९

स हि युद्धगतः श्रीमानीशो न स्म व्यकम्पत।
सहिष्णुत्वाज्जगत्स्वामी न चुक्रोध गदाधरः॥ ३०

कालज्ञः कालमेघाभः समैक्षत् कालमाहवे।
देवासुरविमर्दं स द्रष्टुकामो जनार्दनः॥ ३१

ततो भगवताऽऽदिष्टौ रणे पावकमारुतौ।
शमनार्थं प्रवृद्धाया मायाया मयसृष्टया॥ ३२

तब उस दानव-शिरोमणिने स्वर्गमें अपने पुत्र क्रौञ्चके द्वारा निर्मित सुप्रसिद्ध पार्वती मायाको प्रकट किया, जो इच्छानुसार सर्वत्र पहुँच जानेवाली थी। वह शिलाओंका विशाल जाल-सा बिछा देती थी, भारी-भारी चट्टानोंको गिराकर उनके धमाकेकी आवाजके रूपमें मानो अट्टहास करती थी। उन शिलाओंके शिरोभाग वृक्षोंके कारण खुरदरे हो रहे थे। उस पार्वती मायाके काननप्रान्त गुफाओंसे व्याप्त थे। वहाँ सिंह, व्याघ्र और बड़े-बड़े गजराज भरे हुए थे। यूथपतियोंके चिग्घाड़ने या दहाड़नेके शब्दसे मानो वह माया सिंहनाद-सा करती प्रतीत होती थी। उस मायामयी पर्वतमालामें सब ओर भेड़िये भरे थे। वहाँके वृक्ष प्रचण्ड वायुके झोंके खाकर झूम रहे थे॥ २२—२४॥ उस पार्वती मायाने चट्टानोंके टकरानेकी आवाजसे, पत्थरोंकी वर्षासे और गिरते हुए वृक्षसमूहोंसे देवसमुदायको मारना आरम्भ किया। इससे दैत्योंके जीमें-जी आया॥ २५॥ उस दैत्यकी मायाके प्रभावसे वरुण और चन्द्रमा—दोनोंकी मायाएँ अदृश्य हो गयीं। रणभूमिमें देवताओंपर प्रस्तर और लोहेके घन बरसने लगे॥ २६॥ जैसे पर्वतोंके कारण वहाँकी भूमिपर चलना कठिन हो जाता है, उसी प्रकार वहाँ गिरे हुए शिलाखण्डोंके समूहसे विषम और वृक्ष एवं पर्वतोंके बिछ जानेसे संकीर्ण हुई उस रणभूमिमें चलना-फिरना दूभर हो गया था॥ २७॥ उस युद्धमें ऐसा कोई देवता नहीं दिखायी देता था, जिसके शरीरपर पत्थरोंसे चोट न आयी हो, जिसपर शिलाओंकी मार न पड़ी हो तथा जो सब ओर गिरे हुए वृक्षसमूहोंसे अवरुद्ध न हो गया हो॥ २८॥ उस समय भगवान् गदाधरको छोड़कर शेष देवताओंकी वह सारी सेना निरुपाय एवं निश्चेष्ट हो गयी थी। सबके हाथसे धनुष नीचे गिर गये थे और आयुधोंके टूट जानेसे सबके मुखपर मलिनता छा गयी थी॥ २९॥ अवश्य ही युद्धमें विराजमान श्रीमान् भगवान् विष्णु उस समय भी कम्पित नहीं हुए और सहनशील होनेके कारण उन जगत्पति भगवान् गदाधरको क्रोध भी नहीं आया॥ ३०॥ श्याम मेघकी-सी कान्तिवाले और समयको पहचाननेवाले भगवान् जनार्दन युद्धमें समयकी बाट देखने लगे। वे देवता और असुरोंकी मुठभेड़ देखना चाहते थे॥ ३१॥ उधर मयदानवकी रची हुई माया रणभूमिमें उत्तरोत्तर बढ़ रही थी। उसे शान्त करनेके लिये भगवान्ने अग्नि और वायुको आज्ञा दी (कि तुम दोनों इस मायाको नष्ट करो)॥ ३२॥

ततः प्रवृद्धावन्योन्यं प्रबुद्धौ ज्वालवाहिनौ।
चोदितौ विष्णुवाक्येन तां मायां व्यपकर्षताम्॥ ३३

ताभ्यामुद्भ्रान्तवेगाभ्यां प्रवृद्धाभ्यां महाहवे।
दग्धा सा पार्वती माया भस्मीभूता ननाश ह॥ ३४

सोऽनिलोऽनलसंयुक्तः सोऽनलश्चानिलाकुलः।
दैत्यसेनां ददहतुर्युगान्तेष्विव मूर्च्छितौ॥ ३५

वायुः प्रधावितस्तत्र पश्चादग्निश्च मारुतात्।
चेरतुर्दानवानीके क्रीडन्तावनलानिलौ॥ ३६

भस्मावयवभूतेषु प्रपतत्सूत्पतत्सु च।
दानवेषु विनष्टेषु कृतकर्मणि पावके॥ ३७

वातस्कन्धापविद्धेषु विमानेषु समन्ततः।
मायाबन्धे विनिर्वृत्ते स्तूयमाने गदाधरे॥ ३८

निष्प्रयत्नेषु दैत्येषु त्रैलोक्ये मुक्तबन्धने।
सम्प्रहृष्टेषु देवेषु साधु साध्विति सर्वशः॥ ३९

जये दशशताक्षस्य मयस्य च पराजये।
दिक्षु सर्वासु शुद्धासु प्रवृत्ते धर्मसंस्तरे॥ ४०

अपावृत्ते चन्द्रपथे अयनस्थे दिवाकरे।
प्रकृतिस्थेषु लोकेषु नृषु चारित्रबन्धुषु॥ ४१

अभिन्नबन्धने मृत्यौ हूयमाने हुताशने।
यज्ञभागिषु देवेषु स्वर्गार्थं दर्शयत्सु च॥ ४२

लोकपालेषु सर्वेषु दिक्षु संयानवर्तिषु।
भावे तपसि शुद्धानामभावे दुष्टकर्मिणाम्॥ ४३

देवपक्षे प्रमुदिते दैत्यपक्षे विषीदति।
त्रिपादविग्रहे धर्मे अधर्मे पादविग्रहे॥ ४४

अपावृतमहाद्वारे वर्तमाने च सत्पथे।
स्वधर्मस्थेषु वर्णेषु लोकेऽस्मिन्नाश्रमेषु च॥ ४५

तब एक-दूसरेके सहयोगसे बढ़े हुए तथा प्रबुद्ध होकर ज्वालाओंका भार वहन करनेवाले वे दोनों देवता भगवान् विष्णुकी आज्ञासे प्रेरित होकर उस मायाको दूर करने लगे॥ ३३॥ प्रवृद्ध होकर महायुद्धमें बवंडरकी तरह वेगसे घूमते हुए पावक और पवनदेवने उस पार्वती मायाको भस्म कर डाला। अतः वह नष्ट हो गयी॥ ३४॥ प्रलयकालकी भाँति वायुका संयोग पाकर प्रबल हुए अग्निदेवने और अग्निका संयोग पाकर बढ़े हुए वायुदेवने दानवसेनाको भस्म करना आरम्भ किया॥ ३५॥ रणभूमिमें पहले तो वेगसे आँधी चली और फिर वायुसे प्रज्वलित होकर अग्नि वेगपूर्वक फैलने लगी। (इस प्रकार) अग्निदेव और पवनदेव दोनों दानवोंकी सेनामें क्रीड़ा करते हुए विचरने लगे॥ ३६॥ (फिर क्या था?) दानवलोग भस्म हो-होकर गिरने लगे और (वायुके वेगसे) उनकी राख उड़ने लगी। इस प्रकार अग्निका काम पूरा हुआ॥ ३७॥ (इधर) वायुके प्रचण्ड वेगसे आहत हो विमान सब ओर टूट-टूटकर गिरने लगे। मायाका बन्धन नष्ट हो गया तथा भगवान् विष्णुकी स्तुति होने लगी॥ ३८॥ दानवोंके प्रयत्न निष्फल हो गये, त्रिलोकीका बन्धन जाता रहा और देवता सब ओर अत्यन्त हर्षमें भरकर 'साधु-साधु' कहने लगे॥ ३९॥ सहस्रनेत्रधारी इन्द्रकी विजय हुई और मय दानवकी पराजय। सम्पूर्ण दिशाएँ शुद्ध हो गयीं और सब ओर धर्मका विस्तार होने लगा॥ ४०॥ चन्द्रमाका मार्ग प्रशस्त हो गया। सूर्य अपने मार्गमें स्थित हुए। तीनों लोक अपनी स्वाभाविक स्थितिमें स्थित हो गये और मनुष्य सदाचारको ही अपना बन्धु (सहायक) मानने लगे॥ ४१॥ मृत्युकी मर्यादा नियत हो गयी। अग्निहोत्रका कार्य ठीक ढंगसे चलने लगा। देवता यज्ञोंमें भाग पाने तथा स्वर्गका मार्ग दिखाने लगे॥ ४२॥ समस्त लोकपाल अपनी-अपनी दिशामें निर्भय होकर विचरने लगे। शुद्धात्मा पुरुष तपस्यामें प्रवृत्त हो अभ्युदयके भागी होने लगे तथा दुराचारी मनुष्योंका विनाश होने लगा॥ ४३॥ देवताओंका दल प्रसन्न रहने लगा। दैत्योंके समुदायपर विषाद छा गया। धर्मके तीन पैर जम गये और अधर्मका एक ही पैर शेष रह गया॥ ४४॥ जिसपर चलनेवाले पुरुषोंके लिये मोक्षका महान् द्वार खुल जाता है, वह सत्पुरुषोंका मार्ग पुनः चालू हो गया। इस जगत्में चारों वर्णों और चारों आश्रमोंके लोग अपने-अपने धर्मका पालन करने लगे॥ ४५॥

प्रजारक्षणयुक्तेषु भ्राजमानेषु राजसु।
गीयमानासु गाथासु देवसंस्तवनादिषु॥ ४६

प्रशान्तकलुषे लोके शान्ते तपसि दारुणे।
अग्निमारुतयोस्तस्मिन् वृत्ते संग्रामकर्मणि।
तन्मया विमला लोकास्ताभ्यां जयकृतप्रियाः॥ ४७

पूर्वदेवभयं श्रुत्वा मारुताग्निकृतं महत्।
कालनेमिरिति ख्यातो दानवः प्रत्यदृश्यत॥ ४८

भास्कराकारमुकुटः शिञ्जिताभरणाङ्गदः।
मन्दराचलसंकाशो महारजतसंवृतः॥ ४९

शतप्रहरणोदग्रः शतबाहुः शताननः।
शतशीर्षा स्थितः श्रीमाञ्छतशृङ्ग इवाचलः॥ ५०

कक्षे महति संवृद्धो हिमान्त इव पावकः॥ ५१

धूम्रकेशो हरिच्छ्मश्रुर्दंष्ट्रालोष्ठपुटाननः।
त्रैलोक्यान्तरविस्तारो धारयन् विपुलं वपुः॥ ५२

बाहुभिस्तुलयन् व्योम क्षिपन् पद्भ्यां महीधरान्।
ईरयन् मुखनिःश्वासैर्वृष्टिमन्तो बलाहकान्॥ ५३

तिर्यगायतरक्ताक्षं मन्दरोदग्रवर्चसम्।
दिधक्षन्तमिवायान्तं सर्वान् देवगणान् मृधे॥ ५४

तर्जयन्तं सुरगणांश्छादयन्तं दिशो दश।
संवर्तकाले क्षुधितं दृप्तं मृत्युमिवोत्थितम्॥ ५५

सभी नरेश प्रजापालनमें तत्पर रहकर विशेष शोभा पाने लगे। देवताओंकी स्तुतिसे युक्त गाथाओंका सब ओर गान होने लगा॥ ४६॥ सब लोगोंका कलुष शान्त हो गया, दारुण या कठोर तपस्या शान्त एवं मृदुल तपके रूपमें परिणत हो गयी। अग्नि और वायु-देवका वह युद्धविषयक महान् पराक्रम जब पूर्ण हो गया, तब निर्मल (प्रसन्न) हुए जगत्में उन्हींकी प्रधानता हो गयी; क्योंकि उनकी विजयने लोगोंका प्रिय कार्य किया था॥ ४७॥ अग्नि और वायुने दैत्योंपर महान् भय उपस्थित कर दिया है—यह सुनकर 'कालनेमि' नामसे विख्यात दानव उनके सामने आया॥ ४८॥ उसके मस्तकपर सूर्यके समान तेजस्वी मुकुट शोभा दे रहा था। उसने पैर आदिमें खन-खन शब्द करनेवाले नूपुर आदि आभूषण तथा भुजाओंमें बाजूबन्द धारण कर रखे थे। बहुमूल्य चाँदीके कवचसे आवृत होनेके कारण वह मन्दराचल-सा प्रतीत हो रहा था॥ ४९॥ उसने अपनी सौ भुजाओंमें उतने ही आयुध धारण किये थे, इसलिये वह अत्यन्त भयंकर जान पड़ता था। उसके मुख भी सौ ही थे। सौ मस्तकोंसे युक्त वह तेजस्वी दानव जब खड़ा होता था, उस समय सौ शिखरोंसे सुशोभित पर्वतके समान जान पड़ता था॥ ५०॥ इतना ही नहीं, वह ग्रीष्म-ऋतुमें सूखे वृक्षोंसे भरे हुए विशाल वनके भीतर प्रज्वलित हुए दावानलके समान देदीप्यमान हो रहा था॥ ५१॥ उसके केश धूम्रवर्णके थे; किंतु मूँछें हरे रंगकी दिखायी देती थीं। उसकी दाढ़ें ओठोंसे बाहर निकली हुई थीं, जिससे उसके मुखकी अद्भुत शोभा होती थी। उसने ऐसा विशाल शरीर धारण कर रखा था, जो तीनों लोकोंमें फैला हुआ-सा प्रतीत होता था॥ ५२॥ वह अपनी भुजाओंसे आकाशको तौल रहा था, पैरोंकी ठोकरोंसे कितने ही पर्वतोंको दूर फेंक देता था और मुखके निःश्वासोंसे वर्षा करनेवाले बादलोंको उड़ा देता था॥ ५३॥ उसके नेत्र विशाल और लाल थे। वह तिरछी दृष्टिसे देखा करता था। मन्दर अर्थात् स्वर्गलोकके सर्वश्रेष्ठ देवता देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी जान पड़ता था। उसे देखकर ऐसा लगता था, मानो वह युद्धमें सम्पूर्ण देवताओंको भस्म कर डालनेकी इच्छासे आ रहा हो॥ ५४॥ वह देवताओंको डाँट बताता और दसों दिशाओंको आच्छादित करता आ रहा था। ऐसा जान पड़ता था मानो प्रलयकालमें दर्पसे भरा हुआ भूखा काल उठ खड़ा हुआ हो॥ ५५॥

सुतलेनोच्छ्रितवता विपुलाङ्गुलिपर्वणा।
माल्याभरणपूर्णेन किञ्चिच्चलितवर्मणा॥ ५६

उच्छ्रितेनाग्रहस्तेन दक्षिणेन वपुष्मता।
दानवान् देवनिहतानुत्तिष्ठध्वमिति ब्रुवन्॥ ५७

तं कालनेमिं समरे द्विषतां कालसंनिभम्।
वीक्षन्ति स्म सुराः सर्वे भयविक्लवमानसाः॥ ५८

तं स्म वीक्षन्ति भूतानि क्रमन्तं कालनेमिनम्।
त्रिविक्रमं विक्रमन्तं नारायणमिवापरम्॥ ५९

सोच्छ्रयन् प्रथमं पादं मारुताघूर्णिताम्बरः।
प्राक्रामदसुरो युद्धे त्रासयन् सर्वदेवताः॥ ६०

स मयेनासुरेन्द्रेण परिष्वक्तः क्रमन् रणे।
कालनेमिर्बभौ दैत्यः विष्णुनेव पुरंदरः॥ ६१

अथ विव्यथिरे देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः।
दृष्ट्वा कालमिवायान्तं कालनेमिं भयावहम्॥ ६२

जिसकी हथेली बहुत सुन्दर थी, अँगुलियोंके पर्व पुष्ट थे, जो मालाकार आभूषण (वलय)-से सुशोभित था तथा जिसका कवच कुछ खिसक गया था, ऐसे ऊँचे उठाये हुए मोटे-ताजे दाहिने हाथके अग्रभागसे वह देवताओंकी मार खाकर गिरे हुए दानवोंको उठनेका संकेत करके कह रहा था, कि (वीरो!) उठकर खड़े हो जाओ॥ ५६-५७॥ शत्रुओंके लिये कालके समान भयंकर वह कालनेमि नामक दानव जब समरभूमिमें आया, उस समय वहाँ खड़े हुए समस्त देवता भयभीत चित्तसे उसकी ओर देखने लगे॥ ५८॥ ऊँचे-ऊँचे पग उठाकर आक्रमण करते हुए उस कालनेमिको समस्त प्राणियोंने त्रिविक्रमरूपसे तीनों लोकोंको नापनेके लिये पैर बढ़ाते हुए दूसरे नारायणके समान देखा॥ ५९॥ सम्पूर्ण देवताओंको त्रास देते हुए उस असुरने जब युद्धमें अपना पहला कदम उठाकर रखा, उस समय हवाके झोंकेसे उसके वस्त्र फहराने लगे॥ ६०॥ रणभूमिमें विचरते हुए उस दानवराजको असुरराज मयने आगे बढ़कर हृदयसे लगा लिया। उस समय मयके साथ कालनेमि दैत्यकी वैसे ही शोभा हुई, जैसे भगवान् विष्णुसे देवराज इन्द्र सुशोभित होते हैं॥ ६१॥ कालके समान भयंकर कालनेमिको आते देख इन्द्र आदि सब देवता भयसे व्यथित हो उठे॥ ६२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि कालनेमिप्रक्रमणे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें कालनेमिका आक्रमणविषयक छियालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४६॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

कालनेमिका युद्ध और प्रभाव

वैशम्पायन उवाच

दानवांश्चापि पिप्रीषुः कालनेमिर्महासुरः।
व्यवर्धत महातेजास्तपान्ते जलदो यथा॥ १

त्रैलोक्यान्तर्गतं तं तु दृष्ट्वा ते दानवेश्वराः।
उत्तस्थुरपरिश्रान्ताः प्राप्येवामृतमुत्तमम्॥ २

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जैसे गरमीके अन्तमें वर्षाकाल आनेपर मेघ बढ़ता है, उसी प्रकार महातेजस्वी महान् असुर कालनेमि दानवोंको पुष्ट करनेकी इच्छासे बढ़ने लगा॥ १॥ उसे तीनों लोकोंमें फैला हुआ देखकर वे सभी दानवराज इस प्रकार सहसा उठ खड़े हुए मानो उन्हें उत्तम अमृत मिल गया हो। उस समय उनकी सारी थकावट दूर हो गयी थी॥ २॥

ते वीतभयसंत्रासा मयतारपुरोगमाः।
तारकामयसंग्रामे सततं जयकाङ्क्षिणः।
रेजुरायोधनगता दानवा युद्धकाङ्क्षिणः॥ ३

अस्त्रमभ्यस्यतां तेषां व्यूहं च परिधावताम्।
प्रेक्षतां चाभवत् प्रीतिर्दानवं कालनेमिनम्॥ ४

ये तु तत्र मयस्यासन् मुख्या युद्धपुरस्सराः।
तेऽपि सर्वे भयं त्यक्त्वा हृष्टा योद्धुमुपस्थिताः॥ ५

मयस्तारो वराहश्च हयग्रीवश्च वीर्यवान्।
विप्रचित्तिसुतः श्वेतः खरलम्बावुभावपि॥ ६

अरिष्टो बलिपुत्रस्तु किशोरोष्ट्रौ तथैव च।
स्वर्भानुश्चामरप्रख्यो वक्त्रयोधी महासुरः॥ ७

एतेऽस्त्रविदुषः सर्वे सर्वे तपसि सुव्रताः।
दानवाः कृतिनो जग्मुः कालनेमिनमुत्तमम्॥ ८

ते गदाभिश्च गुर्वीभिश्चक्रैश्च सपरश्वधैः।
अश्मभिश्चाद्रिसदृशैर्गण्डशैलैश्च दंशितैः॥ ९

पट्टिशैर्भिन्दिपालैश्च परिघैश्चोत्तमायुधैः।
घातनीभिश्च गुर्वीभिः शतघ्नीभिस्तथैव च॥ १०

कालकल्पैश्च मुसलैः क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः।
युगैर्यन्त्रैश्च निर्मुक्तैरर्गलैश्चाग्रताडितैः॥ ११

दोर्भिश्चायतपीनांसैः पाशैः प्रासैश्च मूर्च्छितैः।
सर्पैर्लेलिह्यमानैश्च विसर्पद्भिश्च सायकैः॥ १२

वज्रैः प्रहरणीयैश्च दीप्यमानैश्च तोमरैः।
विकोशैश्चासिभिस्तीक्ष्णैः शूलैश्च शितनिर्मलैः॥ १३

ते वै संदीप्तमनसः प्रगृहीतोत्तमायुधाः।
कालनेमिं पुरस्कृत्य तस्थुः संग्राममूर्धनि॥ १४

सा दीप्तशस्त्रप्रवरा दैत्यानां शुशुभे चमूः।
द्यौर्निमीलितनक्षत्रा सघनेवाम्बुदागमे॥ १५

देवतानामपि चमू रुरुचे शक्रपालिता।
दीप्ता शीतोष्णतेजोभ्यां चन्द्रभास्करवर्चसा॥ १६

वे मय और तार आदि सभी दानव कालनेमिके आ जानेसे भय और त्राससे रहित हो गये, अतः उस तारकामय संग्राममें निरन्तर विजयकी अभिलाषा रखते हुए युद्धकी आकाङ्क्षासे रणभूमिमें खड़े हो शोभा पाने लगे॥ ३॥ उस समय अस्त्रोंका अभ्यास करते और व्यूहमें सब ओर दौड़ लगाते हुए उन दैत्योंको कालनेमि दानवके दर्शनसे बड़ी प्रसन्नता हुई॥ ४॥ वहाँ जो भी मयके मुख्य-मुख्य सेनापति उपस्थित थे, वे सभी भय छोड़कर हर्ष और उत्साहके साथ युद्धके लिये डट गये॥ ५॥ मय, तार, वराह, पराक्रमी हयग्रीव, विप्रचित्तिकुमार श्वेत तथा खर और लम्ब—ये दो दानव एवं बलिपुत्र अरिष्ट, किशोर, उष्ट्र तथा देवताके समान तेजस्वी एवं मुँखसे युद्ध करनेवाला महान् असुर स्वर्भानु—ये सभी अस्त्रवेत्ता और तपस्यामें नियमपूर्वक स्थित रहनेवाले विद्वान् और कुशल दानव उस उत्तम असुर कालनेमिके पास जा पहुँचे॥ ६—८॥ वे सब हर्षसे उत्फुल्ल हृदयवाले दानव हाथोंमें उत्तम आयुध धारण किये, कालनेमिको आगे रखकर उसके सेनापतित्वमें युद्ध करनेके लिये संग्रामके मुहानेपर डट गये। कितने ही दानव अपने चौड़े और पुष्ट कंधोंसे युक्त हाथोंसे ही आयुधोंका काम लेते थे तथा बहुतेरे दैत्य भारी गदा, चक्र, फरसा, पर्वतोंके समान शिलाओंकी बड़ी-बड़ी चट्टान, वज्र आदिके आघातसे टूटकर गिरे हुए शिलाखण्ड, पट्टिश, भिन्दिपाल, परिघ, अन्यान्य उत्तम आयुध, संहार करनेमें समर्थ और सैकड़ोंके प्राण लेनेवाली बड़ी भारी तोपें, कालके समान भयंकर मूसल, क्षेपणीय (गुलेल आदि), मुद्गर, युग (जुआ), खुले हुए यन्त्र, जिसके सिरेको हथौड़ेसे पीटकर तेज किया गया हो ऐसी अर्गला (डंडेला), फैले हुए पाश, प्रास (भाला), जीभ लपलपाते हुए सर्प, तीव्रगतिसे लक्ष्यकी ओर बढ़नेवाले बाण, प्रहार करने योग्य वज्र, दीप्तिमान् तोमर, नंगी तीखी तलवार और तेज किये हुए चमकीले शूल आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न हो युद्धके लिये डट गये॥ ९—१४॥ जहाँ चमकते हुए श्रेष्ठ अस्त्र-शस्त्र विद्युत्की भाँति प्रकाशित हो रहे थे, वह दानवसेना वर्षाकालमें छिपे हुए नक्षत्रवाले मेघ और बिजलीसे युक्त आकाशके समान शोभा पा रही थी॥ १५॥ इधर चन्द्रमा और सूर्यकी प्रभासे उद्भासित तथा उनके शीतल और उष्ण तेजके द्वारा देदीप्यमान हुई वह इन्द्रपालित देवसेना भी अनुपम शोभासे सम्पन्न हो रही थी॥ १६॥

वायुवेगवती सौम्या तारागणपताकिनी।
तोयदाविद्धवसना ग्रहनक्षत्रहासिनी॥ १७

यमेन्द्रधनदैर्गुप्ता वरुणेन च धीमता।
सम्प्रदीप्ताग्निपवना नारायणपरायणा॥ १८

सा समुद्रौघसदृशी दिव्या देवमहाचमूः।
रराजास्त्रवती भीमा यक्षगन्धर्वशालिनी॥ १९

तयोश्चम्वोस्तदा तत्र बभूव स समागमः।
द्यावापृथिव्योः संयोगो यथा स्याद् युगपर्यये॥ २०

तद् युद्धमभवद् घोरं देवदानवसंकुलम्।
क्षमापराक्रममयं दर्पस्य विनयस्य च॥ २१

निश्चक्रमुर्बलाभ्यां तु ताभ्यां भीमाः सुरासुराः।
पूर्वापराभ्यां संरब्धाः सागराभ्यामिवाम्बुदाः॥ २२

ताभ्यां बलाभ्यां संहृष्टाश्चेरुस्ते देवदानवाः।
वनाभ्यां पर्वतीयाभ्यां पुष्पिताभ्यां यथा गजाः॥ २३

समाजघ्नुस्ततो भेरीः शङ्खान् दध्मुश्च नैकशः।
स शब्दो द्यां भुवं चैव दिशश्च समपूरयत्॥ २४

ज्याघाततलनिर्घोषो धनुषां कूजितानि च।
दुन्दुभीनां निनदतां दैत्यानां निर्दधुः स्वनान्॥ २५

तेऽन्योन्यमभिसम्पेतुः पातयन्तः परस्परम्।
बभञ्जुर्बाहुभिर्बाहून् द्वन्द्वमन्ये युयुत्सवः॥ २६

देवतास्त्वशनीर्घोराः परिघांश्चोत्तमायसान्।
ससर्जुराजौ निस्त्रिंशान् गदा गुर्वीश्च दानवाः॥ २७

वायुके समान वेगवती तथा सौम्य भावसे सम्पन्न देवताओंकी वह दिव्य एवं विशाल सेना तारागणोंको पताकारूपमें धारण करती थी, मेघमय वस्त्रोंसे आच्छन्न थी तथा ग्रह और नक्षत्र मानो उसके शुभ्र हास थे। यम, इन्द्र, कुबेर और बुद्धिमान् वरुणके द्वारा उसकी रक्षा की जा रही थी। उसमें प्रकाशमान अग्नि और वायुदेव भी विद्यमान थे। वह भगवान् नारायणके आश्रित थी। देखनेमें उमड़े हुए समुद्रकी अगाध जलराशिके समान जान पड़ती थी। विविध प्रकारके अस्त्रोंसे सम्पन्न होनेके कारण भयंकर प्रतीत होती थी तथा यक्ष और गन्धर्व उसकी शोभा बढ़ा रहे थे॥ १७—१९॥ जैसे प्रलयकालमें द्युलोक और पृथ्वी—दोनों एक-दूसरेसे टकराते हैं, उसी प्रकार उन दोनों सेनाओंमें उस समय वहाँ गहरी भिड़न्त हुई॥ २०॥ देवताओं और दानवोंसे भरा हुआ वह युद्ध बड़ा भयंकर हो चला। एक ओर उदारतापूर्ण क्षमा थी तो दूसरी ओर क्रूरतापूर्ण पराक्रम। यह दर्प और विनयका युद्ध था॥ २१॥ उन दोनों सेनाओंसे रोषमें भरे हुए भयंकर देवता और असुर निकले (तथा युद्धके लिये आगे बढ़े); ठीक उसी तरह जैसे पूर्व और पश्चिमके समुद्रोंसे क्षुब्ध मेघ प्रकट हुए हों॥ २२॥ उन दोनों सेनाओंसे हर्ष और उत्साहमें भरे हुए देवता और दानव युद्धके लिये निकले, मानो फूलोंसे सुशोभित दो पर्वतीय वनोंसे बहुसंख्यक हाथी निकल आये हों॥ २३॥ उस समय दोनों दलोंके सैनिक बारम्बार नगाड़े पीटने और शङ्ख बजाने लगे। वाद्योंका वह तुमुल नाद पृथ्वी, आकाश तथा सम्पूर्ण दिशाओंमें भर गया॥ २४॥ प्रत्यञ्चा खींचनेसे जो शब्द होता था, धनुषोंकी जो टंकार-ध्वनि होती थी तथा बजती हुई दुन्दुभियोंका जो गम्भीर नाद होता था, उन सबने मिलकर दैत्योंके गर्जन-तर्जनकी आवाजको छिपा दिया॥ २५॥ वे देवता और दानव एक-दूसरेपर टूट पड़े और अपने-अपने प्रतिद्वन्द्वीको धराशायी करने लगे। द्वन्द्वयुद्धकी इच्छा रखनेवाले अन्यान्य योद्धाओंने अपनी भुजाओंद्वारा शत्रुओंकी भुजाएँ तोड़ डालीं॥ २६॥ देवतालोग युद्धमें भयंकर वज्र तथा अच्छे लोहेके बने हुए परिघका प्रयोग करने लगे और दानव उनके ऊपर तलवारें और भारी गदाएँ चलाने लगे॥ २७॥

गदानिपातैर्भग्नाङ्गा बाणैश्च शकलीकृताः।
परिपेतुर्भृशं केचिन्न्युब्जाः केचित् ससर्जिरे॥ २८

ततो रथैः सतुरगैर्विमानैश्चाशुगामिभिः।
समीयुस्ते तु संरब्धा रोषादन्योन्यमाहवे॥ २९

संवर्तमानाः समरे विवर्तन्तस्तथापरे।
रथा रथैर्निरुध्यन्ते पदाताश्च पदातिभिः॥ ३०

तेषां रथानां तुमुलः स शब्दः शब्दवाहिनाम्।
बभूवाथ प्रसक्तानां नभसीव पयोमुचाम्॥ ३१

बभञ्जिरे रथान् केचित् केचित् सम्मृदिता रथैः।
सम्बाधमेके सम्प्राप्य न शेकुश्चलितुं रथाः॥ ३२

अन्योन्यस्याभिसमरे दोर्भ्यामुत्क्षिप्य दर्पिताः।
संह्रादमानाभरणा जघ्नुस्तत्रासिचर्मिणः॥ ३३

अस्त्रैरन्ये विनिर्भिन्ना रक्तं वेमुर्हता युधि।
क्षरज्जलानां सदृशा जलदानां समागमे॥ ३४

तदस्त्रशस्त्रग्रथितं क्षिप्तोत्क्षिप्तगदाविलम्।
देवदानवसंक्षुब्धं संकुलं युद्धमाबभौ॥ ३५

तद् दानवमहामेघं देवायुधतडित्प्रभम्।
अन्योन्यबाणवर्षं तद् युद्धं दुर्दिनमाबभौ॥ ३६

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धः कालनेमिर्महासुरः।
व्यवर्द्धत समुद्रौघैः पूर्यमाण इवाम्बुदः॥ ३७

गदाओंके आघातसे कितने ही योद्धाओंके अङ्ग चूर-चूर हो गये, कितनोंके शरीर बाणोंकी चोट खाकर टुकड़े-टुकड़े हो गये, कितने ही गहरी चोटसे पछाड़ खाकर पृथ्वीपर गिर पड़े और कितने ही पीठ ऊपर किये औंधे मुँह लुढ़क गये॥ २८॥ तदनन्तर उस समराङ्गणमें रोषावेशसे भरे हुए उभयपक्षके सैनिक घोड़े जुते हुए रथों और शीघ्रगामी विमानोंद्वारा आगे बढ़कर एक-दूसरेसे भिड़ गये॥ २९॥ रणभूमिमें कितने ही रथी और पैदल योद्धा शत्रुके सामने आते और कितने ही पीठ दिखाकर भागने लगते थे। उस समय उन रथियोंको रथी और पैदलोंको पैदल योद्धा सामने आकर रोक लेते थे॥ ३०॥ घरघराहटकी आवाजके साथ आगे बढ़नेवाले उन रथियोंके रथोंका तुमुल नाद आकाशमें परस्पर टकरानेवाले बादलोंकी गड़गड़ाहटके समान जान पड़ता था॥ ३१॥ कितने ही रथोंने विपक्षियोंके रथोंको तोड़ डाला और कितने ही शत्रुपक्षके रथोंसे रौंदे जाकर धूलमें मिल गये। दूसरे बहुत-से रथ अन्यान्य रथोंद्वारा मार्ग अवरुद्ध हो जानेके कारण आगे बढ़नेमें असमर्थ हो गये॥ ३२॥ कितने ही दर्पमें भरे हुए योद्धा समराङ्गणमें एक-दूसरेके शरीरको अपनी दोनों भुजाओंसे दूर हटाकर आगे बढ़ जाते थे। वहाँ ढाल और तलवार लिये हुए सैनिक जब शत्रुपर प्रहार करते थे, उस समय उनके आभूषण झंकृत हो उठते थे॥ ३३॥ दूसरे बहुत-से सिपाही, जो युद्धस्थलमें मारे जाकर अस्त्रोंसे विदीर्ण हो गये थे, उसी प्रकार रक्त वमन करते थे, जैसे वर्षाकालमें मेघोंकी घटाएँ घिर आनेपर वर्षा करनेवाले बादल जलकी धारा गिराते हैं॥ ३४॥ वह संग्राम अस्त्र-शस्त्रोंसे गुँथ गया था, दोनों ओरसे फेंकी और उछाली जानेवाली गदाओंसे मलिन हो रहा था तथा देवता और दानवोंके क्षोभसे व्याप्त होकर अत्यन्त भयानक प्रतीत होता था॥ ३५॥ वह युद्ध एक दुर्दिनके समान जान पड़ता था। उसमें दानव ही महान् मेघोंकी घटाके समान घिर आये थे, देवताओंके चमकीले अस्त्र-शस्त्र विद्युत्की-सी प्रभा बिखेर रहे थे तथा दोनों दलोंकी ओरसे एक-दूसरेपर जो बाणोंकी बौछार हो रही थी, वही मानो वर्षा थी॥ ३६॥ इसी बीच कुपित हुआ महान् असुर कालनेमि समुद्रकी जलराशिसे परिपूर्ण होकर बढ़नेवाले मेघके समान अपना विशाल रूप प्रकट करने लगा॥ ३७॥

तस्य विद्युच्चलापीडाः प्रदीप्ताशनिवर्षिणः ।
गात्रे नगशिरःप्रख्या विनिष्पेषुर्बलाहकाः ॥ ३८

क्रोधान्निःश्वसतस्तस्य भ्रूभेदस्वेदवर्षिणः ।
साग्निनिष्पेषपवना मुखान्निश्चेरुरर्चिषः ॥ ३९

तिर्यगूर्ध्वं च गगने ववृधुस्तस्य बाहवः ।
पञ्चास्याः कृष्णवपुषो लेलिहाना इवोरगाः ॥ ४०

सोऽस्त्रजालैर्बहुविधैर्धनुर्भिः परिघैरपि ।
दिव्यैराकाशमावव्रे पर्वतैरुच्छ्रितैरिव ॥ ४१

सोऽनिलोद्धूतवसनस्तस्थौ संग्राममूर्धनि ।
संध्यातपग्रस्तशिखः सार्चिर्मेरुरिवापरः ॥ ४२

ऊरुवेगप्रतिक्षिप्तैः शैलशृङ्गाग्रपादपैः ।
अपातयद् देवगणान् वज्रेणेव महागिरीन् ॥ ४३

बाहुभिः शस्त्रनिस्त्रिंशैश्छिन्नभिन्नशिरोरसः ।
न शेकुश्चलितुं देवाः कालनेमिहता युधि ॥ ४४

मुष्टिभिर्निहताः केचित् केचिच्च विदलीकृताः ।
यक्षगन्धर्वपतयः पेतुः सह महोरगैः ॥ ४५

तेन वित्रासिता देवाः समरे कालनेमिना ।
न शेकुर्यत्नवन्तोऽपि प्रतिकर्तुं विचेतसः ॥ ४६

तेन शक्रः सहस्त्राक्षः स्तम्भितः शरबन्धनैः ।
ऐरावतगतः संख्ये चलितुं न शशाक ह ॥ ४७

निर्जलाम्भोदसदृशो निर्जलार्णवसप्रभः ।
निर्व्यापारः कृतस्तेन विपाशो वरुणो मृधे ॥ ४८

रणे वैश्रवणस्तेन परिघैः कालरूपिभिः ।
व्यलपल्लोकपालेशस्त्याजितो धनदक्रियाम् ॥ ४९

मस्तकपर बिजलीके चञ्चल आभूषण धारण किये, प्रज्वलित वज्रकी वर्षा करनेवाले, पर्वतशिखरोंके समान विशालकाय बादल उसके शरीरसे टकराकर चूर-चूर हो जाते थे ॥ ३८ ॥ जब वह क्रोधपूर्वक लम्बी साँस खींचता था, उस समय उसकी भौंहोंमें बल पड़नेसे पसीनेकी बूँदें टपकने लगती थीं और मुखसे वज्र तथा प्रचण्ड वायुसे युक्त आगकी लपटें निकलती रहती थीं ॥ ३९ ॥ उसकी भुजाएँ आकाशमें तिरछी और ऊपरकी दिशामें बढ़ने लगीं। वे ऐसी जान पड़ती थीं, मानो पाँच मुखवाले काले सर्प अपनी जीभ लपलपा रहे हों ॥ ४० ॥ जैसे ऊँचे पर्वत आकाशको घेर लेते हैं, उसी प्रकार उसके चलाये हुए नाना प्रकारके दिव्य अस्त्र-शस्त्र, धनुष और परिघोंने व्योम-मार्गको ढक दिया ॥ ४१ ॥ वह युद्धके मुहानेपर खड़ा था और वायुके वेगसे उसके वस्त्र ऊपरकी ओर फहरा रहे थे। उस समय वह संध्याकालकी धूपसे व्याप्त शिखरवाले प्रकाशयुक्त दूसरे मेरुके समान शोभा पाता था ॥ ४२ ॥ अपनी जाँघोंके वेगसे फेंके गये शैल-शिखरों और बड़े-बड़े वृक्षोंद्वारा वह देवताओंको उसी तरह धराशायी करने लगा, जैसे इन्द्रने वज्रसे महान् पर्वतोंको पृथ्वीपर गिरा दिया था ॥ ४३ ॥ उस युद्धमें कालनेमिकी मार खाकर घायल हुए देवता चलने-फिरनेकी भी शक्ति खो बैठे। उसकी भुजाओंके आघातसे तथा शस्त्रों एवं खड्गोंकी चोटसे उनके मस्तक और वक्षःस्थल छिन्न-भिन्न हो गये थे ॥ ४४ ॥ कितने ही यक्ष, गन्धर्वराज और बड़े-बड़े नाग उसके मुक्कोंकी मारसे मर गये और कितने ही विदीर्ण होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ४५ ॥ उस युद्धमें कालनेमिने देवताओंको इतना भयभीत कर दिया कि वे अपनी सुध-बुध खो बैठे और बहुत यत्न करके भी उसका कोई प्रतीकार न कर सके ॥ ४६ ॥ उसने रणभूमिमें ऐरावतपर बैठे हुए सहस्रनेत्रधारी इन्द्रको बाणोंके बन्धनमें बाँधकर स्तब्ध कर दिया। वे वहाँसे चलनेमें भी असमर्थ हो गये ॥ ४७ ॥ समराङ्गणमें कालनेमिने वरुणका पाश छीनकर उन्हें उससे वञ्चित कर दिया; अतः उनका युद्धविषयक सारा व्यापार ठप हो गया। वे निर्जल बादल और बिना पानीके समुद्रकी भाँति श्रीहीन हो गये ॥ ४८ ॥ उस रणक्षेत्रमें उसके कालरूपी परिघोंकी मार खाकर लोकपालेश्वर कुबेर विलाप करने लगे। उसने उनसे धनाध्यक्ष कुबेरके कार्यका बलपूर्वक त्याग करा दिया ॥ ४९ ॥

यमः सर्वहरस्तेन दण्डप्रहरणो रणे।
याम्यामवस्थां समरे नीतः स्वां दिशमाविशत्॥ ५०

स लोकपालानुत्साद्य कृत्वा तेषां च कर्म तत्।
दिक्षु सर्वासु देहं स्वं चतुर्धा विदधे तदा॥ ५१

स नक्षत्रपथं गत्वा दिव्यं स्वर्भानुदर्शितम्।
जहार लक्ष्मीं सोमस्य तं चास्य विषयं महत्॥ ५२

चालयामास दीप्तांशुं स्वर्गद्वारात् स भास्करम्।
सायनं चास्य विषयं जहार दिनकर्म च॥ ५३

सोऽग्निं देवमुखे दृष्ट्वा चकारात्ममुखे स्वयम्।
वायुं च तरसा जित्वा चकारात्मवशानुगम्॥ ५४

ससमुद्राः समानीय सर्वाश्च सरितो बलात्।
चकारात्मवशे वीर्याद् देहभूताश्च सिन्धवः॥ ५५

अपः स्ववशगाः कृत्वा दिविजा याश्च भूमिजाः।
स्थापयामास जगतीं सुगुप्तां धरणीधरैः॥ ५६

स स्वयम्भूरिवाभाति महाभूतपतिर्महान्।
सर्वलोकमयो दैत्यः सर्वलोकभयावहः॥ ५७

स लोकपालैकवपुश्चन्द्रसूर्यग्रहात्मवान्।
पावकानिलसङ्घातो रराज युधि दानवः॥ ५८

पारमेष्ठ्ये स्थितः स्थाने लोकानां प्रभवाप्यये।
तुष्टुवुस्तं दैत्यगणा देवा इव पितामहम्॥ ५९

सबके प्राण लेनेवाले दण्डधारी यमको भी उसने रणभूमिमें याम्यदशा (अचेतनावस्था)-को पहुँचा दिया, अतः वे भयभीत होकर अपनी दक्षिण दिशामें घुस गये॥ ५०॥ इस प्रकार समस्त लोकपालोंको दूर भगाकर उसने उन सबके कार्यका सम्पादन अपने हाथमें ले लिया और सम्पूर्ण दिशाओंमें स्थापित करनेके लिये अपने शरीरको चार प्रकारका बना लिया॥ ५१॥ उसने राहुके दिखाये हुए दिव्य नक्षत्रपथमें जाकर राजा सोमकी राजलक्ष्मी तथा उनके विशाल राज्यका भी अपहरण कर लिया॥ ५२॥ उसने उद्दीप्त किरणोंवाले सूर्यको स्वर्गद्वारसे हटा दिया तथा अयनसहित उनके सारे राज्य और दिन-सम्बन्धी कर्मको भी उनसे छीनकर अपने अधिकारमें कर लिया॥ ५३॥ कालनेमिने अग्निको देवताओंके मुखमें स्थित देख स्वयं बलपूर्वक उन्हें अपने मुखमें स्थापित किया और वायुको भी वेगसे पराजित करके अपनी आज्ञाके अधीन कर लिया॥ ५४॥ समुद्रोंसहित सम्पूर्ण सरिताओंको बलपूर्वक ले आकर कालनेमिने अपने पराक्रमसे उन सबको वशमें कर लिया। समस्त सागर उसके शरीररूप हो गये थे॥ ५५॥ उसने आकाश और पृथ्वीके जलको अपने वशमें करके उसके ऊपर पर्वतोंद्वारा सुरक्षित पृथ्वीको स्थापित किया॥ ५६॥ समस्त लोकोंको भय देनेवाला वह महान् दैत्य पञ्चमहाभूतोंका अधिपति एवं सर्वलोकमय होकर स्वयम्भू ब्रह्माके समान शोभा पाने लगा॥ ५७॥ उस युद्धस्थलमें दानव कालनेमि एकमात्र स्वयं ही समस्त लोकपालोंके रूपमें प्रतिष्ठित हुआ था। चन्द्रमा, सूर्य और अन्य ग्रह सबके रूपमें उसका शरीर ही काम कर रहा था। अग्नि और वायु भी उसके शरीर बन गये थे, इस प्रकार उसकी बड़ी शोभा हो रही थी॥ ५८॥ समस्त लोकोंकी उत्पत्ति और प्रलयके कारणभूत ब्रह्मलोकमें स्थित होकर वह ब्रह्मा बन बैठा था। उस समय दैत्यगण उसकी उसी तरह स्तुति करते थे, जैसे देवता ब्रह्माकी करते हैं॥ ५९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि आश्चर्यतारकामये सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें आश्चर्यतारकामय संग्रामविषयक सैंतालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४७॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

कालनेमि और भगवान् विष्णुका संवाद, श्रीविष्णुद्वारा कालनेमिका वध तथा देवताओंको आश्वासन देकर ब्रह्मलोकको प्रस्थान

वैशम्पायन उवाच

पञ्च तं नाभ्यवर्तन्त विपरीतेन कर्मणा।
वेदो धर्मः क्षमा सत्यं श्रीश्च नारायणाश्रया॥ १

स तेषामनुपस्थानात् सक्रोधो दानवेश्वरः।
वैष्णवं पदमन्विच्छन् ययौ नारायणान्तिकम्॥ २

स ददर्श सुपर्णस्थं शङ्खचक्रगदाधरम्।
दानवानां विनाशाय भ्रामयन्तं गदां शुभाम्॥ ३

सजलाम्भोदसदृशं विद्युत्सदृशवाससम्।
स्वारूढं स्वर्णपत्राढ्यं शिखिनं काश्यपं खगम्॥ ४

दृष्ट्वा दैत्यविनाशाय रणे स्वस्थमवस्थितम्।
दानवो विष्णुमक्षोभ्यं बभाषे क्षुब्धमानसः॥ ५

अयं स रिपुरस्माकं पूर्वेषां दानवर्षिणाम्।
अर्णवावासिनश्चैव मधोर्वै कैटभस्य च॥ ६

अयं स विग्रहोऽस्माकमशाम्यः किल कथ्यते।
येन नः संयुगेष्वाद्या बहवो दानवा हताः॥ ७

अयं स निर्घृणो युद्धेऽस्त्री बालनिरपत्रपः।
येन दानवनारीणां सीमन्तोद्धरणं कृतम्॥ ८

अयं स विष्णुर्देवानां वैकुण्ठश्च दिवौकसाम्।
अनन्तो भोगिनामप्सु स्वयम्भूश्च स्वयम्भुवः॥ ९

अयं स नाथो देवानामस्माकं विप्रिये स्थितः।
अस्य क्रोधेन महता हिरण्यकशिपुर्हतः॥ १०

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! कालनेमिके द्वारा शास्त्रविपरीत कर्म किये जानेके कारण वेद, धर्म, क्षमा, सत्य और भगवान् नारायणके आश्रयमें रहनेवाली लक्ष्मी—ये पाँचों उसके पास नहीं आये॥ १॥ उनके उपस्थित न होनेसे दानवराज कालनेमिको बड़ा क्रोध हुआ। वह भगवान् विष्णुके पद एवं वैकुण्ठधामको अपने अधीन कर लेनेकी इच्छासे उन श्रीनारायणदेवके निकट गया॥ २॥ उसने देखा—शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् नारायण गरुड़की पीठपर विराजमान हैं और दानवोंका विनाश करनेके लिये अपनी कल्याणमयी कौमोदकी गदाको घुमा रहे हैं॥ ३॥ उनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति सजल जलधरके समान श्याम है। उनपर विद्युत्की-सी दीप्तिसे दमकता हुआ रेशमी पीताम्बर शोभा पा रहा है। वे भगवान् विष्णु जिन कश्यपकुमार आकाशचारी गरुड़पर आरूढ़ हैं, उनके दोनों पंख सुवर्णके समान सुशोभित हैं और मस्तकपर शिखा शोभा दे रही है॥ ४॥ जिन्हें कोई भी क्षोभमें नहीं डाल सकता, उन भगवान् विष्णुको दैत्योंके विनाशके लिये रणक्षेत्रमें स्वस्थभावसे खड़ा देख दानव कालनेमिका हृदय क्षोभसे भर गया और वह इस प्रकार कहने लगा—॥ ५॥ 'यही हमारे पूर्ववर्ती दानवर्षियोंका तथा एकार्णववासी मधु एवं कैटभका सुप्रसिद्ध शत्रु है॥ ६॥ कहते हैं, यही हमलोगोंका वह मूर्तिमान् विग्रह (युद्ध) है, जिसे शान्त करना सर्वथा असम्भव है। इसने अनेक संग्रामोंमें हमारे बहुत-से पूर्वज दानवोंका वध किया है॥ ७॥ यह वही निर्दयी है, जो युद्धमें अस्त्र धारण करके बालकोंके समान निर्लज्ज होता है। इसीने दानवनारियोंके सीमन्तका सौभाग्यचिह्न सदाके लिये उतार दिया है॥ ८॥ यही वह देवताओंका पक्षपाती विष्णु और स्वर्गवासियोंका वैकुण्ठ है। यही जलमें रहनेवाले सर्पोंका अनन्त और स्वयम्भू ब्रह्माका भी ब्रह्मा है॥ ९॥ यही वह देवताओंका रक्षक है, जो सदा हमारा अप्रिय करनेमें ही लगा रहता है। इसीके महान् क्रोधसे दैत्यराज हिरण्यकशिपु मारे गये थे'॥ १०॥

अस्यच्छायां समासाद्य देवा मखमुखे स्थिताः।
आज्यं महर्षिभिर्दत्तमश्नुवन्ति त्रिधा हुतम्॥ ११

अयं स निधने हेतुः सर्वेषां देवविद्विषाम्।
यस्य तेजःप्रविष्टानि कुलान्यस्माकमाहवे॥ १२

अयं स किल युद्धेषु सुरार्थे त्यक्तजीवितः।
सवितुस्तेजसा तुल्यं चक्रं क्षिपति शत्रुषु॥ १३

अयं स कालो दैत्यानां कालभूते मयि स्थिते।
अतिक्रान्तस्य कालस्य फलं प्राप्स्यति दुर्मतिः॥ १४

दिष्ट्येदानीं समक्षं मे विष्णुरेष समागतः।
अद्य मद्बाणनिष्पिष्टो मामेव प्रणमिष्यति॥ १५

यास्याम्यपचितिं दिष्ट्या पूर्वेषामद्य संयुगे।
इमं नारायणं हत्वा दानवानां भयावहम्॥ १६

क्षिप्रमेव वधिष्यामि रणे नारायणाश्रितान्।
जात्यन्तरगतोऽप्येष मृधे बाधति दानवान्॥ १७

एषोऽनन्तः पुरा भूत्वा पद्मनाभ इति स्मृतः।
जघानैकार्णवे घोरे तावुभौ मधुकैटभौ।
विनिवेश्य स्वके ऊरौ निहतौ दानवेश्वरौ॥ १८

द्विधाभूतं वपुः कृत्वा सिंहार्धं नरसंस्थितम्।
पितरं मे जघानैको हिरण्यकशिपुं पुरा॥ १९

शुभं गर्भमधत्तेममदितिर्देवतारणिः।
यज्ञकाले बलेर्यो वै कृत्वा वामनरूपताम्।
त्रीँल्लोकानाजहारैकः क्रममाणस्त्रिभिः क्रमैः॥ २०

'इसीकी छायामें रहकर देवता यज्ञके मुखभागमें स्थित हो महर्षियोंद्वारा तीन[१] प्रकारसे हवन करके अर्पित किये गये हविष्यका उपभोग करते हैं॥ ११॥ यही समस्त देवद्रोही दैत्योंकी मृत्युमें प्रधान कारण है। समराङ्गणमें हमारे कितने ही कुल इसके तेजमें प्रविष्ट होकर भस्म हो गये॥ १२॥ कहते हैं, यह वही सुविख्यात विष्णु है, जो युद्धमें देवताओंके लिये अपना जीवन निछावर किये रहता है। यह शत्रुओंपर सूर्यके समान तेजस्वी चक्र चलाया करता है॥ १३॥ यही वह दैत्योंका काल है, परंतु आज इसका भी काल होकर मैं खड़ा हूँ। मेरे रहते हुए ही यह दुर्बुद्धि अपने पूर्वकालकी करतूतोंका फल पायेगा॥ १४॥ सौभाग्यकी बात है कि इस समय यह विष्णु मेरे सामने आ गया। आज यह मेरे बाणोंसे पिस जायगा और धरतीपर गिरकर मुझे ही प्रणाम करेगा॥ १५॥ आज समराङ्गणमें दानवोंको भय देनेवाले इस नारायणका वध करके मैं शीघ्र ही इसके आश्रित रहनेवाले देवताओंका भी संहार कर डालूँगा। ऐसा करके अपने पूर्वजोंके ऋणसे उऋण हो सकूँगा, यह मेरे लिये बड़े सौभाग्यकी बात होगी। (मत्स्य, वराह आदि) दूसरी-दूसरी योनियोंमें जन्म धारण करके भी यह युद्धमें दानवोंको ही सताया करता है। यद्यपि यह अनन्त (आकाशकी भाँति असीम एवं व्यापक) है तो भी पूर्वकालमें मूर्तिमान् होकर प्रकट हुआ। उस समय इसकी पद्मनाभ नामसे प्रसिद्धि हुई। इसने भयंकर एकार्णवमें विचरनेवाले दोनों भाई दानवराज मधु और कैटभको अपनी जाँघपर सुलाकर मार डाला था॥ १६—१८॥ इसीने पूर्वकालमें आधे नर और आधे सिंहके रूपमें दो प्रकारका शरीर धारण करके अकेले ही मेरे पिता हिरण्यकशिपुका वध किया था॥ १९॥ जो देवतारूपी अग्निको प्रकट करनेके लिये अरणिके समान हैं, उन अदिति देवीने शुभ गर्भके रूपमें इसे धारण किया था। वही गर्भ बलिके यज्ञके समय अपनेको वामनरूपमें प्रकट करके आया। उस समय इसने अकेले ही तीन पगोंसे तीनों लोकोंको नापकर उन्हें बलिके अधिकारसे छीन लिया'॥ २०॥

१- अङ्ग होम, प्रधान होम और प्रायश्चित्त होम—ये होमके तीन प्रकार हैं। कुछ लोग नित्य, नैमित्तिक और काम्य भेदसे उसे तीन प्रकारका बताते हैं। कुछ दूसरे विद्वान् आहवनीय, गार्हपत्य तथा दक्षिणाग्नि रूप उपाधिके भेदसे उसकी त्रिविधताका प्रतिपादन करते हैं।

भूयस्त्विदानीं समरे सम्प्राप्ते तारकामये।
मया सह समागम्य सह देवैर्विनङ्क्ष्यति॥ २१

स एवमुक्त्वा बहुधा क्षिपन्नारायणं रणे।
वाग्भिरप्रतिरूपाभिर्युद्धमेवाभ्यरोचयत्॥ २२

क्षिप्यमाणोऽसुरेन्द्रेण न चुकोप गदाधरः।
क्षमाबलेन महता सस्मितं वाक्यमब्रवीत्॥ २३

अल्पदर्पबलो दैत्य स्थितः क्रोधादसद्वदन्।
हतस्त्वमात्मनो दोषैः क्षमां योऽतीत्य भाषसे॥ २४

अधमस्त्वं मम मतो धिगेतत् तव वाग्बलम्।
न तत्र पुरुषाः सन्ति यत्र गर्जन्ति योषितः॥ २५

अहं त्वां दैत्य पश्यामि पूर्वेषां मार्गगामिनम्।
प्रजापतिकृतं सेतुं को भित्त्वा स्वस्तिमान् भवेत्॥ २६

अद्य त्वां नाशयिष्यामि देवव्यापारकारकम्।
स्वेषु स्वेषु च स्थानेषु स्थापयिष्यामि देवताः॥ २७

वैशम्पायन उवाच

एवं ब्रुवति तद् वाक्यं मृधे श्रीवत्सधारिणि।
जहास दानवः क्रोधाद्धस्तांश्चक्रे च सायुधान्॥ २८

स बाहुशतमुद्यम्य सर्वास्त्रग्रहणं रणे।
क्रोधाद् द्विगुणरक्ताक्षो विष्णुं वक्षस्यताडयत्॥ २९

दानवाश्चापि समरे मयतारपुरोगमाः।
उद्यतायुधनिस्त्रिंशा दृष्ट्वा विष्णुमथाद्रवन्॥ ३०

स ताड्यमानोऽतिबलैर्दैत्यैः सर्वायुधोद्यतैः।
न चचाल हरिर्युद्धेऽकम्प्यमान इवाचलः॥ ३१

'अब पुनः इस समय इस तारकामय संग्रामका अवसर प्राप्त होनेपर इसने पदार्पण किया है, किंतु अब मेरे साथ भिड़कर यह देवताओंसहित नष्ट हो जायगा'॥ २१॥ ऐसा कहकर रणभूमिमें भगवान् नारायणपर अयोग्य वचनोंद्वारा नाना प्रकारके आक्षेप करते हुए कालनेमिने उनके साथ युद्ध करना ही पसंद किया॥ २२॥ असुरराज कालनेमिके इस प्रकार आक्षेप करनेपर भी भगवान् गदाधरने उसपर क्रोध नहीं किया; क्योंकि वे महान् क्षमाबलसे सम्पन्न थे।' उन्होंने मुसकराते हुए कहा— ॥ २३॥ 'दैत्य! तुझमें दर्प और बल तो बहुत थोड़ा है, किंतु तू क्रोधके कारण ओछी बातें बकता हुआ यहाँ खड़ा है। अरे! तू क्षमा अथवा सहनशीलताका उल्लङ्घन करके बढ़-बढ़कर बातें बना रहा है, इसलिये अपने ही दोषोंसे मारा जा चुका है॥ २४॥ मेरे विचारसे तो तू अधम है! तेरे इस वाग्बलको धिक्कार है। अरे! जहाँ पुरुष न हों, केवल स्त्रियाँ ही हों, वहाँ लोग इस तरहकी गर्जना करते हैं, जहाँ वीर पुरुष हों वहाँ नहीं' (क्योंकि वहाँ गर्जना करनेसे वे उन वीर पुरुषोंद्वारा मार डाले जाते हैं)॥ २५॥ 'दैत्य! मैं तो देखता हूँ, तू अपने पूर्वजोंके ही मार्गपर जानेवाला है। भला! प्रजापतिद्वारा नियत की हुई मर्यादाको भङ्ग करके कौन सकुशल रह सकता है॥ २६॥ तू दानव होकर देवताओंका कार्य स्वयं कर रहा है—तूने उनका अधिकार उनसे छीन लिया है, इसलिये आज मैं तेरा विनाश कर डालूँगा और देवताओंको पुनः अपने-अपने स्थानों (पदों)-पर स्थापित कर दूँगा'॥ २७॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिह्न धारण करनेवाले भगवान् नारायण जब उस रणभूमिमें ऐसी बातें कर रहे थे, उस समय वह दानव वहाँ क्रोधपूर्वक हँसने लगा। उसने तुरंत ही अपने हाथोंमें हथियार ले लिये॥ २८॥ उसने समरभूमिमें सब प्रकारके अस्त्रोंको ग्रहण करनेवाली अपनी सौ भुजाओंको ऊपर उठाकर भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें प्रहार किया। उस समय उसकी आँखें क्रोधके कारण दुगुनी लाल हो रही थीं॥ २९॥ मय और तार आदि दानव भी रणभूमिमें भगवान् विष्णुको उपस्थित देख हाथोंमें भाँति-भाँतिके आयुध और तलवार लिये उनकी ओर दौड़े॥ ३०॥ सब प्रकारके आयुध लेकर उद्यत हुए अत्यन्त बलशाली दैत्योंके प्रहार करनेपर भी भगवान् श्रीहरि युद्धभूमिमें कभी कम्पित न होनेवाले पर्वतके समान विचलित नहीं हुए (अविचलभावसे खड़े रहे)॥ ३१॥

संसक्तश्च सुपर्णेन कालनेमी महासुरः।
सर्वप्राणेन महतीं गदामुद्यम्य बाहुभिः॥ ३२

मुमोच ज्वलितां घोरां संरब्धो गरुडोपरि।
कर्मणा तेन दैत्यस्य विष्णुर्विस्मयमागतः॥ ३३

यदा तस्य सुपर्णस्य पतिता मूर्ध्नि सा गदा।
तदाऽऽगमत् पदा भूमिं पक्षी व्यथितविग्रहः॥ ३४

सुपर्णं व्यथितं दृष्ट्वा क्षतं च वपुरात्मनः।
क्रोधात् संरक्तनयनो वैकुण्ठश्चक्रमाददे॥ ३५

व्यवर्धत च वेगेन सुपर्णेन समं प्रभुः।
भुजाश्चास्य व्यवर्धन्त व्याप्नुवन्तो दिशो दश॥ ३६

स दिशः प्रदिशश्चैव खं च गां चैव पूरयन्।
ववृधे स पुनर्लोकान् क्रान्तुकाम इवौजसा॥ ३७

तं जयाय सुरेन्द्राणां वर्धमानं नभस्तले।
ऋषयः सह गन्धर्वैस्तुष्टुवुर्मधुसूदनम्॥ ३८

स द्यां किरीटेन लिखन् साभ्रमम्बरमम्बरैः।
पद्भ्यामाक्रम्य वसुधां दिशः प्रच्छाद्य बाहुभिः॥ ३९

सूर्यस्य रश्मितुल्याभं सहस्रारमरिक्षयम्।
दीप्ताग्निसदृशं घोरं दर्शनीयं सुदर्शनम्॥ ४०

सुवर्णनेमिपर्यन्तं वज्रनाभं भयावहम्।
मेदोमज्जास्थिरुधिरैर्दिग्धं दानवसम्भवैः॥ ४१

अद्वितीयं प्रहारेषु क्षुरपर्यन्तमण्डलम्।
स्रग्दाममालाविततं कामगं कामरूपिणम्॥ ४२

इतनेहीमें महान् असुर कालनेमि गरुड़के साथ उलझ गया। उसने अपनी भुजाओंद्वारा सारी शक्ति लगाकर एक विशाल गदा उठायी, जो तेजसे प्रज्वलित हो रही थी। उस भयंकर गदाको उसने रोषमें भरकर गरुड़पर छोड़ दिया। उस दैत्यके इस कर्मसे भगवान् विष्णुको भी बड़ा विस्मय हुआ॥ ३२-३३॥ जिस समय गरुड़के मस्तकपर वह गदा गिरी, उस समय वह पंजोंके बलसे पृथ्वीपर आकर टिक गये। उनका सारा शरीर व्यथित हो गया था॥ ३४॥ गरुड़को गदाके आघातसे पीड़ित और अपने शरीरको भी क्षत-विक्षत देखकर भगवान् विष्णुके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। उन्होंने चक्र हाथमें ले लिया॥ ३५॥ तदनन्तर भगवान् नारायणका वेग गरुड़के समान ही बढ़ने लगा। उनकी चारों भुजाएँ दसों दिशाओंको व्याप्त करती हुई बढ़ने लगीं॥ ३६॥ वे दिशाओं, अवान्तर दिशाओं, आकाश और पृथ्वीको परिपूर्ण करते हुए इस प्रकार बढ़ने लगे, मानो पुनः बलपूर्वक तीनों लोकोंको आक्रान्त करना चाहते हों॥ ३७॥ देवेश्वरोंकी विजयके लिये आकाशमें बढ़ते हुए उन भगवान् मधुसूदनकी गन्धर्वोंसहित ऋषि स्तुति करने लगे॥ ३८॥ वे अपने मस्तकके किरीटसे स्वर्गलोककी भूमिपर रेखा-सी खींचते, फहराते हुए वस्त्रोंद्वारा बादलोंसहित आकाशको ढकते और चारों बाहोंसे सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित करते हुए अपने दोनों पैरोंसे पृथ्वीको दबाकर खड़े हो गये॥ ३९॥ जिसकी प्रभा सूर्यकी किरणोंके समान उद्भासित होती है, जिसमें एक सहस्र अरे लगे हुए हैं, जो शत्रुओंका विनाश करनेमें समर्थ है, जिसे प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी बताया गया है, जो भयंकर होनेपर भी दर्शनीय है, इसीलिये जिसे सुदर्शन कहते हैं, जिसके किनारेपर सुवर्णमयी नेमि (हाल) लगी हुई है, जिसकी नाभि वज्रके समान सुदृढ़ है, जो शत्रुओंको भय देनेवाला है, दानवोंके मेद, मज्जा, अस्थि तथा रुधिरसे जिसकी पुष्टि हुई है, जो प्रहारके साधनोंमें अद्वितीय (अनुपम) है, उसके प्रान्तभागमें मण्डलाकार छुरे लगे हुए हैं, जो फूल-मालाकी लड़ियोंके समान विस्तृत है, इच्छानुसार चलने और मनमाना रूप धारण करनेमें समर्थ है॥ ४०—४२॥

स्वयं स्वयम्भुवा सृष्टं भयदं सर्वविद्विषाम्।
महर्षिरोषैराविष्टं नित्यमाहवदर्पितम्॥ ४३
क्षेपणाद् यस्य मुह्यन्ति लोकाःसस्थाणुजङ्गमाः।
क्रव्यादानि च भूतानि तृप्तिं यान्ति महाहवे॥ ४४
तमप्रतिमकर्माणं समानं सूर्यवर्चसा।
चक्रमुद्यम्य समरे क्रोधदीप्तो गदाधरः॥ ४५
सम्मुष्णन् दानवं तेजः समरे स्वेन तेजसा।
चिच्छेद बाहुं चक्रेण श्रीधरः कालनेमिनः॥ ४६
तच्च वक्त्रशतं घोरं साग्निचूर्णाट्टहासिनम्।
तस्य दैत्यस्य चक्रेण प्रममाथ बलाद्धरिः॥ ४७
स च्छिन्नबाहुर्विशिरा न प्राकम्पत दानवः।
कबन्धोऽवस्थितः संख्ये विशाख इव पादपः॥ ४८
तं वितत्य महापक्षी वायोः कृत्वा समं जवम्।
उरसा पातयामास गरुडः कालनेमिनम्॥ ४९
स तस्य देहो विमुखो विशाखः खात् परिभ्रमन्।
निपपात दिवं त्यक्त्वा क्षोभयन् धरणीतलम्॥ ५०
तस्मिन्निपतिते दैत्ये देवाः सर्षिगणास्तदा।
साधु साध्विति वैकुण्ठं समेताः प्रत्यपूजयन्॥ ५१
अपरे ये तु दैत्या वै युद्धे दुष्टपराक्रमाः।
ते सर्वे बाहुभिर्व्याप्ता न शेकुश्चलितुं रणे॥ ५२
कांश्चित्केशेषु जग्राह कांश्चित्कण्ठेऽभ्यपीडयत्।
पाटयत्कस्यचिद् वक्त्रं मध्ये कांश्चिदथाग्रहीत्॥ ५३
ते गदाचक्रनिर्दग्धा गतसत्त्वा गतासवः।
गगनाद् भ्रष्टसर्वाङ्गा निपेतुर्धरणीतले॥ ५४
तेषु सर्वेषु दैत्येषु हतेषु पुरुषोत्तमः।
तस्थौ शक्रप्रियं कृत्वा कृतकर्मा गदाधरः॥ ५५
तस्मिन् विमर्दे निर्वृत्ते संग्रामे तारकामये।
तं देशमाजगामाशु ब्रह्मा लोकपितामहः॥ ५६
सर्वैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्धं गन्धर्वैः साप्सरोगणैः।
देवदेवो हरिं देवं पूजयन् वाक्यमब्रवीत्॥ ५७

समस्त शत्रुओंको भय देनेवाले जिस दिव्य अस्त्रकी साक्षात् ब्रह्माजीने सृष्टि की है, अत्याचारी असुरोंके प्रति महर्षियोंके मनमें जो रोष होते हैं, उनसे जो सदा आविष्ट रहता है, युद्धके अवसरोंपर जो दर्पसे भरा होता है, जिसके प्रहारसे चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोक मोहमें पड़ जाते हैं और महासमरमें जिसके प्रभावसे मांसभक्षी प्राणियोंको तृप्ति प्राप्त होती है, उस अनुपम कर्म करनेवाले सूर्यतुल्य तेजस्वी चक्रको हाथमें उठाकर भगवान् गदाधर समराङ्गणमें क्रोधसे उद्दीप्त हो उठे॥ ४३—४५॥ लक्ष्मीको वक्षःस्थलमें धारण करनेवाले श्रीहरिने समरभूमिमें अपने तेजसे दानवोंके तेजका अपहरण करके उस चक्रसे कालनेमिकी भुजाओंको काट डाला॥ ४६॥ साथ ही जिनके अट्टहास करनेपर अग्निचूर्ण प्रकट होते थे, उस दैत्यके उन सौ भयंकर मुखोंको भी भगवान् विष्णुने उस चक्रके द्वारा बलपूर्वक मथ डाला॥ ४७॥ भुजाओं और मस्तकोंके कट जानेपर भी वह दानव कम्पित नहीं हुआ। उसका धड़ युद्धस्थलमें शाखारहित वृक्षके समान खड़ा रहा॥ ४८॥ तब महापक्षी गरुड़ने अपने पंख फैलाकर वायुके समान वेग प्रकट करके कालनेमिको अपनी छातीके धक्केसे गिरा दिया॥ ४९॥ उसका वह मस्तक और भुजाओंसे रहित शरीर स्वर्गलोकको त्यागकर आकाशसे चक्कर काटता और भूतलको क्षुब्ध करता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ५०॥ उस दैत्यके धराशायी होनेपर ऋषियोंसहित सम्पूर्ण देवता साधु-साधु कहते हुए वहाँ आये और भगवान् विष्णुकी पूजा एवं प्रशंसा करने लगे॥ ५१॥ उसके सिवा जो दूसरे दुष्ट पराक्रमी दैत्य थे, वे सब भगवान् विष्णुकी भुजाओंसे अवरुद्ध होकर रणभूमिमें हिल-डुल भी न सके॥ ५२॥ भगवान्ने किन्हींके केश पकड़कर उन्हें टाँग लिया, किन्हींके गले दबा दिये, किन्हींके मुख फाड़ दिये और कुछ दैत्योंकी कमर पकड़कर तोड़ डाली॥ ५३॥ वे दैत्य गदा और चक्रके तेजसे दग्ध हो अपने धैर्य और प्राण खो बैठे। उनके सारे अङ्ग आकाशसे भ्रष्ट होकर भूतलपर गिर पड़े॥ ५४॥ उन सब दैत्योंके मारे जानेपर इन्द्रका प्रिय करके कृतकृत्य हुए गदाधारी भगवान् पुरुषोत्तम वहाँ चुपचाप खड़े हो गये॥ ५५॥ तारकामय संग्रामकी वह मार-काट समाप्त होनेपर देवाधिदेव लोकपितामह ब्रह्मा समस्त ब्रह्मर्षियों, गन्धर्वों और अप्सराओंके साथ शीघ्र ही उस प्रदेशमें आ पहुँचे और श्रीनारायणदेवकी पूजा करते हुए बोले— ॥ ५६-५७॥

ब्रह्मोवाच

कृतं देव महत्कर्म सुराणां शल्यमुद्धृतम्।
वधेनानेन दैत्यानां वयं हि परितोषिताः॥ ५८
योऽयं हतस्त्वया विष्णो कालनेमी महासुरः।
त्वमेकोऽस्य मृधे हन्ता नान्यः कश्चन विद्यते॥ ५९
एष देवान् परिभवँल्लोकांश्च सचराचरान्।
ऋषीणां कदनं कृत्वा मामपि प्रतिगर्जति॥ ६०
तदनेन तवोग्रेण परितुष्टोऽस्मि कर्मणा।
यदयं कालतुल्याभः कालनेमी निपातितः॥ ६१
तदागच्छस्व भद्रं ते गच्छाम दिवमुत्तमम्।
ब्रह्मर्षयस्त्वां तत्रस्थाः प्रतीक्षन्ते सदोगताः॥ ६२
अहं महर्षयश्चैव तत्र त्वां वदतां वर।
विधिवच्चार्चयिष्यामो गीर्भिर्दिव्याभिरच्युत॥ ६३
किं चाहं तव दास्यामि वरं वरभृतां वर।
सुरेष्वपि सदैत्येषु वराणां वरदो भवान्॥ ६४
निर्यातयैतत् त्रैलोक्यं स्फीतं निहतकण्टकम्।
अस्मिन्नेव मृधे विष्णो शक्राय सुमहात्मने॥ ६५
एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणा हरिरव्ययः।
देवाञ्छक्रमुखान् सर्वानुवाच शुभया गिरा॥ ६६

विष्णुरुवाच

श्रूयतां त्रिदशाः सर्वे यावन्तोऽत्र समागताः।
श्रवणावहितैर्देहैः पुरस्कृत्य पुरंदरम्॥ ६७
अस्मिन्नः समरे सर्वे कालनेमिमुखा हताः।
दानवा विक्रमोपेताः शक्रादपि महत्तराः॥ ६८
तस्मिन् महति संक्रन्दे द्वावेव तु विनिस्सृतौ।
वैरोचनश्च दैत्येन्द्रः स्वर्भानुश्च महाग्रहः॥ ६९
तदिष्टां भजतां शक्रो दिशं वरुण एव च।
याम्यां यमः पालयतामुत्तरां च धनाधिपः॥ ७०
ऋक्षैः सह यथायोगं काले चरतु चन्द्रमाः।
अब्दं चर्तुमुखं सूर्यो भजतामयनैः सह॥ ७१

ब्रह्माजीने कहा—देव! आपने यह बहुत बड़ा कार्य किया। देवताओंका काँटा निकाल दिया। दैत्योंके इस वधसे हमें बड़ा संतोष हुआ है॥ ५८॥ विष्णो! आपके द्वारा जो यह कालनेमि नामक महान् असुर मारा गया है, इसे एकमात्र आप ही युद्धमें मार सकते थे; दूसरा कोई ऐसा नहीं है॥ ५९॥ यह देवताओं तथा चराचर प्राणियोंसहित समस्त लोकोंका तिरस्कार करता था और ऋषियोंका संहार करके मेरे सामने भी गर्जना किया करता था॥ ६०॥ अतः आपने जो कालके समान प्रतीत होनेवाले इस कालनेमि नामक दैत्यको मार गिराया है, आपके इस उग्र पराक्रमसे मैं बहुत संतुष्ट हूँ॥ ६१॥ इसलिये आइये, आपका कल्याण हो। अब हमलोग उत्तम दिव्य लोकको चलें। वहाँ दिव्य सभामें बैठे हुए वहाँके निवासी ब्रह्मर्षि आपकी प्रतीक्षा करते हैं॥ ६२॥ वक्ताओंमें श्रेष्ठ अच्युत! वहाँ मैं तथा महर्षिगण दिव्य वाणीद्वारा आपकी विधिवत् अर्चना करेंगे॥ ६३॥ वर धारण करनेवालोंमें श्रेष्ठ नारायण! मैं आपको क्या वर दूँगा। दैत्यों और देवताओंमें जितने भी वर (श्रेष्ठ मनोरथ) हैं, उन सबके दाता तो आप ही हैं॥ ६४॥ विष्णो! इस युद्धस्थलमें ही आप महात्मा इन्द्रको त्रिलोकीका यह समृद्धिशाली और अकण्टक राज्य लौटा दीजिये॥ ६५॥ भगवान् ब्रह्माके ऐसा कहनेपर अविनाशी श्रीहरिने अपनी कल्याणमयी वाणीद्वारा इन्द्र आदि समस्त देवताओंसे इस प्रकार कहा—॥ ६६॥

भगवान् विष्णु बोले—जितने देवता यहाँ आये हैं, वे सब लोग अपने शरीर और इन्द्रियोंको मेरी बात सुननेके लिये सावधान रखते हुए इन्द्रको आगे करके मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे सुनें॥ ६७॥ इस युद्धमें हमने इन्द्रसे भी बहुत बढ़े-चढ़े पराक्रमशाली कालनेमि आदि समस्त दानवोंको मार डाला है॥ ६८॥ इस महासंग्रामसे दो ही दैत्य बचकर निकले हैं—विरोचनकुमार दैत्यराज बलि और महान् ग्रह राहु॥ ६९॥ अतः इन्द्र और वरुण अब अपनी-अपनी अभीष्ट दिशाको पुनः ग्रहण करें। यम दक्षिण दिशाका और धनाध्यक्ष कुबेर उत्तर दिशाका पालन करें॥ ७०॥ चन्द्रमा समयानुसार नक्षत्रोंके साथ यथायोग्य विचरें और सूर्य अयनोंसहित ऋतुप्रधान वर्षका आश्रय लें॥ ७१॥

आज्यभागाः प्रवर्तन्तां सदस्यैरभिपूजिताः।
हूयन्तामग्नयो विप्रैर्वेददृष्टेन कर्मणा॥ ७२

देवाश्च बलिहोमेन स्वाध्यायेन महर्षयः।
श्राद्धेन पितरश्चैव तृप्तिं यान्तु यथा पुरा॥ ७३

वायुश्चरतु मार्गस्थस्त्रिधा दीप्यतु पावकः।
त्रयो वर्णाश्च लोकांस्त्रीन् वर्द्धयन्त्वात्मजैर्गुणैः॥ ७४

क्रतवः सम्प्रवर्तन्तां दीक्षणीयैर्द्विजातिभिः।
दक्षिणाश्चोपवर्तन्तां यथार्हं सर्वसत्रिणाम्॥ ७५

गाश्च सूर्यो रसान् सोमो वायुः प्राणांश्च प्राणिषु।
तर्पयन्तः प्रवर्तन्तां शिवैः सौम्यैश्च कर्मभिः॥ ७६

यथावदानुपूर्व्येण महेन्द्रसलिलोद्भवाः।
त्रैलोक्यमातरः सर्वाः सागरं यान्तु निम्नगाः॥ ७७

दैत्येभ्यस्त्यज्यतां भीश्च शान्तिं व्रजत देवताः।
स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि ब्रह्मलोकं सनातनम्॥ ७८

स्वगृहे सर्वलोके वा संग्रामे वा विशेषतः।
विश्रम्भो वो न मन्तव्यो नित्यं क्षुद्रा हि दानवाः॥ ७९

छिद्रेषु प्रहरन्त्येते न चैषां संस्थितिर्ध्रुवा।
सौम्यानामृजुभावानां भवतां चार्जवे मतिः॥ ८०

अहं तु दुष्टभावानां युष्मासु सुदुरात्मनाम्।
असम्यग्वर्तमानानां मोहं दास्यामि देवताः॥ ८१

यदा च सुदुराधर्षं दानवेभ्यो भयं भवेत्।
तदा समुपगम्याशु विधास्ये वस्ततोऽभयम्॥ ८२

(यज्ञमें) सदस्योंद्वारा सब ओरसे पूजित आज्यभाग देवताओंको अर्पित किये जायँ और ब्राह्मणलोग वेदोक्त विधिसे अग्नियोंमें आहुति दें॥ ७२॥ अब पुनः पहलेकी ही भाँति बलि और होमकर्मके द्वारा देवताओंको, स्वाध्यायके द्वारा महर्षियोंको तथा श्राद्धकर्मके सम्पादनसे पितरोंको संतुष्ट किया जाय और वे पूर्णतः तृप्त हों॥ ७३॥ वायुदेव अपने मार्गपर रहकर विचरण करें, अग्निदेव (गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि तथा आहवनीय—इन) तीन-तीन रूपोंमें सदा प्रकाशित होते रहें तथा तीनों वर्णोंके लोग अपने (शम, दम, तप एवं शौच आदि) सहज गुणोंसे तीनों लोकोंकी वृद्धि करें॥ ७४॥ यज्ञदीक्षाके अधिकारी द्विजातियोंद्वारा यज्ञोंका अनुष्ठान होता रहे और समस्त यजमानोंके यज्ञोंमें यथायोग्य दक्षिणाएँ दी जायँ॥ ७५॥ सूर्यदेव सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी, चन्द्रदेव रसोंकी तथा वायुदेव प्राणियोंके प्राणोंकी तृप्ति एवं पुष्टि करते हुए अपने कल्याणकारी एवं सौम्य कर्मोंद्वारा लोकहितमें प्रवृत्त हों॥ ७६॥ देवराज इन्द्रद्वारा पर्वतोंपर बरसाये हुए जलसे प्रकट होनेवाली सम्पूर्ण सरिताएँ, जो सबको जलरूपी दुग्ध पिलानेके कारण तीनों लोकोंके प्राणियोंके लिये माताके समान हैं, यथोचित गतिसे बहती हुई क्रमशः समुद्रमें मिल जायँ॥ ७७॥ देवताओ! अब तुम दैत्योंसे होनेवाले भयको त्याग दो और मनमें शान्ति धारण करो। तुम सब लोगोंका कल्याण हो। अब मैं सनातन ब्रह्मलोकको जाऊँगा॥ ७८॥ अपने घरमें अथवा समस्त जगत्‌में या विशेषतः संग्राममें तुम्हें दानवोंका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि वे सदा ही नीचतापूर्ण बर्ताव करनेवाले होते हैं॥ ७९॥ ये मौका पाते ही प्रहार कर बैठते हैं। इनकी मर्यादा सदा स्थिर रहनेवाली नहीं होती। तुमलोग सौम्य और सरल स्वभावके हो, अतः तुम्हारी बुद्धि सरलतापूर्ण बर्तावमें लगती है॥ ८०॥ देवताओ! तुम्हारे प्रति दुर्भाव रखकर अनुचित बर्ताव करनेवाले दुरात्मा दैत्योंको मैं अवश्य ही मोहमें डाल दूँगा॥ ८१॥ जब दानवोंकी ओरसे तुमलोगोंको दुर्निवार्य भय प्राप्त होगा, तब शीघ्र ही आकर मैं तुम्हें उनकी ओरसे निर्भय कर दूँगा॥ ८२॥

वैशम्पायन उवाच

एवमुक्त्वा सुरगणान् विष्णुः सत्यपराक्रमः।
जगाम ब्रह्मणा सार्धं ब्रह्मलोकं महायशाः॥ ८३

एतदाश्चर्यमभवत् संग्रामे तारकामये।
दानवानां च विष्णोश्च यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥ ८४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! देवताओंसे ऐसा कहकर महायशस्वी तथा सत्यपराक्रमी भगवान् विष्णु ब्रह्माजीके साथ ब्रह्मलोकको चले गये॥ ८३॥ राजन्! तुमने मुझसे जो बात पूछी थी, उसका उत्तर मैंने दे दिया। तारकामय संग्रामके अवसरपर दानवों और भगवान् विष्णुके बीचमें यही आश्चर्यजनक घटना घटित हुई थी॥ ८४॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि कालनेमिवधेऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४८॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें कालनेमिका वधविषयक अड़तालीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४८॥

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्मलोकमें भगवान् विष्णुका सत्कार

जनमेजय उवाच

ब्रह्मणा देवदेवेन सार्धं सलिलयोनिना।
ब्रह्मलोकगतो ब्रह्मन् वैकुण्ठः किं चकार ह॥ १

किमर्थं चादिदेवेन नीतः कमलयोनिना।
विष्णुर्दैत्यवधे वृत्ते देवैश्च कृतसत्क्रियः॥ २

ब्रह्मलोके च किं स्थानं कं वा योगमुपास्त सः।
कं वा दधार नियमं स विभुर्भूतभावनः॥ ३

कथं तस्याऽऽसतस्तत्र विश्वं जगदिदं महत्।
श्रियमाप्नोति विपुलां सुरासुरनरार्चिताम्॥ ४

कथं स्वपिति घर्मान्ते बुध्यते चाम्बुदप्लवे।
कथं च ब्रह्मलोकस्थो धुरं वहति लौकिकीम्॥ ५

चरितं तस्य विप्रेन्द्र दिव्यं भगवतो दिवि।
विस्तरेण यथातत्त्वं सर्वमिच्छामि वेदितुम्॥ ६

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन्! देवाधिदेव कमलयोनि ब्रह्माजीके साथ ब्रह्मलोकमें जाकर भगवान् विष्णुने क्या किया?॥ १॥ दैत्योंके संहारका कार्य पूर्ण हो जानेपर देवताओंद्वारा जिनका भलीभाँति सत्कार किया गया था, उन भगवान् विष्णुको आदिदेव ब्रह्माजी ब्रह्मलोकमें किसलिये ले गये?॥ २॥ ब्रह्मलोकमें उनका कौन-सा स्थान है? वहाँ उन्होंने किस योगका आश्रय लिया अथवा उन भूतभावन सर्वव्यापी श्रीहरिने किस नियमको धारण किया?॥ ३॥ वहाँ रहते हुए भगवान् विष्णुकी विपुल सम्पत्तिको, जिसकी देवता, असुर और मनुष्य सभी पूजा करते हैं, यह सारा विशाल जगत् कैसे पाता है?॥ ४॥ ग्रीष्म-ऋतुके अन्तमें (आषाढ़मासकी शुक्ला एकादशीको) भगवान् कैसे शयन करते हैं? वर्षाकाल बीतनेपर (कार्तिककी शुक्ला एकादशीको) किस प्रकार जागते हैं? तथा ब्रह्मलोक (नारायणाश्रम)-में रहकर वे सम्पूर्ण जगत्की रक्षाका भार कैसे वहन करते हैं?॥ ५॥ विप्रवर! दिव्य धाममें स्थित भगवान् विष्णुका जो दिव्य चरित्र है, वह सब यथार्थरूपसे विस्तारपूर्वक मैं सुनना चाहता हूँ*॥ ६॥

* यहाँ कुल आठ प्रश्न हैं। पहले श्लोकमें जो प्रथम प्रश्न है, उसका उत्तर इसी अध्यायके श्लोक १२ से लेकर १७ तक देखना चाहिये। दूसरे श्लोकमें दूसरा प्रश्न अङ्कित है। इसका उत्तर इसी अध्यायके २५ से २८ तकके श्लोकोंमें गूढ़भावसे दिया गया है। तीसरे श्लोकमें तीन प्रश्न हैं—तीसरा, चौथा और पाँचवाँ। उनमेंसे तीसरे प्रश्नका उत्तर अध्याय ५० के १ से ६ तकके श्लोकोंमें उपलब्ध होता है। चौथे और पाँचवें प्रश्नोंका उत्तर उसी अध्यायके ७ से ९ तकके श्लोकोंमें देखें। चौथे श्लोकमें जो छठा प्रश्न अङ्कित है, उसका उत्तर गूढ़भावसे अध्याय ५० के श्लोक १२ से २२ तकमें है। सातवाँ और आठवाँ प्रश्न पाँचवें, छठे श्लोकोंमें

वैशम्पायन उवाच

श्रृणु नारायणस्यादौ विस्तरेण प्रवृत्तय:।
ब्रह्मलोकं यथारूढो ब्रह्मणा सह मोदते॥ ७

कामं तस्य गति: सूक्ष्मा देवैरपि दुरासदा।
यत् तु वक्ष्याम्यहं राजंस्तन्मे निगदत: श्रृणु॥ ८

एष लोकमयो देवो लोकाश्चैतन्मयास्त्रय:।
एष देवमयश्चैव देवाश्चैतन्मया दिवि॥ ९

तस्य पारं न पश्यन्ति बहव: पारचिन्तका:।
एष पारं परं चैव लोकानां वेद माधव:॥ १०

अस्य देवान्धकारस्य मार्गितव्यस्य दैवतै:।
श्रृणु वै यत् तदा वृत्तं ब्रह्मलोके पुरातनम्॥ ११

स गत्वा ब्रह्मणो लोकं दृष्ट्वा पैतामहं पदम्।
ववन्दे तानृषीन् सर्वान् विष्णुरार्षेण कर्मणा॥ १२

सोऽग्निं प्राक्सवने दृष्ट्वा हूयमानं महर्षिभि:।
अवन्दत महातेजा: कृत्वा पौर्वाह्णिकीं क्रियाम्॥ १३

स ददर्श मखेष्वाज्यैरिज्यमानं महर्षिभि:।
भागं यज्ञियमश्नानं स्वदेहमपरं स्थितम्॥ १४

अभिवाद्याभिवाद्यानामृषीणां ब्रह्मवर्चसाम्।
परिचक्राम सोऽचिन्त्यो ब्रह्मलोकं सनातनम्॥ १५

स ददर्शोच्छ्रितान् यूपांश्चषालाग्रविभूषितान्।
मखेषु च ब्रह्मर्षिभि: शतश: कृतलक्षणान्॥ १६

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय! भगवान् नारायणके जो कर्म हैं और जिस प्रकार वे ब्रह्मलोकमें स्थित होकर ब्रह्माजीके साथ आनन्दका अनुभव करते हैं, वह सब पहले मुझसे सुनो॥ ७॥ राजन्! उनकी गति (लीला या चरित्र) उन्हींकी इच्छाके अनुरूप होती है, वह सूक्ष्म है, उसके तत्त्वको ठीक-ठीक समझ पाना देवताओंके लिये भी अत्यन्त कठिन है। इस समय मैं भगवान्‌के जिस चरित्रका वर्णन करने जा रहा हूँ, उसे तुम मेरे कथनानुसार सुनो॥ ८॥ ये श्रीनारायणदेव सर्वलोकमय हैं और ये तीनों लोक भी इन्हींके स्वरूप (विष्णुमय) हैं। ये ही सर्वदेवमय हैं और स्वर्गके सम्पूर्ण देवता एतन्मय (इन्हींके स्वरूप अर्थात् विष्णुमय) हैं॥ ९॥ प्रत्येक वस्तुके पार तत्त्व (अन्त, इयत्ता या चरम सीमा)-का चिन्तन करनेवाले बहुत-से विचारक उन भगवान्‌का पार नहीं देख पाते हैं, परंतु ये भगवान् माधव सम्पूर्ण जगत्‌के परम पार (अपने-आप)-को भलीभाँति जानते हैं॥ १०॥ ये इन्द्रियोंके अविषय हैं और सम्पूर्ण देवता इन्हींका अनुसंधान करते रहते हैं। इन्हीं भगवान् विष्णुका उस समय ब्रह्मलोकमें घटित हुआ जो प्राचीन वृत्तान्त है, उसे सुनो॥ ११॥ उन भगवान् विष्णुने ब्रह्मलोकमें जाकर पितामहके निवासस्थानका दर्शन करके वेदोक्त विधिसे वहाँके समस्त ऋषियोंको प्रणाम किया॥ १२॥ उन महातेजस्वी श्रीहरिने पूर्वाह्णकालकी क्रिया पूर्ण करके प्रात:सवनके समय महर्षियोंकी दी हुई आहुति ग्रहण करनेवाले अग्निदेवका दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया॥ १३॥ उन्होंने वहाँ अपने ही दूसरे विग्रहको विराजमान देखा, जिसका यज्ञोंमें महर्षिगण घीकी आहुतियोंद्वारा यजन (पूजन) कर रहे थे और जो प्राप्त हुए यज्ञभागको स्वयं ही ग्रहण कर रहा था॥ १४॥ उन अचिन्त्यस्वरूप भगवान्‌ने ब्रह्मतेजसे सम्पन्न एवं वन्दनीय ऋषियोंको प्रणाम करके उस सनातन ब्रह्मलोकमें घूमना आरम्भ किया॥ १५॥ उन्होंने वहाँ यज्ञोंमें स्थापित किये गये बहुत-से ऊँचे-ऊँचे यूपों (यज्ञ-स्तम्भों)-को देखा, जो सिरेपर काठके बने हुए छल्लोंसे विभूषित थे। ब्रह्मर्षियोंने उनमें सैकड़ों प्रकारके चिह्न अङ्कित किये थे॥ १६॥

अङ्कित है। इनमें सातवेंका उत्तर अध्याय ५० के २२ से ४३ तकके श्लोकोंमें वर्णित है और चरित्र-विषयक आठवें प्रश्नका उत्तर अध्याय ५० के ४४ वें श्लोकसे आरम्भ होकर आगेके सभी अध्यायोंमें है।

आज्यधूमं समाघ्राय शृण्वन् वेदान् द्विजेरितान्।
यज्ञैरिज्यन्तमात्मानं पश्यंस्तत्र चचार ह॥ १७

ऊचुस्तमृषयो देवाः सदस्याः सदसि स्थिताः।
अर्घ्योद्यतभुजाः सर्वे पवित्रान्तरपाणयः॥ १८

देवेषु वर्तते तद् वै तद्धि सर्वं जनार्दनात्।
यत् प्रवृत्तं च देवेभ्यस्तद् विद्धि मधुसूदनात्॥ १९

अग्नीषोममयं लोकं यं विदुर्विदुषो जनाः।
तं सोममग्निं लोकं च वेद विष्णुं सनातनम्॥ २०

क्षीराद् यथा दधि भवेद् दध्नः सर्पिर्भवेद् यथा।
मथ्यमानेषु भूतेषु तथा लोको जनार्दनात्॥ २१

यथेन्द्रियैश्च भूतैश्च परमात्मा विधीयते।
तथा देवैश्च वेदैश्च लोकैश्च विहितो हरिः॥ २२

यथा भूतेन्द्रियावाप्तिर्विहिता भुवि देहिनाम्।
तथा प्राणेश्वरावाप्तिर्देवानां दिवि वैष्णवी॥ २३

सत्रिणां सत्रफलदः पवित्रं परमात्मवान्।
लोकतन्त्रधरो ह्येष मन्त्रैर्मन्त्र इवोच्यते॥ २४

ऋषय ऊचुः

स्वागतं ते सुरश्रेष्ठ पद्मनाभ महाद्युते।
इदं यज्ञियमातिथ्यं मन्त्रतः प्रतिगृह्यताम्॥ २५

वे घीकी आहुतियोंसे प्रकट हुए धूमकी सुगन्ध लेते, ब्राह्मणोंद्वारा उच्चारित वेदमन्त्रोंको सुनते और यज्ञोंद्वारा होती हुई अपनी ही आराधनाको देखते हुए वहाँ सब ओर विचरने लगे॥ १७॥ जो यज्ञमण्डपमें सदस्यरूपसे विराजमान थे, वे सब देवता और ऋषि हाथोंमें पवित्री धारण करके अर्घ्य देनेके लिये दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर उन भगवान्‌के विषयमें परस्पर इस प्रकार कह रहे थे—॥ १८॥ 'देवताओंमें जो भी शक्ति-सामर्थ्य आदि है, वह सब उन्हें भगवान् जनार्दनसे ही प्राप्त हुआ है। देवताओंसे भी जो कुछ प्राप्त होता है, उसे भगवान् मधुसूदनका ही प्रसाद समझो॥ १९॥ संसारके मनुष्य विद्वानोंके मुखसे जिस जगत्‌को अग्नि और सोमका कार्य जानते हैं, उसके कारणभूत वे सोम और अग्नि तथा यह कार्यभूत जगत् भी सनातन विष्णुरूप ही है, यह बात तुम्हें भी विदित है॥ २०॥ जैसे दूधसे दही बनता है और दहीसे मन्थन करनेपर घी प्रकट होता है, उसी प्रकार भूतों (देह और इन्द्रिय आदि)-के मथे जानेपर अर्थात् चित्तको एकाग्र करके सूक्ष्म तत्त्वका चिन्तन करनेपर यह ज्ञात हो जाता है कि सारा संसार भगवान् जनार्दनसे ही प्रकट हुआ है॥ २१॥ जैसे चेतनासे व्याप्त भूतों (शरीरों) और इन्द्रियोंद्वारा उनके नियन्ता परमात्माका स्वतः ज्ञापन या प्रतिपादन हो जाता है, उसी प्रकार अनुग्रह आदि गुणोंसे युक्त देवताओं, वेदों और लोकोंद्वारा (उनके अन्तर्यामी आत्मारूपसे) श्रीहरिका बोध हो जाता है॥ २२॥ जैसे भूतलपर देहधारी प्राणियोंको जो देह और इन्द्रियोंकी प्राप्ति हुई है, उनका सम्बन्ध पार्थिव भूतोंसे है, उसी प्रकार स्वर्गलोकमें देवताओंको जो बल और ऐश्वर्य प्राप्त हुए हैं, उनका सम्बन्ध भगवान् विष्णुसे ही है॥ २३॥ ये भगवान् विष्णु ही यज्ञ करनेवाले यजमानोंको उनके यज्ञोंका फल प्रदान करते हैं। ये परम पवित्र और स्वतन्त्र हैं। सम्पूर्ण लोकोंका संचालनसूत्र इन्हींके हाथमें है। जैसे वाणीके माधुर्यका वर्णन वाणीद्वारा ही सम्भव होता है, उसी प्रकार श्रीविष्णुके स्वरूपका प्रतिपादन स्वयं विष्णु ही कर सकते हैं, दूसरोंके लिये इनकी महिमा अनिर्वचनीय है'॥ २४॥

तदनन्तर भगवान्‌को देखकर ऋषियोंने कहा— सुरश्रेष्ठ! आपका स्वागत है, महातेजस्वी पद्मनाभ! आप वेदमन्त्रोंद्वारा यह यज्ञसम्बन्धी आतिथ्य-सत्कार ग्रहण करें॥ २५॥

त्वमस्य यज्ञपूतस्य पात्रं पाद्यस्य पावनः।
अतिथिस्त्वं हि मन्त्रोक्तः स दृष्टः संततं मतः॥ २६

त्वयि योद्धुं गते विष्णौ न प्रावर्तन्त नः क्रियाः।
अवैष्णवस्य यज्ञस्य न हि कर्म विधीयते॥ २७

सदक्षिणस्य यज्ञस्य त्वत्प्रसूतिः फलं लभेत्।
अद्यात्मानमिहास्माभिरिज्यमानं निरीक्षसे॥ २८

एवमस्त्विति तान् सर्वान् भगवान् प्रत्यपूजयत्।
मुमुदे ब्रह्मलोकस्थो ब्रह्मा लोकपितामहः॥ २९

इस यज्ञपूत पाद्यके आप ही उत्तम पात्र हैं, क्योंकि आप ही वेदमन्त्रोंद्वारा पावन अतिथि बताये गये हैं। जिनके विषयमें हम सदा सुनते और जानते आये हैं, उन्हींका आज प्रत्यक्ष दर्शन हुआ (यह हमारे लिये सौभाग्यकी बात है)॥ २६॥ आप सर्वव्यापी श्रीहरि जब युद्धके लिये चले गये थे, तब हमारे यज्ञकर्म ठीक तरहसे हो नहीं पाते थे। जिसका सम्बन्ध भगवान् विष्णुसे न हो अर्थात् जिसमें वे उपस्थित न हों, उस यज्ञका कार्य ठीकसे सम्पन्न नहीं होता है॥ २७॥ (आज आपकी उपस्थितिसे हमारा यज्ञ सफल हो गया।) आपका प्रकट होना ही दक्षिणाओंसे सम्पन्न यज्ञका प्रमुख फल है। आज आप यहाँ अपने-आपको हमारे द्वारा पूजित देखेंगे॥ २८॥ तब 'एवमस्तु' कहकर भगवान् विष्णुने उन सबका सम्मान किया। उनके द्वारा सम्मानित हो लोकपितामह ब्रह्मा भी अपने लोकमें स्थित हो परम आनन्दका अनुभव करने लगे॥ २९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि ब्रह्मलोकवर्णनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ४९॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें ब्रह्मलोकका वर्णन नामक उनचासवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ४९॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

नारायणाश्रममें भगवान् विष्णुका शयन और उत्थान तथा पास आये हुए ब्रह्मा आदि देवताओंसे उनके आगमनका प्रयोजन पूछना

वैशम्पायन उवाच

ऋषिभिः पूजितस्तैस्तु विवेश हरिरीश्वरः।
पौराणं ब्रह्मसदनं दिव्यं नारायणाश्रमम्॥ १

स तद् विवेश हृष्टात्मा तानामन्त्र्य सदोगतान्।
प्रणम्य चादिदेवाय ब्रह्मणे पद्मयोनये॥ २

स्वेन नाम्ना परिज्ञातं स तं नारायणाश्रमम्।
प्रविशन्नेव भगवानायुधानि व्यसर्जयत्॥ ३

स तत्राम्बुपतिप्रख्यं ददर्शालयमात्मनः।
स्वधिष्ठितं देवगणैः शाश्वतैश्च महर्षिभिः॥ ४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! उन ऋषियोंसे पूजित होकर सर्वेश्वर भगवान् विष्णुने पुराणप्रसिद्ध दिव्य ब्रह्मधाम (वैकुण्ठ)-में, जो उन श्रीनारायणदेवका आश्रम (विश्रामस्थान) है, प्रवेश किया॥ १॥ उन्होंने प्रसन्नचित्तसे उस यज्ञसभामें एकत्र हुए उन सब महर्षियोंसे विदा ले आदिदेव पद्मयोनि ब्रह्माजीको प्रणाम करके अपने ही नामसे प्रसिद्ध हुए उस नारायणाश्रममें प्रवेश किया। उसमें प्रवेश करते ही भगवान्ने सम्पूर्ण आयुधोंको त्याग दिया॥ २-३॥ वहाँ उन्हें अपना शयनागार दिखायी दिया, जो समुद्रके समान शोभा पा रहा था। उसमें सनातन देवगण और शाश्वत महर्षि निवास करते थे॥ ४॥

संवर्तकाम्बुदोपेतं नक्षत्रस्थानसंकुलम्।
तिमिरौघपरिक्षिप्तमप्रधृष्यं सुरासुरैः॥ ५

न तत्र विषयो वायोर्नेन्दोर्न च विवस्वतः।
वपुषः पद्मनाभस्य स देशस्तेजसाऽऽवृतः॥ ६

स तत्र प्रविशन्नेव जटाभारं समुद्वहन्।
सहस्रशीर्षो भूत्वा तु शयनायोपचक्रमे॥ ७

लोकानामन्तकालज्ञा काली नयनशालिनी।
उपतस्थे महात्मानं निद्रा तं कालरूपिणी॥ ८

स शिश्ये शयने दिव्ये समुद्राम्भोदशीतले।
हरिरेकार्णवोक्तेन व्रतेन व्रतिनां वरः॥ ९

तं शयानं महात्मानं भवाय जगतः प्रभुम्।
उपासाञ्चक्रिरे विष्णुं देवाः सर्षिगणास्तथा॥ १०

तस्य सुप्तस्य शुशुभे नाभिमध्यात् समुत्थितम्।
आद्यं तस्यासनं पद्मं ब्रह्मणः सूर्यवर्चसम्।
सहस्रपत्रं वर्णाढ्यं सुकुमारं सुपुष्पितम्॥ ११

ब्रह्मसूत्रोद्यतकरः स्वपन्नेव महामुनिः।
आवर्तयति लोकानां सर्वेषां कालपर्ययम्॥ १२

विवृतान् तस्य वदनान्निःश्वासपवनेरिताः।
प्रजानां पङ्क्तयो ह्युच्चैर्निष्पतन्त्युत्पतन्ति च॥ १३

संवर्तक (प्रलयकारी) मेघोंके अभिमानी देवता वहाँ विद्यमान थे। वह स्थान नक्षत्रोंके आश्रयभूत ज्योतिर्मण्डलसे व्याप्त था। जो वहाँ जानेके अधिकारी नहीं हैं, उनके लिये वह दिव्य धाम अन्धकारसे आवृत है अर्थात् उनकी वहाँपर पहुँच नहीं हो पाती है। देवताओं और असुरोंके लिये भी वहाँ पहुँचना अत्यन्त कठिन है॥ ५॥ वहाँ न तो वायुकी, न चन्द्रमाकी और न सूर्यकी ही पहुँच हो पाती है। वह दिव्य देश भगवान् पद्मनाभके सच्चिदानन्दमय श्रीविग्रहकी तेजोराशिसे ही आवृत एवं प्रकाशित है॥ ६॥ जो पहले सहस्रों मस्तकोंसे विभूषित विराट्-रूपधारी होकर शोभा पाते थे, उन्हीं भगवान्ने उस दिव्य धाममें प्रवेश करते ही जगत्के प्राणियोंकी कर्मवासनामयी जटाका भार सिरपर धारण किये वहाँ सोनेकी तैयारी की॥ ७॥ तदनन्तर लोकोंके अन्तकालको जाननेवाली कृष्णवर्णा कालरूपिणी निद्रा, जो नेत्रोंका आश्रय लेकर शोभा पाती है, उन परमात्मा श्रीहरिकी सेवामें उपस्थित हुई॥ ८॥ व्रतधारियोंमें श्रेष्ठ श्रीहरिने समुद्र और मेघोंके जलसे शीतल दिव्य शय्यापर शयन किया। प्रलयकालमें सारे जगत्के एकार्णवमग्न हो जानेपर जिस नियमसे भगवान्के शयनका वर्णन पुराणोंमें मिलता है, उसीके अनुसार उस समय भी भगवान्ने शयन किया था*॥ ९॥ जगत्के अभ्युदयके लिये शयन करनेवाले उन सर्वसमर्थ महात्मा विष्णुकी वहाँ रहनेवाले देवता और ऋषि उपासना करने लगे॥ १०॥ सोये हुए भगवान्की नाभिके मध्यभागसे एक कमल प्रकट होकर शोभा पाने लगा। उसकी कान्ति सूर्यके समान थी। वही ब्रह्माका आदि आसन है। उसमें सहस्र दल हैं, वह बीजरूपी विभिन्न वर्णोंसे अङ्कित, अत्यन्त कोमल एवं अच्छी तरह खिला हुआ है॥ ११॥ ब्रह्माजीकी जो पूर्वजन्मोंकी वासना (कर्म-संस्कार) है, वही सूत्ररूपसे मानो भगवान्का उठा हुआ हाथ है, उसके द्वारा वे सृष्टि आदिके लिये संकेत करते रहते हैं। इस प्रकार वे महामुनि श्रीहरि सोते हुए ही समस्त लोकोंके कालजनित उलट-फेर (सृष्टि-संहार)-की आवृत्ति किया करते हैं॥ १२॥ उनके खुले हुए मुखसे जो निःश्वास वायु निर्गत होती है, उससे प्रेरित होकर प्रजाओंकी विभिन्न श्रेणियाँ बड़े वेगसे निकलती और उत्पन्न होती रहती हैं॥ १३॥

* यहाँ आचार्य नीलकण्ठने शयनका अर्थ समाधि किया है, उनके मतमें यहाँ समुद्रसे निर्विकल्प समाधि और मेघसे सविकल्प समाधि परिलक्षित होती है और शीतलका अर्थ वे तापरहित करते हैं, जो समाधिका विशेषण है। इसी तरह वे एकार्णवोक्त व्रतका अर्थ निर्विकल्प समाधिके लिये बताया गया 'संयम' मानते हैं।

ते सृष्टाः प्राणिनो मेध्या विभक्ता ब्रह्मणा स्वयम्।
चतुर्धा स्वां गतिं जग्मुः कृतान्तोक्तेन कर्मणा॥ १४

न तं वेद स्वयं ब्रह्मा नापि ब्रह्मर्षयोऽव्ययाः।
विष्णोर्निद्रामयं योगं प्रविष्टं तमसावृतम्॥ १५

ते तु ब्रह्मर्षयः सर्वे पितामहपुरोगमाः।
न विदुस्तं क्वचित् सुप्तं क्वचिदासीनमासने॥ १६

जागर्ति कोऽत्र कः शेते कश्च शक्तश्च नेङ्गते।
को भोगवान् को द्युतिमान् कृष्णात् कृष्णतरश्च कः॥ १७

विमृशन्ति स्म तं देवा दिव्याभिरुपपत्तिभिः।
न चैनं शेकुरन्वेष्टुं कर्मतो जन्मतोऽपि वा॥ १८

गाथाभिस्तत्प्रदिष्टाभिर्ये तस्य चरितं विदुः।
पुराणास्तं पुराणेषु ऋषयः सम्प्रचक्षते॥ १९

श्रूयते चास्य चरितं देवेष्वपि पुरातनम्।
महापुराणात् प्रभृति परं तस्य न विद्यते॥ २०

यच्चास्य देवदेवस्य चरितं स्वप्रभावजम्।
तेनेमाः श्रुतयो व्याप्ता वैदिक्यो लौकिकाश्च याः॥ २१

भवकाले भवत्येष लोकानां लोकभावनः।
दानवानामभावाय जागर्ति मधुसूदनः॥ २२

यत्रैनं वीक्षितुं देवा न शेकुः सुप्तमव्ययम्।
ततः स्वपिति घर्मान्ते जागर्ति जलदक्षये॥ २३

स हि वेदाश्च यज्ञाश्च यज्ञाङ्गानि च सर्वशः।
या तु यज्ञगतिः प्रोक्ता स एष पुरुषोत्तमः॥ २४

वे उत्पन्न हुए पवित्र प्राणी साक्षात् ब्रह्माजीके द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्ररूपसे चार भागोंमें विभक्त किये जाते हैं। फिर वे चारों वर्णोंके लोग अपने-अपने लिये बताये गये वेदोक्त कर्मका (निष्कामभावसे) अनुष्ठान करके अपनी परम गति (परमात्मा)-को प्राप्त कर लेते हैं॥ १४॥ योगनिद्राका आश्रय लेकर शयन करनेवाला जो भगवान् विष्णुका योगमायासे समावृत स्वरूप है, उसे स्वयं ब्रह्माजी तथा (ब्रह्मलोकके) अविनाशी ब्रह्मर्षि भी नहीं जान पाते हैं॥ १५॥ वे ब्रह्मा आदि सभी ब्रह्मर्षि किसी देश-कालमें सोये और किसी देश-कालमें आसनपर बैठकर जागते हुए भगवान्‌के स्वरूपको यथार्थरूपसे समझ नहीं पाते हैं॥ १६॥ उन्हें यह ज्ञात नहीं होता कि यहाँ कौन जागता है? कौन सोता है? कौन सर्वशक्तिमान् होकर भी कोई चेष्टा नहीं करता है? कौन भोगवान् है? कौन परम कान्तिमान् है तथा कौन [1]कृष्ण (सूक्ष्म)-से भी कृष्णतर (अत्यन्त सूक्ष्म) है?॥ १७॥ देवता दिव्य युक्तियोंद्वारा इनके विषयमें विचार करते रहते हैं; परंतु वे अबतक इनके जन्म और कर्मके रहस्यका पता नहीं लगा सके हैं॥ १८॥ उन परमात्माने अपने निःश्वासभूत वेदमन्त्रोंके द्वारा जिनका उपदेश किया है, उन वैदिकी गाथाओंद्वारा जो उनके चरित्रको जानते थे, उन पुरातन ऋषियोंने ही पुराणोंमें उन परमेश्वरके स्वरूपका विशद विवेचन किया है॥ १९॥ देवताओंके यहाँ भी महापुराण आदिसे इनके पुरातन चरित्रका श्रवण किया जाता है। उनका कहीं अन्त नहीं है॥ २०॥ उन देवाधिदेव परमात्माका उनके प्रभावसे (पराक्रम आदिके द्वारा) प्रकट हुआ जो लीला-चरित्र है, उसीसे ये वैदिकी और लौकिकी श्रुतियाँ भरी हुई हैं॥ २१॥ लोकोंकी सृष्टिके समय ये लोकभावन मधुसूदन सगुणरूपसे प्रकट होते हैं और दानवोंके विनाशके लिये सदा जागरूक रहते हैं॥ २२॥ जहाँ सो जानेपर इन अविनाशी प्रभुको देवता भी नहीं देख सके थे, वहीं ये वर्षाकालमें (आषाढ़ शुक्ला एकादशीसे कार्तिक शुक्ला एकादशीतक) सोते और वर्षा व्यतीत होनेपर जागते हैं॥ २३॥ भगवान् विष्णु ही वेद, यज्ञ तथा समस्त यज्ञाङ्ग (यज्ञके उपकरण) हैं। यज्ञोंद्वारा प्राप्त होनेवाली जो परम गति बतायी गयी है, वह भी ये भगवान् पुरुषोत्तम ही हैं॥ २४॥

१. यहाँ कृष्णका अर्थ कृश अर्थात् सूक्ष्म है।

तस्मिन् सुप्ते न वर्तन्ते मन्त्रपूताः क्रतुक्रियाः।
शरत्प्रवृत्तयज्ञोऽयं जागर्ति मधुसूदनः॥ २५

तदिदं वार्षिकं चक्रं कारयत्यम्बुदेश्वरः।
वैष्णवं कर्म कुर्वाणः सुप्ते विष्णौ पुरंदरः॥ २६

या ह्येषा गह्वरा माया निद्रेति जगति स्थिता।
साकस्माद् द्वेषिणी घोरा कालरात्रिर्महीक्षिताम्॥ २७

तस्यास्तनुस्तमोद्वारा निशा दिवसनाशिनी।
जीवितार्धहरा घोरा सर्वप्राणभृतां भुवि॥ २८

नैतया कश्चिदाविष्टो जृम्भमाणो मुहुर्मुहुः।
शक्तः प्रसहितुं वेगं मज्जन्निव महार्णवे॥ २९

अन्नजा भुवि मर्त्यानां श्रमजा वा कथंचन।
सैषा भवति लोकस्य निद्रा सर्वस्य लौकिकी॥ ३०

स्वप्नान्ते क्षीयते ह्येषा प्रायशो भुवि देहिनाम्।
मृत्युकाले च भूतानां प्राणान् नाशयते भृशम्॥ ३१

देवेष्वपि दधारैनां नान्यो नारायणादृते।
सखी सर्वहरस्यैषा माया विष्णुशरीरजा॥ ३२

सैषा नारायणमुखे दृष्टा कमललोचना।
लोकानल्पेन कालेन ग्रसते लोकमोहिनी॥ ३३

भगवान्‌के शयनकालमें मन्त्रपूत यज्ञकर्मोंका अनुष्ठान नहीं होता है। शरद्-ऋतुमें जब ये मधुसूदन जागते हैं, उस समय वाजपेय[1] आदि यज्ञोंका अनुष्ठान आरम्भ हो जाता है॥ २५॥ भगवान् विष्णुके शयन करनेपर मेघोंके स्वामी देवराज इन्द्र स्वयं ही प्रजापालनरूप वैष्णवकर्मका सम्पादन करते हैं और वे ही लोगोंसे वर्षा-ऋतुमें होनेवाले जलसम्बन्धी कर्म (उपाकर्म एवं श्राद्ध-तर्पण आदि)-का अनुष्ठान करवाते हैं॥ २६॥ यह जो गहन तमोमयी माया है, वही संसारमें निद्रारूपसे स्थित है। वह अकारण ही सबसे द्वेष रखनेवाली और भयंकर है तथा युद्धक्षेत्रमें उतरे हुए राजाओंके लिये कालरात्रिके समान है॥ २७॥ उस तामसी मायाका शरीर है रात्रि, जिसका द्वार है अन्धकार। वह दिनका नाश करनेवाली तथा निद्राद्वारा भूतलके समस्त प्राणियोंके आधे जीवनको हर लेनेवाली है। उसका स्वरूप भयंकर है॥ २८॥ इस निशा एवं निद्रारूपिणी मायासे आविष्ट हुआ कोई भी प्राणी बारम्बार जँभाई लेने लगता है और महासागरमें डूबते हुए मनुष्यके समान विवश होकर उसके वेगको सहन नहीं कर पाता है॥ २९॥ पृथ्वीपर रहनेवाले मरणधर्मा मनुष्योंको यह निद्रा भोजन अथवा किसी प्रकारके परिश्रमके कारण प्राप्त होती है। इस प्रकार यह लौकिकी निद्रा जगत्‌के सभी प्राणियोंको आती है॥ ३०॥ पृथ्वीपर देहधारियोंको जो निद्रा आती है, वह प्रायः सो लेनेके बाद स्वयं ही नष्ट हो जाती है, परंतु जब प्राणियोंका मृत्युकाल उपस्थित होता है, उस समय यह उनके प्राणोंका प्रबल वेगसे नाश कर डालती है॥ ३१॥ देवताओंमें भी भगवान् नारायणके सिवा दूसरा कोई इसे धारण नहीं कर सका (और न इसपर काबू ही पा सका है)। भगवान् विष्णुके शरीरसे प्रकट हुई यह माया सर्वसंहारकारी कालकी सखी (सहायिका) है॥ ३२॥ वही यह माया भगवान् नारायणके मुखमण्डलमें उनके नेत्रकमलोंके भीतर स्थित देखी गयी है। यही कमलनयनी नारीके रूपमें भी प्रकट होती है। सम्पूर्ण विश्वको मोहमें डालनेवाली निद्रामयी माया अल्पकालमें ही समस्त लोकोंको ग्रस लेती है॥ ३३॥

१. श्रुति कहती है—'शरदि वाजपेयेन यजेत।' अर्थात् 'शरद्-ऋतुमें वाजपेय यज्ञके द्वारा भगवान्‌की आराधना करे।' (नी० क०)

एवमेषा हितार्थाय लोकानां कृष्णवर्त्मना।
ध्रियते सेवनीया हि पत्येव च पतिव्रता॥ ३४

स तया निद्रया च्छन्नस्तस्मिन् नारायणाश्रमे।
स्वपिति स्म तदा विष्णुर्मोहयञ्जगदव्ययः॥ ३५

तस्य वर्षसहस्राणि शयानस्य महात्मनः।
जग्मुः कृतयुगं चैव त्रेता चैव युगोत्तमम्॥ ३६

स तु द्वापरपर्यन्ते ज्ञात्वा लोकान् सुदुःखितान्।
प्राबुध्यत महातेजाः स्तूयमानो महर्षिभिः॥ ३७

ऋषय ऊचुः

जहीहि निद्रां सहजां भुक्तपूर्वामिव स्रजम्।
इमे ते ब्रह्मणा सार्धं देवा दर्शनकाङ्क्षिणः॥ ३८

इमे त्वां ब्रह्मविद्वांसो ब्रह्मसंस्तववादिनः।
वर्धयन्ति हृषीकेश ऋषयः संशितव्रताः॥ ३९

एतेषामात्मभूतानां भूतानां भूतभावन।
शृणु विष्णो शुभा वाचो भूव्योमाग्न्यनिलाम्भसाम्॥ ४०

इमे त्वां सप्त मुनयः सहिता मुनिमण्डलैः।
स्तुवन्ति देव दिव्याभिर्गेयाभिर्गीर्भिरञ्जसा॥ ४१

उत्तिष्ठ शतपत्राक्ष पद्मनाभ महाद्युते।
कारणं किंचिदुत्पन्नं देवानां कार्यगौरवात्॥ ४२

वैशम्पायन उवाच

स संक्षिप्य जलं सर्वं तिमिरौघं विदारयन्।
उदतिष्ठद्धृषीकेशः श्रिया परमया ज्वलन्॥ ४३

स ददर्श सुरान् सर्वान् समेतान् सपितामहान्।
विवक्षतः प्रक्षुभिताञ्जगदर्थे समागतान्॥ ४४

तानुवाच हरिर्देवो निद्राविश्रान्तलोचनः।
तत्त्वदृष्टार्थया वाचा धर्महेत्वर्थयुक्तया॥ ४५

जिनका मार्ग सूक्ष्म है, उन परमात्मा श्रीहरिने समस्त लोकोंके हितके लिये (अर्थात् उन्हें विश्राम-सुखका अनुभव करानेके लिये) इस निद्राको धारण किया है। जैसे पति पतिव्रता स्त्रीका सेवन करता है, उसी प्रकार विश्राम-सुखकी इच्छावाले प्रत्येक व्यक्तिको समय-समयपर इसका सेवन करना चाहिये॥ ३४॥ इस तरह अविनाशी भगवान् विष्णु उस योगनिद्रासे आच्छन्न हो सम्पूर्ण जगत्‌को मोहमें डालते हुए उस समय नारायणाश्रममें शयन करने लगे॥ ३५॥ वहाँ सोते हुए महात्मा नारायणके हजारों वर्ष बीत गये। सत्ययुग तथा उत्तम त्रेतायुग भी समाप्त हो गये॥ ३६॥ द्वापरके अन्तमें समस्त लोकोंको अत्यन्त दुःखसे पीड़ित जान महर्षियोंद्वारा अपनी स्तुति सुनते हुए वे महातेजस्वी भगवान् श्रीहरि जाग उठे॥ ३७॥

ऋषि बोले—भगवन्! जैसे पहलेके उपभोगमें लगी हुई फूलमालाको त्याग दिया जाता है, उसी प्रकार आप अपनी इस सहज निद्राको त्याग दीजिये। ब्रह्माजीके साथ ये समस्त देवता आपके दर्शनकी अभिलाषासे खड़े हैं॥ ३८॥ हृषीकेश! ये उत्तम व्रतका पालन करनेवाले ब्रह्मवेत्ता महर्षि वेदोक्त स्तोत्रोंका पाठ करते हुए आपका अभिनन्दन करते (आपको बधाई देते) हैं॥ ३९॥ भूतभावन विष्णो! ये जो आपके ही स्वरूपभूत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाशरूप महाभूतोंके अधिष्ठाता देवता हैं, इनके शुभ वचन आप सुनें॥ ४०॥ देव! ये मुनि-मण्डलीसहित सप्तर्षि गाने योग्य दिव्य वाणीद्वारा स्वभावतः आपकी स्तुति करते हैं॥ ४१॥ कमलनयन! उठिये। महातेजस्वी पद्मनाभ! देवताओंके गुरुतर कार्यवश आपको जगानेके लिये कुछ कारण उत्पन्न हो गया है॥ ४२॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तब सारे जलको समेटकर तथा अनधिकारियोंके लिये योगमायाने जो तमोमय आवरण लगा दिया था, उसको भी दूर करके भगवान् हृषीकेश अपनी उत्कृष्ट शोभासे प्रकाशित होते हुए उठे॥ ४३॥ उन्होंने देखा, ब्रह्मासहित समस्त देवता उपस्थित हैं। इनके मनमें क्षोभ उत्पन्न हुआ है और उसीके सम्बन्धमें ये कुछ कहना चाहते हैं। उन्हें यह भी ज्ञात हो गया कि ये लोग जगत्‌के हितके लिये ही यहाँ पधारे हैं॥ ४४॥ निद्राके द्वारा जिनके नेत्रोंको विश्राम मिल चुका था, उन भगवान् श्रीहरिने धर्मसम्मत, युक्तिसंगत तथा तात्त्विक अर्थसे युक्त वाणीद्वारा उस समय उन देवताओंसे इस प्रकार कहा॥ ४५॥

श्रीभगवानुवाच

कुतो वो विग्रहो देवाः कुतो वो भयमागतम्।
कस्य वा केन वा कार्यं किं वा मयि न वर्तते॥ ४६

किं खल्वकुशलं लोके वर्तते दानवोत्थितम्।
नृणामायासजननं शीघ्रमिच्छामि वेदितुम्॥ ४७

एष ब्रह्मविदां मध्ये विहाय शयनोत्तमम्।
शिवाय भवतामर्थे स्थितः किं करवाणि वः॥ ४८

श्रीभगवान् बोले—देवताओ! तुम्हारा किससे युद्ध छिड़ा हुआ है? कहाँसे तुमपर भय आया है? अथवा किस देवताको किस वस्तुकी आवश्यकता पड़ गयी है? बताओ, कौन ऐसी वस्तु है, जो मेरे पास नहीं है? (अर्थात् मेरे पास सब कुछ है और मैं तुम्हें सब कुछ दूँगा)॥ ४६। दानवोंकी ओरसे कौन-सा ऐसा कार्य किया गया है, जो लोकके लिये अमङ्गलकारी और मनुष्योंके लिये कष्टजनक सिद्ध हुआ है? यह मैं शीघ्र जानना चाहता हूँ॥ ४७॥ आप सभी ब्रह्मवेत्ताओंके बीचमें इस उत्तम शय्याको त्यागकर यह मैं आपके कल्याण-साधनके लिये तैयार खड़ा हूँ। बताइये, आपकी क्या सेवा करूँ॥ ४८॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि विष्णोर्योगशयनोत्थाने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५०॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें भगवान् विष्णुका योगशय्यासे उत्थानविषयक पचासवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५०॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्माजीका भगवान् विष्णुसे जगत्की वर्तमान अवस्थाका वर्णन करते हुए पृथ्वीका भार उतारनेके लिये मन्त्रणा करनेका अनुरोध

वैशम्पायन उवाच

तच्छ्रुत्वा विष्णुगदितं ब्रह्मा लोकपितामहः।
उवाच परमं वाक्यं हितं सर्वदिवौकसाम्॥ १

नास्ति किंचिद् भयं विष्णो सुराणामसुरान्तक।
येषां भवानभयदः कर्णधारो रणे रणे॥ २

शक्रे जयति देवेशे त्वयि चासुरसूदने।
धर्मे प्रयतमानानां मानवानां कुतो भयम्॥ ३

सत्ये धर्मे च निरतान् मानवान् विगतज्वरान्।
नाकाले धर्मिणो मृत्युः शक्नोति प्रसमीक्षितुम्॥ ४

मानवानां च पतयः पार्थिवाश्च परस्परम्।
षड्भागमुपभुञ्जाना न भयं कुर्वते मिथः॥ ५

वैशम्पायनजी कहते हैं—'जनमेजय! भगवान् विष्णुका वह कथन सुनकर लोकपितामह ब्रह्माने समस्त देवताओंके लिये हितकारक उत्तम बात कही—॥ १॥ असुरोंका संहार करनेवाले विष्णुदेव! युद्धके अवसरोंपर जिनके आप-जैसे अभयदायक कर्णधार हों, उन देवताओंको कोई भय नहीं॥ २॥ जबतक देवराज इन्द्र विजयी हैं और असुरोंका संहार करनेवाले आप रक्षाके लिये उद्यत हैं, तबतक धर्मके लिये प्रयत्नशील रहनेवाले मनुष्योंको भी किससे भय हो सकता है॥ ३॥ जो मनुष्य सत्य और धर्ममें तत्पर रहकर चिन्तारहित हो धर्मके अनुष्ठानमें लगे हुए हैं, उनकी ओर अकालमृत्यु आँख उठाकर देख भी नहीं सकती है॥ ४॥ मनुष्योंके अधिपति जो पृथ्वीपालक नरेश हैं, वे भी प्रजाकी आयके छठे भागका 'कर'के रूपमें उपभोग करते हुए आपसमें कभी भेद या कलह नहीं करते हैं'॥ ५॥

ते प्रजानां शुभकराः करदैरविगर्हिताः।
सुकरैर्विप्रयुक्तार्थाः कोशमापूरयन्त्युत॥ ६

स्फीताञ्जनपदान् सर्वान् पालयन्तः क्षमापराः।
अतीक्ष्णदण्डांश्चतुरो वर्णाञ्जुगुपुरञ्जसा॥ ७

नोद्वेजनीया भूतानां सचिवैः साधुपूजिताः।
चतुरङ्गबलैर्गुप्ताः षड्गुणानुपयुञ्जते॥ ८

धनुर्वेदपराः सर्वे सर्वे वेदेषु निष्ठिताः।
यजन्ते च यथाकालं यज्ञैर्विपुलदक्षिणैः॥ ९

वेदानधीत्य दीक्षाभिर्महर्षीन् ब्रह्मचर्यया।
श्राद्धैश्च मेध्यैः शतशस्तर्पयन्ति पितामहान्॥ १०

नैषामविदितं किंचित् त्रिविधं भुवि दृश्यते।
वैदिकं लौकिकं चैव धर्मशास्त्रोक्तमेव च॥ ११

ते परावरदृष्टार्था महर्षिसमतेजसः।
भूयः कृतयुगं कर्तुमुत्सहन्ते नराधिपाः॥ १२

तेषामेव प्रभावेण शिवं वर्षति वासवः।
यथार्थं च ववुर्वाता विरजस्का दिशो दश॥ १३

निरुत्पाता च वसुधा सुप्रचाराश्च खे ग्रहाः।
चन्द्रमाश्च सनक्षत्रः सौम्यं चरति योगतः॥ १४

अनुलोमकरः सूर्यस्त्वयने द्वे चचार ह।
हव्यैश्च विविधैस्तृप्तः शुभगन्धो हुताशनः॥ १५

एवं सम्यक् प्रवृत्तेषु विवृद्धेषु मखादिषु।
तर्पयत्सु महीं कृत्स्नां नृणां कालभयं कुतः॥ १६

'वे सदा ही प्रजाकी भलाई करते हैं, इसलिये 'कर' देनेवाले लोग उनकी निन्दा नहीं करते। राजाओंको जब अर्थकी कमी पड़ती है, तब वे न्यायोचित करोंके द्वारा ही अपना खजाना भरते हैं॥ ६॥ वे क्षमापरायण हो अपने समस्त समृद्धिशाली जनपदोंका पालन करते हैं। कभी किसीको कठोर दण्ड नहीं देते हैं तथा चारों वर्णोंकी यथोचित रीतिसे रक्षा करते हैं॥ ७॥ (वे स्वयं किसीको उद्विग्न नहीं करते हैं, इसलिये) कोई भी प्राणी उन्हें उद्वेगमें नहीं डालते हैं। मन्त्रियोंद्वारा वे भलीभाँति सम्मानित होते हैं तथा चतुरङ्गिणी सेनाओंसे सुरक्षित होकर (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय—इन) छः गुणोंका यथावसर उपयोग करते रहते हैं॥ ८॥ सभी नरेश धनुर्वेदके अभ्यासमें तत्पर हैं, सभी वेदोंके परिनिष्ठित विद्वान् हैं और यथासमय प्रचुर दक्षिणायुक्त यज्ञोंद्वारा भगवान्‌की आराधना करते रहते हैं॥ ९॥ वे दीक्षा ग्रहण एवं ब्रह्मचर्यके पालनपूर्वक वेदोंका अध्ययन करके महर्षियोंको तथा पवित्र श्राद्ध-कर्मोंद्वारा सैकड़ों बार पितरोंको तृप्त करते रहते हैं॥ १०॥ भूतलपर जो वैदिक, लौकिक तथा धर्मशास्त्रकथित तीन प्रकारके कर्म दृष्टिगोचर होते हैं, उनमेंसे कोई भी कर्म इन राजाओंको अज्ञात नहीं है॥ ११॥ उन्हें परावर-तत्त्वका साक्षात्कार हो चुका है। वे सभी नरेश महर्षियोंके समान तेजस्वी हैं और पुनः इस पृथ्वीपर सत्ययुगको लानेका उत्साह रखते हैं॥ १२॥ उन्हींके प्रभावसे देवराज इन्द्र जगत्‌में कल्याणकारी जलकी वर्षा करते हैं, वायु यथोचित गतिसे प्रवाहित होती है और दसों दिशाएँ स्वच्छ रहती हैं॥ १३॥ पृथ्वीपर कोई उत्पात नहीं होता, आकाशमें सभी ग्रह समुचित गतिसे विचरण करते हैं तथा नक्षत्रोंसहित चन्द्रमा भी उनके साथ संयुक्त होकर सौम्यगतिसे विचरण कर रहे हैं॥ १४॥ जगत्‌के लिये अनुकूल किरणोंसे युक्त हुए भगवान् सूर्य दोनों अयनोंमें विचरते हैं तथा उत्तम गन्धसे सुवासित अग्निदेव नाना प्रकारके हविष्योंकी आहुति पाकर तृप्त होते हैं॥ १५॥ जब इस प्रकार राजालोग भलीभाँति सत्कर्मोंमें प्रवृत्त हैं, यज्ञ आदि कर्म दिनोंदिन बढ़ रहे हैं और वे नरेश समस्त भूमण्डलको निरन्तर तृप्त एवं संतुष्ट कर रहे हैं, तब मनुष्योंको कालका भय कैसे हो सकता है'॥ १६॥

तेषां ज्वलितकीर्तीनामन्योन्यवशवर्तिनाम्।
राज्ञां बलैर्बलवतां पीड्यते वसुधातलम्॥ १७

सेयं भारपरिश्रान्ता पीड्यमाना नराधिपैः।
पृथिवी समनुप्राप्ता नौरिवासन्नविप्लवा॥ १८

युगान्तसदृशै रूपैः शैलोच्चलितबन्धना।
जलोत्पीडाकुला स्वेदं धारयन्ती मुहुर्मुहुः॥ १९

क्षत्रियाणां वपुर्भिश्च तेजसा च बलेन च।
नृणां च राष्ट्रैर्विस्तीर्णैः श्राम्यतीव वसुन्धरा॥ २०

पुरे पुरे नरपतिः कोटिसंख्यैर्बलैर्वृतः।
राष्ट्रे राष्ट्रे च बहवो ग्रामाः शतसहस्रशः॥ २१

भूमिपानां सहस्रैश्च तेषां च बलिनां बलैः।
ग्रामायुताढ्यै राष्ट्रैश्च भूमिर्निर्विवराकृता॥ २२

सेयं निरामयं कृत्वा निश्रेष्टा कालमग्रतः।
प्राप्ता ममालयं विष्णो भवांश्चास्याः परा गतिः॥ २३

कर्मभूमिर्मनुष्याणां भूमिरेषा व्यथां गता।
यथा न सीदेत् तत् कार्यं जगत्येषा हि शाश्वती॥ २४

अस्या हि पीडने दोषो महान् स्यान्मधुसूदन।
क्रियालोपश्च लोकानां पीडितं च जगद् भवेत्॥ २५

श्राम्यते व्यक्तमेवेयं पार्थिवौघप्रपीडिता।
सहजां या क्षमां त्यक्त्वा चलत्वमचला गता॥ २६

तदस्याः श्रुतवन्तः स्म तच्चापि भवता श्रुतम्।
भारावतरणार्थं हि मन्त्रयाम सह त्वया॥ २७

सत्पथे हि स्थिताः सर्वे राजानो राष्ट्रवर्धनाः।
नराणां च त्रयो वर्णा ब्राह्मणाननुयायिनः॥ २८

'परंतु जिनकी कीर्ति सब ओर जगमग हो रही है तथा जो एक-दूसरेके वशवर्ती होकर मेल-मिलापसे रहते हैं, उन बलवान् राजाओंके पास जो असंख्य सेनाएँ हैं, उनके भारसे पृथ्वीको बड़ी पीड़ा हो रही है॥ १७॥ इस प्रकार भारसे थकी हुई यह पृथ्वी उन नरेशोंसे पीड़ित होकर आपकी शरणमें आयी है। इसकी दशा उस नावकी-सी हो रही है, जिसके डूबनेका समय अत्यन्त निकट हो॥ १८॥ उन राजाओंके रूप प्रलयकालकी अग्निके समान तेजस्वी हैं। उनसे पीड़ित होनेके कारण इस पृथ्वीके पर्वतरूपी बन्धन ढीले पड़ने लगे हैं अर्थात् इस नौकारूपिणी पृथ्वीमें जो कीलें ठुकी हुई थीं, वे अब उखड़ने लगी हैं, अतः यह रसातलकी जलराशिमें डूबनेकी आशङ्कासे व्याकुल हो उठी है और इसके शरीरमें बारम्बार पसीना आ रहा है॥ १९॥ क्षत्रियोंके शरीर, तेज और बलसे तथा मनुष्योंके दूरतक फैले हुए राज्योंसे यह पृथ्वी थकती-सी जा रही है॥ २०॥ नगर-नगरमें वहाँका नरेश एक-एक करोड़ सैनिकोंसे सम्पन्न है तथा प्रत्येक राज्यमें कई लाख ग्राम हैं॥ २१॥ सहस्रों भूपालों, उन बलवान् भूपालोंकी सेनाओं तथा दस-दस हजार गाँवोंसे युक्त उनके राष्ट्रोंसे यह भूमि इतनी भर गयी है कि कहीं थोड़ी-सी भी जगह खाली नहीं है॥ २२॥ विष्णुदेव! यह पृथ्वी निश्चेष्ट होकर निरामय कालको आगे करके मेरे निवासस्थानमें आयी थी। अब आप इसकी परम गति हैं॥ २३॥ जगत्की आधारभूता यह सदा रहनेवाली भूमि, जो मनुष्योंकी कर्मभूमि है, बड़ा कष्ट पा रही है। यह अधिक भारके कारण दबकर बिखर न जाय, ऐसा कोई उपाय करना चाहिये॥ २४॥ मधुसूदन! इसके पीड़ित होनेपर महान् दोष प्राप्त हो सकता है। सब लोगोंकी सारी क्रियाएँ लुप्त हो जायँगी और सारा जगत् पीड़ित होने लगेगा॥ २५॥ निश्चय ही यह राजाओंके भारी सैन्यसमुदायसे पीड़ित होकर थकती चली जा रही है। यह बात इसीसे स्पष्ट है कि यह अचला भूमि अपनी स्वाभाविक क्षमाको त्यागकर विचलित हो उठी है॥ २६॥ हमने इसीसे इसकी सारी बातें सुनी हैं और आपने भी उन्हें सुन लिया, अतः हम इसका भार दूर करनेके लिये आपके साथ मन्त्रणा (विचार) करना चाहते हैं॥ २७॥ भूतलके समस्त राजा सन्मार्गमें स्थित हो अपने राष्ट्रोंकी वृद्धि कर रहे हैं। मनुष्योंके क्षत्रिय आदि तीनों वर्ण ब्राह्मणोंके अनुगामी हैं'॥ २८॥

सर्वं सत्यपरं वाक्यं वर्णा धर्मपरास्तथा।
सर्वे वेदपरा विप्राः सर्वे विप्रपरा नराः॥ २९

एवं जगति वर्तन्ते मनुष्या धर्मकारणात्।
यथा धर्मवधो न स्यात् तथा मन्त्रः प्रवर्त्यताम्॥ ३०

सतां गतिरियं नान्या धर्मश्चास्याः सुसाधनम्।
राज्ञां चैव वधः कार्यो धरण्या भारनिर्णये॥ ३१

तदागच्छ महाभाग सह वै मन्त्रकारणात्।
व्रजामो मेरुशिखरं पुरस्कृत्य वसुंधराम्॥ ३२

एतावदुक्त्वा राजेन्द्र ब्रह्मा लोकपितामहः।
पृथिव्या सह विश्वात्मा विरराम महाद्युतिः॥ ३३

'मनुष्योंकी सारी बातें सत्यके ही आश्रित हैं। सभी वर्ण अपने-अपने धर्ममें तत्पर हैं। समस्त ब्राह्मण वेदोंके स्वाध्यायमें लगे हुए हैं तथा सभी मनुष्य ब्राह्मणोंकी सेवामें संलग्न रहते हैं॥ २९॥ इस प्रकार संसारके सभी मानव धर्मपूर्वक बर्ताव करते हैं। अतः ऐसी कोई मन्त्रणा की जाय, जिससे पृथ्वीका भार तो कम हो जाय, परंतु धर्मको हानि न पहुँचे॥ ३०॥ यही सत्पुरुषोंकी गति है, दूसरी नहीं और धर्म ही इसका उत्तम साधन है। इस पृथ्वीका भार दूर करनेके लिये राजाओंका वध आवश्यक कार्य है॥ ३१॥ अतः महाभाग! आइये, हम सब लोग इस विषयपर एक साथ विचार करनेके लिये पृथ्वीको आगे करके मेरुपर्वतके शिखरपर चलें'॥ ३२॥ महाराज जनमेजय! सम्पूर्ण विश्वके आत्मा महातेजस्वी लोकपितामह ब्रह्मा, जो पृथ्वीके साथ आये थे, भगवान्से इतनी बात कहकर चुप हो गये॥ ३३॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि भारावतरणे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५१॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें (पृथ्वी-) भारावतरणविषयक इक्यावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५१॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भगवान् विष्णु तथा सब देवताओंका मेरुपर्वतकी दिव्य सभामें उपस्थित होना और वहाँ पृथ्वीका भगवान्से भार उतारनेके लिये प्रार्थना करना

वैशम्पायन उवाच

बाढमित्येव सह तैर्दुर्दिनाम्भोदनिःस्वनः।
प्रतस्थे दुर्दिनाकारः सदुर्दिन इवाचलः॥ १

समुक्तामणिविद्योतं सचन्द्राम्भोदवर्चसम्।
सजटामण्डलं कृत्स्नं स बिभ्रच्छ्रीधरो हरिः॥ २

स चास्योरसि विस्तीर्णे रोमाञ्चोद्गतराजिमान्।
श्रीवत्सो राजते श्रीमांस्तनद्वयमुखाञ्चितः॥ ३

पीते वसानो वसने लोकानां गुरुरव्ययः।
हरिः सोऽभवदालक्ष्यः स संध्याभ्र इवाचलः॥ ४

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! तब 'बहुत अच्छा' कहकर भगवान् विष्णु उन सबके साथ वहाँसे चल दिये। उनकी वाणी वर्षाकालके मेघकी भाँति गम्भीर थी, उनका श्रीविग्रह मेघके समान श्याम था तथा वे मेघयुक्त पर्वतके समान जान पड़ते थे॥ १॥ उनका जटामण्डलमण्डित उदरभाग मुक्तामणियोंकी मालासे उद्दीप्त होकर चन्द्रमाकी प्रभासे युक्त मेघके समान कान्ति धारण करता था। उस उदरको धारण करनेवाले भगवान् श्रीहरि अपूर्व शोभासे सम्पन्न दिखायी देते थे॥ २॥ उनके विस्तृत वक्षःस्थलमें उठी हुई रोमावलियोंसे युक्त शोभाशाली श्रीवत्स दोनों स्तनोंके मुखतक फैलकर उद्भासित हो रहा था॥ ३॥ दो पीत वस्त्र धारण किये सम्पूर्ण जगत्के गुरु अविनाशी भगवान् विष्णु संध्याकालिक मेघोंसे युक्त पर्वतके समान मनोहर दिखायी देते थे॥ ४॥

तं व्रजन्तं सुपर्णेन पद्मयोनिगतानुगम्।
अनुजग्मुः सुराः सर्वे तद्गतासक्तचक्षुषः॥ ५

नातिदीर्घेण कालेन सम्प्राप्ता रत्नपर्वतम्।
ददृशुर्देवतास्तत्र तां सभां कामरूपिणीम्॥ ६

मेरोः शिखरविन्यस्तां संयुक्तां सूर्यवर्चसा।
काञ्चनस्तम्भरचितां वज्रसंधानतोरणाम्॥ ७

मनोनिर्माणचित्राढ्यां विमानशतमालिनीम्।
रत्नजालान्तरवतीं कामगां रत्नभूषिताम्॥ ८

क्लृप्तरत्नसमाकीर्णां सर्वर्तुकुसुमोत्कटाम्।
देवमायाधरां दिव्यां विहितां विश्वकर्मणा॥ ९

तां हृष्टमनसः सर्वे यथास्थानं यथाविधि।
यथानिदेशं त्रिदशा विविशुस्ते सभां शुभाम्॥ १०

ते निषेदुर्यथोक्तेषु विमानेष्वासनेषु च।
भद्रासनेषु पीठेषु कुथास्वास्तरणेषु च॥ ११

ततः प्रभञ्जनो वायुर्ब्रह्मणा साधु चोदितः।
मा शब्दमिति सर्वत्र प्रचक्रामाथ तां सभाम्॥ १२

निःशब्दस्तिमिते तस्मिन् समाजे त्रिदिवौकसाम्।
बभाषे धरणी वाक्यं खेदात् करुणभाषिणी॥ १३

धरण्युवाच

त्वया धार्या त्वहं देव त्वया वै धार्यते जगत्।
त्वं धारयसि भूतानि भुवनानि बिभर्षि च॥ १४

यत् त्वया धार्यते किञ्चित् तेजसा च बलेन च।
ततस्तव प्रसादेन मया यत्नाच्च धार्यते॥ १५

त्वया धृतं धारयामि नाधृतं धारयाम्यहम्।
न हि तद् विद्यते भूतं यत् त्वया नानुधार्यते॥ १६

ब्रह्माजीके पीछे-पीछे गरुड़पर बैठकर यात्रा करते हुए उन भगवान् नारायणका सभी देवता अनुसरण कर रहे थे। उन सबके नेत्र उन्हींकी ओर लगे हुए थे॥ ५॥ थोड़े ही समयमें सब देवता रत्नमय मेरुपर्वतपर आ पहुँचे। वहाँ उन्होंने ब्रह्माजीकी उस सभाको देखा, जो इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली थी॥ ६॥ मेरुपर्वतके शिखरपर स्थापित हुई वह दिव्य सभा सूर्यके समान तेजसे सम्पन्न थी। उसमें सोनेके खंभे लगे थे तथा उसके फाटकमें रत्न जड़े हुए थे॥ ७॥ मानसिक संकल्पके अनुसार स्वतः निर्मित हुए विचित्र चित्र उसकी शोभा बढ़ाते थे। सैकड़ों विमानोंकी पंक्तियाँ वहाँ विराजमान थीं। उसमें रत्नोंके बने झरोखे लगे थे। वह इच्छानुसार विचरण करनेवाली सभा नाना प्रकारके दिव्य रत्नोंसे सजी हुई थी॥ ८॥ उसमें बहुमूल्य रत्न जड़े हुए थे। सभी ऋतुओंके फूलोंसे वह व्याप्त थी। उस दिव्य सभाका निर्माण साक्षात् विश्वकर्माने किया था। वह देवताओंकी माया धारण करनेवाली थी॥ ९॥ समस्त देवता ब्रह्माजीकी आज्ञाके अनुसार प्रसन्नतापूर्वक उस कल्याणमयी सभामें प्रविष्ट हुए और यथायोग्य स्थानपर विधिपूर्वक बैठे॥ १०॥ वे वहाँ योग्यतानुसार बताये हुए विमानों, आसनों, भद्रासनों, पीठों, कालीनों तथा दूसरे-दूसरे बिछौनोंपर विराजमान हुए॥ ११॥ तब ब्रह्माजीके भलीभाँति आज्ञा देनेपर अपने वेगसे बड़े-बड़े वृक्षोंको तोड़ देनेवाले वायुदेव उठे और 'कोई एक शब्द भी मुँहसे न निकाले। सब लोग मौन रहें।' ऐसा कहते हुए सारी सभामें सब ओर घूम आये॥ १२॥ जब देवताओंका वह समुदाय भलीभाँति नीरव तथा निस्तब्ध हो गया, तब वहाँ करुणाजनक वचन बोलनेवाली पृथ्वीने दुःखपूर्वक यह बात कही॥ १३॥

पृथ्वी बोली—देव! (मैं रसातलमें धसी जा रही हूँ अतः) आप मुझे धारण करें; क्योंकि आपके आधारपर ही यह सम्पूर्ण जगत् टिका हुआ है। आप ही समस्त भूतोंको धारण और सभी भुवनोंका भरण-पोषण करते हैं॥ १४॥ आप अपने ही तेज और बलसे जो कुछ भी धारण करते हैं, उसीको आपके प्रसादसे मैं भी यत्नपूर्वक धारण करती हूँ॥ १५॥ आपके धारण किये हुएको ही मैं धारण करती हूँ। जिसे आपने धारण न कर रखा हो, ऐसी कोई वस्तुको मैं धारण नहीं करती। ऐसा कोई भूत नहीं है, जिसे आप निरन्तर धारण न करते हों॥ १६॥

त्वमेव कुरुषे देव नारायण युगे युगे।
मम भारावतरणं जगतो हितकाम्यया॥ १७

तवैव तेजसाऽऽक्रान्तां रसातलतलं गताम्।
त्रायस्व मां सुरश्रेष्ठ त्वामेव शरणं गताम्॥ १८

दानवैः पीड्यमानाहं राक्षसैश्च दुरात्मभिः।
त्वामेव शरणं नित्यमुपयास्ये सनातनम्॥ १९

तावन्मेऽस्ति भयं भूयो यावन्न त्वां ककुद्मिनम्।
शरणं यामि मनसा शतशो ह्युपलक्षये॥ २०

अहमादौ पुराणस्य संक्षिप्ता पद्मयोनिना।
मां च बद्ध्वा कृतौ पूर्वं मृन्मयौ द्वौ महासुरौ॥ २१

कर्णस्त्रोतोद्भवौ तौ हि विष्णोरस्य महात्मनः।
महार्णवे प्रस्वपतः काष्ठकुण्ड्यसमौ स्थितौ॥ २२

तौ विवेश स्वयं वायुर्ब्रह्मणा साधु चोदितः।
दिवं प्रच्छादयन्तौ तु ववृधाते महासुरौ॥ २३

वायुप्राणौ तु तौ गृह्य ब्रह्मा पर्यमृशच्छनैः।
एकं मृदुतरं मेने कठिनं वेद चापरम्॥ २४

नामनी तु तयोश्चक्रे स विभुः सलिलोद्भवः।
मृदुस्त्वयं मधुर्नाम कठिनः कैटभोऽभवत्॥ २५

तौ दैत्यौ कृतनामानौ चेरतुर्बलदर्पितौ।
सर्वमेकार्णवं लोकं योद्धुकामौ सुदुर्जयौ॥ २६

तावागतौ समालोक्य ब्रह्मा लोकपितामहः।
एकार्णवाम्बुनिचये तत्रैवान्तरधीयत॥ २७

स पद्मे पद्मनाभस्य नाभिमध्यात् समुत्थिते।
रोचयामास वसतिं गुह्यां ब्रह्मा चतुर्मुखः॥ २८

तावुभौ जलगर्भस्थौ नारायणपितामहौ।
बहून् वर्षगणानप्सु शयानौ न चकम्पतुः॥ २९

अथ दीर्घस्य कालस्य तावुभौ मधुकैटभौ।
आजग्मतुस्तमुद्देशं यत्र ब्रह्मा व्यवस्थितः॥ ३०

देव! नारायण! आप ही प्रत्येक युगमें जगत्के हितकी कामनासे मेरा भार उतारते हैं॥ १७॥ सुरश्रेष्ठ! आपहीके तेजसे आक्रान्त होकर मैं रसातलको जा पहुँची हूँ और अपने उद्धारके लिये आपकी ही शरणमें आयी हूँ। आप मेरी रक्षा करें॥ १८॥ दानवों तथा दुरात्मा राक्षसोंसे पीड़ित होकर मैं सदा आप सनातन पुरुषकी ही शरणमें आती हूँ और आती रहूँगी॥ १९॥ मुझे तभीतक अधिक भय रहता है, जबतक कि मैं अपना भार धारण करनेवाले आप परमेश्वरकी मनसे शरण नहीं लेती हूँ। इस बातको मैं सैकड़ों बार देख चुकी हूँ॥ २०॥ पुरातन युगके प्रारम्भकालमें कमलयोनि ब्रह्माजीने मुझे जलके ऊपर स्थापित किया था और मेरी मृत्तिकाको मुट्ठीमें बाँधकर उसके द्वारा पहले दो बड़े-बड़े असुरोंकी मूर्तियाँ बनायीं॥ २१॥ वे दोनों पहले-पहल महासागरमें सोते हुए इन महात्मा भगवान् विष्णुके कानोंकी मैलसे उत्पन्न हुए थे और काठ एवं दीवारके समान अचेतन अवस्थामें स्थित थे (इन्हींकी आकृतियोंको भगवान्ने मिट्टीसे सँवारा था)॥ २२॥ फिर ब्रह्माजीकी उत्तम प्रेरणासे स्वयं वायुदेवने उनके भीतर प्रवेश किया। इसके बाद वे दोनों महान् असुर आकाशको आच्छादित करते हुए बढ़ने लगे॥ २३॥ वायुरूपी प्राणसे युक्त हुए उन दोनों असुरोंको गोदमें लेकर ब्रह्माजीने उनके अङ्गोंपर धीरे-धीरे हाथ फेरा। उनमेंसे एकका शरीर तो उन्हें अत्यन्त कोमल प्रतीत हुआ और दूसरेका कठोर॥ २४॥ तब जलजजन्मा भगवान् ब्रह्माने उन दोनोंका नामकरण-संस्कार किया और कहा—यह जो मृदु (कोमल) है, इसका नाम 'मधु' होगा और जो कठोर है, वह 'कैटभ' कहलायेगा॥ २५॥ नाम निश्चित हो जानेपर वे दोनों अत्यन्त दुर्जय दैत्य बलके घमंडसे मतवाले होकर युद्धकी इच्छासे समस्त एकार्णव जगत्में विचरने लगे॥ २६॥ उन दोनोंको युद्धके लिये आया देख लोकपितामह ब्रह्मा वहीं एकार्णवकी जलराशिमें अदृश्य हो गये॥ २७॥ उन चतुर्मुख ब्रह्माने भगवान् पद्मनाभकी नाभिके मध्यभागसे प्रकट हुए कमलपर ही गुप्तरूपसे निवास करना पसंद किया॥ २८॥ वे दोनों भगवान् नारायण और ब्रह्मा जलके भीतर स्थित हो बहुत वर्षोंतक सोते रहे। कभी हिलेतक नहीं॥ २९॥ तदनन्तर दीर्घकाल व्यतीत होनेके पश्चात् वे दोनों भाई मधु और कैटभ उस स्थानपर आये, जहाँ ब्रह्माजी विराजमान थे॥ ३०॥

दृष्ट्वा तावसुरौ घोरौ महाकायौ दुरासदौ।
ब्रह्मणा ताडितो विष्णुः पद्मनालेन वै तदा।
उत्पपाताथ शयनात् पद्मनाभो महाद्युतिः॥ ३१

तद् युद्धमभवद् घोरं तयोस्तस्य च वै तदा।
एकार्णवे तदा लोके त्रैलोक्ये जलतां गते॥ ३२

तदाभूत् तुमुलं युद्धं वर्षसंख्या सहस्रशः।
न च तावसुरौ युद्धे तदा श्रममवापतुः॥ ३३

अथातो दीर्घकालस्य तौ दैत्यौ युद्धदुर्मदौ।
ऊचतुः प्रीतमनसौ देवं नारायणं हरिम्॥ ३४

प्रीतौ स्वस्तव युद्धेन श्लाघ्यस्त्वं मृत्युरावयोः।
आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता॥ ३५

हतौ च तव पुत्रत्वं प्राप्नुयावः सुरोत्तम।
यो ह्यावां युधि निर्जेता तस्यावां विहितौ सुतौ॥ ३६

स तु गृह्य मृधे दोर्भ्यां दैत्यौ तावभ्यपीडयत्।
जग्मतुर्निधनं चापि तावुभौ मधुकैटभौ॥ ३७

तौ हतौ चाप्लुतौ तोये वपुर्भ्यामेकतां गतौ।
मेदो मुमुचतुर्दैत्यौ मथ्यमानौ जलोर्मिभिः॥ ३८

मेदसा तज्जलं व्याप्तं ताभ्यामन्तर्दधे ततः।
नारायणश्च भगवान् असृजत् स पुनः प्रजाः॥ ३९

दैत्ययोर्मेदसाच्छन्ना मेदिनीति ततः स्मृता।
प्रभावात् पद्मनाभस्य शाश्वती जगती कृता॥ ४०

वराहेण पुरा भूत्वा मार्कण्डेयस्य पश्यतः।
विषाणेनाहमेकेन तोयमध्यात् समुद्धृता॥ ४१

हृताहं क्रमता भूयस्तदा युष्माकमग्रतः।
बलेः सकाशाद् दैत्यस्य विष्णुना प्रभविष्णुना॥ ४२

साम्प्रतं खिद्यमानाहमेनमेव गदाधरम्।
अनाथा जगतो नाथं शरण्यं शरणं गता॥ ४३

अग्निः सुवर्णस्य गुरुर्गवां सूर्यो गुरुः स्मृतः।
नक्षत्राणां गुरुः सोमो मम नारायणो गुरुः॥ ४४

उन दुर्जय, विशालकाय एवं भयंकर असुरोंको देखकर ब्रह्माजीने कमलकी नालसे भगवान् विष्णुको ठोंका (उन्हें जग जानेके लिये संकेत किया)। तब महातेजस्वी भगवान् पद्मनाभ शय्यासे उछलकर खड़े हो गये॥ ३१॥ उस एकार्णव जगत्में, जब कि तीनों लोक जलमें मिल गये थे, उन दोनों असुरों तथा भगवान् विष्णुमें घोर युद्ध हुआ॥ ३२॥ उस समय सहस्रों वर्षोंतक वह तुमुल युद्ध चलता रहा, किंतु वे दोनों असुर युद्धमें थके नहीं॥ ३३॥ दीर्घकालतक युद्ध करके वे दोनों रणदुर्मद दैत्य मन-ही-मन बड़े प्रसन्न हुए और भगवान् नारायण हरिसे इस प्रकार बोले— ॥ ३४॥ 'देव! तुम्हारे युद्धसे हम दोनों भाई बहुत प्रसन्न हैं। तुम हमारे लिये स्पृहणीय मृत्यु हो; किंतु हम दोनोंको वहीं मारो, जहाँकी पृथ्वी जलमें डूबी हुई न हो॥ ३५॥ सुरश्रेष्ठ! मारे जानेपर हम दोनों आपके पुत्रभावको प्राप्त होंगे; क्योंकि ब्रह्माजीने विधान बना दिया है कि जो हमें युद्धमें जीत ले, हम उसीके पुत्र हों'॥ ३६॥ उनकी बात सुनकर भगवान् विष्णुने उस युद्धस्थलमें उन दैत्योंको दोनों हाथोंसे पकड़कर दबाया। इससे मधु और कैटभ दोनोंकी मृत्यु हो गयी॥ ३७॥ मरनेपर उन दोनोंकी लाशें जलमें डूबकर एक हो गयीं। फिर जलकी लहरोंसे मथित होकर उन दोनों दैत्योंने जो मेद छोड़ा, उससे आच्छादित होकर वहाँका जल अदृश्य हो गया। उसीपर भगवान् नारायणने नाना प्रकारके जीवोंकी सृष्टि की॥ ३८-३९॥ उन दैत्योंके मेदसे सारी पृथ्वी ढक गयी, इसलिये 'मेदिनी' नामसे विख्यात हुई। भगवान् पद्मनाभके प्रभावसे यह जगत्के लिये शाश्वत आधार बन गयी॥ ४०॥ पूर्वकालमें वाराहरूप धारण करके इन्हीं भगवान् नारायणने मार्कण्डेयजीके देखते-देखते मुझे एक दाढ़पर उठाकर पानीके भीतरसे बाहर निकाला था॥ ४१॥ फिर उस दिन आपलोगोंके सामने ही प्रभावशाली भगवान् विष्णुने अपने पग बढ़ाकर त्रिलोकीको नापते हुए मुझे दैत्यराज बलिके पाससे छीन लिया॥ ४२॥ इस समय भी अत्यन्त कष्टमें पड़कर अनाथ-सी हो रही हूँ और इन्हीं शरणागतवत्सल जगन्नाथ गदाधरकी शरणमें आयी हूँ॥ ४३॥ अग्नि सुवर्णका गुरु है। सूर्य समस्त किरणोंके गुरु माने गये हैं। नक्षत्रोंके गुरु चन्द्रमा हैं, परंतु मेरे गुरु ये भगवान् नारायण ही हैं॥ ४४॥

यदहं धारयाम्येका जगत् स्थावरजङ्गमम्।
मया धृतं धारयते सर्वमेतद् गदाधरः॥ ४५

जामदग्न्येन रामेण भारावतरणेप्सया।
रोषात् त्रिःसप्तकृत्वोऽहं क्षत्रियैर्विप्रयोजिता॥ ४६

सास्मि वेद्यां समारोप्य तर्पिता नृपशोणितैः।
भार्गवेण पितुः श्राद्धे कश्यपाय निवेदिता॥ ४७

मांसमेदोऽस्थिदुर्गन्धा दिग्धा क्षत्रियशोणितैः।
रजस्वलेव युवतिः कश्यपं समुपस्थिता॥ ४८

स मां ब्रह्मर्षिरप्याह किमुर्वि त्वमवाङ्मुखी।
वीरपत्नीव्रतमिदं धारयन्ती विषीदसि॥ ४९

साहं विज्ञापितवती कश्यपं लोकभावनम्।
पतयो मे हता ब्रह्मन् भार्गवेण महात्मना॥ ५०

साहं विहीना विक्रान्तैः क्षत्रियैः शस्त्रवृत्तिभिः।
विधवा शून्यनगरा न धारयितुमुत्सहे॥ ५१

तन्मह्यं दीयतां भर्ता भगवंस्त्वत्समो नृपः।
रक्षेत् सग्रामनगरां यो मां सागरमालिनीम्॥ ५२

स श्रुत्वा भगवान् वाक्यं बाढमित्यब्रवीत् प्रभुः।
ततो मां मानवेन्द्राय मनवे स प्रदत्तवान्॥ ५३

सा मनुप्रभवं दिव्यं प्राप्येक्ष्वाकुकुलं नृपम्।
विपुलेनास्मि कालेन पार्थिवात् पार्थिवं गता॥ ५४

एवं दत्तास्मि मनवे मानवेन्द्राय धीमते।
भुक्ता राजसहस्रैश्च महर्षिकुलसम्मितैः॥ ५५

बहवः क्षत्रियाः शूरा मां जित्वा दिवमाश्रिताः।
ते च कालवशं प्राप्य मय्येव प्रलयं गताः॥ ५६

मत्कृते विग्रहा लोके वृत्ता वर्तन्त एव च।
क्षत्रियाणां बलवतां संग्रामेष्वनिवर्तिनाम्॥ ५७

अकेली मैं जिस चराचर जगत्‌को धारण करती हूँ, मेरे द्वारा धारण किये गये इस समस्त जगत्‌को (तथा मुझे भी) भगवान् गदाधर ही धारण करते हैं॥ ४५॥ इन्होंने ही जमदग्निनन्दन परशुरामके रूपमें प्रकट होकर मेरा भार उतारनेकी इच्छासे रोषपूर्वक मुझे इक्कीस बार क्षत्रियोंसे रहित किया था॥ ४६॥ मैं वही हूँ, जिसे रणयज्ञकी वेदीमें प्रतिष्ठित करके भृगुनन्दन परशुरामने राजाओंके रक्तसे तृप्त किया था और पिताके श्राद्धमें महर्षि कश्यपको मेरा दान कर दिया था॥ ४७॥ मैं क्षत्रियोंके रक्तसे भीगी हुई थी। मेरे शरीरसे (मरे हुए राजाओंके) मांस, मेद और अस्थियोंकी दुर्गन्ध फैल रही थी। उसी दशामें रजस्वला युवतीकी भाँति मैं महर्षि कश्यपकी सेवामें उपस्थित हुई॥ ४८॥ उस समय ब्रह्मर्षि कश्यपने मुझसे कहा—'वसुधे! क्या कारण है, तू नीचे मुख किये वीर-पत्नीके इस व्रतको धारण करके विषादमें डूबी हुई है?॥ ४९॥ उस समय मैंने लोकपिता कश्यपजीको यह सूचित किया—ब्रह्मन्! महात्मा परशुरामने मेरे पतियोंको मार डाला है॥ ५०॥ शस्त्रग्रहण ही जिनकी जीविकाका साधन था, उन पराक्रमी क्षत्रियोंसे हीन होकर मैं विधवा हो गयी हूँ। मेरे सारे नगर राजाओंसे शून्य हो गये हैं, अतः अब मुझमें जीवित रहनेका उत्साह नहीं रह गया है॥ ५१॥ अतः भगवन्! मुझे ऐसा कोई नरेश पति दीजिये, जो आपके समान ही शक्तिशाली हो और समुद्रसे घिरी हुई मेरी ग्राम और नगरोंसहित रक्षा कर सके'॥ ५२॥ प्रभावशाली भगवान् कश्यपने मेरी यह बात सुनकर कहा 'बहुत अच्छा'। फिर उन्होंने मुझे राजा मनुके हाथमें दे दिया॥ ५३॥ इस प्रकार मैं वैवस्वत मनुसे प्रकट हुए दिव्य इक्ष्वाकुकुलमें आ पहुँची। उस कुलके सभी लोग नरेश थे। वहाँ दीर्घकालतक एक राजासे दूसरे राजाके अधिकारमें आती रही॥ ५४॥ इस प्रकार मैं बुद्धिमान् राजा मनुके हाथमें सौंपी गयी और महर्षिसमुदायके तुल्य तेजस्वी सहस्रों राजाओंके उपभोगमें आयी॥ ५५॥ बहुत-से शूरवीर क्षत्रिय मुझे जीतकर स्वर्गलोकको चले गये। वे कालके अधीन होकर मुझमें ही लीन हुए थे॥ ५६॥ जगत्‌में मेरे ही लिये युद्धस्थलोंमें कभी पीठ न दिखानेवाले बलवान् क्षत्रियोंके परस्पर युद्ध हुए हैं और हो रहे हैं॥ ५७॥

एतद् युष्मत्प्रवृत्तेन दैवेन परिपाल्यते।
जगद्धितार्थं कुरुत राज्ञां हेतुं रणक्षये॥ ५८

यद्यस्ति मयि कारुण्यं भारशैथिल्यकारणात्।
एकश्चक्रधरः श्रीमानभयं मे प्रयच्छतु॥ ५९

यमहं भारसंतप्ता सम्प्राप्ता शरणार्थिनी।
भारो यद्यवरोप्तव्यो विष्णुरेव ब्रवीतु माम्॥ ६०

आपलोगोंके द्वारा परिचालित दैवके द्वारा ही इस जगत्‌का परिपालन होता है, अतः आप जगत्‌के हितके लिये ऐसा कोई उपाय कीजिये, जिससे रणभूमिमें राजाओंका संहार हो॥ ५८॥ यदि मुझपर भगवान्‌की दया हो तो यह एकमात्र चक्रधारी श्रीमान् भगवान् विष्णु मेरा भार शिथिल करनेके लिये मुझे अभयदान दें॥ ५९॥ मैं भारसे संतप्त होकर शरण खोजती हुई जिनकी शरणमें आयी हूँ, वे ही ये भगवान् विष्णु यदि मेरा भार उतारना उचित समझें तो इसके लिये मुझे आश्वासन दें॥ ६०॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि धरणीवाक्ये द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५२॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें पृथ्वीका वाक्यविषयक बावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५२॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्माजीकी आज्ञासे देवताओंका अंशावतरण

वैशम्पायन उवाच

ते श्रुत्वा पृथिवीवाक्यं सर्व एव दिवौकसः।
तदर्थकृत्यं संचिन्त्य पितामहमथाब्रुवन्॥ १

भगवन् ह्रियतामस्या धरण्या भारसंततिः।
शरीरकर्ता लोकानां त्वं हि लोकस्य चेश्वरः॥ २

यत् कर्तव्यं महेन्द्रेण यमेन वरुणेन च।
यद् वा कार्यं धनेशेन स्वयं नारायणेन वा॥ ३

यद् वा चन्द्रमसा कार्यं भास्करेणानिलेन वा।
आदित्यैर्वसुभिर्वापि रुद्रैर्वा लोकभावनैः॥ ४

अश्विभ्यां देववैद्याभ्यां साध्यैर्वा त्रिदशालयैः।
बृहस्पत्युशनोभ्यां वा कालेन कलिनापि वा॥ ५

महेश्वरेण वा ब्रह्मन् विशाखेन गुहेन वा।
यक्षराक्षसगन्धर्वैश्चारणैर्वा महोरगैः॥ ६

पतङ्गैः पर्वतैश्चापि सागरैर्वा महोर्मिभिः।
गङ्गामुखाभिर्दिव्याभिः सरिद्भिर्वा सुरेश्वर॥ ७

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! पृथ्वीकी यह बात सुनकर वे सभी देवता उसके प्रयोजनको सिद्ध करनेवाले कर्तव्यका चिन्तन करते हुए ब्रह्माजीसे इस प्रकार बोले—॥ १॥ 'भगवन्! आप इस पृथ्वीके बढ़े हुए भारको उतारिये; क्योंकि आप ही सब लोगोंके शरीरकी सृष्टि करनेवाले तथा सम्पूर्ण जगत्‌के ईश्वर हैं॥ २॥ इस विषयमें देवराज इन्द्र, वरुण और यमको क्या करना चाहिये? धनाध्यक्ष कुबेर अथवा साक्षात् भगवान् नारायणका भी क्या कर्तव्य है?॥ ३॥ चन्द्रमा, सूर्य, वायु, बारह आदित्य, आठ वसु तथा लोकोंका कल्याण करनेवाले ग्यारह रुद्रोंको भी इस विषयमें क्या करना चाहिये?॥ ४॥ दोनों देववैद्य अश्विनीकुमार, स्वर्गवासी साध्यगण, बृहस्पति, शुक्राचार्य, काल तथा कलिका भी इस समय क्या कर्तव्य है?॥ ५॥ ब्रह्मन्! भगवान् महेश्वर, विशाख, स्वामिकार्तिकेय, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, चारण तथा बड़े-बड़े नागोंको भी इस कार्यके सम्बन्धमें क्या करना है?॥ ६॥ सुरेश्वर! पक्षी, पर्वत, बड़ी-बड़ी लहरोंसे युक्त समुद्र तथा गङ्गा आदि दिव्य सरिताएँ भी इस विषयमें क्या कर सकती हैं?'॥ ७॥

शीघ्रमाज्ञापय विभो कथमंशः प्रयुज्यताम्।
यदि ते पार्थिवं कार्यं कार्यं पार्थिवविग्रहे॥ ८

कथमंशावतरणं कुर्मः सर्वे पितामह।
अन्तरिक्षगता ये च पृथिव्यां पार्थिवाश्च ये॥ ९

सदस्यानां च विप्राणां पार्थिवानां कुलेषु च।
अयोनिजाश्चैव तनूः सृजामो जगतीतले॥ १०

सुराणामेककार्याणां श्रुत्वैतन्निश्चितं मतम्।
देवैः परिवृतः प्राह वाक्यं लोकपितामहः॥ ११

रोचते मे सुरश्रेष्ठा युष्माकमपि निश्चयः।
सृजध्वं स्वशरीरांशांस्तेजसाऽऽत्मसमान् भुवि॥ १२

सर्व एव सुरश्रेष्ठास्तेजोभिरवरोहत।
भावयन्तो भुवं देवीं लब्ध्वा त्रिभुवनश्रियम्॥ १३

पार्थिवे भारते वंशे पूर्वमेव विजानता।
पृथिव्यां सम्भ्रममिमं श्रूयतां यन्मया कृतम्॥ १४

समुद्रेऽहं पुरा पूर्वे वेलामासाद्य पश्चिमाम्।
आसं सार्धं तनूजेन कश्यपेन महात्मना॥ १५

कथाभिः पूर्ववृत्ताभिर्लोकवेदानुगामिभिः।
इतिवृत्तैश्च बहुभिः पुराणप्रभवैर्गुणैः॥ १६

कुर्वतस्तु कथास्तास्ताः समुद्रः सह गङ्गया।
समीपमाजगामाशु युक्तस्तोयदमारुतैः॥ १७

स वीचिविषमां कुर्वन् गतिं वेगतरङ्गिणीम्।
यादोगणविचित्रेण संच्छन्नस्तोयवाससा॥ १८

शङ्खमुक्तामलतनुः प्रवालमणिभूषणः।
युक्तश्चन्द्रमसा पूर्णः साभ्रगम्भीरनिःस्वनः॥ १९

स मां परिभवन्नेव स्वां वेलां समतिक्रमन्।
क्लेदयामास चपलैर्लावणैरम्बुविस्रवैः॥ २०

'प्रभो! शीघ्र आज्ञा दें, हम अपने अंशका प्रयोग किस प्रकार करें? यदि आपको पृथ्वीके हितका कार्य अवश्य करना है तो बताइये, राजाओंमें युद्धकी ज्वाला जगानेके लिये हम सब किस उपायसे काम लें?॥ ८॥ पितामह! हम सब लोग किस प्रकार अंशावतार ग्रहण करें। हममेंसे जो देवता अन्तरिक्षमें रहते हैं तथा जो पृथ्वीपर पार्थिवरूपसे विराजमान हैं, वे सब सदस्य (ऋत्विज्) ब्राह्मणों तथा राजाओंके कुलमें अवतीर्ण हों तथा हमलोग भूतलपर अपने अयोनिज शरीरोंकी भी सृष्टि करें'॥ ९-१०॥ एक कार्यके लिये यत्नशील हुए देवताओंका यह निश्चित मत सुनकर उन देवताओंसे घिरे हुए लोकपितामह ब्रह्माजीने यह बात कही—॥ ११॥ 'सुरश्रेष्ठगण! तुमलोगोंका जो निश्चय है, वह मुझे भी अच्छा लगता है। तुमलोग भूतलपर अपने ही समान तेजस्वी अपने शरीरके अंशोंको प्रकट करो॥ १२॥ श्रेष्ठ देवताओ! तुम सभी लोग अपने-अपने तेजसे अवतार लो और तीनों लोकोंकी लक्ष्मीको पाकर भूदेवीकी रक्षा करते हुए वहाँ रहो॥ १३॥ मैं पृथ्वीपर आनेवाले इस भयको पहलेसे ही जानता था। अतः भूतलपर स्थित भरतवंशके लिये मैंने जो कुछ (विचार) किया है, उसे सुनो॥ १४॥ पहलेकी बात है, मैं पूर्व समुद्रके पश्चिम तटपर अपने पुत्र महात्मा कश्यपके साथ बैठा था। उस समय लोक और वेदका अनुसरण करनेवाली प्राचीन कथाओं तथा बहुत-से उत्तम गुणवाले पौराणिक इतिहासोंकी चर्चाद्वारा मैं समय बिता रहा था॥ १५-१६॥ उन-उन कथावार्ताओंको कहते-सुनते हुए मेरे समीप मूर्तिमती गङ्गाके साथ मूर्तिमान् समुद्र शीघ्रतापूर्वक आया। उसके साथ मेघोंकी घटा तथा वायुका भी आगमन हुआ था॥ १७॥ वह ऊँची-नीची लहरोंके कारण वेग एवं तरङ्गोंसे युक्त अपनी गतिको विषम बनाता हुआ आया था। जलजन्तुओंके कारण विचित्र दिखायी देनेवाले जलरूपी वस्त्रसे उसका शरीर ढका हुआ था॥ १८॥ उसके शरीरकी कान्ति शङ्ख और मुक्ताओंसे अत्यन्त निर्मल दिखायी देती थी। वह मूँगे और मणियोंके आभूषणोंसे विभूषित तथा पूर्ण चन्द्रमासे संयुक्त होनेके कारण उद्वेलित हो मेघके समान गम्भीर गर्जना कर रहा था॥ १९॥ उसने मेरा तिरस्कार-सा करते हुए अपनी मर्यादाका उल्लङ्घन करके अपने चञ्चल एवं नमकीन जलबिन्दुओंसे मुझे भिगो दिया'॥ २०॥

तं च देशं व्यवसितः समुद्रोऽद्भिर्विमर्दितुम्।
उक्तः संरब्धया वाचा शान्तोऽसीति मया तदा॥ २१

शान्तोऽसीत्युक्तमात्रस्तु तनुत्वं सागरो गतः।
संहतोर्मितरङ्गौघः स्थितो राजश्रिया ज्वलन्॥ २२

भूयश्चैव मया शप्तः समुद्रः सह गङ्गया।
सकारणां मतिं कृत्वा युष्माकं हितकाम्यया॥ २३

यस्मात् त्वं राजतुल्येन वपुषा समुपस्थितः।
गच्छार्णव महीपालो राजैव त्वं भविष्यसि॥ २४

तत्रापि सहजां लीलां धारयन् स्वेन तेजसा।
भविष्यसि नृणां भर्ता भारतानां कुलोद्वहः॥ २५

शान्तोऽसीति मयोक्तस्त्वं यच्चासि तनुतां गतः।
सुतनुर्यशसा लोके शान्तनुस्त्वं भविष्यसि॥ २६

इयमप्यायतापाङ्गी गङ्गा सर्वाङ्गशोभना।
रूपिणी च सरिच्छ्रेष्ठा तत्र त्वामुपयास्यति॥ २७

एवमुक्तस्तु मां क्षुब्धः सोऽभिवीक्ष्यार्णवोऽब्रवीत्।
मां प्रभो देवदेवानां किमर्थं शप्तवानसि॥ २८

अहं तव विधेयात्मा त्वत्कृतस्त्वत्परायणः।
अशपोऽसदृशैर्वाक्यैरात्मजं मां किमात्मना॥ २९

भगवंस्त्वत्प्रसादेन वेगात् पर्वणि वर्धितः।
यद्यहं चलितो ब्रह्मन् कोऽत्र दोषो महात्मनः॥ ३०

क्षिप्ताभिः पवनैरद्भिः स्पृष्टो यद्यसि पर्वणि।
अत्र मे किं नु भगवन् विद्यते शापकारणम्॥ ३१

उद्धतैश्च महावातैः प्रवृद्धैश्च बलाहकैः।
पर्वणा चेन्दुयुक्तेन त्रिभिः क्षुब्धोऽस्मि कारणैः॥ ३२

'जब समुद्र अपने उमड़े हुए जलसे उस स्थानको नष्ट-भ्रष्ट करनेके लिये उद्यत हुआ, तब मैंने क्रोधभरी वाणीमें उससे कहा—'तू शान्त हो जा'॥ २१॥ 'शान्त हो जा' इतना कहते ही समुद्र तनुता (सूक्ष्मता)-को प्राप्त हो गया। उसकी ऊर्मि और तरङ्गोंका प्रभाव दब गया और वह राजलक्ष्मीसे प्रकाशित होता हुआ मेरे समीप खड़ा हो गया॥ २२॥ फिर मैंने मन-ही-मन पृथ्वीके भार उतारनेके हेतुका विचार करके तुमलोगोंके हितकी कामनासे गङ्गासहित समुद्रको पुनः शाप देते हुए कहा'॥ २३॥ समुद्र! तू राजाके समान शरीर धारण करके मेरे निकट आया है, अतः जा, तू इस पृथ्वीका पालन करनेवाला राजा ही होगा॥ २४॥ वहाँ भी अपनी सहज लीलाको धारण किये अपने तेजसे तू मनुष्योंका भरण-पोषण करनेवाला तथा भरतवंशका भार वहन करनेमें समर्थ होगा॥ २५॥ 'शान्त हो जा' मेरे इतना कहते ही जो तू शान्त होकर तनुता (सूक्ष्मता)-को प्राप्त हुआ है, इसलिये तू सुन्दर शरीरसे युक्त एवं यशस्वी होकर संसारमें 'शान्तनु' नामसे विख्यात होगा॥ २६॥ यह विशाल-लोचना, सर्वाङ्गसुन्दरी, सरिताओंमें श्रेष्ठ मूर्तिमती गङ्गा भी वहाँ तुम्हारी सेवामें उपस्थित होगी॥ २७॥ मेरे ऐसा कहनेपर क्षोभमें भरा हुआ समुद्र मेरी ओर देखकर बोला—'देवदेवेश्वर! आपने मुझे शाप क्यों दिया?॥ २८॥ मेरा यह शरीर तो आपकी आज्ञाका पालक है। आपने ही इसकी रचना की है और यह सदा आपकी सेवामें ही तत्पर रहता है। मैं आपका पुत्र हूँ। आपने स्वयं ही मुझे ऐसे वचनोंद्वारा, जो आपके और मेरे अनुरूप नहीं हैं, शाप कैसे दे दिया?॥ २९॥ भगवन्! आपकी ही कृपासे पूर्णिमाके दिन मैं बड़े वेगसे बढ़ जाता हूँ। ब्रह्मन्! इस सहज नियमसे प्रेरित होकर यदि मैं अपनी मर्यादासे विचलित हो गया तो इसमें मेरा अपना दोष क्या है?॥ ३०॥ भगवन्! आज पूर्णिमाके दिन प्रबल वायुद्वारा फेंके गये मेरे जलसे यदि आपका स्पर्श हो गया, आप भीग गये तो इसमें मुझे शाप प्राप्त होनेका क्या कारण है?॥ ३१॥ उठी हुई प्रचण्ड आँधी, बढ़े हुए महान् मेघ और उगे हुए चन्द्रमासे युक्त पूर्णिमाका पर्व—इन तीन कारणोंसे मैं क्षुब्ध (उद्वेलित) हो उठा था।'॥ ३२॥

एवं यद्यपराद्धोऽहं कारणैस्त्वत्प्रकल्पितैः।
क्षन्तुमर्हसि मे ब्रह्मञ्छापोऽयं विनिवर्त्यताम्॥ ३३

एवं मयि निरालम्बे शापाच्छिथिलतां गते।
कारुण्यं कुरु देवेश प्रमाणं यद्यवेक्षसे॥ ३४

अस्यास्तु देवगङ्गाया गां गतायास्त्वदाज्ञया।
मम दोषात् सदोषायाः प्रसादं कर्तुमर्हसि॥ ३५

तमहं श्लक्ष्णया वाचा महार्णवमथाब्रवम्।
अकारणज्ञं देवानां त्रस्तं शापानलेन तम्॥ ३६

शान्तिं व्रज न भेतव्यं प्रसन्नोऽस्मि महोदधे।
शापेऽस्मिन् सरितां नाथ भविष्यं शृणु कारणम्॥ ३७

त्वं गच्छ भारते वंशे स्वं देहं स्वेन तेजसा।
आधत्स्व सरितां नाथ त्यक्त्वेमां सागरीं तनुम्॥ ३८

महोदधे महीपालस्तत्र राजश्रिया वृतः।
पालयंश्चतुरो वर्णान् रंस्यसे सलिलेश्वर॥ ३९

इयं च ते सरिच्छ्रेष्ठा बिभ्रती रूपमुत्तमम्।
तत्कालं रमणीयाङ्गी गङ्गा परिचरिष्यति॥ ४०

अनया सह जाह्नव्या मोदमानो ममाऽऽज्ञया।
इमं सलिलसंक्लेदं विस्मरिष्यसि सागर॥ ४१

त्वरता चैव कर्तव्यं त्वयेदं मम शासनम्।
प्राजापत्येन विधिना गङ्गया सह सागर॥ ४२

वसवः प्रच्युताः स्वर्गात् प्रविष्टाश्च रसातलम्।
तेषामुत्पादनार्थाय त्वं मया विनियोजितः॥ ४३

अष्टौ ताञ्जाह्नवी गर्भानपत्यार्थं दधात्वियम्।
विभावसोस्तुल्यगुणान् सुराणां प्रीतिवर्धनान्॥ ४४

'ब्रह्मन्! इस तरह आपके बनाये हुए कारणों (नियमों)-से ही क्षुब्ध होकर यदि मैंने अपराध किया है तो आप उसके लिये मुझे क्षमा कर दें और इस शापको लौटा लें॥ ३३॥ देवेश्वर! मुझे दूसरा कोई सहारा देनेवाला नहीं है। मैं शापसे शिथिल हो गया हूँ। यदि आप शरणागतकी रक्षाका प्रतिपादन करनेवाले प्रमाणपर दृष्टि रखते हैं तो मुझपर अवश्य दया करें॥ ३४॥ यह देवनदी गङ्गा आपकी ही आज्ञासे इस भूतलपर अवतीर्ण हुई है। (इसका कोई दोष नहीं है) इसे मेरे दोषसे ही दोषकी भागिनी होना पड़ा है, अतः आप इसपर कृपा करें॥ ३५॥ महासागर देवताओंके भूभार-हरणरूप उद्देश्यको नहीं जानता था; अतः मेरी शापाग्निसे भयभीत हो उठा था। उस समय मैंने मधुर वाणीद्वारा उसे सान्त्वना देते हुए कहा—॥ ३६॥ महोदधे! शान्त हो जाओ। तुम्हें डरना नहीं चाहिये। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। नदीश्वर! इस शापमें जो भावी कारण (उद्देश्य) है, उसे बताता हूँ, सुनो—॥ ३७॥ सरिताओंके स्वामी समुद्र! तुम अपने तेजसे इस सागर-शरीरको छोड़कर अर्थात् योगबलसे अपने-आपको दो रूपोंमें विभक्त करके (एकसे तो यहाँ रह जाओ और दूसरे रूपसे) जाओ और भरतवंशमें अपने शरीरको गर्भमें स्थापित करो॥ ३८॥ जलके स्वामी महासागर! उस भरतवंशमें भूपाल बनकर राजलक्ष्मीसे सम्पन्न हो तुम चारों वर्णोंका पालन करते हुए बड़े सुखसे रहोगे॥ ३९॥ यह जो तुम्हारी प्रिया सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गा है, यह भी उस समय रमणीय अङ्गोंसे सुशोभित परम सुन्दर रूप धारण करके वहाँ तुम्हारी सेवा करेगी॥ ४०॥ सागर! तुम मेरी आज्ञासे वहाँ इस जाह्नवीके साथ आनन्दपूर्वक रहते हुए मुझे जलसे भिगोनेके कारण मिले हुए इस शापके दुःखको भूल जाओगे॥ ४१॥ समुद्र! तुम्हें बहुत शीघ्र मेरी इस आज्ञाका पालन करना चाहिये। वहाँ इस गङ्गाके साथ तुम्हारा प्राजापत्यविधिसे विवाह होगा॥ ४२॥ आठों वसु स्वर्गसे भ्रष्ट होकर रसातलमें जा पहुँचे हैं। उन्हें मनुष्यरूपमें उत्पन्न करनेके लिये मैंने तुम्हें नियुक्त किया है॥ ४३॥ अग्निदेवके समान गुणशाली तथा देवताओंकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाले उन आठों वसुओंको संतानरूपसे उत्पन्न करनेके लिये यह गङ्गा तुमसे गर्भ धारण करे'॥ ४४॥

उत्पाद्य त्वं वसूञ्छीघ्रं कृत्वा कुरुकुलं महत्।
प्रवेष्टासि तनुं त्यक्त्वा पुनः सागर सागरीम्॥ ४५

एवमेतन्मया पूर्वं हितार्थं वः सुरोत्तमाः।
भविष्यं पश्यता भारं पृथिव्याः पार्थिवात्मकम्॥ ४६

तदेष शान्तनोर्वंशः पृथिव्यां रोपितो मया।
वसवो ये च गङ्गायामुत्पन्नास्त्रिदिवौकसः॥ ४७

अद्यापि भुवि गाङ्गेयस्तत्रैव वसुरष्टमः।
सप्तेमे वसवः प्राप्ताः स एकः परिलम्बते॥ ४८

द्वितीयायां स सृष्टायां द्वितीया शान्तनोस्तनुः।
विचित्रवीर्यो द्युतिमानासीद् राजा प्रतापवान्॥ ४९

वैचित्रवीर्यौ द्वावेव पार्थिवौ भुवि साम्प्रतम्।
धृष्टराष्ट्रश्च पाण्डुश्च विख्यातौ पुरुषर्षभौ॥ ५०

तत्र पाण्डोः श्रिया जुष्टे द्वे भार्ये सम्बभूवतुः।
शुभे कुन्ती च माद्री च देवयोषोपमे तु ते॥ ५१

धृतराष्ट्रस्य राज्ञस्तु भार्यैका तुल्यचारिणी।
गान्धारी भुवि विख्याता भर्तुर्नित्यं व्रते स्थिता॥ ५२

तत्र वंशा विभज्यन्तां विपक्षाः पक्ष एव च।
पुत्राणां हि तयो राज्ञोर्भविता विग्रहो महान्॥ ५३

तेषां विमर्दे दायाद्ये नृपाणां भविता क्षयः।
युगान्तप्रतिमं चैव भविष्यति महद् भयम्॥ ५४

सबलेषु नरेन्द्रेषु शान्तयत्स्वितरेतरम्।
विविक्तपुरराष्ट्रौघा क्षितिः शैथिल्यमेष्यति॥ ५५

द्वापरस्य युगस्यान्ते मया दृष्टं पुरातनम्।
क्षयं यास्यन्ति शस्त्रेण मानवैः सह पार्थिवाः॥ ५६

तत्रावशिष्टान् मनुजान् सुप्तान् निशि विचेतसः।
धक्ष्यते शङ्करस्यांशः पावकेनास्त्रतेजसा॥ ५७

'सागर! तुम वसुओंको शीघ्र ही जन्म देकर कुरुकुलकी महत्ता बढ़ानेके अनन्तर उस मानव-शरीरका त्याग करके पुनः अपने समुद्ररूपमें प्रवेश करोगे॥ ४५॥ सुरश्रेष्ठगण! इस प्रकार मैंने भविष्यमें होनेवाले पृथ्वीके राजसमूहरूपी भारको देखकर तुम्हारे हितके लिये पहले ही यह कार्य कर दिया है॥ ४६॥ इस तरह भूतलपर शान्तनुके वंशका बीजारोपण मैंने कर दिया है। स्वर्गमें रहनेवाले जो वसु थे, वे गङ्गाके गर्भसे उत्पन्न हो चुके और उनमेंसे ये सात वसु यहाँ आ गये, परंतु एकमात्र आठवाँ वसु गङ्गाका पुत्र होकर अबतक वहाँ पृथ्वीपर ही लटक रहा है॥ ४७-४८॥ शान्तनुकी दूसरी पत्नी सत्यवतीके साथ पतिका समागम होनेपर भीष्मकी अपेक्षा जो दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ था, उसका नाम विचित्रवीर्य था। वह कुरुकुलका तेजस्वी एवं प्रतापी राजा था॥ ४९॥ विचित्रवीर्यके दो ही पुत्र इस समय पृथ्वीपर वर्तमान हैं। वे दोनों ही राजा एवं पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं। धृतराष्ट्र और पाण्डु नामसे उनकी ख्याति है॥ ५०॥ उनमेंसे पाण्डुकी दो शोभासम्पन्न सुन्दरी पत्नियाँ हैं, जो देवाङ्गनाओंके समान रूपवती हैं। उनके नाम हैं—कुन्ती और माद्री॥ ५१॥ राजा धृतराष्ट्रकी एक ही पत्नी है, जो इस भूतलपर गान्धारीके नामसे विख्यात है। वह पतिके समान आचारसे रहनेवाली और सदा पातिव्रत्यधर्मका पालन करनेवाली है॥ ५२॥ उन दोनों राजाओंके पुत्रोंमें महान् युद्ध होनेवाला है। तुमलोग उन्हींके पक्ष और विपक्षमें पृथक्-पृथक् अपने वंश उत्पन्न करो॥ ५३॥ उनके पैतृक राज्यके बँटवारेके सम्बन्धमें विवाद होनेपर बड़ा भारी संग्राम छिड़ जायगा और उसमें बहुत-से नरेशोंका विनाश होगा। वह महान् युद्ध प्रलयकालके समान भयंकर एवं संहारकारी होगा॥ ५४॥ जब सेनासहित राजालोग उस युद्धमें उपस्थित होंगे, उस समय एक-दूसरेसे लड़-भिड़कर उन सबकी शान्ति (मृत्यु) हो जायगी। उस दशामें इस भूतलके सभी नगर और राष्ट्र निर्जन-से हो जायँगे और यह पृथ्वी शिथिलताको प्राप्त हो जायगी॥ ५५॥ द्वापरयुगके अन्तमें घटित होनेवाले इस भावी विनाशको मैंने पहलेसे ही देख लिया है। उस समय अपने सैनिक मनुष्योंसहित समस्त भूपाल शस्त्रोंद्वारा विनष्ट हो जायँगे॥ ५६॥ उस युद्धसे जो लोग बच जायँगे, उन्हें रातमें अचेत होकर सोते समय भगवान् शङ्करका अंशभूत अश्वत्थामा अग्नितुल्य अस्त्रके तेजसे जलाकर भस्म कर डालेगा॥ ५७॥

अन्तकप्रतिमे तस्मिन् निवृत्ते क्रूरकर्मणि।
समाप्तमिदमाख्यास्ये तृतीयं द्वापरं युगम्॥ ५८

महेश्वरांशेऽपसृते ततो माहेश्वरं युगम्।
शिष्यं प्रवर्तते पश्चाद् युगं दारुणदर्शनम्॥ ५९

अधर्मप्रायपुरुषं स्वल्पधर्मप्रतिग्रहम्।
उत्सन्नसत्यसंयोगं वर्धितानृतसंचयम्॥ ६०

महेश्वरं कुमारं च द्वौ च देवौ समाश्रिताः।
भविष्यन्ति नराः सर्वे लोके न स्थविरायुषः॥ ६१

तदेष निर्णयः श्रेष्ठः पृथिव्यां पार्थिवान्तकः।
अंशावतरणं सर्वे सुराः कुरुत मा चिरम्॥ ६२

धर्मस्यांशस्तु कुन्त्यां वै माद्र्यां च विनियुज्यताम्।
विग्रहस्य कलिर्मूलं गान्धार्यां विनियुज्यताम्॥ ६३

एतौ पक्षौ भविष्यन्ति राजानः कालचोदिताः।
जातरागाः पृथिव्यर्थे सर्वे संग्राममलालसाः॥ ६४

गच्छत्वियं वसुमती स्वां योनिं लोकधारिणी।
सृष्टोऽयं नैष्ठिको राज्ञामुपायो लोकविश्रुतः॥ ६५

श्रुत्वा पितामहवचः सा जगाम यथागतम्।
पृथिवी सह कालेन वधाय पृथिवीक्षिताम्॥ ६६

देवानचोदयद् ब्रह्मा निग्रहार्थे सुरद्विषाम्।
नरं चैव पुराणर्षिं शेषं च धरणीधरम्॥ ६७

सनत्कुमारं साध्यांश्च सुरांश्चाग्निपुरोगमान्।
वरुणं च यमं चैव सूर्याचन्द्रमसौ तदा॥ ६८

गन्धर्वाप्सरसश्चैव रुद्रादित्यांस्तथाश्विनौ।
ततोंऽशानवनिं देवाः सर्व एवावतारयन्॥ ६९

यथा ते कथितं पूर्वमंशावतरणं मया।
अयोनिजा योनिजाश्च ते देवाः पृथिवीतले॥ ७०

'प्रलयकालके समान वह क्रूरतापूर्ण विनाश-काण्ड जब समाप्त हो जायगा, तब मैं यह कहूँगा कि तीसरा द्वापरयुग समाप्त हो गया॥ ५८॥ परमेश्वर विष्णुके पूर्णतम अंशस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णके परमधामको पधारनेपर अत्यन्त भयंकर अन्तिम युग कलिकी प्रवृत्ति होगी, जो देखनेमें बड़ा ही दारुण है॥ ५९॥ उस समय मनुष्योंमें प्रायः अधर्मकी स्थिति होगी। धर्मको बहुत कम लोग ग्रहण करेंगे। उनमें सत्यका संयोग नहीं रहेगा और सबमें असत्यका संग्रह बढ़ेगा॥ ६०॥ रुद्र और कुमारकार्तिकेय इन्हीं दो देवताओंका प्रायः सब लोग आश्रय लेंगे। संसारमें वृद्धावस्थातक जीनेवाले (अधिक) न होंगे॥ ६१॥ देवताओ! अतः यही निर्णय सबसे श्रेष्ठ है कि पृथ्वीपर रहनेवाले राजाओंका अन्त कर दिया जाय। इसलिये तुम सब लोग अपने-अपने अंशसे अवतार लो, देर न करो॥ ६२॥ धर्मके पक्षमें जो देवता हों, उन्हें कुन्ती और माद्रीके गर्भसे उत्पन्न होनेकी आज्ञा दी जाय। विवाद या युद्धका मूल है कलि, उसे सहायकोंसहित गान्धारीके गर्भसे उत्पन्न होनेके लिये प्रेरित किया जाय॥ ६३॥ कालसे प्रेरित हुए राजा इन दोनों पक्षोंमेंसे किसी एकका आश्रय लेंगे और पृथ्वीके राज्यकी प्राप्तिके लिये लोभासक्त होकर वे सब-के-सब संग्रामकी लालसा रखेंगे॥ ६४॥ सम्पूर्ण जगत्को धारण करनेवाली यह पृथ्वी अब अपने स्थानको चली जाय। इसके भारभूत राजाओंके विनाशके लिये इस लोकप्रसिद्ध उपायका अनुष्ठान आरम्भ कर दिया गया है'॥ ६५॥ ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर पृथ्वी भूमिपालोंके वधके लिये कालके साथ जैसे आयी थी, वैसे ही लौट गयी॥ ६६॥ तदनन्तर ब्रह्माजीने देवद्रोही दानवोंका दमन करनेके लिये देवताओंको प्रेरित किया। उन्होंने पुरातन ऋषि नर, पृथ्वीको धारण करनेवाले शेषनाग, सनत्कुमार, साध्यगण, अग्नि आदि देवता, वरुण, यम, सूर्य, चन्द्रमा, गन्धर्व, अप्सरा, रुद्र, आदित्य तथा दोनों अश्विनीकुमार—इन सबको अवतार लेनेके लिये प्रेरणा दी। तत्पश्चात् समस्त देवताओंने पृथ्वीपर अपना-अपना अंश उत्पन्न किया॥ ६७—६९॥ राजन्! मैंने तुम्हें पहले (आदिपर्व) अंशावतरणके प्रसङ्गमें जैसा बताया

दैत्यदानवहन्तारः सम्भूताः पुरुषेश्वराः।
क्षीरिकावृक्षसंकाशा वज्रसंहननास्तथा॥ ७१

नागायुतबलाः केचित् केचिदोघबलान्विताः।
गदापरिघशक्तीनां सहाः परिघबाहवः॥ ७२

गिरिशृङ्गप्रहर्तारः सर्वे परिघयोधिनः।
वृष्णिवंशसमुत्पन्नाः शतशोऽथ सहस्रशः॥ ७३

कुरुवंशे च ते देवाः पञ्चालेषु च पार्थिवाः।
याज्ञिकानां समृद्धानां ब्राह्मणानां च योनिषु॥ ७४

सर्वास्त्रज्ञा महेष्वासा वेदव्रतपरायणाः।
सर्वर्द्धिगुणसम्पन्ना यज्वानः पुण्यकर्मिणः॥ ७५

आचालयेयुर्ये शैलान् क्रुद्धा भिन्द्युर्महीतलम्।
उत्पतेयुरथाकाशं क्षोभयेयुर्महोदधिम्॥ ७६

एवमादिश्य तान् सर्वान् भूतभव्यभवत्प्रभुः।
नारायणे समावेश्य लोकाञ्छान्तिमुपागमत्॥ ७७

भूयः शृणु यथा विष्णुरवतीर्णो महीतले।
प्रजानां वै हितार्थाय प्रभुः प्राणिहितेश्वरः॥ ७८

ययातिवंशजस्याथ वसुदेवस्य धीमतः।
कुले पूज्ये यशस्कर्मा जज्ञे नारायणः प्रभुः॥ ७९

है, उसके अनुसार दैत्यों और दानवोंका विनाश करनेवाले वे देवता योनिज और अयोनिजरूपसे पृथ्वीपर राजा होकर उत्पन्न हुए। उनके शरीर पिण्डखजूरके समान पुष्ट और वज्रके तुल्य सुदृढ़ थे। उनमेंसे कितने ही दस हजार हाथियोंके समान बलवान् थे। कितने ही बलके अटूट प्रवाहसे सम्पन्न थे। वे गदा, परिघ और शक्तियोंके आघात सह लेनेमें समर्थ थे। उनकी भुजाएँ परिघोंके समान मोटी एवं सुदृढ़ थीं॥ ७०—७२॥ वे सब-के-सब पर्वत-शिखरोंद्वारा प्रहार करनेवाले तथा परिघोंसे युद्ध करनेमें कुशल थे। उनमेंसे सैकड़ों-हजारों वीर देवता वृष्णिवंश, कुरुवंश तथा पाञ्चालवंशमें राजा एवं राजकुमारोंके रूपमें उत्पन्न हुए थे। कितने ही देवता समृद्धिशाली याज्ञिक ब्राह्मणोंके कुलोंमें प्रकट हुए थे॥ ७३-७४॥ वे सम्पूर्ण अस्त्रोंके ज्ञाता, महाधनुर्धर, वैदिक व्रतके अनुष्ठानमें तत्पर, समस्त समृद्धिकारी गुणोंसे सम्पन्न, यज्ञकर्ता तथा पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान करनेवाले थे, जो कुपित होनेपर पर्वतोंको भी हिला सकते थे, पृथ्वीको विदीर्ण कर सकते थे, आकाशमें उड़ सकते थे और समुद्रोंको भी विक्षुब्ध कर सकते थे॥ ७५-७६॥ भूत, भविष्य और वर्तमानके स्वामी ब्रह्माजी उन देवताओंको उपर्युक्त आदेश दे भगवान् नारायणको समस्त लोकोंकी रक्षाका भार सौंपकर शान्त हो गये॥ ७७॥ जनमेजय! समस्त प्राणियोंका हित-साधन करनेमें समर्थ भगवान् विष्णु प्रजावर्गके हितके लिये इस भूतलपर जिस प्रकार अवतीर्ण हुए थे, वह प्रसंग फिर सुनो॥ ७८॥ राजा ययातिके वंशज बुद्धिमान् वसुदेवके आदरणीय कुलमें यशोवर्धक कर्म करनेवाले भगवान् नारायणने जन्म ग्रहण किया था॥ ७९॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि देवानामंशावतरणे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५३॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें देवताओंका अंशावतरणविषयक तिरपनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५३॥

चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भगवान् विष्णुके प्रति देवर्षि नारदका वचन—भूलोककी वर्तमान अवस्थाका परिचय देकर भगवान्‌को अवतार ग्रहण करनेके लिये प्रेरित करना

वैशम्पायन उवाच

कृतकार्ये गते काले जगत्यां च यथानयम्।
अंशावतरणे वृत्ते सुराणां भारते कुले॥ १

भागेऽवतीर्णे धर्मस्य शक्रस्य पवनस्य च।
अश्विनोर्देवभिषजोर्भागे वै भास्करस्य च॥ २

पूर्वमेवावनिगते भागे देवपुरोधसः।
वसूनामष्टमे भागे प्रागेव धरणीं गते॥ ३

मृत्योर्भागे क्षितिगते कलेर्भागे तथैव च।
भागे शुक्रस्य सोमस्य वरुणस्य च गां गते॥ ४

शङ्करस्य गते भागे मित्रस्य धनदस्य च।
गन्धर्वोरगयक्षाणां भागांशेषु गतेषु च॥ ५

भागेष्वेतेषु गगनादवतीर्णेषु मेदिनीम्।
तिष्ठन्नारायणस्यांशे नारदः समदृश्यत॥ ६

ज्वलिताग्निप्रतीकाशो बालार्कसदृशेक्षणः।
सव्यापवृत्तं विपुलं जटामण्डलमुद्वहन्॥ ७

चन्द्रांशुशुक्ले वसने वसानो रुक्मभूषितः।
वीणां गृहीत्वा महतीं कक्षासक्तां सखीमिव॥ ८

कृष्णाजिनोत्तरासङ्गो हेमयज्ञोपवीतवान्।
दण्डी कमण्डलुधरः साक्षाच्छक्र इवापरः॥ ९

भेत्ता जगति गुह्यानां विग्रहाणां ग्रहोपमः।
गाता चतुर्णां वेदानामुद्गाता प्रथमर्त्विजाम्।
महर्षिर्विग्रहरुचिर्विद्वान् गान्धर्वकोविदः॥ १०

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! जब पृथ्वी और काल दोनों कृतकृत्य होकर चले गये और देवताओंका भरतवंशमें यथोचितरूपसे अंशावतरणका कार्य सम्पन्न हो गया एवं धर्म, इन्द्र, वायु, देववैद्य अश्विनीकुमार तथा सूर्यदेवका पृथक्-पृथक् भाग जब भूतलपर अवतीर्ण हो गया, देवताओंके पुरोहित बृहस्पतिजी जब उनसे भी पहले ही पृथ्वीपर आ गये, वसुओंके अष्टम भाग भीष्म भी पहले ही पृथ्वीपर अवतीर्ण हो गये तथा मृत्यु (यम) और कलिके भाग भी जब पृथ्वीपर आ गये तथा शुक्र, सोम और वरुणके अंश भी भूतलपर अवतीर्ण हो गये, भगवान् शङ्कर, मित्र, कुबेर, गन्धर्व, नाग और यक्षोंके भागांश भी जब पृथ्वीपर आ गये, उपर्युक्त सभी भाग जब आकाशसे पृथ्वीपर उतर आये, तब देवपक्षमें स्थित रहनेवाले देवर्षि नारद भगवान् नारायणके निकट आते हुए दिखायी दिये॥ १—६॥ उस समय उनका तेजस्वी शरीर प्रज्वलित अग्निके समान प्रकाशित हो रहा था। दोनों नेत्र प्रभातकालके सूर्यकी भाँति लाल थे। वे वामावर्त विशाल जटामण्डल धारण किये हुए थे॥ ७॥ उन्होंने अपने शरीरको चन्द्रमाकी किरणोंके समान श्वेतवर्णके दो वस्त्रोंसे आच्छादित कर रखा था। वे सोनेके आभूषणसे विभूषित थे। उन्होंने महती नामक वीणा ले रखी थी, जो उनकी सहचरीकी भाँति बगलमें सटी हुई थी॥ ८॥ उनके कंधेपर उत्तरीय वस्त्रके रूपमें काला मृगचर्म शोभा पा रहा था। वे सुवर्णमय यज्ञोपवीतसे सुशोभित थे। हाथोंमें दण्ड-कमण्डलु धारण किये हुए थे तथा देखनेमें साक्षात् दूसरे इन्द्रके समान जान पड़ते थे॥ ९॥ जगत्‌में गुप्त बातोंका भंडाफोड़ करनेवाले नारदजी युद्ध या विवादकी सूचना देनेवाले ग्रहोंके समान माने जाते हैं। ये चारों वेदोंके गायक तथा मुख्य ऋत्विजोंमें उद्गाता थे, महर्षि होनेपर भी युद्ध देखनेकी रुचि रखते थे और विद्वान् होनेके साथ ही सङ्गीतविद्याके मर्मज्ञ थे॥ १०॥

वैरिकेलिकिलो विप्रो ब्राह्मः कलिरिवापरः।
देवगन्धर्वलोकानामादिवक्ता महामुनिः॥ ११

स नारदोऽथ ब्रह्मर्षिर्ब्रह्मलोकचरोऽव्ययः।
स्थितो देवसभामध्ये संरब्धो विष्णुमब्रवीत्॥ १२

अंशावतरणं विष्णो यदिदं त्रिदशैः कृतम्।
क्षयार्थे पृथिवीन्द्राणां सर्वमेतदकारणम्॥ १३

यदेतत् पार्थिवं क्षत्रं स्थितं त्वयि यदीश्वर।
नृनारायणयुक्तोऽयं कार्यार्थः प्रतिभाति मे॥ १४

न युक्तं जानता देव त्वया तत्त्वार्थदर्शिना।
देवदेव पृथिव्यर्थे प्रयोक्तुं कार्यमीदृशम्॥ १५

त्वं हि चक्षुष्मतां चक्षुः श्लाघ्यः प्रभवतां प्रभुः।
श्रेष्ठो योगवतां योगी गतिर्गतिमतामपि॥ १६

देवभागान् गतान् दृष्ट्वा किं त्वं सर्वाश्रयो विभुः।
वसुन्धरायाः साह्यार्थमंशं स्वं नानुयुञ्जसे॥ १७

त्वया सनाथा देवांशास्त्वन्मयास्त्वत्परायणाः।
जगत्यां संचरिष्यन्ति कार्यात् कार्यान्तरं गताः॥ १८

तदहं त्वरया विष्णो प्राप्तः सुरसभामिमाम्।
तव संचोदनार्थं वै शृणु चाप्यत्र कारणम्॥ १९

ये त्वया निहता दैत्याः संग्रामे तारकामये।
तेषां शृणु गतिं विष्णो ये गताः पृथिवीतलम्॥ २०

पुरी पृथिव्यां मुदिता मथुरानामतः श्रुता।
निविष्टा यमुनातीरे स्फीता जनपदायुता॥ २१

मधुर्नाम महानासीद् दानवो युधि दुर्जयः।
त्रासनः सर्वभूतानां बलेन महतान्वितः॥ २२

तस्य तत्र महच्चासीन्महापादपसंकुलम्।
घोरं मधुवनं नाम यत्रासौ न्यवसत् पुरा॥ २३

दूसरोंको लड़ा देना उनके लिये खिलवाड़ था। वे ब्राह्मण तथा ब्रह्माजीके पुत्र होकर भी दूसरे कलिके समान माने जाते थे। महामुनि नारद देवलोक तथा गन्धर्वलोकके प्रमुख वक्ता (उपदेशक) थे॥ ११॥ ब्रह्मलोकमें विचरनेवाले वे अविनाशी ब्रह्मर्षि नारद उस समय देव-सभामें खड़े हो रोषावेशमें आकर भगवान् विष्णुसे इस प्रकार बोले—॥ १२॥ 'सर्वव्यापी नारायण! देवताओंने भूतलके राजाओंका विनाश करनेके लिये जो यह अंशावतार ग्रहण किया है, यह सब निष्फल है॥ १३॥ 'परमेश्वर! यह जो भूतलके राजाओंका युद्ध है, वह तो आपपर ही निर्भर है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि देवताओंके इस प्रयोजनकी सिद्धि नर और नारायणके सहयोगसे ही सम्भव है॥ १४॥ 'देव! देवाधिदेव! आप तत्त्वार्थदर्शी हैं, सब कुछ जानते हैं; अतः पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ऐसे उपायका प्रयोग करना, जिसमें आप दोनोंका सहयोग न हो, आपके लिये उचित नहीं है॥ १५॥ 'क्योंकि आप ही नेत्रवानोंके नेत्र हैं, प्रभावशाली पुरुषोंके स्पृहणीय प्रभु हैं, योगवालोंमें श्रेष्ठ योगी हैं तथा गतिशील प्राणियोंकी गति हैं॥ १६॥ 'आप सबके आश्रयभूत परमेश्वर हैं, फिर देवताओंके अंशोंको पृथ्वीपर गया हुआ देखकर भी आप वसुधाकी सहायताके लिये अपने अंशको क्यों नहीं नियुक्त करते हैं॥ १७॥ 'देवताओंके अंश आपके ही स्वरूप तथा आपके ही आश्रित हैं। वे आपसे सनाथ होकर ही पृथ्वीपर एक कार्यसे दूसरे कार्यमें संलग्न रहते हुए विचरण कर सकेंगे॥ १८॥ 'विष्णो! मैं जो आपको प्रेरित करनेके लिये बड़ी उतावलीके साथ इस देव-सभामें आया हूँ, इसका भी एक कारण है; उसे सुनिये॥ १९॥ 'विष्णो! तारकामय-संग्राममें आपके द्वारा जो दैत्य मारे गये थे, वे सब-के-सब पृथ्वीतलपर जा पहुँचे हैं; उनकी क्या अवस्था है, सुनिये॥ २०॥ 'पृथ्वीपर मथुरा नामसे प्रसिद्ध एक पुरी है, जो परमानन्दमयी है। वह समृद्धिशालिनी नगरी यमुनाके तटपर बसी हुई है। उसके सब ओर बहुत-से जनपद हैं॥ २१॥ 'उस पुरीमें पहले मधु नामसे प्रसिद्ध एक महादानव रहता था, जिसे युद्धमें जीतना बहुत ही कठिन था। समस्त प्राणियोंको त्रास देनेवाला वह दानव महान् बलसे सम्पन्न था॥ २२॥ वहीं उसका विशाल एवं भयंकर मधुवन नामक वन था, जो बड़े-बड़े वृक्षोंसे हरा-भरा रहता था। पूर्वकालमें वह दानव उस मधुवनमें ही निवास करता था'॥ २३॥

तस्य पुत्रो महानासील्लवणो नाम दानवः।
त्रासनः सर्वभूतानां महाबलपराक्रमः॥ २४

स तत्र दानवः क्रीडन् वर्षपूगाननेकशः।
स दैवतगणाँल्लोकानुद्वासयति दर्पितः॥ २५

अयोध्यायामयोध्यायां रामे दाशरथौ स्थिते।
राज्यं शासति धर्मज्ञे राक्षसानां भयावहे॥ २६

स दानवो बलश्लाघी घोरं वनमुपाश्रितः।
प्रेषयामास रामाय दूतं परुषवादिनम्॥ २७

विषयासन्नभूतोऽस्मि तव राम रिपुश्च ह।
न च सामन्तमिच्छन्ति राजानो बलदर्पितम्॥ २८

राज्ञा राज्यव्रतस्थेन प्रजानां हितकाम्यया।
जेतव्या रिपवः सर्वे स्फीतं विषयमिच्छता॥ २९

अभिषेकार्द्रकेशेन राज्ञा रञ्जनकाम्यया।
जेतव्यानीन्द्रियाण्यादौ तज्जये हि ध्रुवो जयः॥ ३०

सम्यग् वर्तितुकामस्य विशेषेण महीपतेः।
नयानामुपदेशेन नास्ति लोकसमो गुरुः॥ ३१

व्यसनेषु जघन्यस्य धर्ममध्यस्य धीमतः।
बलज्येष्ठस्य नृपतेर्नास्ति सामन्तजं भयम्॥ ३२

सहजैर्बाध्यते सर्वः प्रवृद्धैरिन्द्रियादिभिः।
अमित्राणां प्रियकरैर्मोहैरधृतिरीश्वरः॥ ३३

यत् त्वया स्त्रीकृते मोहात् सगणो रावणो हतः।
नैतदौपयिकं मन्ये महद् वै कर्म कुत्सिनम्॥ ३४

'उसका पुत्र लवण नामसे प्रसिद्ध महान् दानव था। वह भी समस्त प्राणियोंको भयभीत करनेवाला तथा महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न था॥ २४॥ वह दानव बहुत वर्षोंतक वहाँ क्रीड़ा करता रहा। फिर बलके घमंडमें भरकर देवताओंसहित समस्त लोकोंको उजाड़ने या उद्विग्न करने लगा॥ २५॥ जिसपर आक्रमण करना किसीके लिये भी असम्भव था, उस अयोध्यापुरीमें जब राक्षसोंको भय देनेवाले धर्मज्ञ दशरथनन्दन श्रीराम राज्य-शासन करते थे, उस समय अपने बलकी प्रशंसा करनेवाले उस लवण नामक दानवने घोर मधुवनका सहारा ले श्रीरामचन्द्रजीके पास एक कटुभाषी दूत भेजा'॥ २६-२७॥ (उसके उस दूतने भगवान् श्रीरामसे इस प्रकार कहा—) 'राम! मैं तुम्हारे राज्यके निकट रहता हूँ और तुम्हारा शत्रु भी हूँ। प्रायः राजा लोग ऐसे सामन्तको जीवित रखना नहीं चाहते, जो बलके घमंडमें भरा रहता हो॥ २८॥ राजोचित व्रतमें स्थित रहकर अपने राज्यको समृद्धिशाली बनानेकी इच्छा रखनेवाले राजाको उचित है कि वह प्रजाके हितकी कामनासे अपने समस्त शत्रुओंको जीतकर काबूमें कर ले॥ २९॥ जिसके मस्तकके केश राज्याभिषेकसे आर्द्र हुए हों तथा जो प्रजाको प्रसन्न रखना चाहता हो, उस राजाका कर्तव्य है कि वह सबसे पहले अपनी इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करे; क्योंकि उनको जीत लेनेके बाद शत्रुओंपर विजय पाना निश्चित है॥ ३०॥ जो उत्तम बर्तावकी इच्छा रखता हो, ऐसे पुरुष विशेषतः पृथ्वीपालक नरेशको नीतिका उपदेश करनेके लिये लोकके समान दूसरा कोई गुरु नहीं है॥ ३१॥ जो द्यूत और मृगया आदि दुर्व्यसनोंमें दूसरोंकी अपेक्षा निकृष्ट है (अर्थात् जो व्यसनोंसे दूर रहता है), धर्ममें जिसकी मध्यम कोटिकी स्थिति है, परंतु जो बलमें दूसरोंकी अपेक्षा बढ़-चढ़कर है, उस बुद्धिमान् नरेशको कभी सामन्तोंसे भय नहीं प्राप्त होता है॥ ३२॥ अपने शरीरके साथ ही उत्पन्न हुए ये इन्द्रियरूपी शत्रु जब बढ़ जाते हैं, तब मोह उत्पन्न करनेवाले हो जाते हैं और शत्रुओंका प्रिय साधन करने लगते हैं; उस दशामें उनके द्वारा सभी धैर्यहीन पुरुषों अथवा राजाओंको सदा ही बाधा प्राप्त होती है॥ ३३॥ तुमने जो मोहवश एक नारीके लिये दल-बलसहित रावणका वध कर डाला है, इसे मैं न्यायसंगत नहीं मानता। यद्यपि पराक्रमकी दृष्टिसे वह महान् कर्म है तो भी वास्तवमें वह निन्दित ही है'॥ ३४॥

वनवासप्रवृत्तेन यत् त्वया व्रतशालिना।
प्रहृतं राक्षसानीके नैव दृष्टः सतां विधिः॥ ३५

सतामक्रोधजो धर्मः शुभां नयति सद्गतिम्।
यत् त्वया निहता मोहाद् दूषिताश्चाश्रमौकसः॥ ३६

स एष रावणो धन्यो यस्त्वया व्रतचारिणा।
स्त्रीनिमित्ते हतो युद्धे ग्राम्यान् धर्मानवेक्षता॥ ३७

यदि ते निहतः संख्ये दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः।
युध्यस्वाद्य मया सार्धं मृधे यद्यसि वीर्यवान्॥ ३८

तस्य दूतस्य तच्छ्रुत्वा भाषितं रूक्षवादिनः।
धैर्यादसम्भ्रान्तवपुः सस्मितं राघवोऽब्रवीत्॥ ३९

असदेतत् त्वया दूत भाषितं तस्य गौरवात्।
यन्मां क्षिपसि दोषेण वेदात्मानं च सुस्थिरम्॥ ४०

यद्यहं सत्पथे मूढो यदि वा रावणो हतः।
यदि वा मे हृता भार्या का तत्र परिदेवना॥ ४१

न वाङ्मात्रेण दुष्यन्ति साधवः सत्पथे स्थिताः।
जागर्ति च यथा देवः सदा सत्स्वितरेषु च॥ ४२

कृतं दूतेन यत् कार्यं गच्छ त्वं दूत मा चिरम्।
नात्मश्लाघिषु नीचेषु प्रहरन्तीह मद्विधाः॥ ४३

अयं ममानुजो भ्राता शत्रुघ्नः शत्रुतापनः।
तस्य दैत्यस्य दुर्बुद्धेर्मृधे प्रतिकरिष्यति॥ ४४

एवमुक्तः स दूतस्तु ययौ सौमित्रिणा सह।
अनुज्ञातो नरेन्द्रेण राघवेण महात्मना॥ ४५

'तुम वनवासमें प्रवृत्त हुए थे। वनवासी मुनियोंके नियमोंका पालन करनेमें ही तुम्हारी शोभा थी। फिर भी तुमने जो राक्षसोंकी सेनापर प्रहार किया, ऐसा बर्ताव कभी किन्हीं सत्पुरुषोंने किया हो—यह कभी नहीं देखा गया है॥ ३५॥ क्रोधका परित्याग करके साधुपुरुष जिस धर्मका पालन करते हैं, वह उन्हें शुभ सद्गतिकी प्राप्ति कराता है। तुमने जो मोहवश राक्षसोंका वध किया है, इससे सभी आश्रमवासी कलंकित हो गये (तुम्हारे द्वारा व्रत-नियमका उल्लङ्घन देखकर दूसरे भी ऐसा ही करने लगेंगे; अतः तुम दुराचारके प्रवर्तक हो गये)॥ ३६॥ यह रावण धन्य था, जो युद्धमें ग्राम्य धर्मपर ही दृष्टि रखनेवाले तुझ-जैसे व्रतधारीके हाथसे एक स्त्रीके कारण मारा गया॥ ३७॥ 'यदि तुमने खोटी बुद्धिवाले उस अजितेन्द्रिय रावणको युद्धमें मारा है और ऐसा करके तुम पराक्रमी बन रहे हो तो आओ, आज रणक्षेत्रमें मेरे साथ युद्ध करो'॥ ३८॥ 'उस कटुवादी दूतका वह भाषण सुनकर रघुनन्दन श्रीराम अपने स्वाभाविक धैर्यके कारण विचलित नहीं हुए, अपितु मुसकराते हुए बोले—॥ ३९॥ 'दूत! तूने उस दानवके प्रति गौरव-बुद्धिके कारण जो कुछ कहा है, वह सब ओछी बात है; क्योंकि तू मुझपर तो दोषारोपण करके आक्षेप करता है और अपनेको न्यायमार्गमें भलीभाँति स्थित समझता है॥ ४०॥ यदि मैं सन्मार्गपर चलनेका विवेक खो बैठा था, यदि मेरे द्वारा रावण मारा गया था अथवा यदि मेरी स्त्रीका अपहरण हुआ था तो तू क्यों इन सब बातोंका रोना रो रहा है?॥ ४१॥ सन्मार्गपर स्थित रहनेवाले साधु पुरुष किसीके कहनेमात्रसे कलङ्कित नहीं होते हैं। सत् और असत् पुरुषोंके भीतर बैठे हुए भगवान् सदा जागते रहते हैं (कौन बुरा है और कौन भला—यह उनकी दृष्टिसे छिपा हुआ नहीं है)॥ ४२॥ 'दूत! तुझ-जैसे दूतको जो कुछ करना चाहिये, वह कार्य तूने कर लिया। अब यहाँसे चला जा, विलम्ब न कर। मेरे-जैसे पुरुष यहाँ अपनी झूठी प्रशंसा करनेवाले नीच जनोंपर प्रहार नहीं करते॥ ४३॥ यह मेरा छोटा भाई शत्रुघ्न, जो शत्रुओंको पूर्ण संताप देनेवाला है, युद्धमें उस दुर्बुद्धि दैत्यको उसके कुकृत्योंका भरपूर बदला देगा'॥ ४४॥ 'महात्मा राजा रघुकुलनन्दन श्रीरामने ऐसा कहकर जब उसे जानेकी आज्ञा दी, तब वह दूत सुमित्राकुमार शत्रुघ्नके साथ चला गया॥ ४५॥

स शीघ्रयानः सम्प्राप्तस्तद् दानवपुरं महत्।
चक्रे निवेशं सौमित्रिर्वनान्ते युद्धलालसः॥ ४६

ततो दूतस्य वचनात् स दैत्यः क्रोधमूर्च्छितः।
पृष्ठतस्तद् वनं कृत्वा युद्धायाभिमुखः स्थितः॥ ४७

तद् युद्धमभवद् घोरं सौमित्रेर्दानवस्य च।
उभयोरेव बलिनोः शूरयो रणमूर्धनि॥ ४८

तौ शरैः साधु निशितैरन्योन्यमभिजघ्नतुः।
न च तौ युद्धवैमुख्यं श्रमं वाप्युपजग्मतुः॥ ४९

अथ सौमित्रिणा बाणैः पीडितो दानवो युधि।
ततः स शूलरहितः पर्यहीयत दानवः॥ ५०

स गृहीत्वाङ्कुशं चैव देवैर्दत्तवरं रणे।
कर्षणं सर्वभूतानां लवणो विररास ह॥ ५१

शिरोधरायां जग्राह सोऽङ्कुशेन चकर्ष ह।
प्रवेशयितुमारब्धो लवणो राघवानुजम्॥ ५२

स रुक्मत्सरुमुद्यम्य शत्रुघ्नः खड्गमुत्तमम्।
शिरश्चिच्छेद खड्गेन लवणस्य महामृधे॥ ५३

स हत्वा दानवं संख्ये सौमित्रिर्मित्रवत्सलः।
तद् वनं तस्य दैत्यस्य चिच्छेदास्त्रेण बुद्धिमान्॥ ५४

छित्त्वा वनं तत् सौमित्रिर्निवेशं सोऽभ्यरोचयत्।
भवाय तस्य देशस्य पुर्याः परमधर्मवित्॥ ५५

तस्मिन् मधुवनस्थाने मथुरा नाम सा पुरी।
शत्रुघ्नेन पुरा सृष्टा हत्वा तं दानवं रणे॥ ५६

सा पुरी परमोदारा साट्टप्राकारतोरणा।
स्फीता राष्ट्रसमाकीर्णा समृद्धबलवाहना॥ ५७

उद्यानवनसम्पन्ना सुसीमा सुप्रतिष्ठिता।
प्रांशुप्राकारवसना परिखाकुलमेखला॥ ५८

'सुमित्रानन्दन शत्रुघ्न शीघ्रतापूर्वक रथ हाँकते हुए लवणासुरके उस विशाल नगरमें जा पहुँचे। वहाँ युद्धकी लालसा लेकर उन्होंने उसके वनके समीप ही पड़ाव डाल दिया॥ ४६॥ तदनन्तर दूतकी बातोंसे सब कुछ जानकर वह दैत्य क्रोधसे अचेत-सा हो गया और उस वनको पीछे करके युद्धके लिये शत्रुघ्नके सामने आकर खड़ा हो गया॥ ४७॥ सुमित्राकुमार शत्रुघ्न तथा दानव लवणासुर दोनों ही बड़े बलवान् और शूरवीर थे। युद्धके मुहानेपर उन दोनोंमें घोर संग्राम हुआ॥ ४८॥ वे तीखे बाणोंद्वारा एक-दूसरेको भलीभाँति चोट पहुँचाने लगे। दोनों ही न तो युद्धसे विमुख हुए और न उन्हें थकावट ही हुई॥ ४९॥ तदनन्तर उस युद्धस्थलमें सुमित्राकुमारने दानव लवणको बाणोंद्वारा अधिक पीड़ित किया, इससे उसका शूल हाथसे छूटकर गिर पड़ा। अब वह सर्वथा कमजोर पड़ने लगा॥ ५०॥ तब उसने युद्धमें अङ्कुश उठाया, जिसके लिये उसको देवताओंसे वर प्राप्त हो चुका था। वह अङ्कुश समस्त प्राणियोंको आकर्षित करनेवाला था। उसे लेकर लवणासुर जोर-जोरसे गर्जना करने लगा॥ ५१॥ उसने वह अङ्कुश श्रीरामके छोटे भाई शत्रुघ्नके गलेमें फँसा दिया और खींचकर उसे उनके कण्ठमें घुसाना आरम्भ किया॥ ५२॥ यह देख उस महासमरमें शत्रुघ्नने सोनेकी मूठवाली अच्छी तलवार उठा ली और उसके द्वारा उस दानवका मस्तक काट गिराया॥ ५३॥ मित्रोंपर स्नेह रखनेवाले बुद्धिमान् शत्रुघ्नने युद्धस्थलमें उस दानवका वध करके उसके उस वनको भी अपने अस्त्रोंद्वारा काट डाला॥ ५४॥ वनको काटकर परम धर्मज्ञ सुमित्राकुमारने उस देशके अभ्युदयके लिये वहाँ एक नगर बसानेकी इच्छा की॥ ५५॥ रणभूमिमें उस दानवका वध करके शत्रुघ्नने पूर्वकालमें उसी मधुवनकी जगह उस पुरीका निर्माण किया, जिसका नाम मथुरा है॥ ५६॥ वह मथुरापुरी बहुत बड़ी है। उसमें ऊँची अट्टालिकाएँ, चहारदीवारी तथा फाटक यथास्थान बने हुए हैं। वह समृद्धिशालिनी पुरी समूचे राष्ट्रके लोगोंसे भरी रहती है तथा सेना और सवारियोंसे सम्पन्न है॥ ५७॥ नाना प्रकारके उद्यान और वन उसकी शोभा बढ़ाते हैं। उसकी सीमा सुन्दर है। वह अच्छी तरहसे बसायी तथा दृढ़तापूर्वक स्थापित की गयी है। (वह नगरी एक नारीके समान जान पड़ती है) ऊँची-ऊँची चहारदीवारी उसके लिये साड़ीका काम देती है। चारों ओरसे खुदी हुई खाईं मेखला (करधनी)-के समान जान पड़ती है'॥ ५८॥

चयाट्टालककेयूरा प्रासादवरकुण्डला।
सुसंवृतद्वारमुखी चत्वरोद्गारहासिनी॥ ५९

अरोगवीरपुरुषा हस्त्यश्वरथसंकुला।
अर्धचन्द्रप्रतीकाशा यमुनातीरशोभिता॥ ६०

पुण्यापणवती दुर्गा रत्नसंचयगर्विता।
क्षेत्राणि सस्यवन्त्यस्याः काले देवश्च वर्षति॥ ६१

नरनारीप्रमुदिता सा पुरी स्म प्रकाशते।
निविष्टविषयश्चैव शूरसेनस्ततोऽभवत्॥ ६२

तस्य पुर्यां महावीर्यो राजा भोजकुलोद्वहः।
उग्रसेन इति ख्यातो महासेनपराक्रमः॥ ६३

तस्य पुत्रत्वमापन्नो योऽसौ विष्णो त्वया हतः।
कालनेमिर्महादैत्यः संग्रामे तारकामये॥ ६४

कंसो नाम विशालाक्षो भोजवंशविवर्धनः।
राजा पृथिव्यां विख्यातः सिंहविस्पष्टविक्रमः॥ ६५

राज्ञां भयंकरो घोरः शङ्कनीयो महीक्षिताम्।
भयदः सर्वभूतानां सत्पथाद् बाह्यतां गतः॥ ६६

दारुणाभिनिवेशेन दारुणेनान्तरात्मना।
युक्तस्तेनैव दर्पेण प्रजानां रोमहर्षणः॥ ६७

न राजधर्माभिरतो नात्मपक्षसुखावहः।
नात्मराज्ये प्रियकरश्चण्डः कररुचिः सदा॥ ६८

स कंसस्तत्र सम्भूतस्त्वया युद्धे पराजितः।
क्रव्यादो बाधते लोकानासुरेणान्तरात्मना॥ ६९

'नगरद्वार और अट्टालिकाएँ उसके केयूर (भुजबंद)-सी प्रतीत होती हैं। श्रेष्ठ प्रासाद सुन्दर कुण्डलके समान शोभा देते हैं। किवाड़रूपी अञ्चलोंसे अच्छी तरह ढका हुआ प्रधान द्वार मानो उसका मुख है तथा भीतरके आँगनका उद्घाटित अंश उसकी हँसीका प्रकाश है॥ ५९॥ उस पुरीमें नीरोग वीर पुरुषोंका निवास है। हाथी, घोड़े तथा रथ आदि वाहनोंसे वह भरी रहती है। यमुनाजीके तटपर बसी हुई वह शोभाशालिनी पुरी अर्धचन्द्राकार प्रतीत होती है॥ ६०॥ इसके भीतर सुन्दर एवं पवित्र हाट हैं। इसमें प्रवेश करना दूसरोंके लिये कठिन है तथा इसे अपने रत्नराशि-संग्रहपर गर्व है। इसके पार्श्ववर्ती जनपदके खेत अनाजके हरे-भरे पौदोंसे शोभा पाते हैं और वहाँ पर्जन्यदेव समयपर वर्षा करते हैं॥ ६१॥ नर-नारियोंके आमोद-प्रमोदसे पूर्ण मथुरापुरी सदा अपनी शोभासे प्रकाशित होती रहती है। इस पुरी और प्रदेशमें किसी समय राजा शूरसेन निवास करते थे॥ ६२॥ उसी पुरीमें इस समय महाबली राजा उग्रसेन हैं, जो भोजवंशका भार वहन करते हैं। उनका पराक्रम कुमार कार्तिकेयके समान है॥ ६३॥ विष्णो! आपने तारकामय संग्राममें जिस कालनेमि नामक महादैत्यका वध किया था, वह अब उन्हीं राजा उग्रसेनका पुत्र होकर प्रकट हुआ है॥ ६४॥ उसका नाम है कंस। उसके नेत्र बड़े-बड़े हैं। वह भोजवंशकी वृद्धि करनेवाला है। उसकी चाल-ढाल और पराक्रम सिंहके समान है। राजा कंस भूतलपर सर्वत्र विख्यात है॥ ६५॥ वह राजाओंके लिये अत्यन्त भयंकर है। भूमिपालोंके लिये शङ्कनीय हो गया है। समस्त प्राणियोंको भय देनेवाला कंस सदाचारसे गिर गया है॥ ६६॥ दारुण प्रकृति और क्रूर अन्तरात्मासे युक्त हो वह कंस अपने पूर्वजन्मके दर्पसे ही उन्मत्त हो इस समय प्रजावर्गके लिये रोमाञ्चकारी बन गया है॥ ६७॥ वह न तो राजधर्ममें अनुराग रखता है, न अपने पक्षके लोगोंको ही सुख देता है और न अपने राज्यमें ही किसीका प्रिय करता है। सदा ही अत्यन्त क्रोधमें भरा रहता है और केवल प्रजासे कर वसूल करनेकी ही रुचि रखता है॥ ६८॥ आपने जिसे युद्धमें पराजित किया था, वह कालनेमि ही वहाँ 'कंस' बनकर प्रकट हुआ है। उसकी अन्तरात्मा आसुरभावसे युक्त है, जिसके द्वारा वह मांसभक्षी राक्षस समस्त लोकोंको पीड़ा देता है'॥ ६९॥

योऽप्यसौ हयविक्रान्तो हयग्रीव इति स्मृतः।
केशी नाम हयो जातः स तस्यैव जघन्यजः॥ ७०

स दुष्टो ह्रेषितपटुः केसरी निरवग्रहः।
वृन्दावने वसत्येको नृणां मांसानि भक्षयन्॥ ७१

अरिष्टो बलिपुत्रश्च ककुद्मी वृषरूपधृक्।
गवामरित्वमापन्नः कामरूपी महासुरः॥ ७२

रिष्टो नाम दितेः पुत्रो वरिष्ठो दानवेषु यः।
स कुञ्जरत्वमापन्नो दैत्यः कंसस्य वाहनः॥ ७३

लम्बो नामेति विख्यातो योऽसौ दैत्येषु दर्पितः।
प्रलम्बो नाम दैत्योऽसौ वटं भाण्डीरमाश्रितः॥ ७४

खर इत्युच्यते दैत्यो धेनुकः सोऽसुरोत्तमः।
घोरं तालवनं दैत्यश्चरत्युद्वासयन् प्रजाः॥ ७५

वाराहश्च किशोरश्च दानवौ यौ महाबलौ।
मल्लौ रङ्गगतौ तौ तु जातौ चाणूरमुष्टिकौ॥ ७६

यौ तौ मयश्च तारश्च दानवौ दानवान्तक।
प्राग्ज्योतिषे तौ भौमस्य नरकस्य पुरे रतौ॥ ७७

एते दैत्या विनिहतास्त्वया विष्णो निराकृताः।
मानुषं वपुरास्थाय बाधन्ते भुवि मानुषान्॥ ७८

त्वत्कथाद्वेषिणः सर्वे त्वद्भक्तान् घ्नन्ति मानुषान्।
तव प्रसादात् तेषां वै दानवानां क्षयो भवेत्॥ ७९

त्वत्तस्ते बिभ्यति दिवि त्वत्तो बिभ्यति सागरे।
पृथिव्यां तव बिभ्यन्ति नान्यतस्तु कदाचन॥ ८०

दुर्वृत्तस्य हतस्यापि त्वया नान्येन श्रीधर।
दिवश्च्युतस्य दैत्यस्य गतिर्भवति मेदिनी॥ ८१

'पहले जो घोड़ेके समान चलनेवाला अथवा पराक्रमी हयग्रीव नामसे विख्यात दैत्य था, वही 'केशी' नामक अश्वके रूपमें भूतलपर उत्पन्न हुआ है। इस समय केशी मानो कंसका छोटा भाई बना हुआ है॥ ७०॥ वह दुष्ट केशी हींसने या हिनहिनानेमें बड़ा पटु है। उसकी गर्दनपर बड़े-बड़े बाल हैं। वह सर्वथा उच्छृङ्खल है। वह मनुष्योंके मांसका ही आहार करता हुआ वृन्दावनमें अकेला ही निवास करता है॥ ७१॥ बलिका पुत्र अरिष्ट ऊँचे पुट्ठोंसे युक्त बैलका रूप धारण करके प्रकट हुआ है। वह कामरूपी महान् असुर गौओंका शत्रु बन गया है॥ ७२॥ दानवोंमें श्रेष्ठ दितिपुत्र रिष्ट नामक दैत्य हाथीके रूपमें उत्पन्न होकर इस समय कंसका वाहन बना हुआ है॥ ७३॥ दैत्योंमें अभिमानी जो लम्ब नामसे विख्यात दैत्य था, वह इस समय प्रलम्ब नामसे प्रसिद्ध हो भाण्डीर वटका आश्रय लेकर रहता है॥ ७४॥ जो खर नामक दैत्य कहा जाता था, वही इस समय असुरोंमें श्रेष्ठ धेनुक बना हुआ है। वह दैत्य प्रजाजनोंको उजाड़ता हुआ भयानक तालवनमें विचरता रहता है॥ ७५॥ पूर्वकालमें वाराह और किशोर नामवाले जो दो महाबली दानव थे, वे ही चाणूर और मुष्टिकके नामसे उत्पन्न हुए हैं। वे दोनों इस समय कंसके अखाड़ेके प्रमुख मल्ल (पहलवान) हैं॥ ७६॥ दानवविनाशक नारायण! मय और तार नामसे प्रसिद्ध जो दो दानव थे, वे इस समय प्राग्ज्योतिषपुरमें, जो भूमिपुत्र नरकासुरका नगर है, निवास करते हैं॥ ७७॥ विष्णो! आपके द्वारा पराजित और निहत हुए ये दैत्य मानव-शरीर धारण करके भूतलपर मनुष्योंको पीड़ा दे रहे हैं॥ ७८॥ वे सब-के-सब आपकी कथावार्तासे द्वेष रखते हैं और आपमें भक्ति रखनेवाले मनुष्योंको मार डालते हैं। आपके कृपा-प्रसादसे ही उन दानवोंका संहार हो सकता है॥ ७९॥ वे आकाश या स्वर्गमें रहें तो भी आपसे डरते हैं। समुद्रमें रहें तो भी आपसे ही भयभीत होते हैं और पृथ्वीपर रहकर भी केवल आपसे ही भय खाते हैं, दूसरे किसीसे कदापि नहीं डरते हैं॥ ८०॥ श्रीधर! जो आपके ही द्वारा मारा जाता है, दूसरेके द्वारा नहीं, उस दैत्यको, वह दुराचारी ही क्यों न रहा हो, आप ही प्राप्त होते हैं। परंतु जो दूसरेके द्वारा मारा गया है, वह दैत्य स्वर्गसे भ्रष्ट होनेपर पृथ्वीपर ही जन्म लेता है'॥ ८१॥

व्युत्थितस्य च मेदिन्यां हतस्य नृशरीरिणः।
दुर्लभं स्वर्गगमनं त्वयि जाग्रति केशव॥ ८२

तदागच्छ स्वयं विष्णो गच्छामः पृथिवीतलम्।
दानवानां विनाशाय विसृजात्मानमात्मना॥ ८३

मूर्तयो हि तवाव्यक्ता दृश्यादृश्याः सुरोत्तमैः।
तासु सृष्टास्त्वया देवाः सम्भविष्यन्ति भूतले॥ ८४

तवावतरणे विष्णो कंसः स विनशिष्यति।
सेत्स्यते च स कार्यार्थो यस्यार्थे भूमिरागता॥ ८५

त्वं भारते कार्यगुरुस्त्वं चक्षुस्त्वं परायणम्।
तदागच्छ हृषीकेश क्षितौ ताञ्जहि दानवान्॥ ८६

'केशव! जबतक यमराजसे आप पापियोंको नरकमें गिरानेके लिये जागरूक हैं, तबतक पृथ्वीपर जो दूसरेके हाथसे मारा जाता है, उसे स्वर्गकी प्राप्ति भी दुर्लभ रहती है; (फिर आपकी प्राप्ति तो दूरकी बात है। अतः आप दया करके दैत्योंको मारकर उन्हें सद्गति प्रदान करनेके लिये ही भूतलपर अवतार ग्रहण करें)॥ ८२॥ अतः विष्णो! आप स्वयं आइये। चलिये पृथ्वीपर चलें। वहाँ दानवोंके विनाशके लिये आप स्वयं ही अपने-आपको प्रकट करें॥ ८३॥ आपकी बहुत-सी मूर्तियाँ हैं, जो व्यक्त नहीं होती हैं। श्रेष्ठ देवता भी आपकी कुछ मूर्तियोंको देख पाते हैं और कुछको नहीं देख पाते हैं। आपके द्वारा रचे गये देवता उन्हीं मूर्तियोंमें भूतलपर प्रकट होंगे॥ ८४॥ विष्णो! आपके अवतार लेनेपर ही कंसका विनाश होगा और जिसके लिये पृथ्वी यहाँ आयी थी, वह सारा प्रयोजन सिद्ध हो सकेगा॥ ८५॥ हृषीकेश! आपको भारतवर्षमें महान् कार्य करना है। आप ही सबके नेत्र हैं (नेत्रोंकी भाँति सन्मार्गका दर्शन कराते हैं) और आप ही सबके परम आश्रय हैं; अतः आइये, भूतलपर अवतार लेकर उन दानवोंका वध कीजिये'॥ ८६॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि नारदवाक्ये चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५४॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें नारदजीका वाक्यविषयक चौवनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५४॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भगवान् विष्णुके द्वारा नारदजीके कथनका उत्तर तथा ब्रह्माजीका भगवान्से उनके अवतार लेनेयोग्य स्थान और पिता-माता आदिका परिचय देना

वैशम्पायन उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा सस्मितं मधुसूदनः।
प्रत्युवाच शुभं वाक्यं वरेण्यः प्रभुरीश्वरः॥ १

त्रैलोक्यस्य हितार्थाय यन्मां वदसि नारद।
तस्य सम्यक्प्रवृत्तस्य श्रूयतामुत्तरं वचः॥ २

विदिता देहिनो जाता मयैते भुवि दानवाः।
यां च यस्तनुमादाय दैत्यः पुष्यति विग्रहम्॥ ३

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! भोग और मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषोंके द्वारा जो एकमात्र वरण करनेयोग्य हैं, वे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर मधुसूदन श्रीहरि नारदजीकी पूर्वोक्त बात सुनकर मुसकराये और अपनी कल्याणमयी वाणीद्वारा उन्हें उत्तर देते हुए बोले—॥ १॥ 'नारद! तुम तीनों लोकोंके हितके लिये मुझसे जो कुछ कह रहे हो, तुम्हारी वह बात उत्तम प्रवृत्तिके लिये प्रेरणा देनेवाली है, अब तुम उसका उत्तर सुनो॥ २॥ अब मुझे भलीभाँति विदित है कि ये दानव भूतलपर मानव-शरीर धारण करके उत्पन्न हो गये हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि कौन-कौन दैत्य किस-किस शरीरको ग्रहण करके वैरभावकी पुष्टि कर रहा है॥ ३॥

जानामि कंसं सम्भूतमुग्रसेनसुतं भुवि।
केशिनं चापि जानामि दैत्यं तुरगविग्रहम्॥ ४

नागं कुवलयापीडं मल्लौ चाणूरमुष्टिकौ।
अरिष्टं चापि जानामि दैत्यं वृषभरूपिणम्॥ ५

विदितो मे खरश्चैव प्रलम्बश्च महासुरः।
सा च मे विदिता विप्र पूतना दुहिता बलेः॥ ६

कालियं चापि जानामि यमुनाह्रदगोचरम्।
वैनतेयभयाद् यस्तु यमुनाह्रदमाविशत्॥ ७

विदितो मे जरासंधः स्थितो मूर्ध्नि महीक्षिताम्।
प्राग्ज्योतिषपुरे वापि नरकं साधु तर्कये॥ ८

मानुषे पार्थिवे लोके मानुषत्वमुपागतम्।
बाणं च शोणितपुरे गुहप्रतिमतेजसम्॥ ९

दृप्तं बाहुसहस्रेण देवैरपि सुदुर्जयम्।
मय्यासक्तां च जानामि भारतीं महतीं धुरम्॥ १०

सर्वं तच्च विजानामि यथा योत्स्यन्ति ते नृपाः।
क्षयो भुवि मया दृष्टः शक्रलोके च सत्क्रिया।
एषां पुरुषदेहानामपरावृत्तदेहिनाम्॥ ११

सम्प्रवेक्ष्याम्यहं योगमात्मनश्च परस्य च।
सम्प्राप्य पार्थिवं लोकं मानुषत्वमुपागतः॥ १२

कंसादींश्चापि तान् सर्वान् वधिष्यामि महासुरान्।
तेन तेन विधानेन येन यः शान्तिमेष्यति॥ १३

अनुप्रविश्य योगेन तास्ता हि गतयो मया।
अमीषां हि सुरेन्द्राणां हन्तव्या रिपवो युधि॥ १४

जगत्यर्थे कृतो योऽयमंशोत्सर्गो दिवौकसैः।
सुरदेवर्षिगन्धर्वैरितश्चानुमते मम॥ १५

'मुझे यह भी ज्ञात है कि कालनेमि उग्रसेनपुत्र कंसके रूपमें इस पृथ्वीपर उत्पन्न हुआ है। घोड़ेका शरीर धारण करनेवाले केशी नामक दैत्यसे भी मैं अपरिचित नहीं हूँ॥ ४॥ कुवलयापीड हाथी, चाणूर और मुष्टिक नामक मल्ल तथा वृषभरूपधारी दैत्य अरिष्टासुरको भी मैं अच्छी तरह जानता हूँ॥ ५॥ विप्रवर! खर और प्रलम्ब नामक महान् असुर भी मुझसे अज्ञात नहीं हैं। राजा बलिकी पुत्री पूतनाको भी मैं जानता हूँ॥ ६॥ यमुनाके कुण्डमें रहनेवाले कालियनागको भी मैं जानता हूँ, जो गरुड़के भयसे उस कुण्डमें जा घुसा है॥ ७॥ मैं उस जरासंधसे भी परिचित हूँ, जो इस समय समस्त भूमिपालोंके मस्तकपर खड़ा है। प्राग्ज्योतिषपुरमें रहनेवाले नरकासुरको भी मैं भलीभाँति जानता हूँ॥ ८॥ भूतलके मानवलोकमें जो मनुष्यरूप धारण करके उत्पन्न हुआ है, जिसका तेज कुमार कार्तिकेयके समान है, जो शोणितपुरमें निवास करता है और अपनी सहस्र भुजाओंके कारण देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्जय हो रहा है, उस बलाभिमानी दैत्य बाणासुरको भी मैं जानता हूँ तथा यह भी समझता हूँ कि पृथ्वीपर जो भारती सेनाका महान् भार बढ़ा हुआ है, उसे उतारनेका कार्य मुझपर ही अवलम्बित है॥ ९-१०॥ मैं उन सारी बातोंसे परिचित हूँ कि किस प्रकार वे राजालोग आपसमें युद्ध करेंगे, भूतलपर उनका किस तरह संहार होगा और पुनर्जन्मसे रहित दिव्य पुरुष-देह धारण करनेवाले इन नरेशोंको इन्द्रलोकमें किस प्रकार सत्कार प्राप्त होगा—यह सब कुछ मेरी आँखोंके सामने है॥ ११॥ मैं भूलोकमें पहुँचकर मानव-शरीर धारण करके स्वयं तो उद्योगका आश्रय लूँगा ही, दूसरोंको भी इसके लिये प्रेरित करूँगा॥ १२॥ जिस-जिस विधिसे जो-जो असुर मर सकेगा, उस-उस उपायसे ही मैं उन सभी कंस आदि बड़े-बड़े असुरोंका वध करूँगा॥ १३॥ मैं योगसे इनके भीतर प्रवेश करके इनकी अन्तर्धान आदि गतियोंको नष्ट कर दूँगा और इस प्रकार युद्धमें इन देवेश्वरोंके शत्रुओंका संहार कर डालूँगा॥ १४॥ नारद! पृथ्वीके हितके लिये स्वर्गवासी देवताओं, देवर्षियों तथा गन्धर्वोंने यहाँसे जो अपने-अपने अंशका उत्सर्ग किया है, यह सब मेरी अनुमतिसे हुआ है;

विनिश्चयो हि प्रागेव नारदायं कृतो मया।
निवासं ननु मे ब्रह्मन् विदधातु पितामहः॥ १६

यत्र देशे यथा जातो येन वेषेण वा वसन्।
तानहं समरे हन्यां तन्मे ब्रूहि पितामह॥ १७

ब्रह्मोवाच

नारायणेमं सिद्धार्थमुपायं शृणु मे विभो।
भुवि यस्ते जनयिता जननी च भविष्यति॥ १८

यत्र त्वं च महाबाहो जातः कुलकरो भुवि।
यादवानां महद् वंशमखिलं धारयिष्यसि॥ १९

तांश्चासुरान् समुत्पाट्य वंशं कृत्वाऽऽत्मनो महत्।
स्थापयिष्यसि मर्यादां नृणां तन्मे निशामय॥ २०

पुरा हि कश्यपो विष्णो वरुणस्य महात्मनः।
जहार यज्ञिया गा वै पयोदास्तु महामखे॥ २१

अदितिः सुरभिश्चैते द्वे भार्ये कश्यपस्य तु।
प्रदीयमाना गास्तास्तु नैच्छतां वरुणस्य वै॥ २२

ततो मां वरुणोऽभ्येत्य प्रणम्य शिरसा ततः।
उवाच भगवन् गावो गुरुणा मे हृता इति॥ २३

कृतकार्यो हि गास्तास्तु नानुजानाति मे गुरुः।
अन्ववर्तत भार्ये द्वे अदितिं सुरभिं तथा॥ २४

मम ता ह्यक्षया गावो दिव्याः कामदुहः प्रभो।
चरन्ति सागरान् सर्वान् रक्षिताः स्वेन तेजसा॥ २५

कस्ता धर्षयितुं शक्तो मम गाः कश्यपादृते।
अक्षयं वा क्षरन्त्यग्र्यं पयो देवामृतोपमम्॥ २६

प्रभुर्वा व्युत्थितो ब्रह्मन् गुरुर्वा यदि वेतरः।
त्वया नियम्याः सर्वे वै त्वं हि नः परमा गतिः॥ २७

यदि प्रभवतां दण्डो लोके कार्यमजानताम्।
न विद्यते लोकगुरो न स्युर्वै लोकसेतवः॥ २८

क्योंकि मैंने पहलेसे ही ऐसा निश्चय कर लिया था। 'ब्रह्मन्! अब यह ब्रह्माजी मेरे लिये निवासस्थानकी व्यवस्था करें। पितामह! अब आप ही मुझे बताइये कि मैं किस प्रदेशमें कैसे प्रकट होकर अथवा किस वेषमें रहकर उन सब असुरोंका समर-भूमिमें संहार करूँगा?॥ १६-१७॥

ब्रह्माजीने कहा—सर्वव्यापी नारायण! आप मुझसे इस उपायको सुनिये, जिसके द्वारा सारा प्रयोजन सिद्ध हो जायगा। महाबाहो! भूतलपर जो आपके पिता होंगे, जो माता होंगी और जहाँ जन्म लेकर आप अपने कुलकी वृद्धि करते हुए यादवोंके सम्पूर्ण विशाल वंशको धारण करेंगे तथा उन समस्त असुरोंका संहार करके अपने वंशका महान् विस्तार करते हुए जिस प्रकार मनुष्योंके लिये धर्मकी मर्यादा स्थापित करेंगे, वह सब बताता हूँ; सुनिये॥ १८—२०॥ विष्णो! पहलेकी बात है, महर्षि कश्यप अपने महान् यज्ञके अवसरपर महात्मा वरुणके यहाँसे कुछ दुधारू गौएँ माँग लाये थे, जो अपने दूध आदिके द्वारा यज्ञकार्यमें बहुत ही उपयोगिनी थीं॥ २१॥ यज्ञ-कार्य पूर्ण हो जानेपर भी कश्यपकी दो पत्नी अदिति और सुरभिने वरुणको उनकी गौएँ लौटा देनेकी इच्छा नहीं की॥ २२॥ तब वरुणदेव मेरे पास आये और मस्तक झुकाकर मुझे प्रणाम करनेके पश्चात् बोले—'भगवन्! पिताजीने मेरी गौएँ लाकर रख ली हैं॥ २३॥ यद्यपि उन गौओंसे जो कार्य लेना था, वह पूरा हो गया है तो भी पिताजी मुझे उन्हें वापस ले जानेकी आज्ञा नहीं देते हैं। इस विषयमें उन्होंने अपनी दो पत्नियों अदिति और सुरभिके मतका अनुसरण किया है॥ २४॥ प्रभो! मेरी वे गौएँ दिव्य, अक्षय एवं कामधेनु हैं तथा अपने ही तेजसे सुरक्षित रहकर समस्त समुद्रोंमें विचरण करती हैं॥ २५॥ देव! जो अमृतके समान उत्तम दूधको अविच्छिन्न रूपसे देती रहती हैं, मेरी उन गौओंको पिता कश्यपजीके सिवा दूसरा कौन बलपूर्वक रोक सकता है?॥ २६॥ ब्रह्मन्! कोई कितना ही शक्तिशाली हो, गुरुजन हो अथवा और कोई हो, यदि वह मर्यादाका त्याग करता है तो आप ही ऐसे सब लोगोंपर नियन्त्रण कर सकते हैं; क्योंकि आप हम सब लोगोंके परम आश्रय हैं॥ २७॥ लोकगुरो! यदि संसारमें अपने कर्तव्यसे अनभिज्ञ रहनेवाले शक्तिशाली पुरुषोंके लिये दण्डकी व्यवस्था न हो तो जगत्की सारी मर्यादाएँ नष्ट हो जायँगी'॥ २८॥

यथा वास्तु तथा वास्तु कर्तव्ये भगवान् प्रभुः।
मम गावः प्रदीयन्तां ततो गन्तास्मि सागरम्॥ २९

या आत्मदेवता गावो या गावः सत्त्वमव्ययम्।
लोकानां त्वत्प्रवृत्तानामेकं गोब्राह्मणं स्मृतम्॥ ३०

त्रातव्याः प्रथमं गावस्त्रातास्त्रायन्ति ता द्विजान्।
गोब्राह्मणपरित्राणे परित्रातं जगद् भवेत्॥ ३१

इत्यम्बुपतिना प्रोक्तो वरुणेनाहमच्युत।
गवां कारणतत्त्वज्ञः कश्यपे शापमुत्सृजम्॥ ३२

येनांशेन हृता गावः कश्यपेन महर्षिणा।
स तेनांशेन जगतीं गत्वा गोपत्वमेष्यति॥ ३३

या च सा सुरभिर्नाम अदितिश्च सुरारणिः।
तेऽप्युभे तस्य भार्ये वै तेनैव सह यास्यतः॥ ३४

ताभ्यां च सह गोपत्वे कश्यपो भुवि रंस्यते।
स तस्य कश्यपस्यांशस्तेजसा कश्यपोपमः॥ ३५

वसुदेव इति ख्यातो गोषु तिष्ठति भूतले।
गिरिर्गोवर्धनो नाम मथुरायास्त्वदूरतः॥ ३६

तत्रासौ गोषु निरतः कंसस्य करदायकः।
तस्य भार्याद्वयं जातमदितिः सुरभिश्च ते॥ ३७

देवकी रोहिणी चेमे वसुदेवस्य धीमतः।
सुरभी रोहिणी देवी चादितिर्देवकी त्वभूत्॥ ३८

तत्र त्वं शिशुरेवादौ गोपालकृतलक्षणः।
वर्धयस्व महाबाहो पुरा त्रैविक्रमे यथा॥ ३९

छादयित्वाऽऽत्मनाऽऽत्मानं मायया योगरूपया।
तत्रावतर लोकानां भवाय मधुसूदन॥ ४०

जयाशीर्वचनैस्त्वेते वर्धयन्ति दिवौकसः।
आत्मानमात्मना हि त्वमवतार्य महीतले॥ ४१

देवकीं रोहिणीं चैव गर्भाभ्यां परितोषय।
गोपकन्यासहस्त्राणि रमयंश्चर मेदिनीम्॥ ४२

'इस कार्यका जैसा परिणाम होनेवाला हो वैसा ही कर्तव्यका पालन करने या करानेमें आप ही हमारे प्रभु हैं। मुझे मेरी गौएँ दिलवा दीजिये, तभी मैं समुद्रको जाऊँगा॥ २९॥ इन गौओंके देवता साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं तथा ये अविनाशी सत्त्वगुणका साकार रूप हैं। आपसे प्रकट हुए जो-जो लोक हैं, उन सबकी दृष्टिमें गौ तथा ब्राह्मण एक समान माने गये हैं॥ ३०॥ पहले गौओंकी रक्षा करनी चाहिये। फिर सुरक्षित हुई गौएँ ब्राह्मणोंकी रक्षा करती हैं। गौओं और ब्राह्मणोंकी रक्षा होनेपर सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षा हो जाती है'॥ ३१॥ अच्युत! जलके स्वामी वरुणके ऐसा कहनेपर गौओंके कारण-तत्त्वको जाननेवाले मैंने कश्यपको शाप देते हुए कहा—॥ ३२॥ 'महर्षि कश्यपने अपने जिस अंशसे गौओंका अपहरण किया है, उस अंशसे वे पृथ्वीपर जाकर गोप होंगे॥ ३३॥ वे जो सुरभि नामवाली देवी हैं तथा देवतारूपी अग्निको प्रकट करनेवाली अरणीके समान जो अदिति देवी हैं, वे दोनों पत्नियाँ कश्यपके साथ ही भूलोकमें जायँगी॥ ३४॥ गोपयोनिमें प्रकट हुए कश्यप भूतलपर अपनी उन दोनों पत्नियोंके साथ सुखपूर्वक रहेंगे। कश्यपका जो दूसरा अंश कश्यपके समान ही तेजस्वी है, वह भूतलपर वसुदेव नामसे विख्यात हो गौओं और गोपोंके अधिपति-रूपसे निवास करेंगे। मथुरासे थोड़ी दूरपर गोवर्धन नामक पर्वत है, जहाँ वे गौओंकी रक्षामें तत्पर रहेंगे और कंसको कर देनेवाले होंगे। वहाँ अदिति और सुरभि नामक इनकी दोनों पत्नियाँ बुद्धिमान् वसुदेवकी देवकी और रोहिणी नामक ही दो भार्याएँ होंगी; उनमें सुरभि तो रोहिणी-देवी कहलायेंगी और अदिति देवकी॥ ३५—३८॥ महाबाहो! वहाँ आप पहले शिशुरूपमें ही रहकर गोपबालकका चिह्न धारण करके क्रमशः बड़े होइये। ठीक वैसे ही, जैसे त्रिविक्रमावतारके समय आप वामनसे बढ़कर विराट् हो गये थे॥ ३९॥ मधुसूदन! योगमायाके द्वारा स्वयं ही अपने स्वरूपको आच्छादित करके आप लोकहितके लिये वहाँ अवतार लीजिये॥ ४०॥ ये देवतालोग विजयसूचक आशीर्वाद देकर आपके अभ्युदयकी कामना करते हैं। आप पृथ्वीपर स्वयं अपने-आपको उतारकर दो गर्भोंके रूपमें प्रकट हो माता देवकी तथा रोहिणीको संतुष्ट कीजिये। साथ ही यथासमय सहस्त्रों गोपकन्याओंको आनन्द प्रदान करते हुए व्रजभूमिमें विचरण कीजिये'॥ ४१-४२॥

गाश्च ते रक्षतो विष्णो वनानि परिधावतः।
वनमालापरिक्षिप्तं धन्या द्रक्ष्यन्ति ते वपुः॥ ४३

विष्णौ पद्मपलाशाक्षे गोपालवसतिं गते।
बाले त्वयि महाबाहो लोको बालत्वमेष्यति॥ ४४

त्वद्भक्ताः पुण्डरीकाक्ष तव चित्तवशानुगाः।
गोषु गोपा भविष्यन्ति सहायाः सततं तव॥ ४५

वने चारयतो गाश्च गोष्ठेषु परिधावतः।
मज्जतो यमुनायां च रतिं प्राप्स्यन्ति ते त्वयि॥ ४६

जीवितं वसुदेवस्य भविष्यति सुजीवितम्।
यस्त्वया तात इत्युक्तः स पुत्र इति वक्ष्यति॥ ४७

अथवा कस्य पुत्रत्वं गच्छेथाः कश्यपादृते।
का च धारयितुं शक्ता त्वां विष्णो अदितिं विना॥ ४८

योगेनात्मसमुत्थेन गच्छ त्वं विजयाय वै।
वयमप्यालयान् स्वान् स्वान् गच्छामो मधुसूदन॥ ४९

वैशम्पायन उवाच

स देवानभ्यनुज्ञाय विविक्ते त्रिदिवालये।
जगाम विष्णुः स्वं देशं क्षीरोदस्योत्तरां दिशम्॥ ५०

तत्र वै पार्वती नाम गुहा मेरोः सुदुर्गमा।
त्रिभिस्तस्यैव विक्रान्तैर्नित्यं पर्वसु पूजिता॥ ५१

पुराणं तत्र विन्यस्य देहं हरिरुदारधीः।
आत्मानं योजयामास वसुदेवगृहे प्रभुः॥ ५२

'विष्णो! वहाँ गौओंकी रक्षा करते हुए जब आप वन-वनमें दौड़ते फिरेंगे, उस समय आपके वनमालाविभूषित मनोहर रूपका जो लोग दर्शन करेंगे, वे धन्य हो जायँगे॥ ४३॥ महाबाहो! विकसित कमलदलके समान नेत्रवाले आप सर्वव्यापी परमेश्वर जब ग्वालबालके रूपमें व्रजमें निवास करेंगे, उस समय सब लोग आपके बालरूपकी झाँकी करके स्वयं भी बालक बन जायँगे (बाललीलाके रसास्वादनमें मग्न हो जायँगे)॥ ४४॥ कमलनयन! आपके चित्तके अनुकूल चलनेवाले आपके भक्तजन वहाँ गौओंकी सेवाके लिये गोप बनकर प्रकट होंगे और सदा आपके साथ-साथ रहेंगे॥ ४५॥ जब आप वनमें गौएँ चराते होंगे, व्रजमें इधर-उधर दौड़ते होंगे तथा यमुनाजीके जलमें गोते लगाते होंगे, उन सभी अवसरोंपर आपका दर्शन करके वे भक्तजन आपमें उत्तरोत्तर अनुराग प्राप्त करेंगे॥ ४६॥ वसुदेवका जीवन वास्तवमें उत्तम जीवन होगा, जो आपके द्वारा 'तात' कहकर पुकारे जानेपर आपसे पुत्र (बेटा) कहकर बोलेंगे॥ ४७॥ विष्णो! अथवा आप कश्यपके सिवा दूसरे किसके पुत्र होंगे? देवी अदितिके बिना दूसरी कौन-सी स्त्री आपको गर्भमें धारण कर सकेगी॥ ४८॥ मधुसूदन! आप अपने स्वाभाविक योगबलसे असुरोंपर विजय पानेके लिये यहाँसे प्रस्थान कीजिये और अब हमलोग भी अपने-अपने निवास-स्थानको जा रहे हैं'॥ ४९॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! देवलोकके उस पुण्य प्रदेशमें बैठे हुए भगवान् विष्णु देवताओंको जानेकी आज्ञा देकर क्षीरसागरसे उत्तर दिशामें स्थित अपने निवासस्थानको चले गये॥ ५०॥ वहाँ मेरुपर्वतकी पार्वती नामसे प्रसिद्ध एक अत्यन्त दुर्गम गुफा है, जो भगवान् विष्णुके तीन चरण-चिह्नोंसे उपलक्षित होती है; इसीलिये पर्वके अवसरोंपर सदा उसकी पूजा की जाती है॥ ५१॥ उदारबुद्धिवाले भगवान् श्रीहरिने अपने पुरातन विग्रहको वहीं स्थापित करके अपने-आपको वसुदेवजीके घरमें अवतीर्ण होनेके कार्यमें लगा दिया॥ ५२॥

इति श्रीमहाभारते खिलभागे हरिवंशे हरिवंशपर्वणि पितामहवाक्ये पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५५॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतके खिलभाग हरिवंशके अन्तर्गत हरिवंशपर्वमें ब्रह्माजीका वचनविषयक पचपनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५५॥

॥ हरिवंशपर्व सम्पूर्ण ॥